वोल्गासे गंगा

६००० ई० पू० से १९४२ तक
मानव समाजके ऐतिहासिक,
आर्थिक, राजनैतिक प्रवाहोंका
२० कहानियोंके रूपमें पूर्ण चित्र

●

राहुल सांकृत्यायन

प्रकाशक
किताब महल
५६-ए, ज़ीरो रोड, प्रयाग
१९४५

प्रथम संस्करण, १९४२
द्वितीय संस्करण, १९४३
तृतीय संस्करण, १९४५

मुद्रक—मगनकृष्ण दीक्षित,
दीक्षित प्रेस, इलाहाबाद

द्वितीय संस्करण पर दो शब्द

सात-आठ महीनोंके भीतर प्रथम संस्करण खतम हो जाना लेखकके लिए सन्तोषकी बात है, और उससे भी सन्तोषकी बात है पुराणपंथियों-की वह तिलमिलाहट जो कभी असंयत बकवासों और गालियोंके रूपमें निकल पड़ती है। लेकिन मैं समझता हूँ, गालियोंकी मात्रा अभी बहुत कम है। कुछ सज्जनोंने संयम रखनेकी काफ़ी असफल प्रयत्न करते पंडिताऊ आलोचना करनेकी कोशिश की है, और लेखकसे आशा रखी है, कि वह उसके उत्तरमें अपनी लेखनी उठाये। वैसे लेखककी लेखनी विश्राम करना नहीं जानती, मगर कुछ लिखनेके लिए उत्तर देनेके लिए हो भी तो। लेखककी एक-एक कहानीके पीछे उस युगके संबंधकी वह भारी सामग्री है, जो दुनियाकी कितनी ही भाषाओं, तुलनात्मक भाषाविज्ञान, मिट्टी, पत्थर, ताँबे, पीतल, लोहेपर संकेतित या लिखित-साहित्य, अथवा अलिखित गीतों, कहानियों, रीति-रवाजों, टोटके-टोनोंमें पाई जाती है। पुस्तक लिखते वक्त और आज भी लेखककी इच्छा है, कि उस सामग्रीके स्रोतोंका निर्देश परिशिष्टके रूपमें दे दिया जाये, किन्तु काम कुछ इतना बड़ा मालूम होता है, कि समयके ख्यालसे हाथ खींच लेना पड़ता है। और फिर वह इसी जिल्दका परिशिष्ट भी नहीं हो सकता, क्योंकि वह इस पुस्तकसे बड़ा ही होगा। तो भी इस ओर मेरा ख्याल है ज़रूर।

इस संस्करणमें परिवर्तन बहुत ही कम करना पड़ा है, एक तरह मैंने जहाँ-तहाँ छू भर दिया है। मैं चाहता था, हर कहानीके साथ एक-एक रंगीन चित्र हो, मगर युद्धकालीन कठिनाइयाँ उसकी इजाज़त नहीं देतीं।

किताब महल
प्रयाग
-११-४२

राहुल सांकृत्यायन

प्रथम संस्करण का प्राक्कथन

मानव आज जहाँ है, वहाँ प्रारम्भमें ही नहीं पहुँच गया था, इसके लिए उसे बड़े-बड़े संघर्षोंसे गुज़रना पड़ा। मानव समाजकी प्रगतिका सैद्धान्तिक विवेचन मैंने अपने ग्रन्थ "मानव-समाज"में किया है। इसका सरल चित्रण भी किया जा सकता है, और उससे प्रगतिके समझनेमें आसानी हो सकती है, इसी ख्यालने मुझे "वोल्गासे गंगा" लिखनेके लिए मज़बूर किया। मैंने यहाँ हिन्दी-युरोपीय जातिको लिया है, जिसमें भारतीय पाठकोंको सुभीता होगा। मिश्री, सुरियानी या सिन्धु-जाति, विकासमें, हिन्दी-युरोपीय जातिसे सहस्राब्दियों पहिले अग्रसर हुई थी, किन्तु उनको लेनेपर लेखक और पाठक दोनोंकी कठिनाइयाँ बढ़ जातीं।

मैंने हर एक कालके समाजको प्रामाणिक तौरसे चित्रित करनेकी कोशिश की है, किन्तु ऐसे प्राथमिक प्रयत्नमें ग़लतियाँ होना स्वाभाविक है। यदि मेरे प्रयत्नने आगेके लेखकोंको ज़्यादा शुद्ध चित्रण करनेमें सहायता की, तो मैं अपनेको कृतकार्य समझूँगा।

"बंधुल मल्ल"के (बुद्ध)-कालपर मैंने एक स्वतंत्र उपन्यास "सिंह सेनापति" लिखा है।

सेंट्रल जेल, हजारी बाग
२३—६—४२

राहुल सांकृत्यायन

सूची

वोल्गासे गंगा

१—निशा

देश—वोल्गा-तट (ऊपरी), जाति—हिन्दो-योरोपीय,
काल—६००० ईसा-पूर्व।

(१)

दोपहरका समय है, आज कितने ही दिनोंके बाद सूर्यका दर्शन हुआ। यद्यपि इस पाँच घंटेके दिनमें उसके तेजमें तीक्ष्णता नहीं है, तो भी बादल, बर्फ़, कुहरे और झंझासे रहित इस समय चारों ओर फैलती सूर्यकी किरणें देखनेमें मनोहर और स्पर्शसे मनमें आनन्दका संचार करती हैं। और चारों ओरका दृश्य! सघन नील-नभके नीचे पृथिवी कर्पूर-सी श्वेत हिमसे आच्छादित है। चौबीस घंटेसे हिमपात न होनेके कारण, दानेदार होते हुए भी हिम कठोर हो गया है। यह हिमवसना धरती दिगन्त-व्याप्त नहीं है, बल्कि यह उत्तरसे दक्षिणकी ओर कुछ मील लम्बी रुपहली टेढ़ी-मेढ़ी रेखाकी भाँति चली गई है, जिसके दोनों किनारों की पहाड़ियोंपर काली वनपंक्ति है। आइए इस वनपंक्तिको कुछ समीप-से देखें। इसमें दो तरहके वृक्ष ही अधिक हैं—एक श्वेत-वल्कलधारी किन्तु आज-कल निष्पत्र भुर्ज (भोजपत्र); और दूसरे अत्यन्त सरल उत्तुंग, समकोणपर शाखाओंको फैलाये अतिहरित या कृष्ण-हरित सुईसे पत्तोंवाले देवदारु। वृक्षोंका कितना ही भाग हिमसे ढँका हुआ है, उनकी शाखाओं

और स्कन्धोंपर जहाँ-तहाँ रुकी हुई बर्फ़ उन्हें कृष्ण-श्वेत बना आँखोंको अपनी ओर खींचती है।

और ! भयावनी नीरवताका चारों ओर अखंड राज्य है। कहींसे न झिल्लीकी झंकार आती है, न पक्षियोंका कलरव, न किसी पशुका ही शब्द।

आओ, पहाड़ीके सर्वोच्च स्थानके देवदारुपर चढ़कर चारों ओर देखें। शायद वहाँ बर्फ़, धरती, देवदारुके अतिरिक्त भी कुछ दिखाई पड़े। क्या यहाँ बड़े-बड़े वृक्ष ही उगते हैं ? क्या इस भूमिमें छोटे पौधों, घासों-के लिए स्थान नहीं है ? लेकिन इसके बारेमें हम कोई राय नहीं दे सकते। हम जाड़ेके दो भागोंको पारकर अन्तिम भागमें हैं। जिस बर्फ़में ये वृक्ष गड़े हुए-से हैं वह कितनी मोटी है, इसे नापनेका हमारे पास कोई साधन नहीं है। हो सकता है, वह आठ हाथ या उससे भी अधिक मोटी हो। अबकी साल बर्फ़ ज्यादा पड़ रही है, यह शिकायत सभीको है।

देवदारुके ऊपरसे क्या दिखलाई पड़ता है ? वही बर्फ़, वही वनपंक्ति, वही ऊँची-नीची पहाड़ी भूमि। हाँ, पहाड़ीकी दूसरी ओर एक जगह धुआँ उठ रहा है। इस प्राणी-शब्द-शून्य अरण्यानीमें धूमका उठना कौतूहलजनक है। चलो वहाँ चलकर अपने कौतूहलको मिटायें।

धुआँ बहुत दूर था, किन्तु स्वच्छ निरभ्र आकाशमें वह हमें बहुत समीप मालूम होता था। चलकर अब हम उसके नज़दीक पहुँच गये हैं। हमारी नाकमें आगमें पड़ी हुई चर्बी तथा मांसकी गन्ध आ रही है। और अब तो शब्द भी सुनाई दे रहे हैं—ये छोटे बच्चोंके शब्द हैं। हमें चुपचाप पैरों तथा साँसकी भी आहट न देकर चलना होगा, नहीं तो वे जान जायँगे, और फिर न जाने किस तरहका स्वागत वे खुद या उनके कुत्ते करेंगे।

हाँ सचमुच ही छोटे-छोटे बच्चे हैं, इनमें सबसे बड़ा आठ सालसे अधिकका नहीं है, और छोटा तो एक वर्षका है। आधे दर्जन लड़के और

एक घरमें। घर नहीं यह स्वाभाविक पर्वत-गुहा है, जिसके पार्श्व और पिछले भाग अन्धकारमें कहाँ तक चले गये हैं, इसे हम नहीं देख रहे हैं, और न देखनेकी कोशिश करनी चाहिए! और सयाने आदमी! एक बुढ़िया जिसके सन जैसे धूमिल श्वेत केश उलझे तथा जटाओंके रूपमें इस तरह बिखरे हुए हैं, कि उसका मुँह उनमें ढँका हुआ है। अभी बुढ़ियाने हाथसे अपने केशोंको हटाया। उसकी भौंहें भी सफ़ेद हैं, श्वेत चेहरेपर झुर्रिया पड़ी हुई हैं, जो जान पड़ती हैं सभी मुँहके भीतरसे निकल रही हैं। गुहाके भीतर आगका धुआँ और गर्मी भी है, खासकर जहाँ बच्चे और हमारी दादी है। दादीके शरीरपर कोई वस्त्र नहीं, कोई आवरण नहीं। उसके दोनों सूखे-से हाथ पैरोंके पास धरतीपर पड़े हुए हैं। उसकी आँखें भीतर घुसी हुई हैं, और हलके नीले रंगकी पुतलियाँ निस्तेज शून्य-सी हैं, किन्तु बीच-बीचमें उनमें तेज उछल जाता है, जिससे जान पड़ता है कि उनकी ज्योति बिलकुल चली नहीं गई है। कान तो बिलकुल चौकन्ने मालूम होते हैं। दादी लड़कोंकी आवाज़को अच्छी तरह सुन रही जान पड़ती है। अभी एक बच्चा चिल्लाया, उसकी आँख इधर घूमी। बरस-डेढ़-बरसके दो बच्चे हैं. जिनमें एक लड़का और एक लड़की, क़द दोनोंके बराबर हैं। दोनोंके केश ज़रा-सा पीलापन लिए सफ़ेद हैं, बुढ़ियाकी भाँति किन्तु ज्यादा चमकीले, ज्यादा सजीव। उनका शरीर पीवर पुष्ट, अरुण गौर, उनकी आँखें विशाल, पुतलियाँ घनी नीली। लड़का चिल्ला-रो रहा है, लड़की खड़ी एक छोटी हड्डीको मुँहमें डाले चूस रही है। दादीने बुढ़ापेके कम्पित स्वरमें कहा—

"अगिन! आ। यहाँ आ अगिन! दादी यहाँ।"

अगिन उठ नहीं रहा था। उस समय एक आठ बरसके लड़केने आकर उसे गोदमें ले दादीके पास पहुँचाया। इस लड़केके केश भी छोटे बच्चे केसे ही पांडु-श्वेत हैं, किन्तु वे अधिक लम्बे हैं, उनमें अधिक लटें पड़ी हुई हैं। उसके आपादनग्न शरीरका वर्ण भी वैसा ही गौर है, किन्तु वह

उतना पीवर नहीं है; और उसमें जगह-जगह काली मैल लिपटी हुई है। बड़े लड़केने छोटे बच्चेको दादीके पास खड़ाकर कहा—

"दादी! रोचनाने हड्डी छीनी। अगिन रोता।"

लड़का चला गया। दादीने अपने सूखे हाथोंसे अगिनको उठाया। वह अब भी रो रहा था, उसके आँसुओंकी बहती धाराने उसके मैले कपोलोंपर मोटी अरुण रेखा खींच दी थी। दादीने अगिनके मुँहको चूम-पुचकारकर कहा—"अगिन! मत रो। रोचनाको मारती हूँ"—और एक हाथको नंगी किन्तु वर्षोंके चर्बीसे सिक्त फ़र्शपर पटका। अगिनका 'ऊँ-ऊँ" अब भी बन्द न था; और न बन्द थे आँसू। दादीने अपनी मैली हथेलीसे आँसुओंको पोंछते हुए अगिनके कपोलोंकी अरुण पंक्तिको काला बना दिया। फिर रोते अगिनको बहलानेके लिए सूखे चमड़ेके भीतर झलकती हुई ठठरियोंके बीच कुम्हड़ेकी सूखी बतियाकी भाँति लटकते चर्ममय स्तनोंको लगा दिया। अगिनने स्तनको मुँहमें डाला, उसने रोना बन्द कर दिया। उसी समय बाहरसे बातचीतकी आवाज़ आने लगी। उसने शुष्क स्तनसे मुँह खींचकर उधर झाँका। किसीकी मीठी सुरीली आवाज़ आई—

'अगि—ि—ि—न"।

अगिन फिर रो उठा। दो जनियों (स्त्रियों) ने सिरपर लादे लकड़ीके गट्ठरको एक कोनेमें पटका। फिर एक रोचनाके पास और दूसरी अगिनके पास भाग गई। अगिनने और रोते हुए "माँ-माँ" कहा। माँने दाहिने हाथको स्वतन्त्र रखते हुए दाहिने स्तनके ऊपर साहीके काँटे-से गुँथे सफ़ेद बैल-के सरोम चमड़ेको खोलकर नीचे रक्खा। जाड़ेकी भोजन-कृच्छ्रताके कारण उसके तरुण शरीरपर मांस कम रह गया था, तो भी उसमें असाधारण सौन्दर्य था। उसके लाल मैल-छुटे कपोलकी अरुश्वेत छवि, ललाटको बचाते बिखरे हुए लट-विहीन पांडु-श्वेत केश, अल्प-मांसल पृथुल वक्षपर गोल-गोल श्यामल-मुख स्तन, अनुदर कृश-कटि, पुष्ट मध्यम-परिमाण नितम्ब, पेशीपूर्ण वर्तुल जंघा, श्रमधावन-परिचित हलाकार पेंडुली।

उस अष्टादशी तरुणीने अगिनको दोनों हाथोंमें उठाकर उसके मुख, आँख और कपोलको चूमा। अगिन रोना भूल चुका था। उसके लाल होठोंमें-से निकलकर सफ़ेद दँतुलियाँ चमक रही थीं, उसकी आँखें अर्धमुद्रित थीं, गालोंमें छोटे-छोटे गढ़े पड़े हुए थे। नीचे गिरे वृषभ-चर्मपर तरुणी बैठ गई, और उसने अगिनके मुँहमें अपने कोमल स्तनोंको दे दिया। अगिन अपने दोनों हाथोंसे पकड़े स्तनको पीने लगा। इसी समय दूसरी नग्न तरुणी भी रोचनाको लिए पास आकर बैठ गई। उनके चेहरोंको देखनेसे ही पता लग जाता था कि दोनों बहनें हैं।

(२)

गुहामें उन्हें निभृत बातचीत करते छोड़ हम बाहर आ देखते हैं, बर्फ़पर चमड़ेसे ढँके बहुत-से पैर एक दिशाकी ओर जा रहे हैं। चलो उन्हें पकड़े हुए जल्दी-जल्दी चलें। अभी वह पद-पंक्ति तिरछी हो पार-वाली पहाड़ीके जंगलमें पहुँची। हम तेज़ीसे दौड़ते हुए बढ़ते जा रहे हैं, किन्तु ताज़ी पद-पंक्ति खतम होनेकी नहीं आ रही है। हम कभी श्वेत हिमक्षेत्रमें चलते हैं, कभी जंगलमें हो पहाड़ीकी रीढ़को पारकर दूसरे हिमक्षेत्र, दूसरे पार्वत्य वनको लाँघते हुए बढ़ते हैं। आखिर नीचे की ओरसे एक वृक्षहीन पहाड़ीकी रीढ़पर हमारी नज़र पड़ी। वहाँ नीचेसे उठती श्वेत हिमराशि नील नभसे मिल रही है, और उस नील नभमें अपनेको अंकित करती हुई कितनी ही मानव-मूर्तियाँ पर्वत-पृष्ठकी आड़में लुप्त हो रही हैं। उनके पीछे नील आकाश न होता तो निश्चय ही हम उन्हें न देख पाते। उनके शरीरपर हिम जैसा श्वेत वृष-चर्म है। उनके हाथोंमें हथियार भी सफ़ेद रंगसे रँगे मालूम होते हैं। फिर महान् श्वेत हिमक्षेत्रमें उनकी हिलती-डुलती मूर्तियोंको भी कैसे पहचाना जा सकता?

और पास चलकर देखें। सबसे आगे सुपुष्ट शरीरकी एक स्त्री है। आयु चालीस और पचासके बीच होगी। उसकी खुली दाहिनी भुजाको

देखनेसे ही पता लगता है, कि वह बहुत बलिष्ठ स्त्री है। उसके केश, चेहरे, अंग-प्रत्यंग गुहाकी पूर्वोक्त दोनों तरुणियोंके समान किन्तु बड़े आकारके हैं। उसके बायें हाथमें तीन हाथ लम्बी भुर्जकी मोटी नोकदार लकड़ी है। दाहिनेमें चमड़ेकी रस्सीसे लकड़ीके बेंटमें बँधा घिसकर तेज़ किया हुआ पाषाण-परशु है। उसके पीछे-पीछे चार मर्द और दो स्त्रियाँ चल रही हैं। एक मर्दकी आयु स्त्रीसे कुछ अधिक होगी, शेष छब्बीससे चौदह वर्षके हैं। बड़े मर्दके केश भी वैसे ही बड़े-बड़े तथा पांडु-श्वेत हैं। उसका मुँह उसी रंगकी घनी मूँछ-दाढ़ीसे ढँका हुआ है। उसका शरीर भी स्त्रीकी भाँति ही बलिष्ठ है, उसके हाथोंमें भी वैसे ही दो हथियार हैं। बाक़ी तीन मर्दोंमें दो उसी तरहके घनी दाढ़ी-मूँछोंवाले किन्तु उम्रमें कम हैं। स्त्रियोंमें एक बाईस, दूसरी सोलहसे कम है। हम गुहाके चेहरोंको देख चुके हैं, और दादीको भी, सबको मिलानेसे साफ़ मालूम होता है कि इन सभी स्त्री-पुरुषोंका रूप दादीके साँचेमें ढला हुआ है।

इन नर-नारियोंके हाथके लकड़ी, हड्डी और पत्थरके हथियारों और उनकी गम्भीर चेष्टासे पता लग रहा है कि वे किसी मुहिमपर जा रहे हैं।

पहाड़ीसे नीचे उतरकर अगुआ स्त्री—माँ कहिए—बाईं ओर घूमी; सभी चुपचाप उसके पीछे चल रहे हैं। बर्फ़पर चलते वक्त चमड़ेसे उनके ढँके पैरोंसे ज़रा भी शब्द नहीं निकल रहा है। अब आगेकी ओर लटकी हुई (प्राग्-भार, पहाड़) बड़ी चट्टान है, जिसकी बग़लमें कई चट्टानें पड़ी हुई हैं। शिकारियोंने अपनी गति अत्यन्त मन्द कर दी है। वे तितर-बितर होकर बहुत सजग हो गये हैं। वे सारे पैरोंको चीरकर बहुत देर करके एक पैरके पीछे दूसरे पैरको उठाते, चट्टानोंको हाथसे स्पर्श करते आगे बढ़ रहे हैं। माँ सबसे पहले गुहाके द्वार—खुलाव—पर पहुँची। वह बाहरकी सफ़ेद बर्फ़को ध्यानसे देखती है, वहाँ किसी प्रकारका पद-चिह्न नहीं है। फिर वह अकेले गुहामें घुसती है, कुछ ही हाथ बढ़नेपर गुहा घूम जाती है. वहाँ रोशनी कुछ कम है। थोड़ी देर ठहरकर वह

अपने आँखोंको अभ्यस्त बनाती है, फिर आगे बढ़ती है। वहाँ देखती है तीन भूरे भालू—माँ, बाप, बच्चा—मुँह नीचे किये धरतीपर सोये, या मरे पड़े हैं—उनमें जीवनका कोई चिह्न नहीं दीख पड़ता।

माँ धीरेसे लौट आई। परिवार उसके खिले चेहरेको ही देखकर भाव समझ गया। माँ अँगूठेसे कानी अँगुलीको दबाकर तीन अँगुलियोंको फैलाकर दिखाती है। माँके बाद दो मर्द हथियारोंको सँभाले आगे बढ़ते हैं, दूसरे साँस रोके वहीं खड़े प्रतीक्षा करते हैं। भीतर जाकर माँ भालूके पास जाकर खड़ी होती है। बड़ा पुरुष भालुनीके पास और दूसरा बच्चेके पास। फिर वे अपने नोकदार डंडेको एक साथ ऐसे ज़ोरसे मारते हैं, कि वह कोखमें घुसकर कलेजेमें पहुँच जाता है। कोई हिलता-डोलता नहीं। जाड़ेकी छःमासी निद्राके टूटनेमें अभी महीनेसे अधिककी देर है, किन्तु माँ और परिवारको इसका क्या पता! उन्हें तो सतर्क रहकर ही काम करना होगा। डंडेकी नोकको तीन-चार बार और पेटमें घुसा वे भालूको उलट देते हैं, फिर निर्भय हो उनके अगले पैरों और मुँहको पकड़कर घसीटते हुए उन्हें बाहर लाते हैं। सभी खुश हो हँसते और ज़ोर-ज़ोरसे बोलते हैं।

बड़े भालूको चित उलटकर माँने अपने चमड़ेकी चादरसे एक चकमक पत्थरका चाक़ू निकाला। फिर घावकी जगहसे मिलाकर पेटके चमड़ेको चीर दिया—पत्थरके चाक़ूसे इतनी सफ़ाईके साथ चमड़ेका चीरना अभ्यस्त और मज़बूत हाथोंका ही काम है। उसने नरम कलेजीका एक टुकड़ा काटकर अपने मुँहमें डाला, दूसरा सबसे छोटे चौदह वर्षके लड़केके मुँहमें। बाक़ी सभी लोग भालूके गिर्द बैठ गये, माँ सबको कलेजीका टुकड़ा काटकर देती जा रही थी। एक भालूके बाद जब माँने दूसरे भालूपर हाथ लगाया, उस वक्त षोड़शी तरुणी बाहर गई। उसने बर्फ़का एक डला मुँहमें डाला, उसी वक्त बड़ा पुरुष भी बाहर आ गया। उसने भी एक डलेको मुँहमें डाल षोड़शीके हाथको पकड़ लिया। वह ज़रा झिझककर शान्त हो गई। पुरुष उसे अपनी भुजामें बाँध एक ओर ले गया।

षोड़शी और पुरुष हाथमें बर्फ़का बड़ा डला लिये जब भालूके पास लौटे तब दोनोंके गालों और आँखोंमें ज्यादा लाली थी। पुरुषने कहा—

"मैं काटता हूँ, माँ! तू थक गई है।"

माँने चाक़ूको पुरुषके हाथमें दे दिया। उसने झुककर चौबीस वर्षके तरुणके मुँहको चूमा, फिर उसका हाथ पकड़कर बाहर चली गई।

उन्होंने तीनों भालुओंकी कलेजीको खाया। चार मासके निराहार सोये, भालुओंमें चर्बी कहाँसे रहेगी, हाँ बच्चे भालूका मांस कुछ अधिक नरम और सुस्वादु था, जिसमेंसे भी कितना ही उन्होंने खा डाला। फिर थोड़ी देर विश्राम करनेके लिए सभी पास-पास लेट गये।

अब उन्हें घर लौटना था। नर-मादा भालुओंको दो-दो आदमियोंने चमड़ेकी रस्सीसे चारों पैरोंको बाँध डंडेके सहारे कन्धेपर उठाया और छोटे भालूको एक तरुणीने। माँ अपना पाषाण-परशु सँभाले आगे-आगे चल रही थी।

उन जांगल मानवोंको दिनके घड़ी-घंटेका पता तो था नहीं, किन्तु वे यह जानते थे कि आज चाँदनी रात रहेगी। थोड़ा ही चलनेके बाद सूर्य क्षितिजके नीचे चला गया जान पड़ता था, किन्तु वह गहराईमें नहीं गया, इसीलिए सन्ध्या-राग घंटों बना रहा, और जब वह मिटा तब धरती, अम्बर सर्वत्र श्वेतिमाका राज हो गया।

अभी घर-गुहा दूर थी, जब कि खुली जगहमें एक जगह माँ एकाएक खड़ी हो कान लगाकर कुछ सुनने लगी। सब लोग चुपचाप खड़े हो गये। षोड़शीने छब्बीसे तरुणके पास जाकर कहा—"गुर्र, गुर्र बृक, बृक (भेड़िया)।" माँने भी ऊपर-नीचे सिर हिलाते हुए कहा—"गुर्र-गुर्र, बृक। बहुत बृक, बहुत बृक।" फिर उत्तेजनापूर्ण स्वरमें कहा—"तैयार"।

शिकार ज़मीनपर रख दिया गया, और सब अपने-अपने हथियारोंको सँभाले एक दूसरेसे पीठें सटाकर चारों ओर मुँह किये खड़े हो गये। बातकी बातमें सात-आठ भेड़ियोंके झुंडकी लपलपाती जीभें दिखलाई देने लगीं,

और वे गुर्राते हुए पास आ उनके चारों ओर चक्कर काटने लगे। मानवोंके हाथमें लकड़ीके भाले और पाषाण-परशु देख वे हमला करनेमें हिचकिचा रहे थे। इसी समय लड़केने—जो घेरेके बीचमें था—अपने डंडेमें बँधी एक लकड़ी निकालकर कमरसे बँधी चमड़ेकी पतली रस्सीको चढ़ा कमान तैयार की, फिर न जाने कहाँ छिपाये हुए तीक्ष्ण पाषाण-फल-वाले बाणको निकाल चौबीसे पुरुषके हाथमें थमा उसे भीतरकर खुद उसकी जगह आ खड़ा हो गया। चौबीसे पुरुषने प्रत्यंचाको और कसा, फिर तानकर टंकारके साथ बाण छोड़ एक भेड़ियेकी कोखमें मारा। भेड़िया लुढ़क गया, किन्तु फिर सँभलकर जिस वक्त वह अन्धाधुन्ध आक्र-मणकी तैयारी कर रहा था, उसी वक्त उस पुरुषने दूसरा बाण छोड़ा। अबकी भेड़ियेको घाव करारा लगा था। उसे निश्चल देख दूसरे भेड़िये उसके पास पहुँच गये! पहले उन्होंने उसके शरीरसे निकलते हुए गरम खूनको चाटा, फिर वे उसे काटकर खाने लगे।

उन्हें खानेमें व्यस्त देख, फिर लोगोंने शिकार उठाया और सतर्कताके साथ दौड़ते हुए आगे बढ़ना शुरू किया। अबकी बार माँ सबसे पीछे थी, और बीच-बीचमें घूम-घूमकर देखती जाती थी। आज बर्फ़ नहीं पड़ी थी, इसीलिए उनके पैरोंके चिह्न चाँदनी रातमें रास्तेको अच्छी तरह बतला सकते थे। गुहा आध मीलसे कम दूर रह गई होगी कि भेड़ियोंका झुंड फिर पहुँच गया। उन्होंने शिकारको फिर ज़मीनपर रख हथियारोंको सँभाला। अबकी धनुर्धरने कई बाण चलाये, किन्तु वह क्षण भर भी एक जगह न ठहरनेवाले भेड़ियोंका कुछ न कर सका। कितनी ही देरकी पैंतरेबाज़ीके बाद चार भेड़िये एक साथ षोड़शी तरुणीके ऊपर टूट पड़े। बग़लमें खड़ी माँने अपना भाला एक भेड़ियेके पेटमें घुसा ज़मीनपर पटक दिया, किन्तु बाक़ी तीनने षोड़शीकी जाँघमें चोट-कर गिरा दिया और बातकी बातमें उसका पेट चीरकर अँतड़ियाँ बाहर निकाल दीं। जिस वक्त सबका ध्यान षोड़शीके बचानेमें लगा था, उसी

वक्त दूसरे तीनने पीछेसे खाली पा चौबीसे पुरुषपर हमला किया और बचावका मौका ज़रा भी दिये बिना ज़मीनपर पटककर उसकी भी लाद फाड़ दी। जब तक लोग उधर ध्यान दें, तब तक षोड़शीको वह पचीस हाथ दूर घसीट ले गये थे। माँने देखा, चौबीसा पुरुष अधमरे भेड़ियेके पास दम तोड़ रहा है। अधमरे भेड़ियेके मुँहमें किसीने डंडा डाल दिया, किसीने उसके अगले दोनों पैर पकड़ लिये, फिर बाक़ीने मुँह लगाकर भेड़ियेके बहते हुए गरम-गरम नमकीन खूनको पिया। माँने गलेकी नाड़ी काटकर उनके कामको और आसान बना दिया। यह सब काम चन्द मिनटोंमें हुआ था, लोग जानते थे कि षोड़शीकी तुक्का बोटा कर चुकनेके बाद ही भेड़िये हमपर आक्रमण करेंगे। उन्होंने मृतप्राय चौबा-से पुरुषको वहीं छोड़ तीन भालुओं और मरे भेड़ियोंको उठा दौड़ना शुरू किया, और वे सही-सलामत गुहामें पहुँच गये।

आग धायँ-धायँ जल रही थी, जिसकी लाल रोशनीमें सभी बच्चे तथा दोनों तरुणियाँ सो रही थीं। दादीने आहट पाते ही काँपती किन्तु गम्भीर आवाज़में कहा—

"निशा—ा-ा! आ गई।"

"हाँ" कहकर माँने पहले हथियारोंको एक ओर रख दिया, फिर वह चमड़ेकी पोशाक खोल दिगम्बरी बन गई। शिकारको रख उसी तरह बाक़ी सबने भी चर्म-परिधानको हटा आगेके सुखमय उष्ण स्पर्शको रोम-रोममें व्याप्त होने दिया।

अब सारा सोया परिवार जाग उठा था। एक मामूली आहटपर जाग जानेके ये लोग बालपनसे ही आदी होते हैं। बहुत सँभालकर खर्च करते हुए माँने परिवारका अब तक निर्वाह कराया था। हरिन, खरगोश, गाय, भेड़, बकरी, घोड़के शिकार जाड़ा शुरू होनेसे पहले ही बन्द हो जाते हैं; क्योंकि उसी वक्त वे दक्षिणके गरम प्रदेशकी ओर निकल जाते हैं। माँके परिवारको भी कुछ और दक्षिण जाना चाहिए था, किन्तु

षोड़शी उसी वक्त बीमार पड़ गई। उस समयके मानव-धर्मके अनुसार परिवारकी स्वामिनी माँका कर्त्तव्य था कि एकके लिए सारे परिवारकी जानको खतरेमें न डाले। किन्तु, माँके दिलने कमज़ोरी दिखलाई। आज उन्हें एक छोड़ दोको खोना पड़ा। अभी शिकारोंके लौटनेमें दो महीने हैं, इस बीचमें देखें और कितनोंको देना होता है। तीन भालू और एक भेड़ियेमें तो उनका जाड़ा नहीं कट सकता।

बच्चे बड़े खुश थे, बेचारे खाली पेट लेटे हुए थे। माँने पहले उन्हें भेड़ियेकी कलेजी काट-काटकर दी। लड़के हप्-हप्कर खा रहे थे। चमड़ेको बिना नुक़सान पहुँचाये उतारा, चमड़ेका बड़ा काम है। मांस काटकर जब दिया जाने लगा, बहुत भूखोंने तो कुछ कच्चा ही खाया, फिर सबने आगके अंगारपर भून-भूनकर खाना शुरू किया। अपने भूने टुकड़ों-मेंसे एक गाल काटनेके लिए माँकी सभी खुशामद कर रहे थे। माँने कहा—"बस, आज पेटभर खाओ, कलसे इतना नहीं मिलेगा।"

माँ उठकर गुहाके एक कोनेमें गई, वहाँसे चमड़ेकी फूली हुई झिल्लीको लाकर कहा—"बस, यही मधु-सुरा है, आज पियो, नाचो, क्रीड़ा करो।"

छोटोंको झिल्लीसे घूँट-घूँट करके पीनेको मिला, बड़ोंको ज्यादा-ज्यादा। नशा चढ़ आया। आँखें लाल हो आईं। फिर हँसीका ठहाका शुरू हुआ। किसीने गाना गाया। बड़े पुरुषने लकड़ीसे लकड़ी बजानी शुरू की, लोग नाचने लगे। आज वस्तुतः आनन्दकी रात थी। माँका राज्य था, किन्तु वह अन्याय और असमानताका राज्य नहीं था। बूढ़ी दादी और बड़े पुरुषको छोड़ बाक़ी सभी माँकी सन्तानें थीं; और बूढ़ीके ही बड़ा पुरुष तथा माँ बेटा-बेटी थे, इसलिए वहाँ मेरा-तेराका प्रश्न नहीं हो सकता था। वस्तुतः मेरा-तेराका युग आनेमें अभी देर थी। किन्तु हाँ, माँको सभी पुरुषोंपर समान और प्रथम अधिकार था। अपने चौबीसे पुत्र और पतिके चले जानेसे उसे अफ़सोस न हुआ हो यह बात नहीं, किन्तु उस समयका जीवन अतीतसे अधिक वर्त्तमान-विद्यमानकी फ़िक्र करता था।

माँके दो पति मौजूद थे, तीसरा चौदह साला तैयार हो रहा था। उसके राज्यके रहते-रहते बच्चोंमेंसे भी न जाने कितने पतिकी अवस्था तक पहुँच सकते थे। माँ छब्बीसेको पसन्द करती थी, इसलिए बाक़ी तीन तरुणियोंके लिए एक वह पचासा पुरुष ही बचा था।

जाड़ा बीतते-बीतते दादी एक दिन सदाके लिए सोई पड़ी मिली! बच्चों-मेंसे तीनको भेड़िये ले गये और बड़ा पुरुष बर्फ़ पिघलनेपर उमड़ी नदीके प्रवाहमें चला गया। इस प्रकार परिवार सोलहकी जगह नौका रह गया।

(३)

वसन्तके दिन थे। विस्मृत प्रकृतिमें नवजीवनका संचार हो रहा था। छः महीनेसे सूखे भुर्ज-वृक्षोंपर ठूसे-पत्ते निकल रहे थे। बर्फ़ पिघली, धरती हरियालीसे ढँकती जा रही थी। हवामें वनस्पति और नई मिट्टीकी भींगी-भींगी मादक गन्ध फैल रही थी। जीवन-हीन दिगन्त सजीव हो रहा था। कहीं वृक्षोंपर पक्षी नाना-भाँतिके मधुर शब्द सुना रहे थे, कहीं झिल्ली अनवरत शोर मचा रही थी, कहीं हिम-द्रवित प्रवाहोंके किनारे बैठे हज़ारों जल-पक्षी कृमि-भक्षणमें लगे हुए थे, कहीं कलहंस प्रणय-क्रीड़ा कर रहे थे। अब इन हरे पार्वत्य वनोंमें कहीं झुंडके झुंड हरिन कूदते हुए चरते दिखलाई पड़ते थे, कहीं भेड़ें, कहीं बकरियाँ, कहीं बारहसिंगे, कहीं गायें। और कहीं इनकी घातमें लगे हुए चीते दुबककर बैठे हुए थे, और कहीं भेड़िये।

जाड़ेके लिए अवरुद्ध नदीके प्रवाहकी भाँति एक जगह रुक गये मानव-परिवार भी अब प्रवाहित होने लगे थे—अपने हथियारों, अपने चमड़ों तथा अपने बच्चोंको लादे गृह-अग्निको सँभाले अब वे खुली जगहोंमें जा रहे थे। दिन बीतनेके साथ पशु-वनस्पतियोंकी भाँति उनके भी शुष्क चर्मके नीचे मांस और चर्बीके मोटे स्तर जमते जा रहे थे। कभी उनके लम्बे केशवाले बड़े-बड़े कुत्ते भेड़ या बकरी पकड़ते, कभी वे स्वयं जाल, बाण या लकड़ीके भालेसे किसी जन्तुको मारते। नदियोंमें भी मछलियाँ थीं, और इस वोल्गाके ऊपरी भागके निवासियोंके जाल आज-कल कभी ख़ाली बाहर नहीं आते थे।

रातमें अब भी सर्दी थी; किन्तु दिन गर्म था, और निशा-परिवार (माँका नाम निशा) आज-कल कई दूसरे परिवारोंके साथ वोल्गाके तटपर पड़ा हुआ था। निशाकी भाँति ही दूसरे परिवारोंपर भी उनकी माताओंका शासन था, पिताका नहीं। वस्तुतः वहाँ किसका पिता कौन है, यह बतलाना असम्भव था। निशाको आठ पुत्रियाँ और छः पुत्र पैदा हुए, जिनमें चार लड़कियाँ और तीन पुत्र अब भी उसकी पचपन वर्षकी अवस्थामें मौजूद हैं। इनके निशा-सन्तान होनेमें सन्देह नहीं, क्योंकि इसके लिए प्रसवका साक्ष्य मौजूद है; किन्तु उनका बाप कौन है, इसे बताना सम्भव नहीं है। निशाके पहले जब उसकी माँ—बूढ़ी दादी—का राज्य था, तब बूढ़ी दादी—उस वक्त प्रौढ़ा—के कितने ही भाई-पति, कितने ही पुत्र-पति थे, जिन्होंने कितनी ही बार निशाके साथ नाचकर गाकर उसके प्रेमका पात्र बननेमें सफलता पाई थी, फिर स्वयं रानी बन जानेपर निशाकी निरन्तर बदलती प्रेमाकांक्षाको उसके भाई या सयाने पुत्र ठुकरानेकी हिम्मत नहीं रखते थे। इसीलिए निशाकी जीवित सातों सन्तानोंमें किसका कौन बाप है, यह कहना असम्भव है। निशाके परिवारमें आज वही सबसे बड़ी-बूढ़ी—और प्रभुताशालिनी भी—है; यद्यपि यह प्रभुता देर तक रहनेवाली नहीं है। वर्ष दो वर्षमें वह स्वयं बूढ़ी दादी बननेवाली है, और तब सबसे बलिष्ठ निशा-पुत्री लेखाका राज्य होनेवाला है। उस वक्त लेखाकी बहनोंका उससे झगड़ा ज़रूर होगा। जहाँ हर साल परिवारके कुछ आदमियोंको भेड़िये या चीतेके जबड़ों, भालूके पंजों, बैलके सींगों, वोल्गाकी बाढ़ोंकी भेंट चढ़ना है, वहाँ परिवारको क्षीण होनेसे बचाना हर रानी माताका कर्त्तव्य है। तो भी ऐसा होता आया है, लेखाकी बहनोंमेंसे एक या दो अवश्य स्वतंत्र परिवार क़ायम करनेमें समर्थ होंगी। यह परिवार-वृद्धि तभी रुकती, यदि अनेक वीर्यके एक क्षेत्र होनेकी भाँति अनेक रजका भी एक वीर्य-क्षेत्र होता।

परिवारकी स्वामिनी निशा अपनी पुत्री लेखाको शिकारमें बहुत सफल देखती है। वह पहाड़ियोंपर हरिनोंकी भाँति चढ़ जाती है। उस

दिन एक चट्टानपर, बहुत ऊँचे ऐसी जगह एक बड़ा मधुछत्र दिखाई पड़ा, जहाँ रीछ (मध्वद) भी उसे खा नहीं सकता था। लेकिन, लेखाने लट्ठेपर लट्ठे बाँधे, फिर छिपकलीकी भाँति सरकते रातको उसने मशाल से छत्तेकी विषैली बड़ी-बड़ी मधु-मक्खियों को जलाकर उसमें छेद कर दिया। नीचेके चमड़ेके कुप्पेमें तीस सेरसे कम मधु नहीं गिरा होगा। लेखाके इस साहसकी तारीफ़ सारा निशा-परिवार ही नहीं पड़ोसी-परिवार भी कर रहा था। किन्तु निशा उससे सन्तुष्ट नहीं थी। वह देख रही थी, तरुण निशा-पुत्र जितना लेखाके इशारेपर नाचनेके लिए तैयार है, उतना उसकी प्रार्थनाको सुनना नहीं चाहते, यद्यपि वे अभी निशाकी खुल्लम-खुल्ला अवज्ञा करनेका साहस नहीं रखते।

निशा कितने ही दिनोंसे कोई रास्ता सोच रही थी। कभी उसे ख्याल होता लेखाको सोतेमें गला दबाकर मार दें, किन्तु वह यह भी जानती थी कि लेखा उससे अधिक बलिष्ठ है, वह अकेली उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती। यदि वह दूसरेकी सहायता लेना चाहे, तो क्यों कोई उसकी सहायता करेगा! परिवारके सभी पुरुष लेखाके प्रणय-पात्र कृपा-पात्र बनना चाहते थे। निशाकी पुत्रियाँ भी माँका हाथ बँटानेके लिए तैयार न थीं, वे लेखासे डरती थीं। वे जानती थीं कि असफल होनेपर लेखा बुरी तरहसे उनके प्राण लेगी।

निशा एकान्तमें बैठी कुछ सोच रही थी। एकाएक उसका चेहरा खिल उठा—उसे लेखाको परास्त करनेकी कोई युक्ति सूझ पड़ी।

पहरभर दिन चढ़ आया था। सारे परिवार अपने-अपने चमड़ेके तम्बुओंके पीछे नंगे लेटे या बैठे धूप ले रहे थे, किन्तु निशा तम्बूके सामने बैठी थी। उसके पास लेखाका तीन वर्षका पुत्र खेल रहा था। निशाके हाथमें दोनेमें लाल-लाल स्ट्रावरीके फल थे। वोल्गाकी धारा पाससे बह रही थी, और निशाके सामने सीधे खड़े अरार तक ढालू ज़मीन थी। निशाने एक फल लुढ़काया, लड़का दौड़ा और उसे पकड़कर खा गया।

फिर दूसरेको लुढ़काया, उसे थोड़ा और आगे जानेपर वह पकड़ सका। निशाने जल्दी-जल्दी कितने ही फल लुढ़का दिये, बच्चेने उन्हें पकड़नेके लिए इतनी जल्दी की कि एक बार उसका पैर अरारसे फिसल गया और वह धमसे वोल्गाकी तेज़ धारामें जा गिरा। निशा वोल्गाकी ओर नज़र दौड़ाये चीख उठी। कुछ दूरपर बैठी लेखाने देखा। पुत्रको न देख वह धारकी ओर झपटी। उसका पुत्र धारमें अभी नीचे-ऊपर हो रहा था। उसने छलांग मारी और पुत्रको पकड़ लेनेमें सफल हो गई। बहुत पानी पी जानेसे बच्चा शिथिल हो गया था। वोल्गाका बर्फ़ीला जल शरीरमें काँटे की तरह चुभ रहा था। लेखाको धार काटकर किनारेकी ओर बढ़ना मुश्किल था। उसके एक हाथमें बच्चा था, दूसरे हाथ और पैरोंसे वह तैरनेकी कोशिश कर रही थी। उसी वक्त अपने गलेको उसने किसीके मज़बूत हाथोंमें फँसा देखा। लेखाको अब समझनेमें देर न लगी। वह देरसे निशाकी बदली हुई मनोवृत्तिको देख रहीं थी। आज निशा अपने राहके इस कांटे—लेखा—को निकालना चाहती है। लेखा अब भी निशाको अपना बल दिखला सकती थी; किन्तु उसके हाथमें बच्चा था। निशाने लेखाको ज़ोर लगाते देख अपनी छातीको उसके शिरपर रख दिया। लेखा एक बार डूब गई। छटपटानेमें उसका बच्चा हाथसे छूट गया। अब भी निशाने उसे बेक़ाबू कर रक्खा था। एकाएक उसका हाथ निशाके गलेमें पड़ गया। लेखा बेहोश थी और निशा उसके बोझके साथ तैरनेमें असमर्थ। उसने कुछ कोशिश की, किन्तु बेकार! दोनों एक साथ वोल्गाकी भेंट हुईं।

परिवारकी बलिष्ठ स्त्री रोचना निशा-परिवारकी स्वामिनी बनी।*

---

*आजसे ३६१ पीढ़ी पहलेकी कथा है। उस वक्त हिन्द, ईरान और युरोपकी सारी जातियां एक कबीलेके रूपमें थीं। मानवताका आरम्भिक काल था।

२—दिवा

देश—वोल्गा-तट (मध्य), जाति—हिन्दी-स्लाव.
काल—३५०० ई० पू०।

"दिवा ! धूप तेज़ है, देख तेरे शरीर में पसीना। आ, यहाँ शिला-पर बैठें।"

"अच्छा, सूरश्रवा-ा-ा-!" कह दिवा सूरश्रवाके साथ एक विशाल देवदारुकी छायामें शिला-तलपर बैठ गई।

ग्रीष्मका समय, मध्याह्नकी वेला फिर मृगके पीछे दौड़ना, इसपर भी दिवाके ललाटपर श्रमविन्दु अरुण मुक्ताफलकी भाँति न झलकें, यह कैसे हो सकता था ? किन्तु यह स्थान ऐसा था, जहाँ उनके श्रमके दूर होनेमें देर नहीं लग सकती थी। पहाड़ी नीचेसे ऊपर तक हरियालीसे लदी हुई थी। विशाल देवदारु अपनी शाखाओं और सूची-पत्रोंको फैलाये सूर्यकी किरणोंको रोके थे। नीचे बीच-बीचमें तरह-तरहकी बूटियाँ, लताएँ और पौधे उगे हुए थे। ज़रा-सा बैठनेके बाद ही तरुण-युगल अपनी थकावटको भूल गये; और आस-पास उगे पौधोंमें रंग-बिरंगे फूल और उनकी मधुर गन्ध उनके मनका आकर्षण करने लगी। तरुणने अपने धनुष-बाण और पाषाण-परशुको शिलापर रख दिया, और पासमें कल-कल बहते स्फटिक स्वच्छ जल-स्रोतके किनारे उगे पौधोंसे सफ़ेद, बैंगनी, लाल फूलोंको चुनना शुरू किया। तरुणीने भी हथियारोंको रख अपने लम्बे सुनहले केशोंमें हाथ डाला, अभी भी उनकी जड़ें आर्द्र थीं। उसने एक बार नीचे प्रशान्त प्रवाहिता वोल्गाकी धाराकी ओर देखा, फिर पक्षियोंके मधुर कलरवने उसका ध्यान लक्ष भरके लिए अपनी ओर आकर्षित किया, उसने झुककर फूल चुनते तरुणपर नज़र डाली। तरुणके भी वैसे ही सुनहले केश थे,

किन्तु तरुणी अपने केशोंसे तुलना नहीं कर सकती थी; वह उसे अधिक सुन्दर जान पड़ते थे। तरुणका मुख घने पिंगलश्मश्रुसे ढँका था, जिसके ऊपर उसकी नासा, कपोल-भाग और ललाटकी अरुणिमा दिखलाई पड़ती थी। तरुणीकी दृष्टि फिर सूरकी पुष्ट रोमश भुजाओंपर पड़ी। उस वक्त उसे याद आया कैसे सूरने उस दिन एक बड़े दन्तैल सुअर की कमरको इन्हीं भुजाओंसे पत्थरके फरसे द्वारा एक प्रहारमें तोड़ दिया था। उस दिन यह कितनी कर्कश थीं और आज इन फूलोंको चुननेमें वह कितनी कोमल मालूम होती हैं। किन्तु उसकी मुसुकमें उछलती मुसरियाँ उसके पहुँचेमें उभड़ी नसें बाहुको विषम बनाती अब भी उसके बलका परिचय दे रही थीं। एक बार तरुणीके मनमें आया, उठकर उन बाहोंको चूम लें; हाँ, इस वक्त वह उसे इतनी प्यारी मालूम हो रही थीं। फिर दिवाकी दृष्टि तरुणकी जाँघोंपर पड़ी। हर गतिमें उनकी पेशियाँ कितनी उछलती थीं। सचमुच चर्बीहीन पेशीपूर्ण उसकी जाँघें, पृथु पेंडली और क्षीण घुट्टी दिवाको अनोखी-सी मालूम होती थीं। सूरने दिवाका प्यार पानेकी कई बार इच्छा प्रकट की थी; मुँहसे नहीं चेष्टासे। नाचोंमें उसने कई बार अपने श्रम-कौशलको दिखलाकर दिवाको प्रसन्न करना चाहा था, लेकिन दिवाने जहाँ जनके तरुणोंको कितनी ही बार अपनी बाहें नाचनेको दीं, कई बार अपने ओंठ चूमनेको दिये, कई बार उनके अंकोंमें शयन किया, वहाँ बेचारा सूर एक चुम्बन, एक आलिंगन, क्या एक बार हाथ मिला-कर नाचनेसे भी वंचित रहा!

सूर अंजलीमें फूल भर अब दिवाकी ओर आ रहा था। उसका नग्न सर्वाङ्ग कितना पूर्ण था, उसका विशाल वक्ष, चर्बी नहीं पेशीपूर्ण कृश उदर कितना मनोहर था, इसका ख्याल आते ही दिवाको अफ़सोस होने लगा—उसने क्यों नहीं सूरका ख्याल किया। लेकिन, वस्तुतः इसमें दिवाका उतना दोष न था, दोष था सूरके मुँहपर लगे लजाके तालेका।—जिसने दर्वाज़ा खटखटाया उसके लिए वह खुला।

सूरके पास आनेपर दिवाने मुस्कराते हुए कहा —

"कितने सुन्दर कितने सुगन्धित हैं ये फूल !'

सूरने फूलोंको शिलातलपर रखते हुए कहा—"जब मैं इन्हें तेरे सुनहरे केशोंमें गूँथ दूँगा, तो यह और सुन्दर लगेंगे।"

"तो सूर ! तू मेरे लिए इन फूलोंको ला रहा है ?"

"हाँ, दिवा। मैंने इन फूलोंको देखा, तुझे देखा, फिर याद आई जलकी परियाँ।"

"जलकी परियाँ ?"

"हाँ, बहुत सुन्दर जलकी परियाँ, जो खुश होनेपर सारी मन-वांछाओं-को पूर्ण कर देती हैं, और नाराज़ होनेपर प्राण भी नहीं छोड़तीं।"

"तो सूर ! तू मुझे कैसी जल-परी समझता है ?"

'नाराज़ होनेवाली नहीं।"

"किन्तु मैं तुझपर कभी खुश नहीं हुई।"

दिवा ठंढी साँस लेकर चुप हो गई। सूरने फिर दुहराते हुए कहा—

"नहीं दिवा ! तू मुझपर कभी नाराज़ नहीं हुई। याद हैं बचपनके दिन ?"

"तब भी तू शर्मीला था।"

"किन्तु तू मुझपर नाराज़ न होती थी।"

"तब मैं तुझे अपने आप चूमती थी।"

"हाँ, वह चूमना बहुत मीठा था।"

"किन्तु जब ये मेरे गोल-गोल स्तन उभड़ने लगे। जब मेरे मुखको सारे जनके तरुण जोहने लगे, तब मैंने तुझे भुला दिया।"—कह दिवा कुछ खिन्नमना हो गई।

"लेकिन दिवा ! इसमें तेरा दोष नहीं है।"

'"फिर किसका दोष ?"

"मेरा, क्योंकि सारे जनके तरुण तुझसे चुम्बन माँगते, तू उन्हें

चुम्बन देती; सारे जनके तरुण आलिंगन माँगते, तू आलिंगन देती। मृगयामें चतुर, नृत्यमें कुशल, शरीरमें पुष्ट और सुन्दर किसी जन-तरुणकी आशाको तूने भंग नहीं किया।"

"किन्तु सूर! तू भी वैसा ही, उनसे भी बढ़कर चतुर, कुशल, पुष्ट तरुण था, और मैंने तेरी आशाको भंग किया।"

"दिवा! किन्तु मैंने कभी आशा नहीं प्रकट की।"

"शब्दसे नहीं। बचपनमें हम जब साथ खेला करते, तब भी तू शब्दसे आशा नहीं प्रकट करता था, किन्तु दिवा समझती थी आज दिवाने सूरको भुला दिया, क्या यह दिवा (दिन) उस चमकते सूर (सूर्य) को कभी भुलाती है? नहीं सूर! अब दिवा तुझे नहीं भुलायेगी।"

"तो मैं फिर वही सूर और तू वही दिवा बनेगी।"

"हाँ, और मैं तेरे ओठोंको चूमूँगी।"

छोटे बच्चोंकीसी इन नग्न सौन्दर्य-मूर्तियोंने अपने अतिरिक्त अधरों-को मिला दिया, फिर दिवाने अपने अलसीके फूल जैसे नीले नेत्रोंको सूरके वैसे ही नीले नेत्रोंमें चुभोते हुए कहा—

"और तू मेरी अपनी माँका बेटा, मैं तुझे भूल गई!"

दिवाकी आँखें गीली थीं। सूरने उन्हें अपने गालोंसे पोंछते हुए कहा—

"नहीं, तूने नहीं भुलाया दिवा! जब तू बड़ी हो गई, तेरी वाणी, आँखें और सारे अंग कुछ दूसरे जैसे मालूम होने लगे, तो मैं तुझसे दूर हटने लगा।"

"अपने मनसे नहीं सूर!"

"तो, दिवा!—"

"नहीं, कह तू मुझसे अब फिर नहीं शर्मायेगा?"

"नहीं शर्माऊँगा। अच्छा इन फूलोंको गूँथने दे।"

सूरने एक डंठलसे रेशा निकाला, फिर उसमें लाल, सफ़ेद, बैंगनी फूलोंको गूँथना शुरू किया। उसके फूलोंके क्रममें सुरुचि थी। बालोंको

उसने सँभालकर पीठपर फैला दिया। गर्मीके दिनोंमें वोल्गा-तीरके तरुण-तरुणियाँ अकसर नहाने-तैरनेका आनन्द लेते हैं, इसलिए दिवाके केश साफ़ सुलझे हुए थे। सूरने बालोंपर तेहरी मेखलाकी भाँति स्रजको सजाया और फिर बीचमें सफ़ेद तथा किनारेपर बैंगनी फूलोंके एक गुच्छे-को ललाटके ऊपर केशोंमें खोंस दिया। दिवा शिलातलपर बैठी रही। सूरने थोड़ा हटकर उसके चेहरेको देखा। उसे वह सुन्दर मालूम हुई। थोड़ा और दूरसे देखा। वह और भी सुन्दर मालूम हुई, किन्तु वहाँ फूलोंकी सुगन्धि न मिलती थी। सूरने पासमें बैठकर अपने गालोंको दिवाके गालोंसे मिला दिया। दिवाने अपने साथीकी आँखें चूम लीं, और दाहिने हाथको उसके कन्धेपर रख दिया। सूरने अपने बायें हाथसे दिवाकी कटिको लपेटते हुए कहा—

"दिवा! ये फूल पहलेसे अधिक सुन्दर हैं।"

"फूल या मैं?"

सूरको कोई उत्तर नहीं सूझा, उसने ज़रा रुककर कहा—

"मैंने हटकर देखा, तुझे ज्यादा सुन्दर पाया। और हटकर देखा, और सुन्दर पाया।"

"और यदि वोल्गा-तटसे देखता?"

"नहीं, उतनी दूरसे नहीं।—"

सूरकी आँखोंमें चिन्ताकी झलक उतर आई थी। "दूरसे तेरी सुगन्धि जाती रहती है, और रूप भी दूर हो जाता है।"

"तो सूर! तू मुझे दूरसे देखना चाहता है या पास रहना चाहता है?"

"पास रहना, दिवा! जैसे दिवाके पास चमकता सूर।"

"आज मेरे साथ नाचेगा सूर?"

"ज़रूर।"

"आज मेरे साथ रहेगा?"

"ज़रूर।"

"सारी रात ?"

"ज़रूर !"

"तो आज मैं जनके किसी तरुणके पास नहीं रहूँगी।" कह दिवाने सूरका आलिंगन किया।

इसी बीच कितने ही शिकारी तरुण-तरुणियाँ आ गईं। उनकी आवाज़को सुनकर भी वे दोनों वैसे ही रोम-रोमसे आलिंगित खड़े रहे। उन्होंने पास आकर कहा—

"दिवा ! आज तूने सूरको अपना साथी चुना !"

"हाँ !" और मुँह को उनकी ओर घुमाकर कहा—"देखो ये फूल सूरने सजाये हैं।"

एक तरुणी - "सूर ! तू फूल अच्छे सजाता है। मेरे केशोंको भी सजा दे।"

दिवा—"आज नहीं, आज सूर मेरा। कल।"

तरुणी—"कल सूर मेरा।"

दिवा—"कल ! कल भी सूर मेरा।"

तरुणी—"रोज़-रोज़ सूर तेरा दिवा ! यह तो ठीक नहीं।"

दिवाने अपनी ग़लतीको समझकर कहा—"रोज़-रोज़ नहीं स्वसर (बहिन) ! आज और कल भर।"

धीरे-धीरे कितने ही और प्रौढ़ शिकारी आ गये। एक काला विशाल कुत्ता पास आ सूरके पैरोंको चाटने लगा। सूरको अब अपनी मारी भेड़ याद आई। दिवाके कानमें कुछ कह, वह दौड़ गया।

(२)

लकड़ीकी दीवारों और फूससे छाया एक विशाल झोंपड़ा था। पत्थरके फरसे तेज़ होते हैं, किन्तु उनसे इतनी लकड़ियोंका काटना सम्भव नहीं था। उन्होंने लकड़ीके काटनेमें आगसे भी मदद ली थी, किन्तु पाषाण-

परशुओंने काफ़ी काम किया था, इसमें शक नहीं। और इतना बड़ा झोंपड़ा? हाँ, इसीमें सारा निशा-जन—निशा नामक किसी पुराने कालकी स्त्रीकी सन्तान—रहता है। सारा जन एक छतके नीचे रहता, एक साथ शिकार करता, एक साथ फल या मधु जमा करता है। सारे जनकी एक नायिका है, सारे जनका संचालन एक समिति करती है। संचालन—हाँ, इस संचालनसे जनके व्यक्तियोंके जीवनका कोई अंश छूटा नहीं है। शिकार, नाचना, प्रेम, घर बनाना, चमड़ेका परिधान तैयार करना सभी कामोंका संचालन जन-समिति (कमेटी) करती है, जिसमें जन-माताओंका प्राधान्य है। निशा-जनके इस झोंपड़ेमें १५० स्त्री-पुरुष रहते हैं। तो क्या यह सब एक परिवार हैं? बहुत कुछ, और अनेक परिवार भी कह सकते हैं, क्योंकि माँके जीते समय उसकी सन्तानों का एक छोटा परिवार-सा बन जाता है, ज्यादातर इस अर्थमें कि उसके सारे व्यक्ति उस माँके नामसे पुकारे जाते हैं। उदाहरणार्थ दिवाकी माँ न रहे और वह कई बच्चोंकी माँ हो जाये, तो उन्हें दिवा-सूनु (दिवा-पुत्र) और दुहिता (दिवा-पुत्री) कहेंगे। इतना होनेपर भी दिवाकी सन्तानकी अपनी सम्पत्ति (मांस, फल) नहीं होगी। सभी जन—स्त्री, पुरुष दोनों साथ सम्पत्ति अर्जित करता है, साथ उसे भोगता है; न मिलनेपर साथ भूखे मरता है। व्यक्ति जनसे अलग अपना कोई अधिकार नहीं रखते। जनकी आज्ञा, जनका रिवाज़ पालन करना उनके लिए उतना ही आसान मालूम पड़ता है, जितनी अपनी इच्छा।

और झोंपड़ा? यह अस्थायी झोंपड़ा है। जब आस-पासके शिकार चले जायेंगे, आस-पास कन्द मूल-फल न रहेंगे, तो सारा जन भी दूसरी जगह चला जायेगा! सदियोंके तजर्बेसे उन्हें मालूम है, कि किसके बाद कहाँ शिकार पहुँचते हैं। यहाँसे चले जानेपर यह फूस गिर-पड़ जायगा, किन्तु लकड़ी या पत्थरकी दीवारें कई साल तक चली जायेंगी। नई जगह जा दीवारोंको फूससे ढाँक वे नया दम (घर) बनावेंगे, उसमें एक स्थान

सामान रखनेका होगा, एक खाना पकानेका—जन हाथसे मिट्टीका बर्तन बनाता है, खोपड़ीको भी बर्तनके तौरपर इस्तेमाल करता है। मांस कभी कच्चा खाता है, कभी ताज़ेको भूनता है, सूखेको भूनना निषिद्ध समझता है। वोल्गाके इस भागके जंगलोंमें मधु बहुत है, इसीलिए मध्वद (मधु-भक्षी रीछ) भी यहाँ बहुत हैं। निशा-जन मधुको बहुत पसन्द करता है, मधुके तौरपर भी और सुराके तौरपर भी।

और यह संगीत? हाँ, स्त्री और पुरुष मधुर स्वरसे गा रहे हैं। परिधानके चमड़ेको पीटनेमें तो नहीं लगे हुए हैं? जन हर एक कामको सम्मिलित ही नहीं करता, बल्कि उसे मनोरंजक ढंगसे करता है—गीत सम्मिलित कामका एक अंग है, संगीतमें कामका श्रम भूल जाता है। किन्तु, यह गीत कामवाला गीत नहीं मालूम होता। यहाँ एक बार स्त्रियोंके कंठसे सरस कोमल राग निकल रहा है, एक बार पुरुषोंके कंठसे गम्भीर कर्कश ध्वनि। चलें देखें।

झोंपड़ेमें किन्तु विभक्त उसके एक भागमें जनके नर-नारी, बच्चे, बूढ़े, जवान इकट्ठा हुए हैं। बीचमें छत कटी हुई है, जिसके नीचे देव-दारुके काष्ठकी आग जल रही है। स्त्री-पुरुष बड़े रागसे कुछ गा रहे हैं। उसमें जो शब्द सुनाई देते हैं, वह हैं—

"ओ- ो- ो-ग्-ग्-न्-ा-ा आ-ा-या-ा-"

क्या वह इसी अग्निकी प्रार्थना कर रहे हैं? देखो जन-नायिका तथा जन-समितिके लोग आगमें मांस, चर्बी, फल और मधु डाल रहे हैं। अबके जनको शिकार खूब मिले, फल और मधुकी भी बहुतायत रही, पशु तथा मानव शत्रुओंसे जन-सन्तानको हानि नहीं पहुँची; इसीलिए आज पूर्णिमाके दिन जन अग्निदेवके प्रति अपनी कृतज्ञता और पूजा अर्पित कर रहा है। अभी जन-नायिकाने मधु-सुराका एक चषक (प्याला) आगमें डाला, लोग खड़े हो गये। हाँ, सभी नंगे हैं, वैसे ही जैसे कि पैदा हुए थे। जाड़ा नहीं है, इस गर्मीमें वह अपने चमड़ेको किसी दूसरे चमड़ेसे

ढाँकना ग़ैरत समझते हैं। लेकिन, कितने सुडौल हैं इनके शरीर? क्या इनमें किसीका पेट निकला है? क्या इनमें किसीके चमड़ेको चर्बीने फुला रखा है?—नहीं। सौन्दर्य इसे कहते हैं, स्वास्थ्य इसका नाम है। इनके सबके चेहरे बिलकुल एक जैसे हैं। क्यों न होंगे, ये सभी निशाकी सन्तान हैं, बाप-भाई-पुत्रसे पैदा हुए हैं। सभी स्वस्थ और बलिष्ठ हैं। अस्वस्थ निर्बल व्यक्ति इस जीवनमें, इस प्रकृति और पशु-जगत्की शत्रुतामें जी नहीं सकता।

जन-नायिका उठकर बड़ी शालामें गई। लोग मिट्टीसे लिपे फ़र्शपर बैठ रहे हैं। मधुसुराके कुप्पेके कुप्पे आ रहे हैं। और चषक (प्याले)—किसीके पास खोपड़ीके, किसीके पास हड्डी या सींगके और किसीके दारु-पत्तेके हैं। तरुण-तरुणियाँ, प्रौढ़-प्रौढ़ाएँ, वृद्ध-वृद्धाएँ, विभक्तसे होकर पान-गोष्ठीमें लगे हुए हैं। किन्तु, यह नियम नहीं। कितनी ही वृद्धाएँ समझती हैं कि उन्होंने अपने समयमें जीवनका आनन्द पूरा ले लिया है, अब तरुणोंकी बारी है। कितनी ही तरुणियाँ किन्हीं वृद्धोंको उनके सन्ध्या-कालमें अमृतकी एक घूँट अपने हाथसे पिलाना चाहती हैं। वह देखो दिवाको। उसके पास कितनी ही तरुण-तरुणियाँ बैठी हुई हैं; आज उसका हाथ ऋभुके कन्धेपर है, सूर दमाके साथ बैठा है।

खान, पान, गान, नृत्य और फिर इसी बड़ी शालामें प्रेमी-प्रेमिकाओंका अंक-शयन। सबेरे उठ कुछ स्त्री-पुरुष घरके काम करेंगे, कुछ शिकार करने जायँगे और कुछ फल जमा करेंगे। और गुलाबी गालों-वाले इनके छोटे-छोटे बच्चे? कुछ माँकी गोदमें, कुछ वृक्षकी छायाके नीचे चमड़ोंपर, कुछ सयाने बच्चोंकी पीठ या गोदमें, और कितने ही वोल्गाकी रेतकी कूद-फाँदमें रहेंगे।

वृद्ध-वृद्धाएँ अब निशाके राज्यकी अपेक्षा ज्यादा सुखी और सन्तुष्ट हैं। जन एक जीवित माताका राज्य नहीं, बल्कि अनेक जीवित माताओं-के परिवारोंका एक परिवार एक जन है, यहाँ एक माताका अकंटक

राज्य नहीं, जन-समितिका शासन है, इसलिए यहाँ किसी निशाको अपनी लेखाको वोल्गामें डुबानेकी ज़रूरत नहीं।

(३)

दिवा चार पुत्रों और पाँच पुत्रियोंकी माँ है, पैंतालीस वर्षकी आयुमें वह निशा-जनकी जन-नायिका बनाई गई है। पिछले पचीस सालोंमें निशा-जनकी संख्या तिगुनी हो गई है। इसके लिए जब कभी सूर दिवाके ओठोंको चूमकर बधाई देता है, तो वह कहती है—"यह अग्निकी दया है, यह भग (वान्) का प्रताप है। जो अग्निकी शरण लेता है, जो भग (वान्)-की शरण लेता है, उसके चारों ओर मधुकी धारा, इस वोल्गाकी धाराकी भाँति बहती है, उसके दारुओं (वन) में नाना मृग आकर चरते हैं।"

निशा-जनके लिए बहुत मुश्किल है। निशाजन स्थान बदलते जहाँ जाता, वहाँ पहलेके इतने जंगल से उसका काम नहीं चलता। उसे जन-दम (जन-गृह) ही तिगुना नहीं बनाना पड़ता, बल्कि तिगुने मृगया-क्षेत्रोंको भी लेना पड़ता। आज जिस मृगया-क्षेत्रमें उसने डेरा डाला है, उसके उत्तर उषा-जनका मृगया-क्षेत्र है। दोनों मृगया-क्षेत्रके बीच कुछ अस्वामिक वन है। निशा-जन अस्वामिक वनको ही नहीं उषा-जनके क्षेत्रमें भी शिकार करने कई बार गया। जन-समितिने उषा-जनसे झगड़ा होनेकी सम्भावनाको देखा, किन्तु उसे कोई उपाय नहीं सूझा। दिवाने जन-समितिमें एक दिन कहा था—"भग (वान्)ने इतने मुँह दिये, उन्हींके आहारके लिए ये वन हैं। इन वनोंको छोड़ इन मुखोंको आहार नहीं दिया जा सकता; इसलिए निशा-जन इन जंगलोंके रीछों, गायों, घोड़ोंको नहीं छोड़ सकता, वैसे ही जैसे इस वोल्गाकी मछलियोंको।"

उषा-जनने निशा-जनको सरासर अन्याय करते देखा। उसकी जन-समितिने कई बार निशा-जन-समितिसे बातचीत की। समझाया, बतलाया—"सनातन कालसे हमारे दोनों जनोंमें कभी युद्ध नहीं हुआ, हम

हर शरद्में यहीं आकर रहते रहे।" किन्तु भूखे मरकर न्याय करनेके लिए निशा-जन कैसे तैयार होता ? सब क़ानून जब विफल हो जाते हैं, तो जंगलके क़ानूनकी शरण लेनी ही पड़ती है। दोनों जन भीतर-भीतर इसके लिए तैयारी करने लगे। एकका पता दूसरेको मिल नहीं सकता था, क्योंकि प्रत्येक जन ब्याह-शादी, जीना-मरना सब कुछ अपने जनके भीतर करता था।

निशा-जनका एक गिरोह दूसरे मृगया-क्षेत्रमें शिकार करने गया, उषा-जनके लोग छिपकर बैठे हुए थे। उन्होंने आक्रमण कर दिया। निशा-जनके लोग भी डटकर लड़े, किन्तु वह तैयार होकर काफ़ी संख्यामें नहीं आये थे। कितने ही अपने मरोंको छोड़, कितने ही घायलोंको लिये वह भाग आये। जन-नायिकाने सुना, जन-समितिने इसपर विचार किया, फिर जन-संसद्—सारे जनके स्त्री-पुरुषों—की बैठक हुई। सारी बात उनके सामने रखी गई। मरोंका नाम बतलाया गया। घायलोंको सामने करके दिखलाया गया। भाइयों-बेटों, माओं-बहिनों-बेटियोंने खूनका बदला लेनेके लिए सारे जनको उत्तेजित किया। खूनका बदला न लेना जन-धर्मके अत्यन्त विरुद्ध काम है, और वह जन-धर्म-विरोधी कोई काम नहीं कर सकता। जनने तय किया कि मरोंके खूनका बदला लेना चाहिए।

नाचके बाजे युद्धके बाजोंमें बदल गये। बच्चों-वृद्धोंकी रक्षाके लिए कुछ नर-नारियोंको छोड़ सभी चल पड़े। उनके हाथोंमें धनुष, पाषाण-परशु, काष्ठ-शल्य, काष्ठ-मुद्गर थे। उन्होंने अपने शरीरमें सबसे मोटे चमड़ेके कंचुक पहने थे। आगे-आगे बाजा बजता जाता था, पीछे हथियारबन्द नर-नारी। जन-नायिका दिवा आगे-आगे थी। दूर तक सुनाई पड़ती बाजेकी आवाज़, और लोगोंके कोलाहलसे सारी अरण्यानी मुखरित हो रही थी। पशु-पक्षी भयभीत हो यत्र-तत्र भाग रहे थे।

अपने क्षेत्रको छोड़ वह अस्वामिक क्षेत्रमें दाखिल हुए—सीमा-चिह्न न होनेपर भी हर एक जन-शिकारी अपनी सीमाको जानता है और वह

उसके लिए झूठ नहीं बोल सकता। झूठ अभी मानवके लिए अपरिचित और अत्यन्त कठिन विद्या थी। शिकारियोंने अपने जनके पास सूचना पहुँचाई, वह जन-पुर (जनके झोंपड़े)से हथियारबन्द हो निकले। उषा-जन वस्तुतः न्याय चाहता था, वह सिर्फ़ अपने मृगया-क्षेत्रकी रक्षा करना चाहता था, किन्तु उसके अ-मित्र इस न्यायके लिए तैयार न थे। उषा-जनके मृगया-क्षेत्रमें दोनों जनोंका युद्ध हुआ। चकमक पत्थरके तीक्ष्ण फलवाले बाण सन्-सन् बरस रहे थे; पाषाण-परशु खप्-खप् एक दूसरेपर चल रहे थे। वे भालों और मुग्दरोंसे एक दूसरेपर प्रहार कर रहे थे। हथियार टूट या छूट जानेपर भट और भटानियाँ हाथों, दाँतों, और नीचे पड़े पत्थरोंसे लड़ रहे थे।

निशा-जनकी संख्या उषा-जनकी संख्यासे दूनी थी इसलिए उसपर विजय पाना उषा-जनके लिए असम्भव था। किन्तु, लड़ना ज़रूरी था, और तब तक जब तक कि एक बच्चा भी रह जाये। लड़ाई पहर भर दिन चढ़े शुरू हुई थी। जंगलमें उषा-जनके दो-तिहाई लोग मारे जा चुके थे—हाँ, घायल नहीं मारे, जनोंके युद्धमें घायल शत्रुको छोड़ना भारी अधर्म है। बाक़ी एक-तिहाईने वोल्गाके तटपर लड़ते हुए प्राण दिया। बूढ़ों और बच्चों सहित माताओंने दम (घर) छोड़ भागना चाहा, किन्तु समय बीत चुका था। निशा-जनके बर्बर नर-नारियोंने उन्हें खदेड़-खदेड़ कर पकड़ा, दूध-मुँहें बच्चोंको पत्थरोंपर पटका, बूढ़ों और बूढ़ियोंके गलेमें पत्थर बाँधकर वोल्गामें डुबाया। दमके भीतर रखे मांस, फल, मधु, सुरा तथा दूसरे सामानको बाहर निकाल बाक़ी बचे बच्चों और स्त्रियोंको झोंपड़ेके भीतर बन्दकर आग लगा दी। पोरिसों उछलती ज्वालाके भीतर उठते प्राणियोंके क्रन्दनका आनन्द लेते, निशा-जनने अग्निदेवको धन्यवाद दिया, फिर शत्रु-संचित मांस और सुरासे अपने देवों तथा अपनेको तृप्त किया।

जन-नायिका दिवा बहुत ख़ुश थी। उसने तीन माताओंकी छातीसे छीनकर उनके बच्चोंको पत्थरपर पटका था, जब उनकी खोपड़ीके फटनेका

शब्द होता, तो वह किल-किलाकर हँसती। खान-पानके बाद उसी आगके प्रकाशमें नृत्य शुरू हुआ। दिवा अपने तरुण पुत्र वसुके साथ आज नाच रही थी। दोनों नग्न मूर्तियाँ नृत्यके तालमें ही कभी एक दूसरेको चूमतीं, कभी आलिंगन करतीं, कभी चक्कर काटकर भिन्न-भिन्न नाट्य-मुद्रायें दिखलातीं। सब जन जानता था कि आज उनकी जन-नायिकाका प्रेमपात्र वसु बना है, वसु विजयोन्माद-मत्त माताके प्रेमको ठुकराना नहीं चाहता था।

निशा-जनका मृगया-क्षेत्र अब चौगुनेसे अधिक हो गया था, शरदके निवासके लिए उसे बिलकुल चिन्ता न रह गई थी। चिन्ता उसे सिर्फ़ एक बातकी थी, उषा-जनके मारे गये लोगोंने जो बात जीवित रहते न कर पाई, उसे अब वे मरनेके बाद प्रेत हो करना चाहते थे। उस जले दमकी जगह प्रेत-पुर बस गया था, जिससे अकेले-दुकेले गुज़रना किसी निशा-जनवालेके लिए असम्भव था। कितनी ही बार शिकारियोंने दूर तक फैली आगके सामने सैकड़ों नंगी मूर्तियोंको नाचते देखा था। स्थान परिवर्तनके समय जनको उधरसे ही जाना पड़ता था, किन्तु उस वक़्त वह भारी संख्यामें होता और दिनके उजालेमें जाता था। दिवाने तो कई बार अँधेरेमें दूध-मुँहे बच्चोंको ज़मीनसे उछलकर अपने हाथमें लिपटते देखा, उस वक़्त वह चिल्ला उठती।

(४)

दिवा अब सत्तरसे ऊपरकी है। अब वह निशा-जनकी नायिका नहीं है, किन्तु अब भी वह उसकी एक सम्माननीय वृद्धा है; क्योंकि २० वर्ष तक जन-नायिका रह उसने अपने बढ़ते हुए जनकी समृद्धिके लिए बहुत काम किया था। इन वर्षोंमें जनको कई बाहरी जनोंसे लड़ना पड़ा, जिसमें उसे भारी जन-हानि उठानी पड़ी, तो भी निशा-जन सदा विजयी रहा। अब उसके पास कई मासोंके लिए पर्याप्त मृगया-क्षेत्र हैं। दिवाके लिए

यह सब भग (वान्)की कृपासे था, यद्यपि हाथके पटके वे बच्चे अब भी कभी-कभी उसकी नींदको उचाट देते !

जाड़ोंका दिन था। वोल्गाकी धारा जम गई थी और महीनोंके बरसते हिमके कारण वह दूरसे रजत बालुका या घने कपासकी राशि-सी मालूम होती थी। दूसरी ओर जंगलोंमें शिशिरकी निर्जीवता और स्तब्धता छाई थी। निशा-जनकी संख्या अब और भी ज्यादा थी, इसलिए उसके आहारकी मात्रा भी अधिक होनी ज़रूरी थी, किन्तु साथ ही उसके पास काम करनेवाले हाथ भी अधिक थे और कामके दिनोंमें वह अधिक मात्रामें आहार-संचय करते। जाड़ोंमें भी सधे कुत्तोंको लिये निशा-पुत्र और-पुत्रियाँ शिकारमें कुछ-न-कुछ प्राप्त कर लेतीं। इधर उन्होंने शिकारका एक और नया ढंग निकाला था—चारेके अभावसे हरिन, गाय, घोड़े आदि शिकारके जानवर एक जंगलसे दूसरे जंगलको चले जाते थे। निशा-जनने ज़मीनमें गिरे दानोंको जमते देखा था, इसलिए उन्होंने घासके दानोंको आर्द्र भूमिमें छींटना शुरू किया। इन उगाई घासोंके कारण जानवर कुछ दिन और अटकने लगे।

उस दिन ऋत्नश्रवाके कुत्तेने खरगोशका पीछा किया। ऋत्नश्रवा भी उसके पीछे दौड़ा। पसीना छूटनेपर उसने अपने बड़े चर्म-कंचुकको उतार कन्धेपर रख फिर दौड़ना शुरू किया; किन्तु, कुत्ता अभी भी नहीं दिखाई पड़ता था, बरफ़में उसके पैरोंके निशान जरूर दिखलाई पड़ रहे थे। ऋत्न हाँफने लगा, और विश्राम करनेके लिए एक गिरे हुए वृक्षके स्कन्धपर बैठ गया। अभी वह पूरी तरह विश्राम नहीं कर पाया था कि उसे दूर अपने कुत्तेकी आवाज़ सुनाई दी। वह उठकर फिर दौड़ने लगा। आवाज़ नज़दीक आती गई। पास जाकर देखा, देवदारुके सहारे एक सुन्दरी खड़ी है। उसके शरीरपर श्वेत चर्म-कंचुक हैं। सफ़ेद टोपीके नीचेसे जहाँ-तहाँ उसके सुनहले केश निकलकर दिखलाई दे रहे हैं। उसके पैरोंके पास एक मरा हुआ खरगोश पड़ा है। ऋत्नको देखकर कुत्ता नज़दीक

बा और ज़ोर-ज़ोरसे भूकने लगा। ऋक्षकी दृष्टि सुन्दरी के चेहरेपर पड़ी, उसने मुस्कराकर कहा—"मित्र! यह तेरा कुत्ता है?"

"हाँ, मेरा है, किन्तु मैंने तुझे कभी नहीं देखा।"

"मैं कुरुजनकी हूँ। यह कुरु-जनकी भूमि है।"

"कुरु-जनकी!" कह ऋक्ष सोचमें पड़ गया। कुरु यहाँ उसका पड़ोसी-जन है। कितने ही वर्षों से दोनों जनोंमें अन-बन चल रही है। कभी-कभी युद्ध भी हो जाता है। किन्तु कुरु उषा-जनसे अधिक चतुर है, इसलिए युद्धमें सफलताकी आशा न देख वह अक्सर अपने पैरोंसे भी काम लेता है, इस तरह जहाँ हाथ सफलता नहीं प्रदान करते, वहाँ पैर जीवित रहनेमें सफल बनाते हैं। निशा-पुत्र बराबर कुरु-संहारका निश्चय करते, किन्तु अभी तक वह अपने निश्चयको कार्य रूप में परिणत नहीं कर सके थे।

ऋक्षको चुप देख तरुणीने कहा—"इस खरगोशको तेरे कुत्तेने मारा है, इसे तू ले जा।"

"लेकिन, यह कुरुओंके मृगया-क्षेत्रमें मरा है।"

"हाँ, मरा है, किन्तु मैं कुत्तेके मालिककी प्रतीक्षामें थी।"

"प्रतीक्षामें?"

"हाँ, कि उसके आनेपर इस खरगोशको दे दूँ।"

कुरुका नाम सुनकर ऋक्षके मनमें कुछ द्वेष-सा उठ आया था, किन्तु सुन्दरीके स्नेहपूर्ण शब्दोंको सुनकर वह दूर होने लगा। उसने प्रत्युपकारके भावसे प्रेरित होकर कहा—

"शिकार ही नहीं, तूने मेरे श्वक (कुत्ते) को भी मुझे दिया। यह कुत्ता मुझे बहुत प्रिय है।"

"सुन्दर श्वक है।"

"सारे जनके बीच क्यों न हो, मेरी आवाज़ सुनते ही मेरे पास चला आता है।"

"इसका नाम ?"

"शंभू।"

"और तेरा मित्र !"

"ऋत्तश्रवा रोचना-सूनु।"

"रोचना-सूनु ! मेरी माँका नाम भी रोचना था। ऋत्त जल्दी न हो तो थोड़ा बैठ।"

ऋत्तने धनुष और कंचुकको बरफ़पर रखकर सुन्दरीके पैरोंके पास बैठते हुए कहा—

"तो अब तेरी माँ नहीं है ?"

"नहीं, वह निशा-जनके युद्धमें मारी गई। वह मुझे बहुत प्यार करती थी।"—कहते-कहते तरुणीकी आँखोंमें आँसू भर आये।

ऋत्तने अपने हाथसे उसके आँसुओंको पोंछते हुए कहा—

"यह युद्ध कितना बुरा है !"

"हाँ, जिसमें इतने प्रियोंका बिछोह होता है।"

"और अब भी वह बन्द नहीं हुआ।"

"बिना एकके उच्छेद हुए वह कैसे बंद होगा ? मैं सुनती हूँ, निशा-पुत्र फिर आक्रमण करनेवाले हैं। मैं सोचती हूँ ऋत्त ! तेरे जैसे ही तरुण तो वह भी होंगे।"

"और तेरी जैसी ही तरुणियाँ कुरुओंमें भी होंगी।"

"फिर भी हमें एक दूसरेको मारना होगा, ऋत्त ! यह कैसा है !"

ऋत्तको ख्याल आया, तीन दिन बाद उसका जन कुरुओंपर आक्रमण करनेवाला है। ऋत्तके कुछ बोलनेसे पहले ही तरुणीने कहा—

"लेकिन हम अब नहीं लड़ेंगे।"

"नहीं ! कुरु नहीं लड़ेंगे !"

"हाँ, हमारी संख्या इतनी कम रह गई है, कि हमें जीतनेकी आशा नहीं।"

"फिर कुरु क्या करेंगे ?"

"वोल्गा-तटको छोड़ दूर चले जायँगे । वोल्गा माताकी धारा कितनी प्रिय है ! अब फिर यह देखनेको नहीं मिलेगी, इसीलिए मैं घंटों यहाँ बैठी इसकी सुस्त धाराको देखा करती हूँ ।"

"तो तू वोल्गाको फिर न देख सकेगी ।"

"न तैर सकूँगी । इस गम्भीर उद (जल)में तैरनेमें कितना आनन्द आता था !"—सुन्दरीके कपोलोंपर अश्रुबिन्दु ढलक रहे थे ।

"कितना क्रूर, कितना निष्ठुर !"—उदास हो ऋृद्धने कहा ।

"किन्तु यह जन-धर्म है, रोचना-सूनु ।"

"और बर्बर-धर्म है ।"*

---

*आजसे सवा दो सौ पीढ़ी पहलेके एक आर्य-जनकी यह कहानी है । उस वक्त भारत, ईरान और रूसकी श्वेत जातियोंकी एक जाति थी, जिसे—हिन्दी-स्लाव या शतं-वंश कहते हैं ।

३—अमृताश्व

देश—मध्य-एशिया; पामीर (उत्तर-कुरु);
जाति—हिन्दी-ईरानी; काल—३००० ई० पू०

(१)

फर्गानाके हरे-हरे पहाड़, जगह-जगह बहती सरितायें तथा चश्मे, कितने सुन्दर हैं, इसे वही जान सकते हैं, जिन्होंने काश्मीरकी सुषमा देखी है। हेमन्त बीतकर बसन्त आ गया है। और बसन्त-श्री उस पार्वत्य उपत्यकाको भू-स्वर्ग बना रही है। पशु-पाल अपने हेमन्त-निवासों, गिरि-गुहाओं या पाषाण-गृहोंसे निकलकर विस्तृत गोचर-भूमिमें चले आये हैं। उनके घोड़ेके बालके तम्बुओंसे—जिनमें अधिकतर लाल रंगके हैं—धुआँ निकल रहा है। अभी एक तम्बूसे एक तरुणी मशक-को कन्धेसे लटकाये नीचे पत्थरोंपर अट्टहास करती सरिताके तटकी ओर चली। अभी वह तम्बुओंसे बहुत दूर नहीं गई थी, कि एक पुरुष सामने आकर खड़ा हुआ। तरुणीकी भाँति उसके शरीरपर भी एक पतले सफ़ेद ऊनी कम्बलके दो छोर दाहिने कन्धेपर इस तरह बँधे हुए हैं, कि दाहिना हाथ, मोढ़ा और वक्षार्द्ध तथा घुटनोंके नीचेका भाग छोड़, सारा शरीर ढँका हुआ है। पुरुषके पिंगल केश, श्मश्रु सुन्दर रूपसे सँवारे हुए हैं। सुन्दरी पुरुषको देख ठहर गई। पुरुषने मुस्कराते हुए कहा—"सोमा! आज देरसे पानीके लिए जा रही है?"

"हाँ, ऋजाश्व! किन्तु तू किधर भूल पड़ा?"

"भूला नहीं सखी! मैं तेरे ही पास चला आया।"

"मेरे पास ! बहुत दिनों बाद ।"

"आज सोमा याद आ गई !"

"बहुत अच्छा, मुझे पानी भरकर घरमें पहुँचाना है। अमृताश्व खाने बैठा है।"

बात करते हुए दोनों नदी तक जा, घर लौटे। ऋज्राश्वने कहा—

"अमृताश्व बड़ा हो गया।"

"हाँ, तूने तो कई वर्षोंसे नहीं देखा ?"

"चार वर्षसे ?"

"इस वक्त वह बारह वर्षका है। सच कहती हूँ ऋज्राश्व ! रूपमें वह तेरे समान है।"

"कौन जाने, उस वक्त मैं भी तो तेरा कृपा-पात्र था। अमृताश्व इतने दिनों कहाँ रहा ?"

"नानाके यहाँ, वाल्हीकोंमें।"

सुन्दरीने जल-पूर्ण मशक तम्बूमें रखी और अपने पति कृच्छ्राश्वको ऋज्राश्वके आनेकी खबर दी। दोनों और उनके पीछे अमृताश्व भी, तम्बूसे बाहर निकले। ऋज्राश्वने सम्मान प्रदर्शित करते हुए कहा—"कह, मित्र कृच्छ्राश्व ! तू कैसे रहा ?"

"अग्निदेवकी कृपा है, ऋज्राश्व ! आ जा फिर, अभी-अभी सोम (भाँग) को घोटकर मधु और अश्विनी-क्षीरके साथ तैयार किया है।"

"मधु-सोम ! किन्तु इतने सबेरे कैसे ?"

"मैं घोड़ोंके रेवड़में जा रहा हूँ। बाहर देखा नहीं, घोड़ा तैयार है ?"

"तो आज शामको लौटना नहीं चाहता ?"

"शायद। इसीलिए तैयार है यह सोमकी मशक और मधुर अश्व-मांस।"

"अश्व-मांस !"

"हाँ, हमारे पशुओंपर अग्निदेवकी कृपा है। मैं तो अश्वोंको ही

अधिक पालता हूँ।"

"हाँ, कृच्छ्राश्व! तेरा नाम उल्टा है।"

"माँ बापके समय हमारे घरमें अश्वोंकी कृच्छ्रता थी, इसीलिये यह नाम रख दिया।"

"लेकिन अब तो ऋद्धाश्व होना चाहिए।"

"अच्छा, चलो भीतर।"

"किन्तु, मित्र! इसी देव-द्रुमकी छायामें हरी घासपर क्यों न?"

"ठीक, सोमा! तो ला, सोम और मांससे यहीं मित्रको तृप्त करें।"

"किन्तु कृच्छ्र! तू अश्वोंमें जा रहा था।"

"चला जाऊँगा, आज नहीं कल। बैठ ऋज्राश्व!"

सोमा सोमकी मशक और चषक (प्याले) लिये आई। दोनों मित्रोंके बीच अमृताश्व भी बैठ गया। सोमाने सोम (भाँगके रस) और चषकको धरतीपर रखते हुए कहा—"बिस्तर ला दूँ, ज़रा ठहरो।"

"नहीं सोमे! यह कोमल हरी घास बिस्तरसे अच्छी है।"—ऋज्राश्वने कहा।

"अच्छा, यह बतला ऋज्र! लवणके साथ उबाला मांस खायेगा, या आगमें भूना? बछेड़ा आठ महीनेका था, मांस बहुत कोमल है।"

"मुझे तो सोमे! भूना बछेड़ा पसन्द आता है। मैं तो कभी-कभी सम्पूर्ण बछेड़ेको आगपर भूनता हूँ। देर लगती है, किन्तु मांस बहुत मधुर होता है। और तुझे भी सोमे! मेरे चषकको अपने ओठोंसे मीठा करना होगा।"

"हाँ, हाँ, सोमे! ऋज्र बहुत समय बाद आया है।"—कृच्छ्राश्वने कहा।

"मैं जल्दी आती हूँ, आग बहुत है, मांस भूनते देर न लगेगी।"

कृच्छ्राश्वको चषकपर चषक उँडेलते देख ऋज्राश्वने कहा—"क्या जल्दी है?"

"सोम मधुरतम है। सोमाका हाथ और सोम! सोम अमृत है। यह सोमपायीको अमृत बनाता है। पी सोम और अमृत बन जा।"

"तू अमृत क्या बनेगा! जिस तरह चषकपर चषक उँडेले जा रहा है, उससे तो अ-चिरमें मृत-सा बन जायेगा।"

"किन्तु तू जानता है ऋज्र! मैं सोमसे कितना प्रेम रखता हूँ!"

इसी वक्त भुने मांसके तीन टुकड़ोंको चमड़ेपर लिये सोमा आकर बोली—"किन्तु कृच्छ्र! तू सोमासे प्रेम नहीं रखता?"

"सोमासे भी और सोमसे भी।" कृच्छ्रने परिवर्त्तित स्वरमें कहा। उसकी आँखें लाल हो रही थीं, "और सोमा, आज तुझे क्या परवाह?"

"हाँ, आज तो मैं अतिथि ऋज्रकी हूँ।"

"अतिथि या पुराने मित्रकी?"—हँसनेकी कोशिश करते हुए कृच्छ्रने कहा।

ऋज्राश्वने हाथ पकड़कर सोमाको अपनी बग़लमें बैठा लिया, और सोम-पूर्ण चषकको उसके मुँहमें लगा दिया। सोमाने दो घूँट पीकर कहा—"अब तू पी ऋज्र! बहुत समय बाद यह दिन आया है।"

ऋज्राश्वने सारे चषकको एक साँसमें साफ़कर नीचे रखते हुए कहा—"तेरे ओठोंके लगते ही सोमे! यह सोम कितना मीठा हो जाता है!"

कृच्छ्राश्वपर सोमका असर होने लगा था। उसने झटपट अपने चषकको भरकर सोमाकी ओर बढ़ाते हुए लड़खड़ाती ज़बानसे कहा—"तो-ो-ो-सो-ो-ोमे-ेे! इस—स्-से-भी-ी-म्-म-ध्-धु-र व्-ब-ना-ा दे।"

सोमाने उसे ओठोंसे छू, लौटा दिया। अमृताश्वको बड़ोंके प्रेमालापमें कम रस आता था, इसलिए वह समवयस्क बालक-बालिकाओंके साथ खेलनेके लिए निकल भागा। कृच्छ्राश्वने झपी जाती पपनियों और गिरे जाते शिरके साथ कहा—"सो-ो-मे-े-! ग्-गा-ना-ा ग्-गा-ऊँ?"

"हाँ, तेरे जैसे गायक क्या कुरुमें कहीं हैं?"

"ठ-ठी-ी कम्-मे-रे ज-जै-सा-ा ग्-गा-य-क न-हीं-ीं-। तू-तो सू-सु-न—"

"प्-पि-व्-व्-वे - - - -म्-मसो- ो-मं—"

"रहने दे कृच्छ्र! देख तेरे संगीतसे सारे पशु-पक्षी जंगल छोड़ भाग रहे हैं।"

"ह्-हु-म्-म !"

इस समय सोम पी अमृत बननेका नहीं था। आम तौरसे उसका समय सूर्यास्तके बाद होता है; किन्तु कृच्छ्राश्वको तो कोई बहाना मिलना चाहिए। उसके होश-हवास छोड़ चित्त पड़ जानेपर; सोमा और ऋज्राश्व-ने भी प्याले रख दिये और दोनों नदीके किनारे एक चट्टानपर जा बैठे। पहाड़के बीच यहाँ धार कुछ समतल भूमिमें बह रही थी, किन्तु उसमें बड़े-छोटे पत्थरोंके ढोंके भरे हुए थे, जिनपर जल टकराकर शब्द कर रहा था। पत्थरोंकी आड़में जहाँ-तहाँ मछलियाँ अपने पंखोंको हिलातीं चलती-फिरती दिखलाई पड़ती थीं। तटके पासकी सूखी भूमिपर विशाल साल, देवदारु आदिके वृक्ष थे। पक्षियोंके सुहावने गीतोंके साथ फूलोंसे सुगन्धित मन्द पवनमें स्वाँस तथा स्पर्श लेना बड़े आनन्दकी चीज़ थी। बहुत वर्षों बाद दोनों इस स्वर्गीय भू-भागमें अपने पुराने प्रेमकी आवृत्ति कर रहे थे। इस वक्त फिर उन्हें वह दिन याद आ रहे थे, जब कि सोमा षोड़शी पिंगला (पिंगल-केशी) थी, जब बसन्तोत्सवके समय ऋज्राश्व भी वाह्लीकोंमें अपने मामाके घर गया था। सोमा उसके मामाकी लड़की थी। ऋज्राश्व भी उसके प्रेमियोंमें था। उस वक्त सोमाके चाहनेवालोंमें होड़ लगी थी, किन्तु जयमाला कृच्छ्राश्वको मिली। दूसरोंके साथ ऋज्राश्वको भी परा-जय स्वीकार करनी पड़ी। अब सोमा कृच्छ्राश्वकी पत्नी है, किन्तु उस ज़िन्दादिल युगमें स्त्रीने अभी अपनेको पुरुषकी जंगम सम्पत्ति होना नहीं स्वीकार किया था, इसलिए उसे अस्थायी प्रेमी बनानेका अधिकार था। अतिथियों और मित्रोंके पास स्वागतके रूपमें अपनी स्त्रीको भेजना, उस वक्तका सर्वमान्य सदाचार था। आज वस्तुतः सोमा ऋज्राश्वकी रही।

शामको ग्रामके नर-नारी महापितर (कबीलेके मुखिया या शासक)-

के विस्तृत आँगनमें जमा हुए। सोम, मधुसुरा और स्वादिष्ट गो-अश्व-मांस लाया जा रहा था। महापितर पुत्रोत्पत्तिका महोत्सव मना रहे थे। कृच्छ्रने अपनेको हिलने-डोलने लायक़ नहीं रखा था, उसकी जगह सोमा और ऋज्राश्व वहाँ पहुँचे। बड़ी रात तक पान, गीत, नृत्य महोत्सव मनाया गया। सोमाके गीत और ऋज्राश्वके नृत्यको सदाकी भाँति कुरुओंने बहुत पसन्द किया।

(२)

"मधुरा! तू थक तो नहीं गई?"

"नहीं, मुझे घोड़ेकी सवारी पसन्द है?"

"किन्तु उन दस्युओंने तुझे बुरी तरह पकड़ रखा था?"

"हाँ, वाल्हीक पक्थोंकी गौओं और अश्वोंको नहीं, बल्कि लड़कियोंको लूटने आये थे।"

"हाँ पशुका लूटना दोनों जनोंमें चिरस्थायी शत्रुता पैदा करता है, किन्तु कन्याको लूटना थोड़े ही समयके लिए—आखिर ससुरको जामाताका सत्कार करना ही पड़ता है।"

"किन्तु मुझे तेरा नाम नहीं मालूम?"

"अमृताश्व, कृच्छ्राश्व-पुत्र, कौरव।"

"कौरव! कुरु मेरे मामाके कुल होते हैं।"

"मधुरा, अब तू सुरक्षित है। बोल, कहाँ जाना चाहती है?"

मधुराके मुखपर कुछ प्रसन्नताकी रेखा दौड़ने लगी थी, किन्तु वह बीच हीमें रुक गई। अमृताश्व समझ गया, और बातका रुख दूसरी ओर मोड़ते हुये बोला—"पक्थोंकी कन्यायें हमारे ग्राममें भी आई हैं।"

"सभी लूटकर?"

"नहीं, उनमें मातुल-पुत्रियाँ अधिक हैं।"

"तभी तो। किन्तु लड़कियोंके लिए यह लूट-मार मुझे बहुत बुरी मालूम होती है।"

"और मुझे भी मधुरा! वहाँ पुरुष-स्त्री यह भी नहीं जानते कि उनमें प्रेमकी सम्भावना है भी।"

"मातुल-पुत्रीका ब्याह इससे अच्छा है, क्योंकि उसमें पहलेसे परिचित होनेका मौक़ा मिलता है।"

"तेरा कोई ऐसा प्रेमी था मधुरा?"

"नहीं, मेरी कोई बुआ नहीं है।"

"कोई दूसरा?"

"स्थायी नहीं।"

"क्या तू मुझे भाग्यवान् बना सकती है?"

"मधुराकी शर्मीली निगाहें नीची हो गईं। अमृताश्वने कहा—"मधुरा! ऐसे भी जनपद हैं, जहाँ स्त्रियाँ दूसरेकी नहीं, अपनी होती हैं।"

"नहीं समझी अमृताश्व!"

"उन्हें कोई लूटता नहीं, उन्हें कोई सदाके लिए अपनी पत्नी नहीं बना पाता। वहाँ स्त्री-पुरुष समान होते हैं।"

"समान हथियार चला सकते हैं।"

"हाँ; स्त्री स्वतंत्र है।"

"कहाँ है वह जनपद, अमृत—आँ अमृताश्व!"

"नहीं अमृत ही कह मधुरा! वह जनपद यहाँसे पश्चिममें बहुत दूर है।"

"तू वहाँ गया है अमृत?"

"हाँ। वहाँकी स्त्री आजीवन स्वतंत्र रहती है; जैसे जंगलमें स्वतंत्र विचरता मृग, जैसे वृक्षोंपर स्वतंत्र उड़ती चिड़ियाँ।"

"वह बड़ा अच्छा जनपद होगा! वहाँ स्त्रीको कोई नहीं लूटता न?"

"स्वतंत्र बाघिनको कौन जीते जी लूट सकता है?"

"और पुरुष, अमृत?"

"पुरुष भी स्वतंत्र है।"

"बाल-बच्चे ।"

"मधुरा ! वहाँका घर-बार दूसरी ही तरहका है, और सारे ग्रामका एक परिवार होता है ।"

"उसमें बापका कर्त्तव्य ?"

"बाप नहीं कह सकते मधुरा ! वहाँ स्त्री किसीकी पत्नी नहीं, उसका प्रेम स्वच्छन्द है ।"

"तो वहाँ कोई बापको नहीं जानता ?"

"सारे घरके पुरुष बाप हैं ।"

"यह कैसा रिवाज है ?"

"इसीलिए वहाँ स्त्री स्वतंत्र है, वह योद्धा है, शिकारी है ।"

"और गाय-घोड़ोंका पालन-पोषण ?"

"वहाँ गाय-घोड़े जंगलोंमें पलते हैं, वैसे ही जैसे यहाँ हरिण ।"

"और भेड़-बकरियाँ ?"

"वहाँ लोग पशु-पालन नहीं जानते । शिकार, मछली और जंगलके फलपर गुजारा करते हैं ।"

"सिर्फ़ शिकार ! फिर उन लोगोंको दूध नहीं मिलता होगा ?"

"मानवीका दूध और वह भी बचपन हीमें ।"

"घोड़ेपर चढ़ना भी नहीं ?"

"नहीं । और चमड़ेके सिवा दूसरा परिधान भी नहीं जानते ।"

"उन्हें बड़ा दुःख होता होगा ?"

"किन्तु वहाँकी स्त्रियाँ स्वतंत्र, पुरुषोंकी तरह स्वतंत्र हैं । वह फल जमा करती हैं, शिकार करती हैं, युद्धमें शत्रुओंपर पाषाण-परशु और बाण चलाती हैं ।"

"मुझे भी यह पसन्द है । मैंने शस्त्र चलाना सीखा है, किन्तु युद्धमें पुरुषोंकी भाँति जानेका सुभीता कहाँ ?"

"पुरुषने यह काम अपने ऊपर लिया है । घोड़ों-गायों, भेड़-बकरियों-

को वह पालता है, स्त्रीको उसने पशु-पत्नी नहीं, गृह-पत्नी बनाया है।"

"और लड़कियोंको लूटने लायक बनाया है। वहाँ तो लड़कियाँ नहीं लूटी जाती होंगी अमृत ?"

"एक जनके लड़के-लड़की सदा उसी जनमें रहते हैं, न बाहर देना, न बाहरसे लेना।"

"कैसा रिवाज है ?"

"वह यहाँ नहीं चल सकता।"

"इसलिये लड़कियाँ लूटी जाती रहेंगी ?"

"हाँ, तो मधुरा ! क्या कहती है ?"

"किस बारेमें ?"

"मेरे प्रेमके बारेमें।"

"मैं तेरे वशमें हूँ अमृत !"

"किन्तु मैं लूटकर नहीं ले जाना चाहता।"

"क्या, मुझे युद्ध करने देगा ?"

"जहाँ तक मेरा बस होगा।"

"और शिकार करने ?"

"जहाँ तक मेरा बस होगा।"

"बस ?"

"क्योंकि मुझे महापितरकी आज्ञा तो माननी ही पड़ेगी। अपनी ओरसे मधुरा ! मैं तुझे स्वतंत्र समझूँगा।"

"प्रेम करने न करनेके लिए भी।"

"प्रेम हमारा सम्बन्ध स्थापित कर रहा है। अच्छा, उसके लिए भी।"

"तो अमृत ! मैं तेरा प्रेम स्वीकार करती हूँ।"

"तो हम कुरुओंमें चलें या पक्थोंमें ?"

"जहाँ तेरी मर्जी।"

अमृतने घोड़ेको लौटाया और वह मधुराके बताये रास्तेसे पक्थोंके

ग्राममें पहुँचा। ग्राममें किसीके तम्बूघरमें कोई मारा गया था, किसीमें कोई घायल पड़ा था; किसीकी लड़की लूटी गई थी। चारों ओर कुहराम मचा हुआ था। मधुराकी माँ रो रही थी और बाप ढाढ़स बँधा रहा था, जब कि घोड़ा उसके बालोंके तम्बूके बाहर खड़ा हुआ।

अमृताश्वके उतर जानेपर मधुरा कूद पड़ी और अमृताश्वको बाहर खड़े रहनेके लिए कहकर भीतर चली गई। एकाएक सामने आ खड़ी बेटीको देख, पहले माँ-बापको विश्वास न हुआ। फिर माँने गोदमें ले, उसके मुखको आँसुओंसे भिगोना शुरू किया। उसके शान्त होनेपर बापने पूछा और मधुराने बतलाया—"वाह्लीक पक्थ-लड़कियोंको लूटकर ले जा रहे थे। मुझे लूटकर ले जानेवाला पिछड़ गया था। मौक़ा पाकर मैं घोड़ेसे कूद गई। वह पकड़कर फिर चढ़ाना चाहता था। मैं उसका विरोध कर रही थी। उसी वक़्त एक तरुण सवार आ गया, उसने वाह्लीकको ललकारा और उसे घायल कर गिरा दिया। वही कुरु तरुण मुझे यहाँ पहुँचाने आया है।"

बापने कहा—"तो तरुणने तुझे नहीं ले जाना चाहा ?"

"बलात् नहीं।"

"किन्तु हमारे जनपदके नियमके अनुसार तू उसकी हुई।"

"और मैं उससे प्रेम भी करती हूँ, तात !"

मधुराके बापने बाहर आकर अमृताश्वका स्वागत किया और उसे तम्बूके भीतर लिवा लाया। गाँववालोंको यह अजीब-सी बात मालूम हुई; किन्तु सभीके सम्मान और सहानुभूतिके साथ अमृताश्वने मधुराके साथ ससुराल छोड़ी।

(२)

अब अमृताश्व अपने कुरु-ग्रामका महापितर था। उसके पास पचासों घोड़े, गायें, तथा बहुत-सी भेड़-बकरियाँ थीं। उसके चार बेटे और मधुरा

रेवड़ और घरका काम देखते थे। ग्रामके दरिद्र-कुलोंके कुछ आदमी भी उसके यहाँ काम करते थे—नौकरके तौरपर नहीं, घरके एक व्यक्तिके तौरपर। एक कुरुको दूसरे कुरुसे समानताका बर्त्ताव करना पड़ता। अमृताश्वके चलते फिरते ग्राममें पचाससे ऊपर परिवार थे। आपसी झगड़ों, मामलों-मुक़दमोंका फ़ैसला महापितरको ही देखना पड़ता। फिर पानी, रास्ते और दूसरे सार्वजनिक कामोंका संचालन भी महापितर करता। और युद्ध में—जो सदा सिरपर बैठा ही रहता—सेनाका मुखिया बनना तो महापितरका सबसे बड़ा कर्त्तव्य था। वस्तुतः युद्धोंमें सफलता ही आदमीको महापितरके पदपर पहुँचाती।

अमृताश्व एक बहादुर योद्धा था। पक्थों, वाह्लीकों तथा दूसरे जनोंके अनेक युद्धोंमें उसने अपनी बहादुरी दिखलाई थी। मधुराको दिये वचनोंका उसने पालन किया। मधुराने अमृताश्वके साथ रीछ, भेड़िये और बाघके शिकार ही नहीं किये थे, बल्कि युद्धोंमें भी भाग लिया था। यद्यपि जनवालोंमेंसे किसी-किसीने इसे पसन्द नहीं किया था, उनका कहना था, स्त्रीका काम घरके भीतर है।

अमृताश्व जब पहले पहल महापितर चुना गया, उस दिन कुरु-पुर महोत्सव मना रहा था। तरुण-तरुणियोंने आजके लिए अस्थायी प्रणय बाँधे थे। ग्रीष्मके दिनोंमें नदीकी उपत्यका और पहाड़पर घोड़ों और गायोंके रेवड़ स्वच्छन्द चर रहे थे। गाँववाले भूल गये थे कि उनके शत्रु भी हैं। पशु-धनके होते ही उनके शत्रुओंकी संख्या बढ़ी थी। जब कुरुजन वोल्गाके तटपर था, उस वक्त उसके पास पशु-धन नहीं था। उस वक्त उसे आहार जंगलसे लेना पड़ता था; कभी शिकार, मधु या फल न मिलनेसे भूखा रहना पड़ता था। अब कुरुओंने शिकारके कुछ पशुओं—गाय, घोड़े, भेड़, बकरी, खर—को पालतू बना लिया था। वह उन्हें मांस, दूध, चमड़ा ही नहीं, बल्कि ऊनके वस्त्र भी देते। कुरुआनियाँ सूत कातने और कम्बल बुननेमें कुशल। किन्तु यह कुशलता समाजमें उनके

पहले स्थानको अक्षुण्ण नहीं रख सकी। अब स्त्री नहीं पुरुषका राज्य है। जन-नायिका जन-समितिका नहीं, बल्कि लड़ाके महापितरका शासन है, जो जनमतका ख्याल रखते हुए भी बहुत कुछ अपने मनसे निर्णय करता। और सम्पत्ति ? जहाँ स्त्रीके राज्यमें परिवारका परिवार सदा एकत्र रहता, एक साथ काम करता; वहाँ अब अपना-अपना परिवार अपना-अपना पशु-धन और उसका हानि-लाभ भी अपने हीको था। हाँ, सबके संकटके वक्त जन फिर एक बार पुराने जनका रूप लेना चाहता था।

अमृताश्व महापितरके महोत्सवमें मस्त जनको अपने पशु-धनकी फ़िक्र न थी। बाजेकी आवाज़पर थिरकते तरुण सिर्फ़ सोम-सुरा और सुन्दरियों-का ख्याल रख सकते थे। पहर रात रह गई थी, किन्तु नृत्य अब भी बन्द नहीं होना चाहता था। इसी वक्त चारों ओर कुत्ते ज़ोर-ज़ोरसे भौंकते हुए उपत्यकाके ऊपर के भागकी ओर दौड़ते मालूम हुए। अमृताश्व उन पुरुषोंमें था, जो सोमको उतना ही पीनेमें आनन्द मानते हैं, जितनेमें उनकी आँखोंमें लाली उतर आये और साथ ही होश-हवास भी हाथसे जाने न पावे। कुत्तोंकी आवाज़ सुन, चुपकेसे उठ, उसने काठके बेटवाली अपनी पाषाणी गदाको सँभाला और नदीके किनारे-किनारे आवाज़ आनेकी दिशाकी ओर चलना शुरू किया। थोड़ी ही दूर जानेपर अस्ताचलपर पहुँचते चन्द्रमाकी रोशनीमें कोई स्त्री आती दिखाई पड़ी। वह ठहर गया। पास आनेपर मालूम हुआ, वह मधुरा है। मधुराकी साँस अब भी तेज़ीसे चल रही थी, उसने उत्तेजित स्वरमें कहा—"पुरु हमारे पशुओं-को हाँके लिये जा रहे हैं।"

"हाँके लिये जा रहे हैं! और हमारे सारे तरुण नशेमें चूर हैं!! तू कहाँ तक गई थी मधुरा ?"

"उतनी ही दूर तक जितनेमें कि मैं इतना जान सकी।"

"सारे पशुओंको ले जा रहे हैं ?"

"देरसे, जान पड़ता है, बिखरे रेवड़को एकत्रित करनेमें लगे हुए थे।"

"तू क्या सोचती है मधुरा ?"

"देर करनेका समय नहीं ।"

"और हमारे सारे तरुण नशेमें चूर हैं ।"

"जो चल सकें, उन्हें लेकर धावा बोलना चाहिए ।"

"हाँ, ज़रूर; लेकिन एक बात है मधुरा ! तुझे मेरे साथ नहीं चलना चाहिए । इन तरुणोंका आधा नशा तो इस समाचारसे ही उतर जायगा और बाक़ीको दही खिलाना । जैसे-जैसे नशा उतरता जाय, वैसे-वैसे भेजती जाना ।"

"और कुरुआनियाँ ?"

"मैं कुरुओंके महापितरकी हैसियतसे आज्ञा दे सकता हूँ, उन्हें युद्ध-क्षेत्रमें उतरनेकी; उस पुरानी विस्मृत प्रथाको हमें जगाना होगा ।"

"मैं आगे आनेकी कोशिश नहीं करूँगी; अच्छा, जल्दी ।"

महापितरकी आज्ञापर बाजे एकदम बन्द हो गए । नर-नारी महा-पितरके गिर्द जमा हो गये । सचमुच गोअश्व-हरणकी बात सुनते ही उनमेंसे कितनोंका नशा उतर गया; उनके चेहरोंपर प्रणय-मुद्राकी जगह वीर-मुद्रा छा गई । महापितरने मेघ-गम्भीर स्वरमें कहा—

"कुरुओ और कुरुआनियो ! पुरु शत्रुओंसे हमें अपने धनको छीनना है । लड़ाई होगी । तुममेंसे जितने होशमें हैं, अपने हथियारोंको ले, घोड़ोंपर सवार हो, मेरे पीछे आयें । जो नशेमें हों, मधुरासे दही लेकर खायँ, और नशा उतरते ही दौड़ आयें । कुरुआनियो ! आज तुम्हें भी मैं रणक्षेत्रमें आनेकी आज्ञा देता हूँ । पुरानी कुरुआनियाँ युद्ध-क्षेत्रमें पुरुषोंके समान भाग लेती थीं, यह हम वृद्धोंसे सुनते आये हैं । आज तुम्हारा महापितर अमृताश्व तुम्हें इसकी आज्ञा देता है ।"

दमके दममें चालीस घोड़े जमा हो गये । पुरु जितने पशुओंको जमाकर पाये थे, उन्हें उपत्यकाके ऊपरकी ओर भगाये लिये जा रहे थे । पर दो घंटेकी दौड़के बाद पौ फटते वक्त कुरुओंने उन्हें देखा ।

घोड़ों और गायोंके इतने झुंडको इकट्ठाकर उस पहाड़ीसे दौड़ाते हुए हाँकना आसान काम न था। पुरु सवार अपने चमड़ेके कोड़ोंको हवा और पत्थरों-पर पटककर पशुओंको भयभीत कर रहे थे। अमृताश्वने देखा, पुरुओंकी संख्या सौके क़रीब होगी। अपनी चालीसकी टुकड़ीसे लड़ाई शुरू करनी चाहिए या नहीं, इसपर ज्यादा मत्थापच्ची वह करना नहीं चाहता था।

उसने सींगोंके लम्बे भालेको सँभालकर दुश्मनपर हमला करनेकी आज्ञा दी।

कुरु वीर और वीरांगनाओंने—हाँ, वीरांगनायें आंधीसे कम न थीं—निर्भय हो घोड़ोंको आगे दौड़ाया। उन्हें देखते ही कुछको पशुओंको रोक रखनेके लिए छोड़, पुरु नीचेकी ओर दौड़ पड़े, और घोड़ोंसे पूरा फ़ायदा उठानेके लिए नदीके किनारे एक खुली जगहमें खड़े हो, कुरुओंका इन्तज़ार करने लगे। अमृताश्वकी आकृति उस वक्त देखने लायक़ थी। उसका घोड़ा अमृत और वह दोनों एक ही शरीरके अंग मालूम होते थे। हरिणके तेज़ सींगका उसका भाला एक बार जिसके शरीरपर लगता, वह दूसरे बारके लिए अपने घोड़ेपर बैठा नहीं रह सकता था। पुरुओंने धनुष-बाण और पाषाण-परशुपर ज्यादा भरोसा कर ग़लती की थी, यदि उनके पास भी उतने ही सींगके भाले होते, तो निश्चय ही कुरु उनका मुक़ाबला नहीं कर सकते थे। एक घंटा संग्राम होते हो गया, कुरु अब भी डटे हुए थे, किन्तु उनके एक तिहाई योद्धा हताहत थे; यह डरकी बात थी। इसी वक्त तीस कुरु घुड़सवार ललकारते हुए संग्राम-क्षेत्रमें पहुँचे। कुरुओंकी हिम्मत बहुत बढ़ गई। पुरु बुरी तरहसे मरने लगे। उनकी नाज़ुक हालत देख पशुओंको रोक रखनेके लिए छोड़े हुए घुड़सवार भी आ पहुँचे; किन्तु इसी समय चालीस कुरु-कुरुआनियोंका जत्था लिये मधुरा आ पहुँची। डेढ़ घंटा जमकर युद्ध हुआ। अधिकांश पुरु हताहत हुए; कुछ भाग निकले।

घायलोंका ख़ात्माकर कुरु-वाहिनी पुरु-ग्रामकी ओर बढ़ी। वह चार क्रोश ऊपर था। सारा ग्राम सूना था। लोग तम्बुओंको छोड़कर

भाग गये थे। उनके पशु जहाँ-तहाँ चर रहे थे; किन्तु कुरुओंको पहले पुरुओंसे निबटना था। पुरु बुरी तरह घिर गये थे; ऊपर भागनेका उतना सुभीता न था। उपत्यका सँकरी होती गई थी और चढ़ाई कड़ी थी, तो भी प्राण बचानेके लिए नर-नारी घोड़ोंपर भागे जा रहे थे। आखिर ऐसा भी स्थान आया, जहाँ घोड़ा आगे नहीं बढ़ सकता था। लोग पैदल चलने लगे। कुरु उनके बहुत नज़दीक आ गये थे। बच्चे, बूढ़े, स्त्रियाँ तेज़ीसे नहीं बढ़ सकते थे, इसलिए उन्हें भागनेका मौक़ा देनेके लिए कुछ कुरु-भट एक सँकरी जगहमें खड़े हो गये। कुरु अपनी संख्याका पूरा इस्तेमाल नहीं कर सकते थे, इसलिए उन्हें इन पुरुओंसे रास्ता साफ़ करनेमें कुछ घंटे लगे। पुरु और कुरु अब दोनों ही पैदल थे; किन्तु पुरुओं में मर्द मुश्किलसे एक दर्जन रह गये थे। इसलिए वह कुछ ही दिनों तक सारे पुरु परिवारकी रक्षा कर सकते थे। उन्होंने एक दिन कुछ साहसी स्त्रियों-को ले, एक दुरूह पथ पकड़, वह उपत्यका छोड़ दी और पहाड़ोंको पार करते दक्खिनकी ओर बढ़ गये। कुरुओंने जहाँ-तहाँ छिपे प्राणोंकी भिक्षा माँगते पुरु बच्चों, वृद्धों और स्त्रियोंको पकड़ा। बन्दी बनाना इस पितृ-युगके नियमके विरुद्ध था, इसलिए बच्चे से बूढ़े तक सारे ही पुरुषोंको उन्होंने मार डाला। स्त्रियोंको वह अपने साथ लाये। पुरुओंका सारा पशु-धन भी उनका हुआ। अब वह हरित रोद (नदी) उपत्यका नीचेसे ऊपर तक कुरुओंकी चरागाह थी। एक पीढ़ी तकके लिए महा-पितरने एकसे अधिक पत्नी रखनेका विधान कर दिया और इसी वक्त कुरुओंमें पहलेपहल सपत्नी देखी गई।*

---

*आजसे दो सौ पीढ़ी पहलेके एक आर्य-क़बीलेकी यह कहानी है। उस वक्त भारत और ईरानकी श्वेत जातियोंका एक क़बीला (जन) था और दोनोंका सम्मिलित नाम आर्य था। पशु-पालन उनकी जीविकाका मुख्य साधन था।

४—पुरुहूत

देश—वत्तु-उपत्यका (ताजिकिस्तान)

जाति—हिन्दी-ईरानी; काल—२५०० ई० पू०

वत्तुकी घर्घर करती धारा बीचमें बह रही थी। उसके दाहिने तटपर पहाड़ धारासे ही शुरू हो जाते थे, किन्तु बाईं तरफ़ अधिक ढालुआँ होनेसे उपत्यका चौड़ी मालूम होती थी। दूरसे देखनेपर सिवाय घन-हरित उत्तुंग देवदारु-वृक्षोंकी स्याहीके कुछ नहीं दिखलाई पड़ता था; और नज़दीक आनेपर नीचे ज्यादा लम्बी और ऊपर छोटी होती जाती शाखाओंके साथ उनके बाण जैसे नुकीले शृङ्ग दिखलाई पड़ते थे। और उनके नीचे तरह-तरहकी वनस्पति, तथा दूसरे वृक्ष भी थे। ग्रीष्मका अन्त था, अभी वर्षा शुरू नहीं हुई थी। यह ऐसा महीना है, जब उत्तरी भारतके मैदानोंमें लोग गर्मीसे सख्त परेशान रहते हैं, किन्तु इस सात हज़ार फ़ीट ऊँची पार्वत्य-उपत्यकामें गर्मी मानो घुसने ही नहीं पाती। वत्तुके बाएँ तटसे एक तरुण जा रहा था। उसके शरीरपर ऊनी कंचुक, जिसके ऊपर कई पर्त लपेटा हुआ कमरबन्द था, नीचे ऊनी सुत्थन और पैरोंमें अनेक तनियोंकी चप्पल थी। शिरके कंटोपको उसने उतारकर अपने पीठकी कंडीपर रख लिया था, और उसके लम्बे चमकीले पिंगल केश पीठपर बिखरे हवाके हलके झोकोंसे जब-तब लहरा उठते थे। तरुणकी कमरसे चमड़ेसे लिपटा ताँबेका खड्ग लटक रहा था। उसकी पीठपर वीरीकी पतली शाखाओंकी बुनी चोंगानुमा कंडी थी; जिसमें तरुणने बहुतसी चीज़ें, खुला धनुष तथा बाणोंसे पूर्ण तर्कश रख रखा था। तरुणके हाथमें एक डंडा था, जिसे कंडीकी पेंदमें गलाकर खड़ा हो वह कभी-कभी विश्राम करने लग जाता था।

अब चढ़ाई कड़ी हो रही थी। उसके सामने छै मोटी-मोटी भेड़ें चल रही थीं, जिनकी पीठपर सत्तूसे भरी घोड़ेके बालकी बड़ी-बड़ी थैलियाँ थीं। तरुणके पीछे एक लाल झबरा कुत्ता चल रहा था। कलविंकके मधुर गम्भीर-स्वरसे पर्वत प्रतिध्वनित हो रहा था, जिसका प्रभाव तरुणपर भी था, और वह मुँहसे सीटी बजाता जा रहा था।

अभी एक चट्टानके ऊपरसे एक पतली रुपहली धारके रूपमें गिरता चश्मा आ गया। धाराको चट्टानके प्रान्तसे खुलकर गिरनेके लिए किसीने लकड़ीकी नाली लगा दी थी। हाँफती भेड़ें नीचे पानी पीने लगीं। तरुणने पासमें फैली अंगूरकी लताओंमें छोटे अंगूरोंके गुच्छे लटकते देखे। बैठकर कंडीको ज़मीनपर उतार वह अंगूर तोड़कर खाने लगा। अभी अंगूरोंमें कसैलापन लिए तुर्शी ज्यादा थी। उनके पकनेमें महीने भरकी देर थी; किन्तु तरुण पथिकको वे अच्छे मालूम हो रहे थे, इस-लिए वह एक-एक दानेको मुँहमें धीरे-धीरे फेंकता जा रहा था। शायद वह प्यासा ज्यादा था और तुरन्त चलकर आयेको शीतल पानी हानि-कारक होता है, इसीलिए वह देर कर रहा था।

पानी पीकर भेड़ें चारों ओर उगी हरी घासोंको चर रही थीं। झबरा कुत्ता गर्मी अधिक अनुभव कर रहा था, इसलिए उसने न अपने मालिकका अनुकरण किया और न भेड़ोंका, वह धारके नीचे फैले पानीमें बैठ गया। अब भी उसका पेट भाथीकी तरह फूल-पचक रहा था और उसकी लाल लम्बी जीभ खुले मुँहसे निकलकर लपलपा रही थी। तरुणने धारसे नीचे मुँह खोला, और गिरती धारासे एक साँसमें प्यास बुझा, चिल्लूमें पानी भर अगले केशोंकी जड़ भिगोते हुए मुँहको धोया। उसके अरुण गालों और लाल ओठोंको ढाँकनेके लिए पिंगल रोम अभी आरम्भिक तैयारीमें थे। भेड़ोंको बड़े मनसे चरते देख तरुण कंडीके पास बैठ गया और कानोंको तिरछा कर अपनी ओर ताकते झबराकी आँखोंके भावोंको परखकर, कंडीमें एक ओरसे हाथ डाल सूखी भेड़की रानके एक टुकड़ेको

कमरबन्दसे लटकती चमड़ेमें बन्द ताँबेकी तेज़ छुरीसे काट-काटकर कुछ स्वयं खाने और कुछ झबरेको खिलाने लगा। इसी वक़् लकड़ीकी घंटीकी खन-खन करती आवाज़ सुनाई दी। तरुणने कुछ दूर झाड़ीसे आधा छिपे एक गदहेको आते देखा, फिर दूसरेको, और पीछे एक षोड़शी बाला अपनी ही जैसी पोशाक तथा पीठपर कंडी लिए आती देखी; मुँहसे अनायास सीटी बजने लगी—जब वह कुछ सोचने लगता तो तरुणके मुँहसे सीटी बजने लगना साँस जैसा स्वाभाविक हो जाता था। षोड़शीके कानमें सीटीकी आवाज़ एक बार पड़ी ज़रूर और उसने उस जगहकी ओर ताका भी, किन्तु तरुणका शरीर गुल्मसे अच्छादित था। यद्यपि तरुणने ५० हाथ दूरसे देखा था किन्तु षोड़शीके मुखकी एक हल्की किन्तु सुन्दर छाप उसके अन्तस्तलपर पड़ गई थी और उत्सुकतासे वह यह जाननेकी प्रतीक्षा कर रहा था कि वह किधर जा रही है। इधर वक्षुकी ऊपरकी ओर कोई गाँव नहीं बसा हुआ है, यह तरुण जानता था। इसलिए वह भी उसीकी तरह पंथ-चारिणी है, यह वह समझ सकता था।

षोड़शीके सुन्दर किन्तु अपरिचित चेहरेको देखकर झबरा भूँकने लगा। तरुणके "चुप झबरा" कहनेपर वह वहीं चुपचाप बैठ गया। षोड़शीके गदहे पानी पीने लगे, और जब वह अपनी कंडी उतारने लगी; तो तरुणने अपनी मज़बूत भुजाओंमें लेकर उसे नीचे रख दिया। षोड़शीने मुस्कुराहटके रूपमें कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा—

"बड़ी गर्मी है।"

"गर्मी नहीं है, चढ़ाईमें चलकर आनेसे ऐसा ही मालूम होता है। थोड़ेसे विश्रामसे ही पसीना चला जायगा।"

"अभी दिन अच्छा है।"

"अभी दस-पन्द्रह दिन और वर्षाका डर नहीं।"

"वर्षासे मुझे डर लगता है। नालों और बिछलीके कारण रास्ते बहुत खराब हो जाते हैं।"

"गदहोंके लिए चलना और मुश्किल होता है।"

"घरपर भेड़ें नहीं थीं, इसलिए मैंने गदहों हीको ले लिया। अच्छा, तुझे कहाँ जाना है, मित्र !"

"डाँडेपर। आजकल हमारे घोड़े, गायें, भेड़ें वहीं हैं।"

"मैं भी वहीं जा रही हूँ। सत्तू, दाना, फल, नमक पहुँचाने जा रही हूँ।"

"तेरे पशुओंको कौन देखता है ?"

"मेरा परदादा, और भाई, बहनें भी।"

"परदादा ! वह तो बहुत बूढ़ा होगा ?"

"बहुत बूढ़ा, उतना बूढ़ा आदमी तो शायद कहीं नहीं मिलेगा।"

"फिर वह पशुओंको क्या देखता होगा ?"

"अभी वह बहुत मज़बूत है। उसके बाल, भौं सब सफ़ेद हैं, किन्तु उसके नये दाँत हैं, देखनेमें पचास-पचपनका मालूम होता है।"

"तो उसे घरपर रखना चाहिए।"

"वह मानता ही नहीं, मेरे पैदा होनेके पहलेसे वह गाँव नहीं गया।"

"गाँव नहीं गया !"

"जाना नहीं चाहता। गाँवसे उसको घृणा है। वह कहता है, मनुष्य एक जगह बाँधकर रखनेके लिए नहीं पैदा किया गया। बहुत पुरानी बातें सुनाता है। अच्छा तेरा नाम क्या है मित्र ?"

"पुरुहूत माद्री-पुत्र पौरव।"

"और तेरा नाम स्वसर (बहिन) ?"

"रोचना माद्री।"

"तो तू मेरे मातुल-कुलकी है स्वसर ! ऊपरी मद्र या निचला ?"

"ऊपरी मद्र।"

वक्षु नदीके बायें तटपर पुरुओंके ग्राम थे, लेकिन उसका निचला भाग—जो नीचेके मैदानसे मिलता है—मद्रोंके हाथमें था, और दायाँ तट ऊपर मद्रों, नीचे परशुओंके हाथमें। भूमि और जन-संख्याकी दृष्टिसे

पुरु मद्रोंसे कम न थे। पुरुओंके नीचेवाले मद्र निचले मद्र कहे जाते थे। रोचना उपरले मद्रकी थी। पुरुहूतके मामाका गाँव भी उपरले मद्रमें थे।

इस बातके जाननेपर दोनों कुछ और आत्मीयता अनुभव करने लगे। पुरुहूतने फिर बात आरम्भ करते हुए कहा—

"रोचना! लेकिन आज हम डाँडेपर नहीं पहुँच सकते। तूने अकेले आनेका साहस कैसे किया?"

"हाँ, मैं जानती थी कि रातको चीतेसे गदहोंको बचाना मुश्किल है, लेकिन बाबाके लिए खानेकी चीज़ें लाना ज़रूरी था—पुरुहूत! बाबा मुझे बहुत मानता है। मैंने सोचा, रास्तेमें कोई और भी मिल जायेगा, आजकल डाँडेके जानेवाले बहुत होते हैं। और यह भी ख्याल आया कि आग जला लेनेपर काम चल जायेगा।"

"रास्ते चलते आग नहीं जलाई जा सकती। अरणी है तेरे पास, रोचना?"

"है।"

"होनेपर भी अरणीको रगड़कर अग्नि-देवताको प्रकट करना आसान नहीं है। खैर, मेरे पास एक पवित्र अरणी है, वह हमारे घरमें पिता-महके समयसे चली आई है। इस अरणीसे प्रकट हुई अग्नि द्वारा बहुतसे यज्ञ, बहुतसी देव-पूजाएँ हुई हैं। मुझे अग्नि-देवताका मंत्र भी याद है, इसलिए वे इससे जल्दी प्रकट हो जाते हैं।"

"और पुरुहूत! अब हम दो हैं, इसलिए चीतेको पास आनेकी हिम्मत न होगी।"

"और हमारा झबरा भी है, रोचना।"

"झबरा!"

"हाँ, यही लाल श्वक (सग=कुत्ते) है।"

"झबरा, झबरा" बोलते ही झबरा खड़ा हो मालिकका हाथ चाटने लगा।

रोचनाने भी "झबरा, झबरा !" कहा। वह आकर उसके पैरोंको सूँघने लगा, फिर जब रोचनाने उसकी पीठपर हाथ दिया, तो झबरा दुम हिलाते हुए उसके पैरोंमें बैठ गया।

पुरुहूतने कहा—"झबरा बहुत समझदार श्वक है रोचना !"

"और मज़बूत भी।"

"हाँ, भेड़िया, भालू, चीता किसीसे नहीं डरता।"

भेड़ें और गदहे अब काफ़ी घास चर चुके थे, थकावट भी दूर हो गई थी, इसलिए दोनों तरुण-पथिकोंने फिर चलना शुरू किया। झबरा उनके पीछे-पीछे चल रहा था। यद्यपि उनकी पगडंडी तिरछे काटकर जा रही थी, तो भी चढ़ाई तेज़ थी, इसलिए वे सधे पैर धीरे-धीरे ही आगे बढ़ सकते थे। पुरुहूत कहीं धरतीमें चिपकी लाल स्ट्राबरियोंको तोड़ता; कहीं करौंदोंको, और रोचनाको भी देता। अभी अच्छे-अच्छे फल खूब पकनेपर नहीं आये थे, पुरुहूतको इसकी बड़ी शिकायत थी !

शाम तक वे इसी तरह बातें करते चढ़ते गये। सूर्यास्त हो रहा था, जब एक घने गुल्मके नीचेसे कल-कल करके बहते चश्मेको उन्होंने देखा। पास ही थोड़ी खुली जगह थी, जिसमें लकड़ीके अधजले कुन्दे, राख और घोड़ोंकी लीद पड़ी थी। पुरुहूतने झुककर राखको कुरेदा, उसमें आग दबी हुई थी। उसने बहुत खुश होकर कहा—

"रोचना ! रातके ठहरनेके लिए इससे अच्छी जगह आगे नहीं मिलेगी। पासमें पानी है, घासकी अधिकता है सूखे लक्कड़ पड़े हैं, और फिर आज सवेरे यहाँसे जानेवाले पथिकने आगको राखके नीचे दबा दिया है।"

"हाँ, पुरुहूत ! इससे अच्छी जगह नहीं मिलेगी। आज यहीं ठहरें। अगले चश्मे तक पहुँचनेमें अँधेरा हो जायगा।"

पुरुहूतने बैठकर झट अपनी कंडीको पत्थरके सहारे धरतीपर रख दिया, फिर रोचनाकी कंडीको उतारा। दोनोंने मिलकर गदहोंके बोझको

अलग किया और उनकी काठी खोल दी। गदहोंने दो-तीन लोट लगाईं, फिर घासमें चले गये। भेड़ोंकी लादियोंको उतारनेमें कुछ देर लगी, क्योंकि भेड़ोंको ज़बर्दस्ती पकड़कर लाना पड़ता था। रोचना मशकले चश्मेपर पानी भरने गई। पुरुहूतने पत्ते और छोटी लकड़ियाँ डाल आगको बाल दिया, और फिर बड़ी लकड़ियोंको लगा बड़ी आग तैयार कर दी। जब रोचना पानी भरकर लौटी, तो पुरुहूत ताँबेकी पतीली सामने रख गायकी चौथाई टाँगको चाक़ूसे काट रहा था, रोचनाको देखकर बोला—

"कल शाम तक हम ऊपर पहुँच जायँगे रोचना! तेरा गोष्ठ बहुत दूर तो न होगा?"

"जहाँ हम डाडेपर पहुँचते हैं, वहाँसे तीन कोस पूरब है।"

"और मेरा छै कोस पूरब। तब तो तेरे बाबाका गोष्ठ रोचना! मेरे रास्तेपर ही पड़ेगा।"

"तो तू बाबाको देख पायेगा। मैं सोचती थी बाबाकी तुझसे कैसे भेंट हो।"

"एक ही दिन तो और है, इसीलिए एक चौथाई रान काफ़ी है। यह पिछली रान है रोचना! बेहद् (बहिला)की।"

"मेरे पास बछेड़े – की आधी टाँग है, आज-कल मांस ज्यादा देर होनेपर बसाने भी तो लगता है?"

"नमक डालकर मांसको पकाना कैसा रहेगा?"

"बहुत अच्छा और मेरे पास गोडी भी हैं पुरुहूत! मांस, गोडी और पीछे थोड़ा-सा सत्तू मिलानेपर अच्छा सूप तैयार हो जायेगा, सोते वक्त सूप तैयार मिलेगा।"

"मैं अकेला होता तो रोचना! सूप न बनाता, बहुत देर लगती है; किन्तु तब तक हम पशुओंके बाँधने, बात-चीत करनेमें लगे रहेंगे।"

"बाबा मेरे सूपको बहुत पसन्द करता है पुरुहूत! और यह ताँबेकी पतीली!"

"हाँ, ताँबा बहुत महँगा है रोचना! इस पतीलीपर एक घोड़ेका दाम खर्च हुआ है; किन्तु रास्तेमें यह अच्छी रहती है।"

"तो तेरे घर बहुत पशु होंगे पुरुहूत!"

"और बहुत धान्य भी रोचना! इसीलिए यह एक घोड़े-मूल्यकी पतीली है। अच्छा, यह ले मैंने मांस काट दिया। पानी और नमक डाल तू तो मांसको आगपर चढ़ा और मैं उस ओर भी लकड़ीकी आग तैयार करता हूँ। फिर थोड़ीसी घास काट गदहों और घोड़ोंको बीचमें यहाँ बाँधना है। जानती है न चीतेको गदहेका मांस उससे भी अधिक मीठा लगता है, जितना की हमें बछियाका। और झब्बर! तब तक तू भी इसपर जीभ चला।"—कह ज़रासी मांस लगी एक हड्डीको झबराके सामने फेंक दिया। झबरा पूँछ हिलाता हड्डीको पैरमें दबा दाँतोंसे तोड़नेकी कोशिश करने लगा।

पुरुहूतने ऊपरका कंचुक और कमरबन्द हटा दिया। बिना बाँहकी कुरतीके नीचे उसकी चतुरस्त्र छाती और पृथुल बाहें बतला रही थीं कि इस बीस वर्षके तरुणके शरीरमें कितनी ताक़त है। काम करते वक्त पुरुहूतका रोआँ-रोआँ नाचता था। कंडीमेंसे दराती निकाल उसने बात-की बातमें घासका एक ढेर जमा कर दिया, फिर कान पकड़ गदहोंको ला खूँटा गाड़कर बाँध सामने घास डाल दिया। इसी तरह भेड़ोंको भी।

और कामसे निवृत्त हो, अब पुरुहूत भी आगके पास आ बैठा। रोचना पतीलीसे उबले मांस-खंडोंको निकालकर चमड़ेपर रखती जा रही थी। पुरुहूतने कंडीमेंसे एक चर्म-खंड निकाल बाहर बिछा दिया, फिर एक काठका सुन्दर चषक (प्याला) तथा झिल्लीमें रखा पेय निकाल बाहर रखा; उसीके साथ बाँसुरी भी निकलकर ज़मीनपर गिर पड़ी। मालूम हुआ जैसे कोई कोमल शिशु गिर पड़ा है और चोटके डरसे माँ तड़प रही है; उसने जल्दीसे बाँसुरीको उठाकर कपड़ेसे पोछा और चूमकर उसे कंडीमें रखने लगा। रोचना देख रही थी, वह बीचमें बोल उठी—

"पुरुहूत ! तू वंशी बजाता है ?"

"यह वंशी मुझे बहुत प्यारी है, रोचना ! जान पड़ता है मेरा प्राण इसी वंशीमें बसता है।"

"मुझे वंशी सुना पुरुहूत।"

"अभी या खानेके बाद !"

"ज़रा-सा अभी।"

"अच्छा—" कह पुरुहूतने वंशीको ओंठमें लगा जब आठों उँगलियोंको उसके छिद्रोंपर फेरना शुरू किया, तो विशाल वृक्षोंकी छायासे निकलकर पैर फैलाते सन्ध्या-अन्धकारकी स्तब्धतामें दिगन्तको प्रतिध्वनित करनेवाली उस मधुर-ध्वनिने चारों ओर जादू-सा फैला दिया। रोचना सब सुध-बुध भूल तन्मय हो उस ध्वनिको सुन रही थी। पुरुहूत किसी उर्वशीके वियोगमें व्याकुल पुरुरवाके व्यथापूर्ण गानको वंशीमें गा रहा था। गान बन्द होनेपर रोचनाको मालूम हुआ, वह स्वर्गसे एकाएक धरतीपर रख दी गई। उसने आँखोंमें आनन्दाश्रु भरकर कहा —

"पुरुहूत ! तेरा वंशीका गान बहुत मधुर है, बड़ा ही मधुर। मैंने ऐसी वंशी नहीं सुनी। कितनी प्यारी है यह लय।"

"लोग भी ऐसा ही कहते हैं, रोचना ! किन्तु मैं उसे नहीं समझ सकता। वंशीके ओठोंमें लगाते ही मैं सब कुछ भूल जाता हूँ। यह वंशी मेरे पास रहे, फिर मुझे दुनियामें किसी चीज़की चाह नहीं रह जाता।"

"अच्छा आ, पुरु ! अब मांस ठंढा हो जायेगा।"

"और रोचना ! माँने चलते वक्त यह द्राक्षा-सुरा दी थी। थोड़ी है, किन्तु मांसके साथ पीनेमें अच्छी होगी।"

"सुरा प्रिय है, तुझे पुरु।"

"प्रिय नहीं कह सकता, रोचना ! प्रियमें तृप्ति नहीं होती; किन्तु मैं तो आँखोंमें हल्की लाली उछलनेके बाद एक घूँट भी नहीं पी सकता।"

"यही हाल मेरा भी है पुरु ! नशेमें चूर आदमीको देखकर मुझे

बड़ी घृणा होती है।"—रोचनाने अपने काष्ठ-चषकको निकालकर नीचे रख दिया।

तीन भागमें एक भाग मांस झब्बरको दिया गया। दोनोंने देरमें खान-पान समाप्त किया। चारों ओर अँधेरेकी घनी चादर तन गई थी। मोटे लक्कड़ोंकी धधकती आगकी लाल रोशनी और उसके आस-पासकी थोड़ीसी जगहके सिवा वहाँ और कुछ दिखाई नहीं देता था। हाँ, कुछ ध्वनियाँ उस वक्त सुनाई देती थीं, जो कीड़ों तथा दूसरे क्षुद्र जन्तुओंकी मालूम होती थीं। बात और बीच-बीचमें वंशीकी तान चलती रही। आखिर सत्तू डालकर कई घंटेमें पका सूप भी तैयार हो गया। दोनोंने अपने चषकोंसे गर्मा-गर्म सूप पिया। बड़ी रात जानेपर सोनेका प्रस्ताव हुआ। रोचना चमड़ेका बिछौना तैयारकर अपने कपड़ोंको उतारनेमें लगी; पुरुहूतने आगपर और लकड़ियाँ साज दीं, पशुओंके सामने घास डाल दी, फिर बनके देवताओंकी प्रार्थनाकर कपड़ोंको उतार सो गया।

दूसरे दिन सबेरे उठे तो दोनों अनुभव करते थे, रात भर हीमें जैसे उन्होंने सगे बहिन-भाई पा लिये। रोचनाके उठनेपर पुरुहूत अपनेको रोक नहीं सका और बोला—

"मेरा मन तेरा मुख चूमनेको करता है, रोचना स्वसर (बहिन)!"

"और मेरा भी पुरु! इस जगत्में हमने बहिन भाई पाये।"

पुरुहूतने उसके बिखरे बालोंको पीछेकी ओर सँभालते हुए रोचनाके दोनों गालोंको चूम लिया। दोनोंके मुख प्रसन्न और नेत्र गीले थे। मुख धोकर वे थोड़ा सत्तू और सूखा मांस खाकर पशुओंको लाद चल पड़े। बीच-बीचमें दो-तीन जगह वे बैठे भी, किन्तु बात-चीतमें समय इतना जल्दी बीता कि उन्हें मालूम नहीं हुआ, कब डाँडेपर पहुँचे और कब माद्र बाबाके पास। रोचनाने परिचय दिया और बाबाने पुरुओंकी वीरताकी प्रशंसा करते हुए पुरुहूतका स्वागत किया।

(२)

इस डाँडेपर मद्रोंका छोटा-सा गाँव बस गया था, जिसके सभी घर तम्बू या फूसके झोंपड़ोंके थे। जहाँ नीचेकी ओर ढालू या खड़ी पहाड़ी भूमिपर घने देवदारुका जंगल ही जंगल दिखलाई पड़ता था, वहाँ यहाँ डाँडेके ऊपर वृक्षोंका नाम नहीं था, ज़मीन अधिकतर चौरस था, जिस-पर हरी घासका मोटा फ़र्श बिछा हुआ था। इसी हरे मैदान में कहीं भेड़ें, कहीं गायें, और कहीं घोड़े चर रहे थे, जिनके बीचमें कहीं-कहीं छोटे-छोटे बछड़े और बछेड़े छलाँग मारकर खेल दिखला रहे थे। इसी भूमिको देखकर तो माद्र बाबाका कहना था "मनुष्य एक जगह बाँधकर रखनेके लिए नहीं पैदा किया गया।" माद्र बाबाका तम्बू इस मासमें यहाँ है। जब घास कम हो जायगी तो दूसरी जगह चला जायगा। दूध, दही, मक्खन, मांसकी यहाँ अधिकता है। तम्बूके भीतर यही चीज़ें भरी हुई हैं। हर पन्द्रह-बीस दिनपर गाँवसे आदमी आता है और यहाँसे मक्खन तथा मांस ले जाता है। जाड़ोंमें इस डाँडेपर बर्फ़ पड़ जाती है। बाबाकी चले तो वे तब भी यहीं रहें, किन्तु पशु बर्फ़ खाकर तो नहीं रह सकते, इसीलिए घूम-घुमौवे रास्तेसे वे थोड़ा नीचे जंगलवाले प्रदेशमें चले आते हैं, और पशु सब नीचे गाँवमें। बाबा गाँवपर चलनेका नाम लेनेपर मारने दौड़ते हैं।

अभी दिन था, जब दोनों पथिक बाबाके तम्बूपर पहुँचे थे, इसलिए सामान उतारनेके बाद जहाँ बाबाने हँसाते हुए घोड़ीके दूधकी सुरा (कूमिस) का काष्ठ-कुप्पा और प्याला सामने रखा, कि तीन-चार प्यालेमें ही रास्तेकी सारी थकावट दूर हो गई। शामको बछड़ों और बछेड़ोंको लिये रोचनाके भाई-बहिन तथा गाँवके दूसरे तरुण चरवाहे भी आ गये। इधर रोचनाने बाबासे पुरुहूतकी वंशीका गुण बखाना था। फिर बाबा जैसे मौजी जीव पुरुहूतको कैसे छोड़ते। उन्हें और गोत्र (गोष्ठ)के सारे तरुणोंको वंशी

बहुत पसन्द है। रातको जब नृत्य हुआ तो पुरुहूतने वहाँ भी अपनी करामात दिखलाई।

सबेरे पुरुहूतने जानेका नाम लिया, किन्तु बाबा इतनी जल्दी क्यों जाने देने लगे। दोपहरके भोजनके बाद बाबाने अपनी कथा शुरू की, और कथा शुरू हुई कंडीके पास रखी ताँबेकी पतीलीको देखकर। बाबाने कहा—

"इस ताँबे और खेतोंको देखकर मेरा दिल जल जाता है। जबसे ये चीज़ें वक्षुके तटपर आई, तबसे चारों ओर पाप-अधर्म बढ़ गया, देवता भी नाराज़ हो गये, अधिक महामारी पड़ने लगी, अधिक मार-काट भी।"

"तो पहले ये चीज़ें नहीं थीं बाबा ?"—पुरुहूतने कहा।

"नहीं बच्चा ! ये चीज़ें मेरे बचपन में ज़रा-ज़रा आई। मेरे दादा-ने तो इनका नाम तक न सुना था। उस वक्त पत्थर, हड्डी, सींग, लकड़ीके ही सारे हथियार होते थे।"

"तो लकड़ी कैसे काटते थे, बाबा !"

"पत्थरके कुल्हाड़ेसे।"

"बहुत देर लगती होगी, और इतनी अच्छी तो नहीं कटती होगी" ?

"इसी जल्दीने सारा काम चौपट किया। अब अपने दो महीनेके खाने तथा आधी ज़िन्दगीके चढ़नेके एक अश्वको देकर एक अयः (ताँबेका) कुल्हाड़ा लो, फिर जंगलका जंगल काट-उजाड़ दो अथवा गाँवके गाँवको मार डालो। लेकिन गाँव जंगल के वृक्षोंकी तरह निहत्था नहीं है, उसके पास भी उसी तरहका तेज़ कुल्हाड़ा है। इस अयः कुठारने युद्धको और क्रूर बना दिया। इसके घावसे ज़हर पैदा हो जाता है। पहले बाणके फल पत्थरके होते थे, वे इतने तीक्ष्ण नहीं थे, ठीक है; किन्तु चतुर हाथोंमें ज्यादा कारगर होते थे। अब इन ताँबे के फलोंसे दुधमुँहें बच्चे भी बाघका शिकार करना चाहते हैं। अब काहे कोई निष्णात धनुर्धर होना चाहेगा ?"

"बाबा ! मैं तेरी एक बातसे सहमत हूँ, मनुष्य एक जगह बाँधकर

रखनेके लिए नहीं पैदा किया गया।"

"हाँ वत्स! पहले दिनके किये पाखानेपर रोज़-रोज़ पाखाना करना हो तो कितना बुरा लगेगा? हमारा तम्बू आज यहाँ है, पशु यहाँके तृण खा लेंगे। इसके आस-पास मनुष्यों और पशुओंके पेशाब और पाखाने दिखलाई पड़ने लगेंगे, उस समय हम इस जगहको छोड़ दूसरी जगह चले जायँगे। वहाँ नये हरे-हरे तृण अधिक होंगे, वहाँ धरती, पानी, हवा अधिक शुद्ध होगी।"

"हाँ बाबा! मैं भी ऐसी ही धरतीको पसन्द करता हूँ। ऐसी धरती पर मेरी वंशी ज्यादा सुरीली आवाज़ निकालती है।"

"ठीक कहा वत्स! पहले हम इन्हीं तम्बुओंके झुंडको ग्राम कहते थे, और ये झुंड एक ही जगह साल भर क्या, तीन महीने भी नहीं रहते थे; किन्तु आजके गाँव पुत्र-पौत्र सौ पीढ़ीके लिए बनते हैं। पत्थर, लकड़ी, मिट्टीकी दीवारें उठाते हैं, जिनसे हवा भीतर नहीं आ सकती। पत्थर, लकड़ी, फूसकी छत पाटते हैं, जिसके भीतर हवा क्या जायगी? आज कहनेके लिए अग्निको देवता, वायुको देवता कहते हैं, किन्तु आज उनके लिए हमारे हृदयमें वह सम्मान नहीं है। इसीलिए आज कितनी नई-नई बीमारियाँ होती हैं। हे मित्र! हे नासत्य! हे अग्नि! तुम जो इन मानवोंपर कोप दिखलाते हो, सो ठीक ही करते हो।"

"किन्तु बाबा! इन अयः-कुठारों, अयः-खड्गों, अयः-शल्योंको छोड़-कर हम ज़िन्दा कैसे रह सकते हैं? इन्हें छोड़ दें, तो शत्रु हमें एक दिनमें खा जायँ!"

"मैं मानता हूँ वत्स! दो महीनेका भोजन या आधी ज़िन्दगीकी सवारीवाले घोड़ेको खुशी-खुशी बेंचकर लोगोंने अयः-खड्ग नहीं खरीदा। वक्षु-माताकी कोखमें दाग़ लगाया, निचले मद्रों और पर्शुओंने। वक्षु-रोद (नदी) कहाँ तक जाता है, मैं नहीं जानता, कोई नहीं जानता। ऐसे ही झूठ बकनेवाले कहते हैं कि पृथिवीके छोरपर जो अपार पानी है, उसमें

जाता है। हाँ, यह मालूम है, मद्रों और पर्शुओंकी भूमिके खतम होते ही वक्षु-रोद पहाड़ छोड़ मैदानमें चला जाता है, और आगे झूठ बोलनेवाले देव-शत्रुओंकी भूमि है। कहते हैं, वहाँ बड़ी-बड़ी टाँगोंवाले छोटे-मोटे पहाड़ जैसे जन्तु होते हैं, क्या कहते हैं बच्चा? अब स्मृति क्षीण होती जा रही है!"

"उष्ट्र (शुतुर, ऊँट) बाबा! लेकिन वह पहाड़ जितना नहीं होता। एक दिन एक निचला माद्र उष्ट्रका बच्चा लाया था। छै महीनेका बतलाता था, वह हमारे घोड़ोंके बराबर था।"

"हाँ वत्स! जो बाहरके देशोंसे घूमकर आते हैं, वे झूठ बोलना बहुत सीख जाते हैं। कहते थे—क्या कहते हैं?"

"उष्ट्र।"

"हाँ उष्ट्रकी गर्दन इतनी लम्बी होती है, कि वह वक्षुके इस तटपर खड़ा हो उस तटकी घास चर सकता है। यह भी झूठ है न बच्चा?"

"हाँ, बाबा! उस बच्चेकी गर्दन घोड़ेसे ज़रूर बड़ी थी, किन्तु घास चरनेकी बात बिलकुल झूठ।"

"इन्हीं झूठे मद्रों और पर्शुओंने अयः-कुठार, अयः-खड्गकी बीमारी फैलाई। पर्शुओंने हम उत्तर-मद्रोंपर इन हथियारोंसे हमला किया, यह बापके समयकी बात है। दो-दो घोड़े देकर एक-एक अयः-कुठार निचले मद्रों से हमारे लोगोंने खरीदा।"

"अयः-कुठारके सामने पाषाण-कुठार बेकार थे न बाबा?"

"हाँ, बेकार थे वत्स! इसीलिए मजबूर होकर अयः-शस्त्र लेने पड़े। और जब पुरुओंपर निचले मद्रोंने आक्रमण किया, तो तुम्हारे लोगोंने हम मद्रोंसे अयः-शस्त्र खरीदे। उत्तर मद्रों और पुरुओंमें कभी झगड़ा नहीं सुना गया वत्स। किन्तु पर्शु और निचले मद्र सदासे दस्युका काम करते आये हैं, सदासे पुराने धर्मको छोड़ नई बातें करते आये हैं, और उनके कारण हमारे लोगोंको भी अपनी प्राण-रक्षाके लिए वैसा

करना पड़ा। मैं समझता हूँ, जब तक निचले मद्र और पर्शु भी अयः-शस्त्रोंको नहीं छोड़ते, तब तक हम ऊपरवालोंका उन्हें छोड़ना आत्म-हत्या करना है। किन्तु अयः (ताँबा)का इतना प्रसार बुरा है, इसमें तो शक नहीं वत्स ! इस पापके प्रसारक यही दोनों जन हैं, उनको कभी देवोंका आशीर्वाद नहीं मिलेगा। घोर अन्धकारवाले पातालमें चले जायँगे, ज़रूर जायँगे। इन्हींकी देखा-देखी इन्हींके डरसे हमारे मिट्टी पत्थरवाले ग्राम बसे। पहले ऐसे ही तम्बुओंवाले —आज यहाँ कल वहाँ रहनेवाले— ग्राम वत्तुकी कुक्षिमें थे। किन्तु इन मद्रोंने, इन पर्शुओंने यह बात तोड़ दी। कहाँ से देखकर धरती माताकी छाती चीरी, इन्होंने इन्हीं अयः-शस्त्रोंसे। ऐसा पाप कभी किसीने नहीं किया। धरतीको माता कहते हैं न वत्स ?"

"हाँ, बाबा ! धरतीको माता कहते हैं, देवी कहते हैं, उसकी पूजा करते हैं।"

"और उस धरती माताकी छातीको अपने हाथोंसे इन पापियोंने चीरा ! और क्या किया—नाम भूलता हूँ, स्मृति काम नहीं करती वत्स !"

"कृषि, खेती।"

"हाँ, कृषि और खेती चलायी। गेहूँ बोया, व्रीहि (चावल) बोया, जौ बोया आज तक कभी यह सुना नहीं गया। हमारे पूर्वजोंने कभी धरती माताकी छाती नहीं चीरी, देवीका अपमान नहीं किया। धरती माता हमारे पशुओंके लिए घास देती थी। उसके जंगलोंमें तरह-तरहके मीठे फल थे, जो हमारे खानेसे खतम नहीं होते थे। किन्तु इन मद्रोंके पाप और उनकी देखा-देखी किये गये हमारे पापके कारण वह पोरिसा भर उगनेवाली घासें कहाँ हैं ? अब पहले जैसी मोटी गायें—जिनमेंसे एक सारे मद्र जनके एक दिनके भोजनको पर्याप्त होती—कहाँ हैं ? न वे गायें, न वे घोड़े, न वे भेड़ें हैं। जंगलके हरिन और भालू भी अब उतने बड़े नहीं

होते। आदमी भी उतने दिनों नहीं जीते। यह सब पृथिवी देवीके कोपके कारण है वत्स! और कुछ नहीं।"

"बाबा! आपने कितने शरद (जाड़े) देखे हैं?"

"सौसे ऊपर वत्स! उस वक्त हमारे गाँवके दस तम्बू थे, अब मिट्टी-पत्थरकी दीवारोंवाले सौ घर हो गये हैं। जब खेत नहीं थे, तब हमारे चलते-फिरते घर, चलते-फिरते ग्राम होते थे। जब खेत हो गये, तो उनके गेहूँको हरिनोंसे बचाओ, दूसरे पशुओंसे बचाओ। खेत क्या मनुष्यके बाँधनेके लिए खूँटे हो गये। लेकिन वत्स! मनुष्य एक जगह बाँधकर रखनेके लिए नहीं पैदा किया गया। जो बात देवोंने मानवोंके लिए नहीं बनाई, उसे इन मद्रों और पर्शुओंने बनाकर दिखाया।"

"किन्तु बाबा! क्या अब इस खेतीको हम चाहें तो छोड़ सकते हैं? आज हमारा आधा भोजन धान्य है।"

"हाँ, यह मानता हूँ वत्स! किन्तु धान्य हमारे पूर्वज नहीं खाते थे। यहाँसे पच्चीस कोस दक्खिन गेहूँका जंगल है, वहाँ गेहूँ अपने आप जमता, अपने आप फलता, अपने आप झर जाता है। उसे गायें खातीं, उनका दूध बढ़ जाता है, घोड़े खाते हैं और खूब मोटे हो जाते हैं। हर साल हमारे पशु वहाँ जाते हैं। धरती माताने धान्योंको आदमीके लिए नहीं पैदा किया—उनके दाने हमारे खेतवाले गेहूँसे छोटे-छोटे होते हैं—धरतीने इन्हें पशुओंके लिए बनाया था। मुझे डर लगता है कि कहीं जंगली गेहूँ नष्ट न हो जायँ। हमारे खानेके लिए वत्स! ये गायें हैं, घोड़े हैं, भेड़-बकरियाँ हैं; जंगलमें भालू, हिरन, सूअर कितनी ही तरहके शिकार हैं, द्राक्षा आदि कितने तरहके फल हैं। यह सब आहार धरती माता हमें खुशीसे देती थी, किन्तु बुरा हो इन मद्रों, पर्शुओंका इन्होंने पुराना सेतु तोड़ नया रास्ता बनाया, जिससे मानवोंपर देवोंका कोप उतरा। अभी वत्स! न जाने वक्षु-वासियोंके भाग्यमें क्या-क्या बदा है। मैं तो पच्चीस सालसे डाँडा छोड़ ग्राममें नहीं गया। जाड़ोंमें थोड़ा

नीचे एक झोंपड़ीमें चला जाता हूँ। क्या जाऊँ सभी लोग पूर्वजोंके बाँधे सेतुको तोड़ फेंकना चाहते हैं। पूर्वजोंके मुँहसे निकली वाणीका भी मैं इतने दिनोंसे गोप रहा हूँ, अब भी जिसको सीखना होता है, वह यहाँ मेरे पास आता है। किन्तु उस वाणीके न माननेवाले बहुत होते जा रहे हैं। अब सुनते हैं मद्रों-पर्शुओंका खेतीसे भी पेट नहीं भर रहा है। अब वे वक्षुवालोंके आहार-परिधानको ढो-ढोकर कहाँ दे आ रहे हैं, और उनकी जगह क्या मिलता है—देखो यही एक घोड़ेको देकर खरीदी पतीली। भूखे मरने लगे तो क्या इस पतीलीके खानेसे पेट भरेगा? अब पुरुओंको पेटके आहार तथा शरीरके वस्त्रसे रहित पाओगे, और उनकी जगह उनके घरोंमें पाओगे इन पतीलियोंको।"

"और बाबा! एक और सुना है, निचले मद्रोंकी स्त्रियोंने कानों और गलोंमें पीले सफ़ेद आभूषण पहनने शुरू किये हैं। एक कानके आभूषणमें एक घोड़ेका दाम लग जाता है, बाबा! उसे अयः नहीं हिरण्य (सोना) कहते हैं, और सफ़ेदको रजत।"

"कोई मार नहीं देता इन अधर्मियोंको। ये सारे वक्षु-जन-मंडलका सत्यानाश करके छोड़ेंगे, ये हमारे आहार-परिधानके लिए जो कुछ बच रहा है, उसे भी नहीं छोड़ेंगे। हमारी स्त्रियाँ भी उनकी देखा-देखी दो घोड़ेके दामका कुंडल कानोंमें पहनेंगी। हे कृपालु अग्नि! अब अधिक दिन मानवोंमें मत रखो, मुझे पितरोंके लोकमें ले चलो।"

"एक और भारी पाप बाबा! मद्र और पर्शु कहींसे आदमी पकड़ लाये हैं, उनसे अयः-खड्ग, अयः-कुठार बनवाते हैं। वे बड़े चतुर शिल्पी हैं बाबा! किन्तु, मद्र पर्शु उन्हें पशुकी तरह जब चाहते हैं रखते हैं, जब चाहते बेंच देते हैं। खेतीका काम, कम्बल बुननेका काम और क्या-क्या दूसरे काम ये लोग इन्हीं पकड़कर रखे लोगों—जिन्हें वे दास कहते हैं—से कराते हैं।"

"मनुष्यका खरीदना बेंचना! हम तो आहार-परिधानका बेंचना

भी बुरा मानते थे, किन्तु हमारे पूर्वज पितरोंको यह आशा न थी, कि ये मद्र-कलंक इतने नीचे गिर जायँगे। जब अँगुली सड़ने लगे तो उसकी दवा है, काट फेंकना, नहीं तो सारा शरीर सड़ जायगा। इन मद्रों-पर्शुओंको वक्षु-तटपर रहने देना पाप है पुत्र! मैं अब ज्यादा दिन तक देखनेके लिए नहीं रहूँगा।"

माद्र बाबाकी कहानियाँ बड़ी मनोरंजक होती थीं, किन्तु पुरुहूत इतना समझनेकी भी शक्ति रखता था कि जो हथियार आ गये हैं, उन्हें छोड़कर मनुष्य तथा पशु-शत्रुओंके बीच जिया नहीं जा सकता।

तीसरे दिन जब वह विदा होने लगा, तो वृद्धने उसके ललाट और भ्रूको चूमकर आशीर्वाद दिया। रोचना उसे दूर तक पहुँचाने गई, और अलग होते वक्त दोनोंने एक दूसरेके गालोंको अश्रु-विन्दुओंसे प्रक्षालित किया।

(२)

माद्र बाबाकी बात ठीक हुई, यद्यपि पच्चीस वर्ष बाद—निचले मद्र और पर्शु दिनपर दिन ऊपरवाले पुरुओं और मद्रोंको दबाते ही गये। बहाँ इन ऊपरवाले जनोंमें कपड़ा कम्बल बनानेवाले स्वतंत्र स्त्री-पुरुष होते, जिनके खाने कपड़ेपर खर्च ज्यादा पड़ता, जिससे उनके हाथकी बनी वस्तु अच्छी होते भी अधिक महँगी पड़ती; वहाँ नीचेके मद्रों और पर्शुओंके पास दास थे, जिनकी बनाई चीज़ें उतनी अच्छी नहीं होतीं, तो भी सस्ती पड़तीं। जब वहाँके व्यापारी इन सभी चीज़ोंको बाहरके देशोंमें ऊँट या घोड़ेपर लादकर ले जाते, तो बहुत बिकतीं। ऊपरी जनोंको भी अब ताँबेकी वस्तुएँ अधिकाधिक संख्यामें ज़रूरी थीं—एक तो हर साल वह कुछ न कुछ सस्ती होती जाती थीं; दूसरे मिट्टी-काठकी चीज़ोंसे वे चिर-स्थायी होतीं। जहाँ पच्चीस साल पहले ताँबेकी पतीली एकाध घरोंमें दिखाई पड़ती, वहाँ अब उससे बिरले ही घर खाली थे। सोने-चाँदीका

भी रवाज बढ़ने लगा था। और इन सबके बदले इन जनोंको आहार, कम्बल, चमड़ा, घोड़े या गायें बेचनी पड़तीं, जिससे उनकी अवस्था गिरती जा रही थी। ऊपरके जनोंके कुछ लोगोंने भी सीधे व्यापार करने की कोशिश की, क्योंकि उन्हें सन्देह होने लगा था, कि उनको नीचेके पड़ोसी ठग रहे हैं; लेकिन वक्षुके नीचे जानेका रास्ता उन्हींकी जन्मभूमिसे होकर था, जिसे मद्र खोलना नहीं चाहते थे। कई बार इसको लेकर छोटे-मोटे झगड़े भी हुए। कितनी ही बार उत्तर मद्रों और पुरुओंने बाहरके देशोंमें जानेके लिए दूसरे रास्ते निकालने चाहे, किन्तु उसमें वे सफल नहीं हुए।

नीचे ऊपरके जनोंके इस संघर्षमें एक खास बात यह थी, कि जहाँ नीचेवाले आपसमें मेल नहीं रख सकते थे, वहाँ ऊपरवाले जन मिलकर आक्रमण प्रत्याक्रमण कर सकते थे। इन युद्धोंमें अपनी वीरता और बुद्धिमानीके कारण पुरुहूत अपने जनका प्रिय हो गया था, और तीस सालकी छोटी आयुमें पुरु-जनने उसे अपना महापितर चुन लिया था।

पुरुहूतको साफ़ दीख रहा था कि यदि मद्रोंके इस व्यापारिक अन्यायको रोका नहीं गया, तो ऊपरी जनोंके लिए कोई आशा नहीं। ताँबेका प्रचार कम होनेकी जगह दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा था; हथियार, बर्तन और आभूषणके लिए ही नहीं, अब तो लोग विनिमयके लिए मनों मांस या कम्बल ले जानेकी जगह ताँबेकी तलवार या छुरी ले जाना पसन्द करते थे। पुरुहूतने अपने जनकी बैठकके सामने अपने दुःखोंका कारण इन नीचेके जनोंका व्यापारिक अन्याय बतलाया। सभी सहमत थे कि मार्ग-कंटक, मद्रोंको हटाये बिना वे उनके हाथकी कठपुतली बन जायँगे। शायद वे दिन भी आयें, जब कि वे उनके दासों जैसे हो जायें। पुरु और उत्तर-मद्रके महापितरोंकी इकट्ठा बैठकमें भी लोग इसी निष्कर्षपर पहुँचे। दोनों जनोंने मिलकर युद्ध-संचालनके लिए पुरुहूतको अपना एक सम्मिलित सेनापति चुना और उसे इन्द्रकी उपाधि दी। इस प्रकार पुरुहूत प्रथम इन्द्र था।

पुरुहूतने बड़े ज़ोरसे सैनिक तैयारी शुरू की। इन्द्र बनते ही उसने हथियार बनानेका इन्तिज़ाम करनेके लिए दो लोहार दासोंको अपने यहाँ शरण दी। ऊपरी जन उनके साथ बहुत अच्छा बर्ताव करते थे, और उनकी सहायतासे वह लौह (लाल धातु = ताँबा)-शिल्पमें निपुणता प्राप्त करनेमें सफल हुए। इस प्रकार मद्रों और पुरुओंमें कितने ही लोह-शिल्पी तैयार हो गये। अपने लोहार दासोंको लौटा देनेके लिए पड़ोसियोंने ज़बान ही नहीं बल्कि शस्त्रको भी इस्तेमाल करना चाहा; किन्तु निचले जनोंमें बनियापनके साथ-साथ योद्धाके पराक्रमकी कमी भी आ गई थी। लड़ाईमें सफल न होनेपर उन्होंने ताँबा देना बन्द कर दिया। किन्तु उन्हें जल्दी ही मालूम हो गया कि इससे उनका व्यापार ही चौपट हो जायगा—मद्र पुरु तो पिछले समयकी खरीदी पतीलियों तथा दूसरे बर्तनोंसे अपने शस्त्र तैयार करनेमें एक पीढ़ीके लिए स्वतंत्र थे।

आखिर इन्द्र और उसके दोनों जनोंने मद्र-पर्शुओंको मिटा डालनेका संकल्प किया। पुरुहूतने स्वयं भी लोहारका काम सीखा था, और उसके सुझावके अनुसार खड्ग, भाले तथा बाण-फलमें कई सुधार हुए। उसने चतुर बलिष्ठ भटोंकी छातियोंको चोटसे बचानेके लिए कितने ही ताँबेके वक्ष-त्राण बनवाये।

इन्द्रने तय किया कि पहले सिर्फ़ एक शत्रुको लिया जाय, और इसके लिए उसने पर्शुओंको चुना। जाड़ोंमें पर्शु अधिक संख्यामें व्यापारके लिए बाहर चले जाते थे, इन्द्रने इसी समयको सबसे अच्छा समझा। उत्तरमद्र और पुरुके योद्धाओंको उसने युद्ध-कौशल सिखलाया। यद्यपि पर्शुओं और मद्रोंकी शत्रुता चिरसे चली आती थी, किन्तु उनको क्या पता था कि इस तरह अचानक उनके ऊपर शत्रुका ऐसा घातक आक्रमण होगा, जिसके कारण वक्षु-उपत्यकासे उनका नाम तक मिट जायगा। इन्द्रने स्वयं अपने नेतृत्वमें चुने हुए मद्र और पुरु-योद्धाओंके साथ आक्रमण किया। युद्धके उद्देश्यको पहचाननेमें देर न हुई, और समझ

जानेपर पर्शु प्राणकी बाज़ी लगाकर बड़ी वीरतासे लड़े। किन्तु, उस जल्दीमें वे सारे पर्शु-ग्रामोंको एकत्र न कर सके। इन्द्रकी सेनाने एकके बाद एक पर्शु-ग्रामोंको लेते हज़ारों पर्शुओंका संहार किया— किसीको बन्दी नहीं बनाया। उधर निचले मद्रोंने जब संकटको समझा, तो समय बीत चुका था। आख़िरके कुछ गाँव ही अब रह गये थे, जिनके लिए काफ़ी भटोंको छोड़ पुरुहूत इन्द्र कुरु-भूमिमें चला आया। निचले मद्रोंने आक्रमण किया, किन्तु उनकी भी वही दशा हुई जो कि पर्शुओंकी हुई। निचले मद्र और पर्शु-जनोंका जो भी पुरुष—बाल, तरुण, वृद्ध—उनके हाथ आया, उसे उन्होंने जीवित नहीं छोड़ा, स्त्रियोंको अपनी स्त्रियोंमें शामिल कर लिया। हाथ आये दासोंमें जिन्होंने अपने देशमें लौट जाना चाहा, उन्हें लौटा दिया। कुछ निचले मद्र और पर्शु-स्त्री-पुरुष जान बचाकर वत्तु-उपत्यका छोड़ पश्चिमकी ओर चले गये। उन्हींकी सन्तानें पीछे ईरानके पर्शु (पर्सियन) और मद्र (मिडियन) के नामसे प्रसिद्ध हुईं। उनके पूर्वजोंपर इन्द्रके नेतृत्वमें जो अत्याचार हुआ था, उसे वे भूल नहीं सकते थे। इसीलिए ईरानी इन्द्रको अपना सबसे ज़बर्दस्त शत्रु मानने लगे। सारी वत्तु-उपत्यका उत्तर-मद्रों और पुरुओंके हाथ आई। दोनोंने दाहिने-बायें तटको आपसमें बाँट लिया।

वत्तुवालोंने भरसक कोशिश की, कि नईको हटाकर पुरानी बातोंकी फिरसे स्थापना करें; किन्तु वे ताम्रको छोड़ पत्थरके हथियारोंकी ओर नहीं लौट सकते थे, और ताम्रके लिए वत्तुकी पहाड़ी उपत्यकासे बाहर व्यापार-सम्बन्ध करना ज़रूरी था।

हाँ, दासताको उन्होंने कभी नहीं स्वीकार किया, और न बाहरी लोगोंको वत्तु-उपत्यकाका स्थायी निवासी बननेका अधिकार दिया। शताब्दियोंके बाद जब पुरुहूत इन्द्रको भी लोग भूलने लगे थे या उसे देवता बना चुके थे, तो वंश इतना बढ़ गया कि सबका भरण-पोषण

बद्ध नहीं कर सकती थी, इसलिए उनकी कितनी ही सन्तानें दक्षिणकी ओर बढ़नेके लिए बाध्य हुईं।

अबसे पहले एक जन दूसरेसे स्वतंत्र रहता था, महापितरकी प्रधानता होनेपर भी वह सब कुछ जनपर निर्भर करता था। किन्तु, वक्षु-तटके अन्तिम संघर्षने कई जनोंके एक सेनापति, इन्द्रको जन्म दिया।*

---

*आजसे एकसौ अस्सी पीढ़ी पहलेके आर्यजनोंकी यह कहानी है। इन्हीं जनोंमें से कुछकी सन्तानें अब भारतकी ओर प्रस्थान करनेवाली थीं। उस समय कृषि और ताँबेका प्रयोग होने लगा था; आर्य दासताको स्वीकृत कर उसे फिरसे बरमृत करना चाहते थे।

५—पुरुधान

देश— ऊपरी स्वात; जाति—हिन्दी-आर्य
काल—२००० ई० पू०

वह सुवास्तुका बायाँ तट अपने हरे-भरे पर्वतों, बहते चश्मों, दूर तक फैले खेतोंमें लहराते गेहूँके पौधोंके कारण अत्यन्त सुन्दर था। किन्तु, आर्योंको सबसे अधिक अभिमान था, अपनी पत्थरकी दीवारों तथा देव-दारुके पल्लोंसे छाई वास्तुओं—घरों—का, तभी तो उन्होंने इस प्रदेशको सुवास्तु (सुन्दर घरोंवाला प्रदेश, स्वात) नाम दिया। वक्षुतट पार करते आर्योंने पामीर और हिन्दुकुशसे दुर्गम डाँडों, तथा कुनार, पंज-कोरा-जैसी नदियोंको कितनी मुश्किलसे पार किया, इसकी स्मृति शायद उन्हें बहुत दिन तक रही, और क्या जाने आज जो मंगलपुर (मंगलोर)में इन्द्र-पूजाकी भारी तैयारी है, वह इन्हीं दुर्गम पथोंसे सकुशल निकाल लानेवाले अपने इन्द्रके प्रति कृतज्ञता प्रकट करनेके लिये हो।

आज मंगलपुरके पुरुओंने अपने-अपने सुन्दर गृहोंको देवदारुकी हरी शाखाओं और रंग-बिरंगी झंडियोंसे सजाया है। पुरुधानको एक खास तरह की लाल झंडियाँ लगाते हुए देख, एकको हाथमें ले उसके पड़ोसी सुमेधने कहा—

"मित्र पुरु! यह तुम्हारी झंडियाँ बड़ी हल्की और चिकनी हैं। हमारे यहाँ तो ऐसे वस्त्र नहीं बनते, यह दूसरी ही तरहकी भेड़ें होंगी!"

"यह भेड़ोंका ऊन नहीं है, सुमेध!"

"तो फिर?"

"यह ऐसा ऊन है, जो वृक्षपर उगता है।"

"हमारे यहाँ जैसे भेड़ोंके शरीरपर ऊन उगता है, उसी तरह यह ऊन जंगलमें वृक्षपर उगता है।"

"ऐसा ही सुना जाता है मित्र ! मैंने स्वयं उस वृक्षको नहीं देखा।"

सुमेरने तकलेको जाँघसे रगड़कर घूमनेके लिए फेंक ऊनकी नई प्यूनी लगाते हुए कहा—"कितने भाग्यवान् होंगे वे लोग जिनके जंगलके वृक्षोंमें ऊन जमता है ! क्या हमारे यहाँ यह वृक्ष नहीं लगाये जा सकते ?"

"सो मालूम नहीं। सर्दी-गर्मीको वह वृक्ष कितना बर्दाश्त कर सकता है, इसे हम नहीं जानते; किन्तु सुमेध ! मांस तो वृक्षपर नहीं पैदा होता ?"

"जब किसी देशमें ऊन वृक्षपर पैदा होता है, तो किसीमें मांस भी हो सकता है। और इसका दाम ?"

"दाम ऊनी कपड़ेसे बहुत कम; किन्तु ऊनके बराबर यह ठहरता नहीं।"

"कहाँसे खरीदा ?"

"असुर लोगोंके पाससे। यहाँसे पचास कोसपर उनका देश है, वह लोग इसीका कपड़ा पहनते हैं।"

"इतना सस्ता है, तो हम लोग भी इसे क्यों न पहनें ?"

"किन्तु इससे जाड़ा नहीं जा सकता।"

"फिर असुर कैसे पहनते हैं ?"

"उनके यहाँ सर्दी कम पड़ती है, बरफ़ तो देखनेको नहीं मिलती।"

"तुम वाणिज्यके लिए पूर्व, उत्तर, पश्चिम न जा दक्खिनको ही क्यों जाते हो ?"

"उधर नफ़ा अधिक रहता है, और चीज़ें भी बहुत तरहकी मिलती हैं; लेकिन एक बड़ी तकलीफ़ है—वहाँ बहुत गर्मी है, मधुर शीतल जलके लिए तो जी तरस जाता है।"

"लोग कैसे होते हैं पुरुधान ?"

"लोग नाटे-नाटे होते हैं, रंग ताँबे-जैसा। बड़े कुरूप। नाक तो, मालूम होती है, है ही नहीं—बहुत चिपटी-चिपटी भौंड़ी-भौंड़ी। और एक बहुत बुरा रिवाज है वहाँ, आदमी खरीदे-बेचे जाते हैं।"

"खरीदे-बेचे ?"

"उन्हें दास कहते हैं।"

"दासों और स्वामियोंकी सूरत-शकलमें क्या कुछ अन्तर होता है?"

"नहीं। हाँ, दास बहुत ग़रीब परतन्त्र होते हैं—उनका तन-प्राण स्वामीके हाथमें होता है।"

"इन्द्र हमारी रक्षा करे, ऐसे लोगोंका मुँह देखनेको न मिले।"

"और मित्र सुमेध! अब भी तुम्हारा तकला चल रहा है; यज्ञमें नहीं चलना है?"

"चलना क्यों नहीं है, इन्द्रकी कृपासे पीवर पशु और मधुर सोम मिलता है। उसी इन्द्रकी पूजामें कौन अभागा है, जो न शामिल होगा?"

"और तुम्हारी गृहपत्नीका क्या हाल है? आजकल तो अखाड़ेमें उसका पता ही नहीं चलता?"

"चसक गये हो क्या पुरुधान?"

"चसकनेका सवाल ही क्या है? तुमने तो सुमेध जान-बूझकर बुढ़ापेमें तरुणीसे प्रणय करना चाहा।"

"पचासमें बुढ़ापा नहीं आता।"

"लेकिन, पचास और बीसमें कितना अन्तर होता है?"

"तो उसने उसी दिन इन्कार कर दिया होता?"

"उस दिन तो दाढ़ी-मूँछ मुड़ाकर अठारह वर्षके बन गये थे, और उषाके माँ-बापकी नज़र पचास वर्षपर नहीं, तुम्हारे पशुओंपर थी।"

"छोड़ो इस बातको पुरु! तुम तरुण लोग तो हमेशा...।"

"अच्छा छोड़ता हूँ सुमेध! देखो बाजा बजने लगा है यज्ञ आरम्भ होगा।"

"देर करा दोगे तुम, और गाली सुनेगा बेचारा सुमेध।"

"तो चलो, उषाको भी साथ लेते चलें।"

"वह क्या अब तक घरपर बैठी होगी?"

"और इस ऊन और तकलेको तो लाओ रख चलें।।"

"इससे यज्ञमें बाधा नहीं पड़नेकी।"

"इसीलिए तो उषा तुम्हें पसन्द नहीं करती।"

"पसन्द तो करती; किन्तु तुम मंगलपुरके तरुण यदि पसन्द करने दो तब न!"

बात करते दोनों मित्र नगरसे बाहर यज्ञ-वेदीकी ओर जा रहे थे। जिस तरुण-तरुणीकी पुरुधानसे चार आँखें होतीं, वह मुस्कुरा उठता। पुरुधान उन्हें आँखोंसे इशाराकर मुँह फेर लेता। सुमेधकी नज़रोंने एक बार एक तरुणको पकड़ लिया, फिर क्या था, वह बड़बड़ाने लगा—

"मंगलपुरके कलंक हैं ये तरुण।"

"क्या बात है, मित्र!"

"मित्र-वित्र नहीं, मुझको देखकर हँसते हैं।"

"यह बदमाश है मित्र, तुम तो जानते ही हो, इसकी बातको क्या लिये हो।"

"मुझे तो मंगलपुरमें भलामानुष कोई दिखलाई ही नहीं पड़ता।"

यज्ञ-वेदीके पास विस्तृत मैदान था, जिसमें जहाँ-तहाँ मंच और देव-दारुके पत्तोंवाले खम्भोंपर तोरण-बन्दनवार टँगे थे, ग्रामके बहुतसे स्त्री-पुरुष वेदीके आस-पास जमा थे; किन्तु अभी वह बड़ा जमावड़ा शामसे होनेवाला था, जब कि सारे पुरुजनके नर-नारियोंका भारी मेला मंगल-पुरमें लगेगा और जिसमें स्वात नदीके दूसरे तटके मद्र भी शामिल होंगे।

उषाने दोनों जोड़ीदारोंको आते देखा और वह सुमेधके पास आकर उसके हाथको अपने हाथोंमें ले तरुण-तरुणियोंका-सा प्रेमाभिनय करते बोली—

"प्रिय सुमेध! सबेरेसे ढूँढ़ती-ढूँढ़ती मर गई, तुम्हारा कहीं पता नहीं!"

"मैं क्या कहीं मर गया था!"

"ऐसा वचन मुँहसे मत निकालो सुमेध! जीते-जी मुझे विधवा न बनाओ।"

"विधवाओंको पुरुओंमें देवरोंकी कमी नहीं।"

"और सधवाओंको क्या देवर विष लगते हैं?"—पुरुधानने कहा।

"हाँ, ठीक कहा पुरु! यह मुझको चराने आई है। सबेरेसे ही घरसे निकली है, न जाने कितने घर न्योते बाँटे होंगे और शामको एक कहेगा मेरे साथ नाच, दूसरा कहेगा मेरे साथ। झगड़ा होगा, खून-खराबी होगी और इस स्त्रीके लिए बदनाम होगा सुमेध।"

उषाने हाथको छोड़ आँखों और स्वरकी भावभंगीको बदलते हुए कहा—"तो, उषाको तुम पिटारीमें बन्द करके रखना चाहते हो? जाओ तुम चूल्हे-भाड़में, मैं भी अपना रास्ता लेती हूँ।"

उषाने एकान्त पा पुरुधानको देख मुस्कुरा दिया, और वह वेदीके गिर्दकी भीड़में ग़ायब हो गई।

सालमें सिर्फ़ आजका ही दिन है, जब स्वातकी उपत्यकामें पुराने इन्द्रको वक्षु-तटकी भाँति सबसे मोटे अश्वका मांस खानेको मिलता है, घोड़ेके लिए सारे जनमें चुनाव होता है। वैसे स्वात उपत्यकामें घोड़ा नहीं खाया जाता; किन्तु इन्द्रकी इस वार्षिक प्रजाके यज्ञ-शेषको सभी भक्तिभावसे ग्रहण करते हैं। जनके महापितर—जिन्हें यहाँ जन-पति कहा जाता है—आज अपने जन-परिषद्के साथ इन्द्रको वह प्रिय बलि देनेके लिए मौजूद हैं। जनपतिको बलिदानका सारा विधि-विधान याद है; वह सारे मन्त्र याद हैं, जिनसे स्तुति करते हुए वक्षुतटवासी इन्द्रको बलि दिया करते थे। बाजे और मन्त्र-स्तुतिके साथ अश्वके स्पर्श, प्रोक्षणसे लेकर आलम्भन (मारने) तक सारी क्रिया सम्पन्न हुई। फिर अश्वके चमड़ेको अलगकर उसके शरीरके अवयवोंको अलग-अलग रखकर, कितनेको कच्चा और कितनेको बघारकर, अग्निमें आहुति दी गई। यज्ञ-शेष बँटते-बँटते शाम होनेको आई। तब तक सारा मैदान नर-नारियोंसे भर गया। सभी अपने सुन्दरतम वस्त्रों और आभूषणोंमें थे। स्त्रियोंके शरीरमें रंगीन सूक्ष्म कम्बल कामदार भिन्न-भिन्न रंगोंके कमरबन्दसे बँधा

हुआ था, जिसके भीतर सुन्दर कंचुक था। कानोंमें अधिकांशके सोनेके कुंडल थे। बसन्त समाप्त हो रहा था, उपत्यकामें बहुत तरहके फूल, मानो आजके लिए ही फूले हुए थे। तरुण-तरुणियोंने अपने लम्बे केशोंको उनसे खूब सँवारा था और आज इन्द्रोत्सवमें उन्हें स्वच्छन्द प्रणयका पूरा अधिकार था। शामको जब बनी-ठनी उषा पुरुधानके हाथको अपने हाथमें लिये घूम रही थी, तो सुमेधकी नज़र उनपर पड़ी। उसने मुँह फेर लिया। क्या करता बेचारा। इन्द्रोत्सवके दिन ग़ुस्सा भी नहीं कर सकता था। पिछले ही साल इसके लिए जनपतिने उसे फटकारा था।

आज सचमुच मधु-क्षीर-मिश्रित सोम (भंग) रसकी नदियाँ बह रही थीं। गाँव-गाँवके लोगोंकी ओरसे बछड़े या वेहद्के स्वादिष्ट मांस और सोमरसके घट आकर रखे हुए थे। अभिनव प्रणयमें मस्त तरुण-तरुणियोंका हर जगह स्वागत था। वह मांस-खंड मुँहमें डालते, सोमका प्याला पीते, इच्छा होनेपर बाजे—जो बजते या हर वक़् बजनेके लिए तैयार रहते थे—पर कुछ नाचते और फिर दूसरे ग्रामके स्वागत-स्थानको चल देते। सारे जनकी ओरसे बड़े पैमानेपर तैयारी की गई थी, यहाँका नाचनेका अखाड़ा भी बहुत बड़ा था।

इन्द्रोत्सव मुख्यतः तरुणोंका त्योहार था। इस एक दिन-रातके लिए तरुण सारे बन्धनोंसे मुक्त हो जाते थे।

(२)

ऊपरी स्वातका यह भाग पशु और धान्यसे परिपूर्ण है, इसीलिए यहाँके लोग बहुत सुखी और समृद्ध हैं। उनको जिन वस्तुओंका अभाव है, उनमें मुख्य है ताँबा और शौक़की चीज़ोंमें सोना-चाँदी तथा कुछ रत्न, जिनकी माँग दिन-पर-दिन बढ़ती जा रही है। इन चीज़ोंके लिए हर साल स्वात और कुभा (काबुल) नदियोंके संगमपर बसे असुर-नगर हैं। जान पड़ता है, इस असुर-नगरको पीछे आर्य लोग पुष्कलावती (चार सद्दा) के

नामसे पुकारने लगे और हम भी यहाँ इसी नामको स्वीकार कर रहे हैं। जाड़ेके मध्यमें स्वात, पंचकोरा तथा दूसरी उपत्यकाओंमें रहनेवाली पहाड़ी जातियाँ—पुरु, कुरु, गन्धार, मद्र, मल्ल, शिवि, उशीनर आदि —अपने घोड़ों, कम्बलों तथा दूसरी विक्रेय वस्तुओंको लेकर पुष्कलावतीके बाहरवाले मैदानमें डेरे डालती थीं। यहीं असुर व्यापारी उनकी चीज़ोंको ले बदलेमें इच्छित वस्तुएँ देते थे। सदियोंसे यह क्रम अच्छी तरह चला आता था। अबके साल पुरुओंका सार्थ (कारवाँ) पुरुधानके नेतृत्वमें पुष्कलावती गया। इधर कई वर्षोंसे पहाड़ी लोगोंमें शिकायत थी कि असुर उनको बहुत ठग रहे हैं। असुर नागरिक व्यापारी इन पहाड़ियोंसे ज्यादा चतुर थे, इसमें तो शक ही नहीं। साथ ही वह इन्हें निरे उजड्ड जंगली समझते थे, जिसमें कुछ सत्यता भी थी; किन्तु पीले बालों, नीली आँखों-वाले आर्य घुड़सवार कभी अपनेको असुर नागरिकोंसे नीच माननेके लिए तैयार न थे। धीरे-धीरे जब आर्योंमेंसे पुरुधान-जैसे कितने ही आदमी असुरोंकी भाषाको समझने लगे, और उन्हें उनके समाजमें घूमनेका मौक़ा मिला, तो पता लगा कि असुर आर्योंको पशु-मानव मानते हैं। यह आरम्भ था दोनों जातियोंमें वैमनस्यके फूट निकलनेका।

असुरोंके नगर सुन्दर थे। उनमें पक्की ईटोंके मकान, पानी बहनेकी मोरियाँ, स्नानागार, सड़कें, तालाब आदि होते थे। आर्य भी पुष्कलावती-की सुन्दरतासे इंकार नहीं करते थे। किन्हीं-किन्हीं असुर तरुणियोंके सौन्दर्यको—नाक, केश, क़दकी शिकायत रखते भी—वे माननेके लिए तैयार थे; किन्तु यह कभी स्वीकार करनेको तैयार नहीं थे, कि देवदारोंसे आच्छादित पर्वत-मेखलाके भीतर काष्टकी चित्र-विचित्र अट्टालिकाओंसे सुसज्जित, स्वच्छगृह-पंक्तियोंवाला मंगलपुर किसी तरह भी पुष्कलावतीसे कम है। पुष्कलावतीमें महीना-भर काटना भी उनके लिए मुश्किल हो जाता था और बार-बार अपनी जन-भूमि याद आती थी। यद्यपि वही स्वात नदी पुष्कलावतीके पास भी बह रही थी; किन्तु वह देखते थे,

उसके जलमें वह स्वाद नहीं है। उनका कहना था, असुरोंका हाथ लगनेसे ही वह पवित्र जल कलुषित हो गया है। कुछ भी हो आर्य असुरोंको किसी तरह भी अपने बराबर माननेके लिए तैयार नहीं थे; खासकर जब कि उन्होंने उनके हज़ारों दास-दासियों, और कोठोंपर बैठकर अपने शरीरको बेचनेवाली वेश्याओंको देखा।

लेकिन व्यक्तिके तौरपर आर्योंके असुरोंमें और असुरोंके आर्योंमें कितने ही मित्र पैदा हो गये थे। असुरोंका राजा पुष्कलावतीसे दूर सिन्धु-तटके किसी नगरमें रहता था, इसलिए पुरुधानने उसे नहीं देखा था। हाँ, राजा के स्थानीय अफ़सरको उसने देखा था। वह नाटा, मोटा और भारी आलसी था, सुराके मारे उसकी मोटी पपनियाँ सदा मुँदी रहा करती थीं। उसके सारे शरीरमें दर्जनों रूपे-सोनेके आभूषण थे। कानोंको फाड़कर उसने कन्धे तक लटका लिया था। यह अफ़सर पुरुधानकी दृष्टिमें कुरूपता और बुद्धिहीनताका नमूना था। जिस राज्यका ऐसा प्रतिनिधि हो, उसके प्रति पुरुधान-जैसे आदमीकी अच्छी सम्मति नहीं हो सकती थी। पुरुधानने सुना था कि वह असुर राजाका साला है, और इसी एक गुणके कारण वह इस पदपर पहुँचा है।

कई सालके अस्थायी सहवासके कारण पुरुधानको असुर-समाजके भीतरकी बहुत-सी निर्बलताएँ मालूम हो गईं थीं। उच्च वर्गके असुर चाहे चतुर जितने हों; किन्तु उनमें कायर अधिक पाये जाते हैं। वह अपने अधीनस्थ भटों और दासोंके बलपर शत्रुसे मुकाबला करना चाहते हैं। निर्बल शत्रुपर विजय प्राप्त करनेमें भले ही सफलता प्राप्त हो, किन्तु बलवान् शत्रुके सामने ऐसी सेना ठहर नहीं सकती। असुरोंके शासक—राजा, सामन्त—अपने जीवनका एक मात्र उद्देश्य भोग-विलास समझते थे। हरेक सामन्तकी सैकड़ों स्त्रियाँ और दासियाँ होती थीं। स्त्रियोंको भी वह दासियोंकी भाँति रखते थे। हालमें असुर-राजाने कुछ पहाड़ी (आर्य) स्त्रियोंको भी बलात् अपने रनिवासमें दाखिल किया था, जिसके

लिए आर्य जनोंमें बहुत उत्तेजना फैली हुई थी। खैरियत यही थी, कि असुर-राजधानी सीमान्तसे बहुत दूर थी और वहाँ तक आर्योंकी पहुँच अभी नहीं थी; इसलिए लोग आर्य-स्त्रियोंकी बातको दन्तकथा समझते थे।

पुष्कलावतीके बाज़ारोंसे तरह-तरहके आभूषण, कार्पास वस्त्र, अस्त्र-शस्त्र और दूसरी चीज़ें, सुवास्तु क्या कुनारके ऊपरले काँटेके खानाबदोशों-के झोंपड़ों तक पहुँचने लगी थीं। सुवास्तुकी स्वर्ण-केशी सुन्दरियाँ चतुर असुर-शिल्पियोंके हाथके बने आभूषणोंपर मुग्ध थीं; इसलिए सार्थके साथ हर साल अधिक-से-अधिक आर्य-स्त्रियाँ पुष्कलावती आने लगी थीं। सुमेध बेचारा सचमुच उषाको विधवाकर चल बसा था, और अब वह अपने चचेरे देवर पुरुधानकी पत्नी थी। इस साल वह भी पुष्कलावती आई थी। पुष्कलावतीके नगराधिपतिके आदमियोंने पीत-केशोंके तम्बुओं-के भीतर बहुत-सी सुन्दरियोंको देख, इसकी खबर अपने स्वामीको दी, और उसने तै किया था, कि जब सार्थ लौटने लगें, तो पहाड़ (अबाज़ई) में घुसते ही हमला करके उसे लूट लिया जाय। यद्यपि यह काम बुद्धिहीनताका था, क्योंकि पीत-केश कितने लड़ाके होते हैं, इसका पता उसे था; किन्तु नागराधिपतिमें बुद्धिकी गन्ध तक न थी। नगरके बड़े-बड़े सेठ-साहूकार उससे घृणा करते थे। जिस व्यापारीसे पुरुधानकी मित्रता थी, उसकी सुन्दरी कन्याको हाल हीमें नगराधिपतिने जबर्दस्ती अपने घरमें डाल लिया था, जिसके लिए वह उसका जानी दुश्मन बन गया था। उषा भी असुर सौदागरके घर कई बार गई थी। यद्यपि वह सौदागर-पत्नीकी एक बातको भी नहीं समझती थीं; किन्तु पुरुधानके दुभाषियापन तथा सेठानीके व्यवहारके कारण दोनों आर्य-असुर नारियोंमें सखित्व क़ायम हो गया था। प्रस्थान करनेसे दो दिन पहले सौदागरने अपने भारी ग्राहक पुरुधानकी दावत की। उसी वक्त उसने पुरुधानके कानमें नगराधिपतिके नीच इरादेकी बात कह दी। उसी रात पुरुधानने सारे आर्य सार्थ-नायकों-को बुलाकर परामर्श किया। जिनके पास अच्छे हथियारोंकी कमी थी,

उन्होंने नये हथियार खरीदे। बेचनेके लिए लाये घोड़े तथा दूसरे भारी गट्ठर उनके बिक चुके थे, सिर्फ़ अपने चढ़नेके घोड़े तथा खरीदे सामान—आभूषण, धातुकी दूसरी चीज़—हल्के थे; इसलिए इस ओरसे उनको कम चिन्ता थी। स्वातकी आर्य-स्त्रियोंमें आभूषण-शृंगारका शौक़ बढ़ रहा था, किन्तु अभी तक उनकी तरुणाईकी शिक्षामें गीत-नृत्यके साथ शस्त्र-शिक्षा भी शामिल थी; इसलिए संकटकी खबर सुनते ही उन्होंने भी अपने-अपने खड्ग और चर्म (ढाल) सँभाल लिये।

पुरुधानको पता था कि असुर-भट सीमान्तके पहाड़ी दर्रेपर आगेसे रास्ता रोककर हमला करेंगे, और उसी वक्त उनकी एक बड़ी टुकड़ी पीछेसे भी घेरना चाहेगी। इसके लिए पुरुधानने पूरी तैयारी कर ली थी, जो कि पहले खबरके मिल जानेसे ही सम्भव हुई। वैसे होता, तो पंजकोरा, कुनार और स्वातके सार्थ अलग-अलग बिना एक-दूसरेका ख्याल किये चल देते; किन्तु अब सब तैयार थे। यद्यपि शत्रुको पता न लगने देनेके लिए उन्होंने पुष्कलावतीसे एक-दो दिन आगे-पीछे कूच किया था; किन्तु बात तय हो चुकी थी, कि अञ्जा (अबाज़ई)के द्वारपर सभी एक समय पहुँचेंगे। जब द्वार (दर्रा) कोस-दो-कोस रह गया, तो पुरुधानने पच्चीस सवार पहले भेजे। जिस वक्त सवार द्वारके भीतर बढ़ने लगे, उसी वक्त असुरोंने उन पर बाण छोड़ने शुरू किये। आक्रमणकी बात सच निकली। सवार पीछे हट आये, और उन्होंने अपने सार्थनायकको खबर दी। पुरुधानने पहले पीछे आनेवाले शत्रुओंसे निबटना चाहा। इसमें सुभीता भी था; क्योंकि यद्यपि असुर हर साल आर्योंसे हज़ारोंकी संख्यामें घोड़े खरीद रहे थे, किन्तु अभी वह चुस्त सैनिक घुड़सवार नहीं बन सके थे।

सार्थ रुक गया, और रक्षाके लिए कितने ही भटोंको वहाँ छोड़ बाक़ी सवारोंके साथ पुरुधान पीछे मुड़ा। असुर-सेनाको आशा न थी, कि पीत-केश एकाएक उनपर आ पड़ेंगे। पीत-केशोंके लम्बे भालों और खड्गोंके सामने वह देर तक न ठहर सके; लेकिन आर्य-बल उन्हें सिर्फ़

पराजित करके नहीं छोड़ना चाहता था। वह इन निर्नास, काले असुरोंको बतलाना चाहता था, कि पीत-केशियोंपर नज़र डालना कितनी खतरेकी बात है। असुर-सेनाको भागते देख पुरुधानने सार्थको सूचना भेजी, और अपने सवारोंको ले पुष्कलावतीपर आ पड़ा। असुर सैनिकोंकी भाँति उनका नगराधिपति भी इसकी आशा नहीं रखता था। असुर अपनी पूरी शक्तिको इस्तेमाल करनेका मौक़ा नहीं पा सके, और आसानी से असुर-दुर्ग तथा नगराधिपति पीत-केशोंके हाथमें आ गये। पीत-केश असुरोंके इस विश्वासघातसे बहुत उत्तेजित थे। उन्होंने बड़ी निर्दयता-पूर्वक असुर-पुरुषोंका वध किया। नगराधिपतिको तो नगरके चौरास्तेपर ले जा असुर-प्रजाके सामने एक-एक अंग काटकर मारा। उन्होंने स्त्रियों, बच्चों और व्यापारियोंको नहीं मारा। यदि उस वक़्त दास बनानेकी इच्छा होती, तो सम्भव है पीत-केश (आर्य) इतना अधिक वध न करते। पुष्कलावतीके बहुतसे भागको उन्होंने आग लगाकर जला डाला। यह प्रथम असुर-दुर्गका पतन था।

असुरों और पीत-केशोंके महान् विग्रह—देवासुर-संग्राम—का इस प्रकार प्रारम्भ हुआ।

पुरुधानने लौटकर अब्जा दर्रेमें एकत्रित असुर सैनिकोंको खतम किया, और फिर सारे पीत-केश सार्थ अपनी-अपनी जन-भूमियोंको चले गये।

कई सालोंके लिए पुष्कलावतीका व्यापार मारा गया। पीत-केशोंने असुर-पण्यको लेनेसे इन्कार किया; किन्तु ताँबे-पीतलका बहिष्कार वह कितनी देर तक कर सकते थे!*

---

*आजसे एक सौ साठ पीढ़ी पहले आर्य (देव)-असुर संघर्ष हुआ था, उसीकी यह कहानी है। आर्योंके इस पहाड़ी समाजमें दासता स्वीकृत नहीं हुई थी। ताँबे-पीतलके हथियारों और व्यापारका ज़ोर बढ़ चला था।

६—अंगिरा

स्थान—गंधार (तक्षशिला), जाति—हिन्दी-आर्य
काल—१८०० ई० पू०

(१)

"बेकार है यह कार्पास वस्त्र, न इससे जाड़ा रुकता है, न वर्षासे बचाव।" अपने भीगे कंचुकको हटा कम्बल ओढ़ते हुए तरुणने कहा।

"किन्तु, गर्मीकी ऋतुमें यह अच्छा होता है।" दूसरे तरुणने भी कंचुकको किवाड़पर पसारते हुए कहा। शाम होनेमें अभी काफ़ी देर थी, किन्तु आवसथ (पांथशाला)में आगके किनारे अभीसे लोग डटे हुए थे। दोनों तरुण धुँयेमें बैठनेकी जगह गवाक्षके पास हवाके ख्यालसे कम्बल ओढ़कर बैठ गये।

पहिला तरुण—"हम अभी एक योजन जा सकते थे, और कल सवेरे ही गन्धार-नगरमें (तक्षशिला) पहुँच जाते, किन्तु इस पानी और हवाको क्या किया जाये।"

दूसरा—"जाड़ोंकी यह बदली और बुरी लगती है। किन्तु, जब नहीं होती तो हमारे किसान इन्द्रको पानी बरसानेके लिए प्रार्थनापर प्रार्थना करते हैं, और पशुपाल अधिक क्रन्दन करते हैं।"

पहिला—"सो तो है मित्र, सिर्फ़ पान्थ ही हैं, जो इसे नहीं पसन्द करते। और कोई सदा पान्थ भी तो नहीं रहता।" फिर गर्दनके पीछेके चमके बड़े दाग़को देखकर कहा—"तेरा नाम मित्र?"

"पाल माद्र। और तेरा?"

"वरुण सौवीर। तो तू पूर्वसे आता है?"

"हाँ, मद्रोंमेंसे, और तू दक्खिनसे? बतला मित्र! दक्खिनमें, सुनते हैं, असुर अब भी आर्योंसे लड़ रहे हैं।"

"सिर्फ़ समुद्रतटपर उनका एक नगर बच रहा था। जानता है, न मित्र! हमारे मघवा इन्द्रने किस तरह असुरोंके सौ नगर-दुर्गोंको तोड़ा था।"

"सुना है, असुरोंके नगर-दुर्ग लौह (ताँब)के थे?"

"असुरोंके पास लौह ज्यादा है, किन्तु नगर-दुर्ग बनाने भरके लिए नहीं। मैं नहीं समझता यह कथा कैसे फैली। असुरोंके मकान ईंटों—आगमें पकाई चौकोर किन्तु लम्बी अधिक—के होते हैं, उनके नगरोंको जिस दीवारसे घेरा गया रहता है, वह भी ईंटकी होती है। यह ईंटें लौह (लाल) वर्णकी होती हैं, किन्तु लौह (ताम्र) धातु और ईंटोंमें इतना अन्तर है, कि उसे लौह नहीं कहा जा सकता।"

"लेकिन हम तो वरुण! असुरोंके लौ -दुर्गको ही सुनते आते हैं।"

"शायद, हमारे इन्द्रको इन दुर्गोंके तोड़नेमें जितनी शक्ति लगानी पड़ी, उसीके कारण यह नाम पड़ा हो।"

"और शंबरके पराक्रमकी भी तो बड़ी-बड़ी कथाएँ सुनी जाती हैं, उसका समुद्रमें घर था, उसका रथ आकाशमें चलता था।"

"रथकी बात बिल्कुल ग़लत है। असुर यदि किसी युद्ध-विद्यामें सबसे निर्बल हैं, तो अश्वारोहणमें। आज भी उत्सवके समय असुर अश्वरथकी जगह वृषभरथ जोड़ते हैं। मैं तो समझता हूँ पाल! हमारे यह अश्व ही थे, जिनके कारण हम विजयी हुए, नहीं तो असुर-पुरोंको जीत न सकते थे। शंबरको मरे दो सौ साल हो गये, किन्तु, मुझे विश्वास है, उसके पास अश्वरथ भी न रहा होगा, आकाशमें चलनेकी तो बात ही क्या?"

"तो शंबर यदि इतना साधारण शत्रु था, तो उसके जीतनेसे हमारे इन्द्रकी इतनी महिमा क्यों हुई?"

"क्योंकि शंबर बहुत वीर था। उसके स्वर्ण-खचित लौह कवचको मैंने सौवीरपुरमें देखा है, वह बहुत ही दृढ़ और विशाल है। असुर, आमतौरसे क़दमें छोटे होते हैं। किन्तु शंबर बहुत बड़ा था, बहुत लम्बा-चौड़ा और शायद कुछ अधिक मोटा। और हमारा मघवा इन्द्र पतला छरहरा जवान। सिन्धुके तटपर अब भी असुरोंके पुरदुर्ग देखनेको मिलते हैं। उनके भीतर रहकर कुछ सौ धनुर्धर हज़ारों शत्रुभटोंको पास आनेसे रोक सकते हैं। वस्तुतः ये असुरोंकी पुरियाँ अयोध्या (अ-पराजेय) थीं। और ऐसी अयोध्या पुरियोंको तोड़नेवाला हमारा मघवा इन्द्र—नहीं, आर्य-सेनानी महापराक्रमी थी।"

"दक्खिनमें क्या अब भी असुरोंका बल मौजूद है, वरुण!"

"कहा नहीं, सागरतीरका उनका अन्तिम दुर्ग अभी हालमें टूटा है, इस युद्धमें मैं भी शामिल हुआ था" कहते हुए वरुणके अरुण मुखपर और अधिक लाली छिटक गई, और उसने अपने दीर्घ चमकीले पीले केशोंको पीछेकी ओर सहलाते हुए कहा—"असुरोंके अन्तिम पुर-दुर्गका पतन हो गया।"

"तुम्हारा इन्द्र कौन था?"

"इन्द्रका पद हमने तोड़ दिया है।"

"तोड़ दिया है?"

"हाँ, क्योंकि इससे हम दक्षिणी आर्योंको डर लगने लगा।"

"डर क्यों?"

"इन्द्रका अर्थ हम सेना-नायक समझते हैं न?"

"हाँ।"

"और सेना-नायकको आर्य अपना सब कुछ नहीं मानते। युद्धके समय उसकी आज्ञाको भले ही शिरोधार्य मानें, किन्तु आर्य अपनी जन-परिषदको सर्वोपरि मानते हैं, जिसमें हर आर्यको अपने विचार खुलकर रखनेका अधिकार होता है।"

"हाँ, यह है।"

"किन्तु, इसके विरुद्ध असुरोंका इन्द्र या राजा सब कुछ अपने ही है, वह किसी जन-परिषद्‌को अपने ऊपर नहीं मानता। असुर-राजाके मुँहसे जो निकल गया, वही हर एक असुरको करना होगा, नहीं तो उसके लिए मृत्यु है।"

"ऐसे इन्द्रको हमलोग कभी पसन्द नहीं कर सकते।"

"किन्तु, असुर ऐसे ही इन्द्रको पसन्द करते आते थे। अपने राजाको वह मनुष्य नहीं देवता मानते थे, और उसकी ज़िन्दा पूजाके लिए वह जो-जो करते रहे हैं, उसको सुनकर मित्र! तू विश्वास नहीं करेगा।"

"हाँ, मैंने भी देखा है, असुरपुरोहित अपने लोगोंको गदहा बना-कर रखते हैं।"

"हाँ, गदहेसे भी बढ़कर। सुना है न वह शिश्न (लिंग) और उपस्थको पूजते हैं। मैं मानता हूँ स्त्री-पुरुषके आनन्दके ये दो साधन हैं, इनके द्वारा हमारी सन्तान आगे चलती है, किन्तु इनको साक्षात् या मिट्टी-पत्थरका बनाकर पूजना कितनी भारी मूर्खता है!"

"इसमें क्या शक।"

"और असुर-राजा शिश्नदेवके भारी भक्त थे। किन्तु इसमें तो मुझे निरी चालाकी मालूम होती है। आख़िर, असुर-राजा और उनके पुरो-हित मूर्ख नहीं होते, वह हम आर्योंसे ज्यादा चतुर होते हैं। उनके नगरों जैसा नगर बनानेके लिए हमें उनसे बहुत सीखना पड़ेगा। उनकी पण्य-वीथी (बाज़ार), उनके कमल-शोभित सरोवर, उनकी उच्च अट्टालिकायें, उनके राजपथ ऐसी चीज़ें हैं, जिन्हें शुद्ध आर्य-भूमियोंमें नहीं पाया जा सकता। मैंने उत्तर सौवीरके असुर-परित्यक्त नगरोंको देखा है, और इस नवपराजित नगरको भी; हम आर्य उनके पुराने नगरोंको प्रति-संस्कार (मरम्मत) करके भी उस रूपमें क़ायम नहीं रख सके, और यह नया नगर—जिसे कहते हैं, शंबरने स्वयं बसाया था—तो देवपुर जैसा है।"

"देवपुर !"

"देवपुर । और पृथिवीपर उसकी किसीसे उपमा नहीं दी जा सकती मित्र ! एक परिवारके रहने लायक़ घरको ही ले लीजिये । इसमें सजे हुए एक या दो बैठकखाने, धूमनेत्रक (चिमनी) के साथ अलग रसोई-घर, आँगनमें ईंटका कुआँ, स्नानागार, शयनागार, कोष्ठागार। साधारण बनियोंके घरोंको मैंने दो-दो, तीन-तीन तलके देखे हैं। क्या बखान करूँ, असुरपुरकी उपमा मैं सिर्फ़ देवपुरसे ही दे सकता हूँ।"

"पूरबमें भी असुरोंके नगर हैं, किन्तु हम मद्रोंकी (स्यालकोट-वाली) भूमिसे वह बहुत आगे है।"

"मैंने देखा है मित्र ! और ऐसे नगरोंके बसाने, बनानेवाले हमसे अधिक चतुर थे, इसे हमें मानना पड़ेगा । सागरके बारेमें तो नहीं सुना होगा ?"

"नाम सुना है ।"

"सिर्फ़ नाम सुनने या वर्णन करनेसे अन्दाज़ा नहीं लग सकता । सागरके तटपर खड़े होकर देखनेसे ही कुछ-कुछ पता लगता है। सामने ऊपर नील जल नीले आकाशसे मिला हुआ है।"

"आकाशसे मिला हुआ, वरुण !"

"हाँ", जितना ही आगे देखें, जल ताड़ों ऊपर उठता चला गया है, और अन्तमें जाकर आकाशसे मिल जाता है। दोनोंका रंग भी एकसा होता है—हाँ, सागर-जल अधिक नीला होता है। और इस अपार सागरमें असुर अपनी विशाल नौकाओंको निर्भय होकर चलाते, वर्षो-महीनोंके रास्ते जाते, और सागरसे नाना प्रकारके रत्न लाते हैं। असुरोंके साहस और चतुराईका यह भी एक नमूना है। यही नहीं; एक बात तो तूने सुनी भी न होगी मित्र ! असुर बिना मुँहसे बोले बात-चीत कर सकते हैं।"

"बिना बोले ! क्या कहा मित्र ?"

"हाँ बिना बोले । मिट्टी, पत्थर, चमड़ेको दे दो, एक असुर उस

पर कुछ चीन्हा खींच देगा, और दूसरा सारी बात समझ लेगा। जितना हम दो घंटा बात करके नहीं समझा सकते, उतना वह पाँच-दस चीन्होंको खींचकर बतला सकते हैं। यह बात आर्योंको कभी नहीं मालूम थी। अब हमारे आर्य उन चीन्होंको सीख रहे हैं, किन्तु, वर्षों लगानेपर भी उनका सीखना पूरा नहीं होता।"

"तब, ज़रूर असुर हमसे अधिक चतुर थे।"

"और उनके लोहारों, दस्तकारों, कुम्भकारों, रथकारों, वंशकारों, कर्मकारों, तन्तुकारोंके हाथकी कारीगरीको तो हम सब देखते ही रहते हैं। फिर असुरोंके अधिक चतुर होनेमें सन्देह क्या हो सकता है?"

"और तूने कहा, कि असुर वीर भी होते हैं।"

"हाँ, किन्तु उनकी संख्या बहुत कम है। आर्योंकी तरह उनका हर एक बच्चा दूध छोड़ते ही तलवारसे नहीं खेलता। उनके यहाँ योद्धाओंकी अलग श्रेणी है, शिल्पियों, व्यापारियोंकी अलग, और दासोंकी अलग। योद्धा श्रेणीको छोड़ दूसरे युद्ध-विद्या नहीं सीखते उन्हें योद्धा बहुत नीची निगाहसे देखते हैं। और दास-दासियोंकी अवस्था तो पशुसे भी बदतर है। उन्हें खरीदते-बेचते ही नहीं हैं, बल्कि वह उनके शरीर प्राणसे मनमाना कर सकते हैं।"

"उनमें योद्धा कितने होंगे?"

"सौमें एकसे भी कम, और दास-दासी सौमें चालीस, अर्धदास सौमें चालीस—शिल्पी और किसान अर्धदास हैं। और सौमें दस व्यापारी, बाक़ी दूसरे।"

"तभी तो असुर आर्योंसे हार गये।"

"हाँ, उनकी हारमें यह एक प्रधान कारण था। और एक बड़ा कारण था, उनका राजाको सारे जनके ऊपर देवता मान लेना।"

"इसे तो हम आर्य कभी नहीं मान सकते।"

"इसीलिए हमें इन्द्रका पद तोड़ना पड़ा। मघवाके बादके किसी

इन्द्रकी बात है, उसने असुर-राजा जैसा बनना चाहा।"

"असुर-राजा जैसा! आर्य-जनके साथ मनमानी करना!!"

"हाँ! और वही एक नहीं, उसके बाद दूसरेने, फिर इस बातमें कुछ आर्य भी उनकी सहायता करते पकड़े गये।"

"सहायता करते?"

"कुल, परिवारके ख्यालसे। इसीलिए सौवीर-जनने तै किया, कि अब कोई इन्द्र नहीं बनाया जायेगा। इन्द्र अशनि (बिजली)-हस्त देवता-का नाम भी है, जिससे लोगोंमें भ्रम फैलनेका डर है।"

"अच्छा किया सौवीर-जनने मित्र!"

"लेकिन कितने ही आर्योंके नाम लजानेवाले पैदा हो गये हैं, जो असुरोंकी हर बातकी प्रशंसा करते नहीं थकते। उनकी कितनी ही प्रशंसनीय बातें हैं जिनकी मैं प्रशंसा करता हूँ, उन्हें हमें लेना चाहिए। उनके हथियारोंको हमने अपनाया। उनके वृषभ-रथोंकी देखा-देखी हमारे मघवा इन्द्रने अश्वरथ बनाये। धनुर्धरके लिए घोड़ेपरसे अधिक सुभीता रथमें होता है। वहाँ वह जितना चाहे उतने तरकश रख सकता है, शत्रुके तीरोंसे बचनेके लिए आवरण भी रख सकता है। उनके कवच, शक्ति, गदा आदिसे हमने बहुत सा सीखा। उनके नगरोंसे भी हम बहुतसी बातें ले रहे हैं। उनकी सागर यात्राको भी हमें सीखना चाहिए, क्योंकि लौह (ताँबा), दूसरे धातु, रत्न और बहुतसी चीजें सागरपारसे आती हैं, अभी भी यह सारा व्यापार असुर-व्यापारियोंके हाथ में है। यदि हम उनसे स्वतंत्र होना चाहते हैं, तो सागर-नौचालन सीखना होगा। किन्तु असुरोंकी बहुतसी बातें हैं, जिनको हमें घातक समझना चाहिए, जैसे शिश्न-पूजा।"

"लेकिन, शिश्न-पूजाको कौन आर्य पसन्द करेगा?"

"मत कह मित्र! कितने ही आर्य कह रहे है, कि असुरोंकी भाँति हमें भी अपने पुरोहित बनाने चाहिए। हमारे यहाँ योद्धा, पुरोहित,

व्यापारी, कृषक, शिल्पीका भेद नहीं, सब सभी काम इच्छानुसार कर सकते हैं, किन्तु असुरोंने अलग-अलग श्रेणियाँ बना रखी हैं। आब आर्योंमें पुरोहित बन जाने दो और देखेंगे, कुछ ही वर्षोंमें शिश्न-(लिंग)-पूजा भी शुरू हो जायेगी। असुर-पुरोहित बहुत मक्कार होते हैं, लाभ-लोभके लिए आर्य-पुरोहित भी वही करने लगेंगे।"

"यह तो बुरा होगा, वरुण!"

"पिछले दो सौ वर्षोंके असुर-संसर्गसे आर्योंमें उनकी कितनी ही बुराइयाँ आने लगी हैं, उनको देखकर बूढ़े-बूढ़े आर्य निराश हो रहे हैं। मैं निराश नहीं हूँ। मैं समझता हूँ, यदि आर्य-जनको अपनी पुरानी बातें ठीकसे समझाई जायें, तो वह पथ-भ्रष्ट नहीं हो सकता। गन्धार-नगर (तक्षशिला)में अंगिरा नामके, सुना है, एक आर्य ऋषि (ज्ञानी) हैं, वह आर्योंकी पुरानी विद्याके भारी ज्ञाता हैं। वह आर्योंको आर्य-मार्गपर आरूढ़ करनेके लिए शिक्षा देते हैं। मैंने आर्योंके विजयके लिए तलवार चलाई है, अब चाहता हूँ, आर्यत्वकी रक्षाके लिए भी कुछ करूँ।"

"कैसा संयोग है, मैं भी ऋषि अंगिराके पास ही जा रहा हूँ, उनसे युद्ध-विद्या सीखने।"

"किन्तु पाल! तूने पूरबके आर्यजनोंकी बात नहीं बतलाई?"

"पूरबमें आर्यजन वनकी आगकी तरह बढ़ रहे हैं। इस गन्धारसे आगेकी भूमिको हम मद्रोंने लिया है। उससे आगे मल्लोंने अपना जन-पद (जनकी भूमि) बनाया है, इसी तरह, कुरु, पंचाल आदि जनोंने भी बड़े-बड़े प्रदेश अपने हाथोंमें किये हैं।"

"तो वहाँ बहुत भारी संख्यामें आर्य होंगे?"

"बहुत भारी संख्यामें नहीं, जितना ही आगे बढ़ते जायें, उतनी ही असुरों और दूसरोंकी संख्या अधिक मिलती है।"

"दूसरे कौन मित्र?"

"असुर मंगुरके चमड़े या ताँबे जैसे वर्णके होते हैं। पूरबमें एक

और तरहके लोग रहते हैं, जिन्हें कोल कहते हैं, वह बिल्कुल कोयले जैसे काले होते हैं। ये कोल गाँवोंमें भी रहते हैं, और जंगलोंमें मृगोंकी तरह भी। जंगली कोलोंके कितने ही हथियार पत्थरके होते हैं।"

"तो आर्य-जनोंको अनार्यों के साथ बहुत लड़ना पड़ता होगा।"

"डटकर लड़ाई अब बहुत कम करनी होती है। आर्योंके घोड़ोंको देखते ही अनार्य भाग खड़े होते हैं; किन्तु वह रातको हमारी बस्तियोंपर छापा मारते हैं, जिसके लिए हमें अकसर उनके साथ बहुत क्रूर बनना पड़ता है, इससे असुरों (शबरों) कोलोंके गाँवके गाँव खाली हो गये हैं—वह पूरबकी ओर भागते जा रहे हैं।"

"तो तेरे यहाँ पाल! असुरोंके चाल-व्यवहारके पकड़नेका डर नहीं है!"

"मद्र जनमें नहीं, और शायद यही बात मल्लोंकी भी है। आगेकी नहीं कहता। हमारे यहाँ वस्तुतः अनार्य सिर्फ़ जंगलोंमें रह गये हैं।"

दोनों मित्रोंका वार्त्तालाप अँधेरा होने तक चलता रहा; और यदि आवसथ-रक्षिकाने आकर खान-पानके बारेमें न पूछा होता, तो शायद अभी वह ख़तम भी न होता। आवसथ ग्रामकी ओरसे बनाया गया था, जिसमें सभी यात्रियों—इसे कहनेकी आवश्यकता नहीं, कि पीत-केशों—के ठहरनेका प्रबन्ध था, और जिनके पास खाना नहीं होता, उन्हें आवसथकी ओरसे सत्तू, गोमांस-सूप मिलता। सामान या बदलेकी चीज़ दे देनेपर आवसथ-रक्षिका भोजन बना देती। सोम और सुराके लिए यह आवसथ बहुत प्रसिद्ध था। वरुण और पालने आगमें भुने गोमांस और सुरासे अपनी मित्रताको मज़बूत किया।

(२)

ऋषि अंगिरा सिन्धुके पूर्ववाले गंधार जनके ऊँचेसे ऊँचे अधिकारी जनपति तक रह चुके थे। यद्यपि पुष्कलावती (चारसद्दा)से प्रथम पुश्तके बाद असुर लोग हटने लगे थे, और जब दूसरी पीढ़ीमें कुनार तटसे आकर

गन्धार **जनकी** एक शाखाने पश्चिमी गन्धारको पराजित कर लिया, तो मरनेसे बचे हुए असुर बड़ी तेज़ीसे पश्चिमी गन्धारको खाली करने लगे। उससे तीस साल बाद ही सिन्धुके पूरबकी भूमिपर गन्धार और **मद्रजनोंका** हमला हुआ, और वितस्ता (झेलम) और सिन्धुके बीचकी भूमिको गन्धारों, तथा वितस्ता और इरावती (रावी)के बीचवालीको मद्रोंने आपसमें बाँट लिया, जो पीछे क्रमशः पूर्व गन्धार और मद्र जन-पदके नामसे प्रसिद्ध हुए। इस आरंभिक देव(आर्य)-असुर संग्राममें दोनों जातियोंने अमानुषिक क्रूरता दिखलानेमें होड़ लगा रखी थी, जिसका परिणाम यह हुआ कि गन्धारमें बिलकुल ही नहीं और मद्रमें बहुत कम असुर बच रहे। लेकिन समय बीतनेके साथ आगे असुरोंका विरोध कम पड़ने लगा, और पीतकेशोंने भी अपनी युद्ध-क्रूरता कम की। यही नहीं, बल्कि जैसा कि वरुण सौवीरने कहा था, पीतकेशोंपर असुरोंकी बहुतसी बातोंका प्रभाव पड़ने लगा। ऋषि अंगिरा वक्षुतटसे चली आती आर्य-परम्पराके बड़े पंडित ही नहीं थे, बल्कि वह चाहते थे, कि आर्य अपने रक्त तथा दूसरे आचार व्यवहारोंकी शुद्धताको न छोड़ें। इसीलिए पूर्वी गन्धारमें अश्वमांस-भक्षण—जो एक प्रकार छूट गया था—को उन्होंने अश्व-पालनको उत्साहित कर फिरसे स्थापित किया। उनके इस आर्यत्व-प्रेम, उनकी विद्या और युद्ध विद्या-चातुरीकी ख्याति इतनी बढ़ चुकी थी, कि दूरतम आर्यजनपदोंसे भी आर्यकुमार उनके पास शिक्षा ग्रहण करनेके लिए आने लगे। किन्तु, उस वक़्त किसीको क्या पता था, कि आगे चलकर गन्धारपुरमें अंगिराका रोपा यह विद्या-अंकुर तक्षशिलाके रूपमें एक विराट वृक्ष बन जायेगा, जिसकी छाया और मधुर फलसे लाभ उठानेके लिए सैकड़ों योजन दूरसे चलकर आर्यविद्याप्रेमी आयेंगे।

ऋषि अंगिराकी आयु ६५ सालकी थी, उनके श्वेत केश, नाभि तक लटकती श्वेत चमकती दाढ़ी उनके प्रशान्त गम्भीर चेहरेपर बहुत आकर्षक मालूम होते थे। अभी लेखनी, स्याही और भुर्जपत्र इस्तेमाल

करनेमें कई सदियोंकी ज़रूरत थी, उनका सारा अध्यापन मौखिक हुआ करता था, जिसमें पुराने गीतों और कविताओंको विद्यार्थी दुहरा-दुहराकर कंठस्थ करते थे। दूरके विद्यार्थी अपने साथ खाद्यसामग्री नहीं ला सकते थे, इसलिए ऋषि अंगिराको विद्यार्थियोंके भोजन-वस्त्रका प्रबन्ध करना पड़ता था। अंगिराने अपने पैतृक खेतोंके अतिरिक्त विद्यार्थियोंकी सहायतासे जंगल काटकर नये खेत आबाद किये थे, जिनसे साल भरके खानेके लिये गेहूँ पैदा हो जाता था। अभी बाग़-बग़ीचोंका रवाज न था, किन्तु जंगलमें जब फल पकनेका समय आता, तो अपनी शिष्य-मंडलीके साथ वह वहाँ फल जमा करनेके लिए चले जाते। खेत जोतने-बोने-काटने, फूल-फल-काष्ठ जमा करनेके समय ऋषि और उनके विद्यार्थी वक्षु और सुवास्तुके तटोंपर बने गीतोंको बड़े रागसे गाया करते। सारे गन्धारमें सबसे बड़ा **अश्वस्थ (अश्व-पालन स्थान)** ऋषि अंगिराका था। दूर-दूर तक अपने शिष्यों और परिचितोंसे ढुँढ़वाकर उन्होंने उच्च जातिके घोड़े-घोड़ियोंको जमाकर उनके वंशकी वृद्धि की थी। सैंधव (सिन्धु-तटवर्त्ती) घोड़ोंका जो पीछे सर्वत्र भारी नाम हुआ, उसका प्रारम्भ ऋषि अंगिराके **अश्वस्थ**से ही हुआ था। इनके अतिरिक्त ऋषि अंगिराके पास हज़ारों गायें और भेड़ें थीं। उनके शिष्योंको विद्याध्ययन-के साथ-साथ बराबर काम करना पड़ता था, जिसमें ऋषि भी समय-समयपर हाथ बँटाते थे, यह ज़रूरी भी था क्योंकि इस प्रकार शिष्योंको खाने-पहिननेकी कोई तकलीफ़ नहीं होने पाती थी।

तक्षशिलाके पूर्वके सारे पहाड़ सुजल सफल, हरे-भरे थे। ऋषि अंगिराके साथ उस वक्त वरुण और पालकी टोली गोष्ठकी देख-भाल कर रही थी। तम्बुओंके बाहर कुछ दूरपर लाल उजले बछड़े फुदक रहे थे, और ऋषि अपने शिष्योंके साथ बाहर हरी घासपर बैठे हुए थे। ऋषिके बायें हाथमें बारीक ऊनकी पूनी थी, और दाहिना हाथ काठकी बड़ी तकलीको चला रहा था। शिष्योंमें भी कोई तकली चला रहा था,

कोई ऊन निकिया रहा था, कोई हाथों लम्बी पूनी तैयार कर रहा था। आज ऋषि प्राचीन और नवीन, आर्य और अनार्य रीति-रवाजों, शिल्प-व्यवसायोंमें कौन ग्राह्य हैं, कौन त्याज्य हैं, इस बातको समझा रहे थे।

"वत्सो! सभी नवीन त्याज्य है, सभी प्राचीन ग्राह्य है, यह कहना बिल्कुल ग़लत है, और करना तो और भी असम्भव है। वक्षुतटके आर्योंमें जब पहिले-पहिल पत्थरके हथियारोंकी जगह ताँबेका हथियार प्रचरित होने लगा, तो कितनोंने इस नवीन चीज़का विरोध किया था।"

ऋषिके प्रिय शिष्य वरुणने पूछा—"पत्थरके हथियारोंसे कैसे काम चलता होगा?"

"आज वत्स! ताँबेके हथियारोंसे काम चल रहा है, कल इससे भी तीक्ष्ण कोई हथियार निकल आयेगा, फिर लोग सवाल करेंगे—ताँबेके हथियारसे कैसे काम चलता होगा। जो हथियार जिस वक़्त प्राप्य होता है, आदमी उसीसे काम चला लेता है। जब पाषाणके कुल्हाड़ेसे लड़ाइयाँ लड़ी जाती थीं, तो दोनों पक्षके भटोंके पास पाषाणके ही कुल्हाड़े होते थे; जैसे ही एक पक्षके पास ताँबेका कुल्हाड़ा आया, वैसे ही दूसरे पक्षको भी पाषाण छोड़ ताँबेका कुल्हाड़ा हाथमें लेना पड़ा; यदि वह ऐसा न करता तो संसारमें जीनेके लिए उसे स्थान न मिलता। इसीलिए मैंने कहा, सभी नवीन बातोंको त्याज्य कहना ग़लत है। यदि मैं नवीनका विरोधी होता, तो इतने सुन्दर घोड़े, इतनी सुन्दर गायें न पैदा करा सकता। मैंने देखा अच्छे घोड़े-घोड़ियोंके अच्छे बछेड़े होते हैं। मैंने कुछ अच्छे-अच्छे घोड़े-घोड़ियोंको चुना, और आज पैंतीस वर्ष बाद इस वक़्त तुम अंगिराके घोड़ोंकी इस नसलको देख रहे हो।

"असुर खेतोंकी खादका अच्छा प्रबन्ध करते थे। वह पहाड़ी नदियोंसे नहरें निकालकर सिंचाई करते थे। हमने गन्धारमें इन बातोंको स्वीकृत किया। उनके शहर बसानेके तरीक़े, चिकित्साके कितने ही ढंग बहुत

अच्छे थे, हमने उन्हें ले लिया है। आहार, परिधान, जीवन-रक्षाके लिए उपयोगी जितनी भी चीज़ें मिलें, उन्हें स्वीकार करना चाहिए, इसका ख्याल किये बिना कि वह पुरानी हैं या नई, आर्योंसे आई हैं या अनार्योंसे। सुवास्तुमें और उससे पहले आर्य कपासके वस्त्रका नाम भी नहीं जानते थे, किन्तु यहाँ हमलोग उसे पहिनते हैं। गर्मियोंमें वह सुखद होता है।

"लेकिन कितनी ही चीज़ें हैं, जिनको हमें विषवत् त्याज्य समझना चाहिए। असुरोंका शिश्न (लिंग)-पूजा-धर्म हमारे लिए निन्दनीय है। उनका जाति-विभाग हमारे लिये त्याज्य है, क्योंकि उसके कारण सभी आदमी अपने जनकी रक्षाके लिये हथियार नहीं उठा सकते, आपसमें ऊँच-नीचका भाव बढ़ता है। असुरोंके साथ रक्त-मिश्रण नहीं करना चाहिए, क्योंकि यह असुर बननेके लिए दर्वाज़ा खोल देगा, और फिर आर्यों-में भी नाना शिल्पों, नाना व्यवसायोंकी छोटी-बड़ी जातियाँ बन जायेंगी।"

पाल—"रक्त-सम्मिश्रणको तो सभी आर्य बहुत बुरा समझते हैं!"

ऋषि—"हाँ, किन्तु इसके लिए उतना ध्यान देनेको तैयार नहीं हैं। क्या असुर अथवा कोल स्त्रियोंके साथ आर्य समागम नहीं करते?"

वरुण—"सीमान्तपर करते हैं, और असुरपुरोंकी वेश्याओंके पास तो हमारे भट आम तौरसे जाते हैं।"

ऋषि—"इसका परिणाम क्या होगा? वर्णसंकरता बढ़ेगी। असुरोंमें भी पीतकेश बालक-बालिकायें पैदा होंगी, जिन्हें भ्रम या धोखेमें पड़कर आर्य अपने भीतर ले लेंगे, फिर रक्तकी शुद्धता कहाँसे रहेगी? इसलिए रक्त-शुद्धताके वास्ते हमें स्त्री-पुरुष दोनों ओरसे पूरा ध्यान रखना होगा। यही नहीं, हमें आर्य जनपदमें दास-प्रथा नहीं स्वीकार करनी होगी, क्योंकि रक्तकी शुद्धताको नष्ट करनेके लिए इससे खतरनाक कोई चीज़ नहीं। बल्कि, मैं तो कहूँगा ऐसी कोशिश करनी चाहिए, कि आर्य जनपदमें अनार्योंका वास न होने पाये।

"सबसे बड़ा खतरा और सारी बुराइयोंकी जड़ है, असुरोंकी

राज-प्रथा, जिसका ही एक अंग है उनकी पुरोहित-प्रथा। असुर-जनको कोई अधिकार नहीं, असुर-राजा जो कहे उसीपर चलना हरएक असुर अपना धर्म समझता है। असुर-पुरोहित सिखलाता है, कि जनताकी सभी बातोंका ज़िम्मा ऊपर देवताओं और नीचे राजाने ले रखा है, जनको कुछ कहने-करनेका अधिकार नहीं। राजा स्वयं धरतीपर देवता है। मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई, जब सुना कि शिवि-सौवीरोंने इन्द्रके पदको हटा दिया। यद्यपि इन्द्रको आर्योंमें वह स्थान कभी नहीं मिला, जो कि असुर-राजाको प्राप्त था—इन्द्र जनद्वारा चुना एक बड़ा योद्धा मात्र था, वह जनपर शासन करनेका कोई अधिकार नहीं रखता था। तो भी इस पदसे ख़तरा था, और कुछ लोगोंने उसकी आड़में आर्योंमें राजप्रथा क़ायम करनेका प्रयत्न किया भी। आर्य यदि अपने आर्यत्वको क़ायम रखना चाहते हैं, तो उन्हें किसी आदमीको राजा जैसा अधिकार नहीं देना चाहिए। आर्योंमें असुरोंके धर्मके प्रति भारी घृणा है, इसमें शक नहीं; किन्तु, जिस दिन आर्योंमें राजा बनेगा, उसी दिन असुरों जैसा पुरोहित भी आ जायेगा, और फिर आर्यत्वको डूबा ही समझो। जनके परिश्रमपर राजा मौज करेगा, और देवताओंकी सहायता दिलानेके लिए वह पुरोहितको रिश्वत देकर अपनी ओर मिला लेगा, इस प्रकार राजा और पुरोहित मिल जनको अपना दास बना छोड़ेंगे।

"हमें, आर्योंकी पुरानी प्रथाओंको बड़ी दृढ़ताके साथ पकड़े रहना होगा, और जहाँ भी कोई आर्य-जन उससे डिगे, उसे आर्योंकी जमातसे ख़ारिज कर देना होगा।"

(३)

सौवीरके दक्षिणी भाग (कराचीके आसपास)से इधर कितनी ही चिन्ता-जनक ख़बरें वरुणको मिल रही थीं; जिनसे मालूम होता था, कि अन्तिम असुर-दुर्गके पराजयके साथ आर्योंके भीतर भारी कलह उठ खड़ी होना चाहती है। वरुणने अपने गुरुके साथ सौवीरकी समस्यापर

कई बार हर पहलूसे विचार किया था। ऋषि अंगिराका कहना था, कि चाहे यह कलह पहिले सौवीरमें पैदा हुई हो, किन्तु इसके भीतरसे सारे आर्य-जनोंको गुज़रना पड़ेगा। आर्य सदासे व्यक्तिके ऊपर जनके शासनको मानते आये हैं, उधर असुरोंकी निरंकुश राजसत्ताको देखकर कितने ही आर्यनेताओंको अधिकार और भोगका प्रलोभन हो सकता है, इन दोनों मनोवृत्तियोंका संघर्ष ज़रूर होकर रहेगा, और जिस जनपदमें असुरोंकी संख्या जितनी ही अधिक होगी, वहाँ इस संघर्षकी और ज्यादा सम्भावना है; क्योंकि वहाँ पराजित असुर आर्योंकी भीतरी फूटसे फ़ायदा उठाना चाहेंगे।

आठ वर्ष रहनेके बाद सौवीरपुर (रोरुक, रोडी)की खबरोंको और चिन्ताजनक सुन वरुणको गन्धारपुर छोड़ना पड़ा। आवसथके प्रथम साथी पाल माद्रने उसका साथ दिया। गन्धारकी सीमा पारकर वह नमककी पहाड़ियोंवाले सिन्धु जनपदमें प्रविष्ट हुए। नमककी खानोंमें काम करनेवाले अब भी असुर (व्यापारी और श्रमिक) ज्यादा थे, जिसका असर पीतकेशों (आर्यों)पर भी बुरा पड़ा था। उनमें ज्यादा आलस्य था। वह अपने कामको आनार्य कर्मकरोंसे कराना ज्यादा पसन्द करते थे, और समझते थे, कि हमारा काम घोड़ेपर चढ़ना और तलवार चलाना है। अनार्यों के सामने असुर राजाओं जैसी हेकड़ी दिखलानेवाले आर्य राजसत्ता अंकुरित करनेके लिए अच्छे क्षेत्र थे। लेकिन, नमककी पहाड़ियोंको पार करनेपर सौवीरोंका प्रथम-स्थान (मूल-स्थान, मुल्तान) जब आया, तो अवस्था कुछ अच्छी पाई। यहाँके निवासी सारे ही आर्य थे, और उनके लिए यह तारीफ़की बात थी, कि यहाँकी भीषण गर्मी (वरुण और पाल गर्मीकी ऋतु हीमें यात्रा कर रहे थे, यद्यपि सिन्धुमें नावसे चलनेके कारण मार्गका कष्ट कम था)को बर्दाश्त कर भी इस जनपदको आर्य बनाये हुए थे।

सौवीरपुर (रोरुक, रोडी)में गर्मीका क्या पूछना था, उन्हें वह गर्मी ज्यादा परेशान कर रही थी। आर्योंमें अभी लिखनेका संकेत (लिपि)

नहीं प्रचलित हुआ था, इसीलिये जब तब सौवीरके सार्थों द्वारा वरुणने अपने मित्रोंको जो संदेश भेजा था, वह पूरा नहीं पहुँच सकता था। इस वक्त कितनी ही बार उसे असुरोंकी लिपिका ख्याल आया था। सौवीरपुर-में पहुँचनेपर उसे मालूम हो गया, कि मामला बहुत दूर तक बढ़ चुका है। स्वयं सौवीरपुरमें सुमित्रके समर्थक बहुत कम थे, किन्तु दक्षिण सौवीरमें अन्तिम असुर-दुर्गध्वंसक सुमित्रका पक्ष लेनेवाले आर्य ज्यादा थे। इस अन्तिम दुर्गके पतनके समय सेनापति सुमित्रने असुर नागरिकों-पर आवश्यकतासे अधिक दया दिखलाई थी, उस वक्त वरुण इसके लिए सुमित्रका भारी प्रशंसक बन गया था। किन्तु, अब उसे मालूम हो रहा था, कि यह सब सुमित्रकी चाल थी। वह समझता था, इस पराजयके बाद असुर फिर आर्योंके विरुद्ध खड़े नहीं हो सकेंगे, और इस दया-प्रदर्शनसे सागरपारके सार्थवाह असुरोंकी सम्पत्ति और शक्तिका उपयोग हम अपने व्यक्तिगत लाभके लिए कर सकेंगे।

सुमित्र अब भी सेनाको लिए हुए सागरतीरके असुरपुरमें बैठा था, और बनावटी युद्धोंके बहाने वहाँसे लौटनेका नाम नहीं लेता था। वरुण पहिले जनके साधारण नायकोंसे मिला, उनको सुमित्रकी बातें स्पष्ट नहीं मालूम थीं। वह समझते थे, व्यक्तिगत द्वेषके कारण कुछ जननायक सुमित्रका विरोध कर रहे हैं। फिर जब वह उन प्रधान नायकोंसे मिला, जिनपर जनके शासनका भार था, तो उन्होंने सारी बात बतलाई, किन्तु साथ ही यह भी कहा कि सुमित्रकी बुरी नीयत हमारे लिए बिल्कुल साफ़ होनेपर भी जनके साधारण लोगोंके लिए साफ़ नहीं है, क्योंकि इसे वह दूसरे ही अर्थमें लेते हैं।

असुरपुरके विजयमें वरुण सुमित्रका उपनायक था, इसलिए, यद्यपि उस बातको बीते अब नौ साल हो गये थे, तो भी लोगोंमें उसके खड्गकी प्रशंसा बन्द नहीं हुई थी। वरुणने जनको समझानेसे पहिले चाहा कि सुमित्रके बारेमें खुद जाकर पता लगाये। इसी अभिप्रायसे एक दिन

दोनों मित्र दक्षिण सौवीरके लिए नौकापर सवार हुए। उन्होंने गन्धार-व्यापारियों जैसा बाना बनाया। असुरपुरके देखनेसे मालूम होता था, वह सचमुच ही आर्योंका नहीं असुरोंका पुर है। उसकी पण्य-वीथियोंमें बड़े-बड़े असुर-सागर-वणिकोंके महल और देश-विदेशकी पण्य-वस्तुएँ थीं। कितने ही असुर सामन्त-परिवार भी अपने मुहल्लोंमें बसे हुए थे, और उनके आसपास दास-दासी भी पहिले हीकी तरह हाथ-बाँधे खड़े रहते थे। उसके मनमें जिज्ञासा होने लगी कि आखिर विजयी आर्य यहाँपर कहाँ रहते हैं। सुमित्र असुरराजके महलमें रहता था। एक दिन उसने गन्धारवणिककी ओरसे भेंट लेकर पाल माद्रको उसके पास भेजा। पालने लौटकर बतलाया कि पीले केशों और गौर मुखको छोड़ देनेपर सुमित्र बिलकुल असुरराजा बन गया है। उसका निवास किसी आर्य सेनापतिका सीधा-सादा घर नहीं सोने-चाँदीसे चमचमाता असुर-दर्बार है। उसके पार्श्वचर सैनिकोंमें भी वह सादगी नहीं है। सप्ताह बीतते-बीतते मालूम हो गया कि वहाँ आर्योंका पता लगता है असुर-कन्याओंके नृत्यों तथा सुरा-गोष्ठियों में। कितनी ही आर्य-स्त्रियाँ अपने पतियोंके पास जाना चाहती हैं, किन्तु बहाना करके उन्हें आनेसे मना कर दिया जाता है। सुमित्रने बहुत बार सन्देश भेजनेपर भी अपनी स्त्रीको आनेसे रोक दिया। वह स्वयं असुर-पुरोहितकी कन्याके प्रेममें फँसा हुआ था। और वही नहीं नगरकी कितनी ही असुर-सुन्दरियाँ उसकी अन्तःपुर-चारिणी थीं। अपने आर्य-सैनिकोंके लिए भी उसने वैसी ही छूट दे रखी थी। दूसरे आर्य जब आने लगते, तो दासोंसे दंगा करवा देता, जिससे कुछ खून-खराबी होती, और आर्य आनेसे रुक जाते।

वरुणने सारी बातोंका पूरा पता लगा अपने मित्रके साथ चुपचाप सौवीरपुरके लिए प्रस्थान किया।

सौवीरपुरमें उसने जन-नायकोंको बतलाया, कि सुमित्र अपनी शक्तिको इतना दृढ़ कर चुका है, कि अब हमें असुरपुरके आर्यभटों ही नहीं, असुरोंकी

शक्तिसे भी मुक़ाबिला करना पड़ेगा, इसके लिए तैयारी करके हमें असली बात लोगोंको बतलानी होगी ।

वरुण नृत्य-अखाड़ेका दुलारा था, और वर्षोंसे पतियोंका मुख न देख पानेवाली आर्य-स्त्रियाँ जब इस सुन्दर नर्तकके मुँहसे एकान्तमें अपने पतियों-की कर्तूतोंको सुनतीं, तो उन्हें पूरा विश्वास हो जाता । फिर एक कानसे दूसरे कानमें चलकर बात बड़े वेगसे फैलने लगती । वरुण कवि भी था, उसने पति-वियोगिनी आर्य-महिलाओंकी ओरसे असुर-कन्याओंको अभि-शाप, तथा सुमित्रके विलासपूर्ण स्वार्थमय जीवनके कितने ही सुन्दर गीत बनाये, जो दावानलकी भाँति सारे सौवीरके आर्य-ग्रामोंमें गाये जाने लगे। आख़िरमें उसने आर्य-पत्नियोंको थोड़ा-थोड़ा करके उनके पतियोंके पास भेजा, जिन्हें तिरस्कार कर लौटानेका परिणाम और भी बुरा साबित हुआ । सुमित्रको लौटनेके लिए कहनेपर भी जब वह आनेके लिए नहीं राज़ी हुआ, तो उसके स्थानपर वरुणको सेनानायक नियुक्त कर भारी आर्य-सेनाके साथ असुरपुरके लिए रवाना किया । वरुणको सामने आया समझ—सुमित्रके सैनिकोंमें फूट पड़ गई, और कितनोंने अपने अनार्य-व्यवहारके लिए सचमुच पश्चात्ताप किया । बाक़ी बची हुई सेनाकी मददसे लड़नेमें सुमित्रको सफलताकी आशा न थी, इसीलिए अन्तमें उसने वरुणको नगर समर्पित कर सौवीरपुर लौटनेकी इच्छा प्रकट की । इस प्रकार आर्य-जन पहिली भीषण परीक्षामें सफल हुआ । वरुणने असुरोंको नहीं छेड़ा, क्योंकि अब वह अस्त्रसे नहीं लड़ रहे थे । हाँ, आर्योंको असुरोंके प्रभावसे अलग रखनेके लिए उसने एक अलग आर्यपुर बसाया और ऋषि अंगिराकी बतलाई कितनी ही बातोंको काममें लाना शुरू किया ।*

---

*आजसे १५२ पीढ़ी पहिलेकी आर्य-कहानी ।

७—सुदास्

देश—कुरु-पंचाल (पश्चिमी युक्त प्रान्त)। जाति—वैदिक आर्य।
काल—१५०० ई० पू०

(१)

वसन्त समाप्त हो रहा था चनाब (चन्द्रभागा)की कछारमें दूर तक पके गेहुओंके सुनहले पौधे खड़े हवाके झोंकेसे लहरा रहे थे, जिनमें जहाँ-तहाँ स्त्री-पुरुष गीत गाते खेत काटनेमें लगे हुए थे। कटे खेतोंमें उगी हरी घास चरनेके लिए बहुत-सी बछेड़ोंवाली घोड़ियाँ छोड़ी हुई थीं। धूपमें एक पान्थ आगेकी ओर अपने भूरे केशोंके जूटको दिखलाते हुए सिरमें फटे कपड़ोंकी उष्णीष (पगड़ी) बाँधे, शरीरपर एक पुरानी चादर लपेटे, घुटनों तक की धोती (अन्तरवासक) पहने, हाथमें लाठी लिए मन्द गतिसे चला जा रहा था। प्यासके मारे उसका तालू सूख रहा था। पथिकने हिम्मत बाँधी थी अगले गाँवमें पहुँचने की; किन्तु मार्गकी बग़लमें एक कच्चे कुएँ तथा छोटे-से शमी वृक्षको देखकर उसकी हिम्मत टूट गई। उसने पहले अपने उष्णीष-वस्त्र, फिर नंगे होकर धोती, तथा एक बार दोनोंको जोड़कर छोरको पानीमें डुबानेकी कोशिश की; किन्तु वह सफल नहीं हुआ। अन्तमें निराश हो पासके वृक्षके सहारे बैठ रहा। उसे जान पड़ने लगा कि फिर इस जगहसे उठना नहीं होगा। उसी वक्त एक कन्धेपर मशक, दूसरे कन्धेपर रस्सी तथा हाथमें चमड़ेकी बाल्टी लिए एक कुमारी उधर आती दिखाई पड़ी। पान्थकी छूटी आशा लौटने लगी। तरुणीने कुएँपर आकर मशकको रख दिया, और जिस वक्त वह बाल्टीको कुएँमें डालने जा रही थी, उसी वक्त उसकी नज़र यात्रीके

चेहरेपर पड़ी। उसका चेहरा मुरझाया हुआ था, ओठ फटे, गाल पिचके, आँखें कोटरलीन, पैर नंगे धूल-भरे थे। किन्तु इन सबके पीछेसे उसकी तरुणाईकी झलक भी आ रही थी।

पथिकने स्वर्ण-केशोंपर कुमारियोंकी संजा, शरीरपर उत्तरासंग (चादर), कंचुक और अन्तरवासक (लुंगी) के साधारण, किन्तु विनीत वेशको देखा। धूपमें चलनेके कारण तरुणका मुख अधिक लाल हो गया था, और ललाट तथा ऊपरी ओठपर कितने ही श्रमविन्दु झलक रहे थे। कुमारीने थोड़ी देर उस अपरिचित पुरुषकी ओर निहारकर माद्रियोंकी सहज मुस्कराहटको अपने सुन्दर ओठोंपर ला तरुणकी आधी प्यासको बुझाते हुए मधुर स्वरमें कहा—"मैं समझती हूँ, तू प्यासा है भ्रातर!"

पथिकने साहसपूर्वक अपने गिरते कलेजेको दृढ़ करनेमें असफल होते हुए कहा—"हाँ, मैं बहुत प्यासा हूँ।"

"तो मैं पानी लाती हूँ।"

तरुणीने बाल्टीमें पानी भरा। तब तक तरुण भी उसके पास आकर खड़ा हो गया था। उसका दीर्घ गात्र और मोटी हड्डियाँ बतला रही थीं कि अभी उनके भीतरसे असाधारण पौरुष लुप्त नहीं हुआ है। मशकसे लटकते चमड़ेके गिलासको पथिकके हाथमें दे तरुणीने उसमें बाल्टीसे पानी भर दिया। पथिकने बड़ी घूँट भरी और गलेसे उतारनेके बाद नीचे मुँह कर बैठ गया। फिर एक साँसमें गिलासके पानीको पी गया। गिलास उसके हाथसे छूट गया और अपनेको सँभालते-सँभालते भी वह पीछेकी ओर गिर पड़ा। तरुणी ज़रा देरके लिए अवाक् रह गई। फिर देखा, तरुणकी आँखें उलट गई हैं, वह बेहोश हो गया है। तरुणीने झटसे अपने सिरसे बँधे रूमालको पानीमें डुबा तरुणके मुख और ललाटको पोंछना शुरू किया। कुछ क्षणमें उसने आँखें खोलीं, फिर तरुण कुछ लज्जित-सा हो क्षीण स्वरमें बोला—"मुझे अफ़सोस है कुमारि! मैंने तुझे कष्ट दिया।"

"मुझे कष्ट नहीं है; पर मैं तो डर गई थी, ऐसा क्यों हुआ?"

"कोई बात नहीं, खाली पेट था, प्यासमें बहुत पानी पी गया। किन्तु अब कोई हर्ज नहीं।"

"खाली पेट?"—कह पथिकको बोलनेका कुछ भी अवसर दिये बिना तरुणी वहाँसे दौड़ गई और थोड़ी देरमें एक कटोरेमें दही, सत्तू और मधु लेकर आ उपस्थित हुई। तरुणके चेहरेपर संकोच और लज्जाकी रेखा फिरी देख कुमारीने कहा—"तू संकोच न कर पथिक! मेरा भी एक भाई कई साल हुए घरसे निकल गया है। यह थोड़ी-सी तेरी सहायता करते वक्त मुझे अपना भाई याद आ रहा है।"

पथिकने कटोरेको ले लिया। तरुणीने बाल्टीसे जल दिया। तरुण सत्तू घोलकर धीरे-धीरे पी गया। पीनेके बाद उसके चेहरेकी आधी मुरझाहट जाती रही और अपने संयत मुखकी मूक मुद्रासे कृतज्ञता प्रकट करते हुए वह कुछ बोलनेकी सोच ही रहा था, कि तरुणीने मानो उसके भावोंको समझकर कहा—"संकोच करनेकी ज़रूरत नहीं भ्रातर! तू दूरसे आया मालूम होता है?"

"हाँ, बहुत दूर पूरबसे—पंचालसे।"

"कहाँ जायगा?"

"यहाँ, वहाँ, कहीं भी।"

"तो भी।"

"अभी तो कोई काम चाहता हूँ, जिसमें अपने तन और कपड़ोंकी व्यवस्था कर सकूँ।"

"खेतोंमें काम करेगा?"

"क्यों नहीं? मैं खेत काट-बो-जोत सकता हूँ। खलिहानका काम कर सकता हूँ। घोड़े-गायकी चरवाही कर सकता हूँ। मेरे शरीरमें बल है; अभी सूख गया है; किन्तु थोड़े ही समयमें मैं भारी बलके कामको भी करने लगूँगा। कुमारि! मैंने कभी अपने किसी मालिकको नाराज़ नहीं किया।"

"तो मैं समझती हूँ, पिता तुझे कामपर रख लेंगे। पानी भरती हूँ, मेरे साथ चलना।"

तरुणने मशक ले चलनेकी बहुत कोशिश की; किन्तु तरुणी राज़ी न हुई। खेतमें एक लाल तम्बू लगा था, जिसके बाहर चालीसके क़रीब स्त्री-पुरुष बैठे थे। तरुण पहचान नहीं सकता था कि इनमें कौन तरुणीका पिता है। सबके एक-से सादे वस्त्र, एक-से पीले केश, गोरा शरीर, अदीन मुख। तरुणीने मशक और बाल्टीको उतार बीचमें बिछे चमड़ेपर रखा, फिर साठ वर्षके एक बूढ़े किन्तु स्वस्थ बलिष्ठ आदमीके पास जाकर कहा—

"यह परदेसी तरुण काम करना चाहता है, पितर!"

"खेतोंमें दुहितर!"

"हाँ, कहीं भी।"

"तो यहाँ काम करे। वेतन जो यहाँ दूसरे पुरुषोंको मिलेगा, वही इसे भी मिल जायगा।"

तरुण सुन रहा था। वृद्धने यही बात उसके सामने दुहराई, जिसे उसने स्वीकार किया। फिर वृद्धने कहा—"आ तरुण! तू भी आ जा। हम सब मध्याह्न-भोजन कर रहे हैं।"

"अभी मैंने सत्तू पिया है, तेरी दुहिताने दिया था, आर्य!"

"आर्य-वार्य नहीं, मैं जेता ऋभु-पुत्र माद्र हूँ। तू जो कुछ भी खा-पी सके, खा-पी! अपाला! मेरय (कच्ची शराब) देना, अश्विनी-क्षीरका। धूपमें अच्छा होता है तरुण! बात शामको करूँगा, इस वक्त नाम-भर जानना चाहता हूँ।"

"सुदास् पांचाल।"

"सुदास् नहीं, सुदाः—सुन्दर दान देनेवाला। तुम पूरबवाले भाषा भी ठीकसे बोलना नहीं जानते! पंचाल जनपदसे! अच्छा, अपाले! यह पूरबवाले लज्जालु होते हैं। इसे खिलाना, जिसमें शाम तक कुछ काम करने लायक़ हो जाय।"

सुदास्ने अपालाके आग्रहपर मेरयको दो-तीन प्याले पिए और एकाध टुकड़ा रोटीका गलेसे नीचे उतारा। दो दिनसे भूखे रहनेके कारण उसकी भूख मर-सी गई थी।

जैसे-जैसे सूर्यकी चण्डता मन्द होती जा रही थी, वैसे ही वैसे सुदास् अपने भीतर नई स्फूर्ति आती देख रहा था, और शामको काम छोड़नेसे पहले गेहूँ काटनेमें वह किसीसे कम न था।

रातको लोग वहाँसे दूर खलिहान-घरोंके पास गए। जेताकी खेती बड़ी थी, यह खलिहानमें रातको जमा हुए दो सौसे ऊपर कमकर बतला रहे थे। खलिहानके घरोंमें खाना बनानेवाले अपने काममें लगे हुए थे। एक भारी बैल मारा गया था, जिसकी हड्डियों, अँतड़ियों और कुछ मांसको बड़े-बड़े देगोंमें तीन घंटा दिन रहते ही चढ़ा दिया गया था। बाक़ी आध-आध सेरके टुकड़े नमकके साथ उबाले जा रहे थे। घरोंके बाहर एक भारी चिकना मैदान खलिहानके लिए था, जिसकी एक ओर एक पक्का कुआँ तथा पानीसे भरा कुण्ड था। स्त्री-पुरुषोंने कुण्डपर जाकर हाथ-मुँह धोए। जिन्हें शरीर धोनेकी इच्छा थी, उन्होंने शरीर भी धोया। अँधेरा होतेके साथ पाँतीसे बैठे स्त्री-पुरुषोंके सामने रोटी, मांस-खंड और सुरा-भाँड़ रखे गए। सुदास्की लज्जाका खयाल कर अपाला—पानी लानेवाली—ने उसे अपने पास बैठाया, यद्यपि इसमें उसकी लज्जाका उतना खयाल न था; जितना कि परदेश गए भाईकी स्मृतिका। भोजन-पानके बाद गान-नृत्य शुरू हुआ जिसमें यद्यपि सुदास् आज सम्मिलित नहीं हो सका; किन्तु आगे चलकर वह सर्वप्रिय गायक और नर्त्तक बना।

खेतकी कटाई, ढोलाई और दँवाई डेढ़ महीने तक चलती रही; किन्तु दो सप्ताह बीतते-बीतते ही सुदास् पहचाना नहीं जा सकता था। उसकी बड़ी-बड़ी नीली आँखें उभर आई थीं। उसके गालोंपर स्वाभाविक लाली दौड़ चुकी थी। उसके शरीरकी नसें व हड्डियाँ पेशियोंसे ढँक गई थीं। जेताने सप्ताह बाद ही उसे नए कपड़े दे दिए थे।

खलिहान क़रीब-क़रीब उठ चुका था। छः-सात आदमियों—जिनमें बाप-बेटी और सुदास् भी थे—को छोड़ बाक़ी लोग अपने अनाजको लेकर चले गए थे। इन लोगोंके पास खेत थोड़े थे, इसलिए अपने खेतोंको काटकर वह जेताके खेतोंमें काम करने आए थे। इन डेढ़ महीनोंमें जेता और उसकी लड़की अपने तरुण कमकरके सरल, हँसमुख स्वभावसे बहुत परिचित हो चुके थे। एक दिन सान्ध्यसुराके बाद जेताने सुदास्से पूरबवालोंकी बात छेड़ दी। अपाला भी पास बैठी सुन रही थी। जेताने कहा—"सदाः! पूरबमें मैं बहुत दूर तक तो नहीं गया हूँ; किन्तु पंचालपुर (अहिच्छत्र)को मैंने देखा है। मैं अपने घोड़ेको लेकर जाड़ोंमें गया था।"

"पंचाल (रुहेलखंड) कैसा लगा आर्यवृद्ध?"

"जनपदमें कोई दोष नहीं। वह मद्र-जैसा ही स्वस्थ-समृद्ध है, बल्कि उसके खेत यहाँसे भी अधिक उपजाऊ मालूम हुए; किन्तु..."

"किन्तु क्या?"

"क्षमा करना सुदाः! वहाँ मानव नहीं बसते।"

"मानव नहीं बसते? तो क्या देव या दानव बसते हैं?"

"मैं इतना ही कहूँगा कि वहाँ मानव नहीं बसते।"

"मैं नाराज़ नहीं होऊँगा आर्यवृद्ध! तुझे क्यों ऐसा ख्याल हुआ?"

"सुदाः! तूने देखा मेरे खेतोंमें काम करनेवाले दो सौ नर-नारियोंको?"

"हाँ।"

"क्या मेरे खेतमें काम करने, मेरे हाथसे वेतन पानेके कारण उन्हें ज़रा भी मेरे सामने दैन्य प्रकट करते देखा?"

"नहीं, बल्कि मालूम होता था, सभी तेरे परिवारके आदमी हैं।"

"हाँ, इनको मानव कहते हैं। ये मेरे परिवारके हैं। सभी माद्र और माद्रियाँ हैं। पूरबमें ऐसी बातको देखनेको जी तरसता है। वहाँ दास या स्वामी मिलते हैं, मानव नहीं मिलते, बन्धु नहीं मिलते।"

"सत्य कहा, आर्यवृद्ध ! मानवका मूल्य मैंने शतद्रु (सतलज) पारकर—खासकर इस मद्रभूमिमें आकर देखा। मानवमें रहना आनन्द, अभिमान और भाग्यकी बात है।"

"मुझे ख़ुशी है पुत्र ! तूने बुरा नहीं माना। अपनी-अपनी जन-भूमिका सबको प्रेम होता है।"

"किन्तु प्रेमका अर्थ-दोषोंसे आँख मींचना नहीं होना चाहिए।"

"मैंने कुरु-पंचालकी यात्रा करते वक्त बहुत बार सोचा, यहाँसे भी पण्डितोंसे चर्चा की। मुझे इस दोषके आनेका कारण तो मालूम हुआ; किन्तु प्रतिकार नहीं।"

"क्या कारण आर्यवृद्ध ?"

"यद्यपि पंचाल जन-पद पंचालोंका कहा जाता है; किन्तु उसके निवासियोंमें आधे भी पंचाल-जन नहीं हैं।"

"हाँ, आगन्तुक बहुत हैं।"

"आगन्तुक नहीं पुत्र ! मूलनिवासी बहुत हैं। वहाँकी शिल्पी जातियाँ, वहाँके व्यापारी, वहाँके दास पंचाल-जनोंके उस भूमिपर पग रखनेसे बहुत पहिलेसे मौजूद थे। उनका रंग देखा है न ?"

"हाँ, पंचाल-जनोंसे बिल्कुल भिन्न काला, साँवला या ताम्र-वर्ण।"

"और पंचाल-जनोंका वर्ण मद्रों-जैसा गौर होता है ?"

"बहुत-कुछ।"

"हाँ बहुत-कुछ ही, क्योंकि दूसरे वर्णवालोंके साथ मिश्रण होनेसे वर्ण (रंग)में विकार होता ही है। मैं समझता हूँ, यदि मद्रकी भाँति वहाँ भी आर्य—पिंगल-केश—ही बसते, तो शायद मानव वहाँ भी दिखलाई पड़ते। आर्य और आर्य-भिन्नोंके ऊँच-नीच भावमें तो भिन्न वर्ण होना कारण हो सकता है।"

"और शायद आर्यवृद्ध ? तुझको मालूम होगा कि इन आर्य-भिन्नों—

जिन्हें पूर्वज असुर कहते थे—में पहले हीसे ऊँच-नीच और दास-स्वामी होते आते थे।"

"हाँ, किन्तु पंचाल तो आर्य-जन थे एक खून एक शरीरसे उत्पन्न। फिर वहाँ उनमें भी ऊँच-नीचका भाव वैसा ही पाया जाता है। पंचाल-राज दिवोदासने मेरे कुछ घोड़े खरीदे थे, इसके लिए एक दिन मैं उसके सामने गया था। उसका पुष्ट गौर तरुण शरीर सुन्दर था; किन्तु उसके सिरपर लाल-पीली भारी-भरकम डलिया (मुकुट), फटे कानोंमें बड़े-बड़े छल्ले, हाथों और गलेमें भी क्या-क्या तमाशे थे। यह सब देखकर मुझे उसपर दया आने लगी। जान पड़ा, चन्द्रमाको राहु ग्रस रहा है। उसके साथ उसकी स्त्री भी थी, जो रूपमें मद्र-सुन्दरियोंसे कम न थी; किन्तु इन लाल-पीले बोझोंसे बेचारी झुकी जा रही थी।"

सुदासका हृदय वेगसे चलने लगा था। उसने अपने भावोंसे चेहरे-को न प्रभावित होने देनेके लिए पूरा प्रयत्न किया; किन्तु असफल होते देख बातको बदलनेकी इच्छासे कहा—"पंचाल-राजने घोड़ोंको लिया न आर्यवृद्ध ?"

"लिया और अच्छा दाम भी दिया। याद नहीं, कितने हिरण्य; किन्तु वहाँ यह देखकर ज्वर आ रहा था कि पंचाल-जन भी उसके सामने घुटने टेककर वन्दना करते, गिड़गिड़ाते हैं। मर जानेपर भी कोई मद्र ऐसा नहीं कर सकता, पुत्र !"

"तुझे तो ऐसा नहीं करना पड़ा आर्यवृद्ध ?"

"मैं तो लड़ पड़ता, यदि मुझे ऐसा करनेको कहा जाता। पूरबवाले राजा हमें वैसा करनेको नहीं कहते। यह सनातनसे चला आया है।"

"क्यों ?"

"क्यों पूछता है पुत्र ! इसकी बड़ी कहानी है। जब पश्चिमसे आगे बढ़ते-बढ़ते पंचाल-जन यमुना, गंगा, हिमवान्के बीच (उत्तर-दक्षिणके पंचालों)की इस भूमिमें गए, तो वह बिल्कुल मद्रोंकी ही भाँति एक परि-

वार—एक बिरादरी—की तरह रहते थे। असुरोंसे संसर्ग बढ़ा, उनकी देखादेखी इन आर्य-पंचालोंमेंसे कुछ सर्दार, राजा और पुरोहित बननेके लिए लालायित होने लगे।"

"लालायित क्यों होने लगे?"

"लोभके लिए, बिना परिश्रमके दूसरेकी कमाई खानेके लिए। इन्हीं राजाओं और पुरोहितोंने पंचालोंमें भेद-भाव खड़ा किया, उन्हें मानव नहीं रहने दिया।"—कहते-कहते जेता किसी कामसे उठ गए।

(२)

मद्रपुर (शाकला या स्यालकोट)में जेताके कुलमें रहते सुदास्को चार वर्ष बीत गए थे। जेताकी स्त्री मर चुकी थी। उसकी विवाहिता बहनों और बेटियोंमेंसे दो-एक बराबर उसके घरमें रहती थीं; किन्तु घरके स्थायी निवासी थे जेता, सुदास् और अपाला। अपाला अब बीस सालकी हो रही थी। उनके व्यवहारसे पता लगता था कि अपाला और सुदास्का आपसमें प्रेम है। अपाला मद्रपुरकी सुन्दरियोंमें गिनी जाती थी और उसके लिए वहाँ सुन्दर तरुणोंकी कमी न थी। उसी तरह सुदास्-जैसे सुन्दर तरुणके लिए भी वहाँ सुन्दरियोंकी कमी न थीं; किन्तु लोगोंने सदा सुदास्को अपाला और अपालाको सुदास्के ही साथ नाचते देखा। जेताको भी इसका पता था, और वह इसे पसन्द करता, यदि सुदास् मद्रपुरमें रहनेके लिए तैयार हो जाता। किन्तु सुदास् कभी-कभी अपने माता-पिताके लिए उत्कंठित हो जाता था। जेता जानता था कि सुदास् अपने माँ-बापका अकेला पुत्र है।

एक दिन अपाला और सुदास् प्रेमियोंकी नदी चन्द्रभागा (चनाब)में नहाने गए। नहाते वक्त कितनी ही बार सुदास्ने अपालाके नग्न अरुण शरीरको देखा; किन्तु आज पचासों नग्न सुन्दरियोंके बीच उसके सौन्दर्य-की तुलना कर उसे पता लगा, जैसे आज ही उसने अपालाके लावण्यकी

पूरी परख पाई है। रास्तेमें लौटते वक्त उसे मौन देखकर अपालाने कहा—"सुदास्! आज तू बोलता नहीं, थक गया है क्या? चन्द्रभागा-की धारको दो बार पार करना कम मेहनतकी बात नहीं है।"

"तू भी तो अपाले! आर-पार तैर गई, और मैं तो दो क्या, समय हो तो दस बार चन्द्रभागाको पार कर सकता हूँ।"

"बाहर निकलनेपर मैंने देखा, तेरे वक्ष कितने फूले हुए थे? तेरी बाँहों और जाँघोंकी पेशियाँ तो दूनी मोटी हो गई थीं।"

"तैरना भारी व्यायाम है। यह शरीरको बलिष्ठ और सुन्दर बनाता है। किन्तु तेरे सौन्दर्यमें क्या वृद्धि होगी, अपाले! तू तो अभी भी तीनों लोकोंकी अनुपम सुन्दरी है।"

"अपनी आँखोंसे कहता है न सुदास्?"

"किन्तु मोहसे नहीं अपाले! तू यह जानती है।"

"हाँ, तूने चुम्बन तक कभी मुझसे नहीं माँगा, यद्यपि मद्र-तरुणियाँ उसके वितरणमें बहुत उदार होती हैं।"

"बिना माँगे भी तो तूने उसे देनेकी उदारता की है।"

"किन्तु उस वक्त, जब कि मैं तुझमें भैया श्वेतश्रवाको देखा करती थी।"

"और अब क्या न देगी?"

"माँगनेपर चुम्बन क्यों न दूँगी?"

"और माँगनेपर तू मेरी—"

"यह मत कह, सुदास्! इन्कार करके मुझे दुःख होगा।"

"किन्तु उस दुःखको न आने देना तेरे हाथमें है?"

"मेरे नहीं, तेरे हाथमें है।"

"कैसे?"

"क्या तू सदाके लिए मेरे पिताके घरमें रहनेके लिए तैयार है?"

सुदास्को कितनी ही बार उन कोमल ओठोंसे इन कठोर अक्षरोंके

निकलनेका डर था, आज अशनि(बिजली)की भाँति एकाएक वह उसके कानोंको छेदकर हृदयपर पड़े। कुछ देरके लिए उसका चित्त उद्विग्न हो उठा; किन्तु वह नहीं चाहता था, कि अपाला उसके नग्न हृदयको देखे। क्षण-भरके बाद उसने स्वरपर संयम करके कहा—"मैं तुझे कितना प्रेम करता हूँ अपाले?"

"यह मैं जानती हूँ, और मेरी भी बात तुझे मालूम है। मैं सदाके लिए तेरी बनना चाहती हूँ। पिता भी इससे प्रसन्न होंगे; किन्तु फिर तुझे पंचालसे मुँह मोड़ना होगा।"

"पंचालसे मुँह मोड़ना कठिन नहीं है; किन्तु वहाँ मेरे वृद्ध माता-पिता हैं। मुझे छोड़ माँका दूसरा पुत्र नहीं है। माँने वचन लिया है कि मरनेके पहले मैं उसे एक बार ज़रूर देखूँ।"

"मैं माँके वचनको तुड़वाना नहीं चाहती। मैं तुझे सदा प्रेम करूँगी, सुदास्! तेरे चले जानेपर भी। मुझे मालूम है, मैं तेरे लिए रोया करूँगी, जीवनके अन्त तक। किन्तु हमें दो वचनोंको नहीं तोड़ना चाहिए—तुझे अपनी माँके और मुझे अपने हृदयके वचनको।"

"तेरे हृदयका वचन क्या है, अपाले?"

"कि मानव-भूमिसे अमानव-भूमिमें न जाऊँगी।"

"अमानव-भूमि, पंचाल-जनपद?"

"हाँ, जहाँ मानवका मूल्य नहीं, स्त्रीको स्वातन्त्र्य नहीं।"

"मैं तुझसे सहमत हूँ।"

"और इसके लिए मैं तुझे चुम्बन देती हूँ।"—कह अश्रु-सिक्त कपोलोंको अपालाने सुदास्के ओठोंपर कर दिया। सुदास्के चुम्बन कर लेनेपर उसने फिर कहा—"तू जा, एक बार माँका दर्शन कर आ; मैं तेरे लिए मद्रपुरमें प्रतीक्षा करूँगी।"

अपालाके भोले-भाले शब्दोंको सुनकर सुदास्को अपने प्रति ऐसी अपार घृणा हो गई, जिसे वह फिर कभी अपने दिलसे नहीं निकाल

सका। माँ-बापको देखकर लौट आनेकी बात कहकर ही सुदास् जेतासे घर जानेके लिए आज्ञा माँग सकता था। जेता और अपाला दोनोंने इसे स्वीकार किया।

प्रस्थानके एक दिन पहले अपालाने अधिकसे अधिक समय सुदास-के साथ बिताया। दोनोंके उत्पल-जैसे नीले नेत्र निरन्तर अश्रुपूर्ण रहते। उन्होंने इसे छिपानेकी भी कोशिश न की। दोनों घंटों अधरोंको चूमते, आत्म-विस्मृत हो आलिंगन करते अथवा नीरव अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे एक-दूसरेको देखते रहते।

चलते वक्त अपालाने फिर आलिंगनपूर्वक कहा—"सुदास्! मैं तेरे लिए मद्रपुरमें प्रतीक्षा करूँगी।"

अपालाके ये शब्द सारे जीवनके लिए सुदास्के कलेजेमें गड़ गए।

(३)

सुदास्का अपनी माँसे भारी स्नेह था। सुदास्का पिता दिवोदास् प्रतापी राजा था, जिसकी प्रशंसामें वशिष्ट, विश्वामित्र और भरद्वाज* जैसे महान् ऋषियोंने मन्त्रपर मन्त्र बनाए; किन्तु ऋग्वेदमें जमाकर देने मात्रसे उनके भीतर भरी चापलूसी छिपाई नहीं जा सकती। सुदास्का स्नेह केवल अपनी मातासे था। वह जानता था कि दिवोदास्की उस-जैसी कितनी ही पत्नियाँ, कितनी ही दासियाँ हैं, वह उसके ज्येष्ठ पुत्र—पंचाल-सिंहासनके उत्तराधिकारी—की माँ है, इसके लिए वह थोड़ा-सा ख्याल भले ही करे; किन्तु दिवोदास् कितनी ही तरुण सुन्दरियोंसे भरे रनिवासमें उस बुढ़ियाके दन्तहीन मुखके साथ प्रेम क्यों करने लगा! माँका एक पुत्र होनेपर भी वह पिताका एकमात्र पुत्र न था। उसके न रहनेपर प्रतर्दन दिवोदास्का उत्तराधिकारी होता।

वर्षों बीत जानेपर माँ पुत्रसे निराश हो चुकी थी, और रोते-रोते

---

*ऋग्वेद ६।२६।२॥, २५

उसकी आँखोंकी ज्योति मन्द पड़ गई थी। सुदास् एक दिन चुपचाप बिना किसीको खबर दिए, पितासे बिना मिले, माँके सामने जाकर खड़ा हो गया। निष्प्रभ आँखोंसे उसे अपनी ओर विलोकते देख सुदासने कहा—"माँ! मैं हूँ तेरा सुदास्।"

उसकी आँखें प्रभायुक्त हो गईं, फिर भी मंचसे बिना हिले ही उसने कहा—"यदि तू सचमुच मेरा सुदास् है, तो विलीन होनेके लिए वहाँ क्यों खड़ा है? क्यों नहीं मेरे कण्ठसे आ लगता? क्यों नहीं अपने सिरको मेरी गोदमें रखता?"

सुदास्ने माँकी गोदमें अपने सिरको रख दिया। माँने हाथ लगाकर देखा, वह हवामें विलीन होनेवाला नहीं, बल्कि ठोस सिर था। उसने उसके मुँह, गाल, ललाट और केशोंको बार-बार चूम आँसुओंसे सींचा, अनेक बार कण्ठ लगाया। माँकी अश्रुधाराको बन्द न होते देख सुदास्ने कहा—"माँ! मैं तेरे पास आ गया हूँ अब क्यों रोती है?"

"आज हीके दिन भर वत्स! आज ही घड़ी भर पुत्र! यह अन्तिम आँसू हैं, सुदास्! मेरी आँखोंके तारे!"

अन्तःपुरसे सूचना राजा तक पहुँची। वह दौड़ा हुआ आया और सुदास्को आलिंगन कर आनन्दाश्रु बहाने लगा।

दिन बीतते-बीतते महीने हो गए, फिर महीने दो सालमें परिणत हो गए। माँ-बापके सामने सुदास् प्रसन्न-मुख बननेकी कोशिश करता; किन्तु एकान्त मिलते ही उसके कानोंमें वह वज्रच्छेदिका ध्वनि आती—"मैं तेरे लिए मद्रपुरमें प्रतीक्षा करूँगी" और उसके सामने वही हिलते लाल अधर आ जाते और तब तक ठहरते, जब तक कि आँखोंके आँसू उसे ओझल नहीं कर देते। सुदास्के सामने दो स्नेह थे—एक ओर अपालाका वह अकृत्रिम प्रेम और दूसरी ओर वृद्धा माँका वात्सल्यपूर्ण हृदय। माँके असहाय हृदयको विदीर्ण करना उसे अत्यन्त नीच स्वार्थान्धता जान पड़ी, इसीलिए उसने माँके जीवन भर पंचाल न छोड़नेका

निश्चय किया। लेकिन राजपुत्रके आमोद-प्रमोदपूर्ण जीवनको स्वीकार करना, उसे अपनी सामर्थ्यसे बाहरकी बात मालूम होती थी। पिताके प्रति वह सदा सम्मान दिखलाता था और उसकी आज्ञाके पालनमें तत्परता भी।

वृद्ध दिवोदास्ने एक दिन पुत्रसे कहा—"वत्स सुदास्! मैं जीवनके अन्तिम तटपर पहुँच गया हूँ, मेरे लिए पंचालका भार उठाना अब सम्भव नहीं है।"

"तो आर्य! क्यों न यह भार पंचालोंको ही दे दिया जाय?"

"पंचालोंको! पुत्र, तेरा अभिप्राय मैंने नहीं समझा।"

"आखिर आर्य! यह राज्य पंचालोंका है। हमारे पूर्वज पंचाल-जनके साधारण पुरुष थे। उस समय पंचालका कोई राजा न था। पंचाल-जन ही सारा शासन चलाता था, जैसे आज भी मल्लमें, मद्रमें, गन्धारमें वहाँके जन चलाते हैं। फिर हमारे दादा वध्यूश्वके किसी पूर्वजको लोभ—भोगका लोभ, दूसरोंके परिश्रमकी कमाईके अपहरणका लोभ—हुआ। वह जन-पति या सेनापतिके पदपर रहा होगा और जनके लिए किसी युद्धको जीतकर जनके प्रेम, विश्वास और सम्पत्तिको प्राप्त किया होगा, जिसके बलपर उसने जनसे विश्वासघात किया। जनका राज्य हटाकर उसने असुरोंकी भाँति राजाका राज्य स्थापित किया, असुरोंकी भाँति वशिष्ठ, विश्वामित्रके किसी विस्मृत पूर्वजको पुरोहित-पदवी रिश्वतमें दी, जिसने जनकी आँखोंमें धूल झोंककर कहना शुरू किया—इन्द्र, अग्नि, सोम, वरुण, विश्वदेवने इस राजाको तुम्हारे ऊपर शासन करनेके लिए भेजा है, इसकी आज्ञा मानो, इसे बलि-शुल्क-कर दो। यह सरासर बेई-मानी थी, चोरी थी पिता! जिससे अधिकार मिला, उसके नाम तकको भूल जाना, उसके लिए कृतज्ञताके एक शब्द को भी जीभपर न लाना!"

"नहीं पुत्र! विश्व (=सारे) जनको हम अपना राजकृत् (=राजा बनानेवाला) स्वीकार करते हैं। अभिषेककी प्रतिज्ञाके वक्त वही हमें राज-चिह्न पलाश-दंड देते हैं।"

"अभिषेक-प्रतिज्ञा अब समज्या (=तमाशा) जैसी है। किन्तु क्या सचमुच जन राजाके स्वामी हैं? नहीं, यह तो स्पष्ट हो जाता है, जब कि हम देखते हैं—राजा अपने जनके बीच बराबरीमें बैठ नहीं सकता, उनसे सहभोज, सहयोग नहीं रखता। क्या मद्र या गन्धारका जन-पति ऐसा कर सकता है?"

"यहाँ यदि हम वैसा करें, तो किसी दिन भी शत्रु मार देगा, या विष दे देगा।"

"यह भय भी चोर-अपहारकको ही हो सकता है। जन-पति चोर नहीं होते, अपहारक नहीं होते। वह वस्तुतः अपनेको जन-पुत्र समझते हैं, वैसा ही व्यवहार भी करते हैं, इसलिए उनको डर नहीं। राजा चोर हैं, जन-अधिकारके अपहारक हैं, इसलिए उनको हर वक्त डर बना रहता है। राजाओंका रनिवास, राजाओंका सोना-रूपा-रत्न, राजाओंकी दास-दासियाँ—राजाओंका सारा भोग—अपना कमाया नहीं होता, यह सब अपहरणसे आया है।"

"पुत्र! इसके लिए तू मुझे दोषी ठहराता है?"

"बिल्कुल नहीं, आर्य! तेरी जगहपर आनेपर मुझे भी इच्छा या अनिच्छासे वही करना होगा। मैं अपने पिता दिवोदास्को इसके लिए दोषी नहीं ठहराता।"

"तू राज्यको जनके पास लौटानेकी बात कहता है, क्या यह सम्भव है? तुझे समझना चाहिये पुत्र! जनके भोगका अपहारक सिर्फ़ पंचाल-राज दिवोदास् ही नहीं है। वह अनेक अपहारक-चोर सामन्तोंमेंसे एक है। वह बड़ा हो सकता है, किन्तु उनके सम्मिलित बलके सामने पंगु है। अनेक प्रदेश-पति, उग्र-राजपुत्र (राजवंशिक), सेनापतिके अतिरिक्त सबसे भारी सामन्त तो पुरोहित है।"

"हाँ, मैं जानता हूँ पुरोहितकी शक्तिको। राजाके छोटे पुत्र राजपद तो पा नहीं सकते, इसीलिए वह पुरोहित (ब्राह्मण) बन जाते हैं। मैं

समझता हूँ, मेरा छोटा भाई प्रतर्दन भी वैसा ही करेगा। अभी राजा और पुरोहितमें सिंहासन-वेदी और यज्ञ-वेदीका ही अन्तर है; किन्तु क्या जाने, आगे चलकर क्षत्रिय, ब्राह्मण दो अलग वल दो अलग श्रेणियाँ बन जायँ। मन्द्रगन्धारमें खड्ग और स्रुवा दोनोंको एक ही हाथ सँभाल सकता है; किन्तु पंचालपुरमें स्रुवा विश्वामित्रके हाथमें होगा और खड्ग वध्र्यश्व-पुत्र दिवोदासके हाथमें। जनका बँटवारा तो अभी यहाँ तीन भागोंमें हो चुका है—सामन्तके नाते, जन-भोग-अपहारक होनेके नाते, आवाह-विवाह-सम्बंधके नाते, माता-पिताके नाते भी चाहे राजा और पुरोहित एक हों; किन्तु दोनोंके नाम—क्षत्रिय, ब्राह्मण—अभी ही अलग-अलग गिने जाने लगे हैं, और दोनोंके स्वार्थोंमें टक्कर भी लगने लगी है, इसीलिए ब्रह्म-क्षत्र-बलमें मैत्री स्थापित करनेकी भारी कोशिश की जा रही है। एक कुलके इन दोनों वर्गोंके बाहर जनकी भारी संख्या है, यह तीसरा वर्ग है। आज इस महाजनका नाम बदलकर उसे विश् (विट्) या प्रजा रख दिया गया है। कैसी विडम्बना है, जो जन (पिता) था, उसे ही आज प्रजा (पुत्र) कहा जाता है। आर्य! यह क्या सरासर वंचना नहीं है?"

"और पुत्र! तूने एक भारी संख्याको नहीं गिना।"

"हाँ, आर्य-जनसे भिन्न प्रजा—शिल्पी, व्यापारी, दास-दासी। शायद इन्हींके कारण जनको अधिकारसे वंचित करनेमें सामन्त सफल हुए। अपने शासक जनको अपने ही समान किसीके द्वारा परतन्त्र हुआ देख आर्य-भिन्न प्रजाको सन्तोष हुआ। इसे ही राजाने अपना न्याय कहा।"

"शायद, पुत्र! तू ग़लती नहीं कर रहा है; किन्तु यह तो बता, राज्य किसको लौटाया जाय? चोरों-अपहारकों—सामन्तों और व्यापारियोंको भी ले ले—को छोड़ देनेपर आर्य-जन और अनार्य-प्रजा सबसे भारी संख्यामें है, क्या वे राज्य सँभाल सकते हैं? और इधर धर्म-सामन्त और राज-सामन्तके गिद्ध मेरे छोड़ते ही प्रजाको नोच खानेके लिए तैयार

हैं। कुरु-पंचालमें जनके हाथसे राज्य छिने छै ही सात पीढ़ियाँ बीती हैं; इसलिए हम जनके दिनोंको भूले नहीं हैं। उस वक्त इस भूमिको दिवोदासका राज्य नहीं, पंचालाः (सारे पंचालवाले) कहते और समझते थे; किन्तु आज तो मुझे वहाँ लौटनेका रास्ता नहीं दीखता।"

"हाँ, रास्तेमें ये वशिष्ठ, विश्वामित्र-जैसे ग्राह जो बैठे हुए हैं!"

"इसे हमारी परवशता समझ, हम कालको पलट नहीं सकते, और कल कहाँ पहुँचेंगे, इसका भी हमें पता नहीं। मुझे इससे सन्तोष है कि मुझे सुदास्-जैसा पुत्र मिला है। मैं भी किसी वक्त तरुण था। अभी उस वक्त तक वशिष्ठ और विश्वामित्रकी कविताओं, उनके प्रजाकी मतिको हरनेवाले धर्मों-कर्मोंका मायाजाल इतना नहीं फैला था। मैं सोचता था, राजाकी इस दस्युवृत्तिको कम करूँ, किन्तु वैसा करनेमें अपनेको असमर्थ पाया। उस वक्त मेरे लिए तेरी माँ ही सब कुछ थी; किन्तु पीछे जब मैं भग्न-मनोरथ निराश हो गया, तो इन पुरोहितोंने अपनी कविताओंके ही नहीं, कन्याओंके फन्देमें मुझे फँसाया; इन्द्राणीकी दासियों-की उपमा दे सैकड़ों दासियोंसे रनिवास भर दिया। दिवोदास्के पतनसे शिक्षा ले तू सजग रहना, प्रयत्न करना, शायद कोई रास्ता निकल आये और दस्युवृत्ति हट जाय। किन्तु सुदास्-जैसे सहृदय दस्युको हटाकर प्रतर्दन-जैसे हृदयहीन वंचक दस्युके हाथमें पंचालको दे देना अच्छा न होगा। मैं पितृलोकसे देखता रहूँगा तेरे प्रयत्नको और बड़े सन्तोषके साथ, पुत्र!"

(४)

दिवोदास् देवलोकको चला गया। सुदास् अब पंचालकोंका राजा हुआ। ऋषि-मंडली अब उसके गिर्द मँडराती थी। सुदास्को अब पता लगा कि इन्द्र, वरुण, अग्नि, सोमके नामसे इन सफ़ेद दाढ़ियोंने लोगोंको कितना अन्धा बनाया है। उनके कठोर फन्देमें सुदास् अपनेको जकड़ा

पाता था। जिनके लिए वह कुछ करना चाहता था, वह उसके भावको उलटा समझने के लिए, उसे अधार्मिक राजा घोषित करनेके लिए तैयार थे। सुदास्को वह दिन याद आ रहे थे, जब कि वह नंगे पैर फटे कपड़ोंके साथ अज्ञात देशोंमें घूमता था। उस वक्त वह अधिक मुक्त था। सुदास्की हार्दिक व्यथाको समझनेवाला, उससे सहानुभूति रखनेवाला वहाँ एक भी आदमी न था। पुरोहित—ऋषि—उसके पास अपनी तरुण पोतियों, पर-पोतियोंको भेजते थे और राजन्य—प्रादेशिक सामन्त—अपनी कुमारियोंको; किन्तु सुदास् अपनेको आग लगे घरमें बैठा पाता था। वह चन्द्रभागाके तीर प्रतीक्षा करती उन नीली आँखोंको भूल नहीं सकता था।

सुदास्ने सारे जन—आर्य-अनार्य दोनों—की सेवा करनेकी ठानी थी; किन्तु इसके लिए देवताओंकी दलदलमें आपाद-निमग्न जनको पहले यह विश्वास दिलाना था कि सुदास्पर देवताओंकी कृपा है। और कृपा है, इसका सबूत इसके सिवाय कोई न था, कि ऋषि—ब्राह्मण—उसकी प्रशंसा करें। अन्तमें ऋषियोंकी प्रशंसा पानेके लिए उसे हिरण्य-सुवर्ण, पशु-धान्य, दास-दासी दान देनेके सिवाय कोई रास्ता नहीं सूझा। पीवर गोवत्सके मांस और मधुर सोमरससे तोंद फुलाए इन ऋषियोंकी रायमें वह वस्तुतः अब सुदास् (बहुत दान देनेवाला) हुआ। इन चाटुकार ऋषियोंकी बनाई सुदास्की 'दान-स्तुतियों'में कितनी ही अब भी ऋग्वेदमें मौजूद हैं; किन्तु यह किसको पता है कि सुदास् इन दान-स्तुतियोंको सुनकर उनके बनानेवाले कवियोंको कितनी घृणाकी दृष्टिसे देखता था।

सुदास्का यशोगान सारे उत्तर-पंचाल (रुहेलखंड) में ही नहीं, दूर-दूर तक होने लगा था। अपने भोग-शून्य जीवनसे वह जो कुछ हो सकता था, विश्व-जनका हित करता था।

पिताके कितने ही साल बाद सुदास्की माँ मरी। वर्षोंसे जो घाव साधारण तौरसे बहते रहनेके कारण अभ्यस्त-सा हो गया था, अब जान

पड़ा, उसने भारी विस्फोटका रूप धारण कर लिया है। उसे मालूम होता था, अपाला हर क्षण उसके सामने खड़ी है और अश्रुपूर्ण नेत्रों, कम्पित अधरोंसे कह रही है—"मैं तेरे लिए मद्रपुरमें प्रतीक्षा करूँगी।" उस व्यथाकी आगको सुदास् आँसुओंसे बुझा नहीं सकता था।

हिमवान्‌में शिकार करनेका बहाना कर सुदास् एक दिन पंचालपुर (अहिच्छत्र)से निकल पड़ा।

मद्रपुर (स्यालकोट)में वह घर मौजूद था, जहाँ उसे अपालाका प्रेम प्राप्त हुआ था; किन्तु न अब वहाँ जेता था, न अपनी प्रिया अपाला। दोनों मर चुके थे, अपाला एक ही साल पहले। उस घरमें अपालाका लुप्त-पुनः प्राप्त भाई और उसका परिवार रहता था। सुदास्‌को साहस नहीं हुआ कि उस घरसे और स्नेह बढ़ाए। अपालाकी एक सखीसे वह मिला। उसने अपालाके उन रंगीन नए वस्त्रों - अन्तरवासक, उत्तरीय (चादर) कंचुक और उष्णीष—को सामने रख आँखोंमें आँसू भरकर कहा—"मेरी सखीने इन वस्त्रोंको अन्तिम समयमें पहना था और उसके ओठोंपर अन्तिम शब्द थे: "मैंने सुदास्‌को वचन दिया है, बहन, कि 'मैं तेरे लिए मद्रपुरमें प्रतीक्षा करूँगी'।"

सुदास्‌ने उन कपड़ोंको उठाकर अपनी छाती और आँखोंसे लगाया। उनसे अपालाके शरीरकी सुगन्धि आ रही थी।*

---

*यह आजसे १४४ पीढ़ी पहलेके आर्य-जनकी कहानी है। इसी समय पुरातनतम ऋषि वशिष्ठ, विश्वामित्र, भरद्वाज ऋग्वेदके मन्त्रोंकी रचना कर रहे थे, इसी समय आर्य-पुरोहितोंकी सहायतासे कुरु-पंचालके आर्य-सामन्तोंने जनताके अधिकारपर अन्तिम और सबसे ज़बर्दस्त प्रहार किया।

८—प्रवाहण

स्थान—पंचाल (युक्त-प्रांत) । काल—७०० ई० पू०

"एक ओर हरा-हरा वन, उसमें फले करौंदोंका मादक गन्ध पक्षियोंका मधुर कूजन; दूसरी ओर बहती गंगाकी निर्मल धारा, उसकी कछारमें चरती हमारी हज़ारों कपिला-श्यामा गाएँ, जिनके बीच हुँकरते विशाल बलिष्ठ वृषभ—कभी इन दृश्योंसे भी आँखोंको तृप्त करना चाहिए, प्रवाहण ! तू तो सदा कभी उद्‌गीथ (साम)के गानेमें लगा रहता है और कभी वशिष्ठ तथा विश्वामित्रके मन्त्रोंकी आवृत्तिमें ।"

"लोपा, तेरी आँखें वह दृश्य देखती हैं और मैं तेरी आँखोंको देखकर तृप्त हो जाता हूँ ।"

"हम्म्, तू बात बनानेमें भी चतुर है, यद्यपि जिस वक्त तुझे उन पुराने गानोंको श्वान-स्वरमें अपने सहपाठियोंके साथ दोहराते देखती हूँ तो समझती हूँ कि मेरा प्रवाहण ज़िन्दगी भर स्तनपायी बच्चा ही रहेगा ।"

"सचमुच, प्रवाहणके बारेमें तेरी यही सम्मति है, लोपा ?"

"सम्मति कुछ भी हो; किन्तु उसके साथ एक पक्की सम्मति है कि प्रवाहण सदाके लिए मेरा है ।"

"इसी आशा और विश्वाससे, लोपा, मुझे श्रम और विद्या अर्जन करनेमें शक्ति मिलती है । मैं अपने मनपर ज़बर्दस्त संयम करनेमें अभ्यस्त हूँ, नहीं तो कितनी ही बार मेरा मन इन पुरानी गाथाओं, पुराने मन्त्रों और पुराने उद्‌गीथोंको रटनेसे भाग निकलना चाहता है । जिस वक्त परिश्रमसे वह थक जाता है और सब-कुछ छोड़ बैठना चाहता है, उस वक्त मुझे और कोई दवा नहीं सूझती, सिवा इसके कि लोपाके साथ बितानेके लिए कुछ क्षण मिलें ।"

"और मैं उसके लिए सदा तैयार रहती हूँ।"

लोपाकी पिंगल आँखें कहीं दूर देख रही थीं। उसके पिंगल कोमल केशोंको प्रातःसमीर कम्पित कर रहा था। जान पड़ता था, लोपा वहाँ नहीं है। प्रवाहणने लोपाके केशोंको अँगुलियोंसे स्पर्श करते हुए कहा—"लोपा, तेरे सामने मैं अपनेको खर्व समझता हूँ।"

"खर्व! नहीं, मेरे प्रवाहण"—से अपने कपोलसे लगाते हुए लोपाने कहा—"मैं तुझपर अभिमान करती हूँ। मुझे वह दिन याद है, जब मैंने बुआके साथ आए आठ वर्षके उस शिशुको अपने शिशुतर नेत्रोंसे देखा था। मैं उस वक्त तीन या चार वर्षकी थी; किन्तु मेरी स्मृति उस बाल-चित्रको अंकित करनेमें ग़लती नहीं कर रही। मुझे वह पीत कुंचित केश, वह शुक-सी नासा, वह पतले लाल अधर, वह चमकीली नीली बड़ी-बड़ी आँखें, वह तप्त सुवर्ण गात्र याद है, और यह भी याद है, माँने मुझसे कहा—पुत्री लोपा, यह तेरा भाई है। मैं लजा गई थी; किन्तु माँने तेरे मुँहको चूमकर कहा—पुत्र प्रवाहण, यह तेरी मातुल-पुत्री लोपा लजाती है, इसकी लाज हटा।"

"और मैं तेरे पास गया। तूने मामीके सुगन्धित तरुण केशोंके पीछे मुँह छिपा लिया।"

"किन्तु छिपाते वक्त मैंने आँखोंके लिए रास्ता खोल रखा था। मैं देख रही थी, तू क्या करता है। सिर्फ़ माँकी गोद, दासियों या दासियोंके बच्चोंके सिवा कोई न था। पिताका आचार्य-कुल अभी जन्मा न था। मैं इस घरमें अपने को अकेली समझती थी, इसलिए तुझे देखकर मुझे मन ही मन आनन्द हुआ।"

"खेलनेके लिए। और तभी तू मुझसे छिप गई थी। मैंने तेरे नंगे श्वेत शरीर और गोल-गोल चेहरेको देखा। मेरे शिशु-नेत्रोंको वह अच्छा मालूम हुआ। मैंने पास जाकर तेरे कन्धेपर हाथ रखा। तुझे ख्याल

है, माँ और मामीने क्या किया ? दोनों मुस्कराईं और बोलीं—ब्रह्मा हमारी साध पूरी करे। मुझे उस वक्त साधका अर्थ नहीं मालूम हुआ।"

"मुझे याद नहीं, प्रवाहण ! मेरे लिए इतना ही बहुत है कि मैंने तेरे कोमल हाथका स्पर्श अपने कन्धेपर अनुभव किया।"

"और तू संकोचके मारे गोल-मटोल हो गई।"

"तूने मेरे हाथको अपने हाथोंमें लिया; किन्तु तेरे ओठ सिले-से रहे, तब माँने क्या कहा ?"

"मामीकी एक-एक बात मुझे याद है। मामीको क्या भूल सकता हूँ ? माँ मुझे गार्ग्य मामाके पास छोड़कर घर लौट गई; किन्तु मामीके प्रेमने मुझे माँको भुला दिया। मामीको मैं कैसे भूल सकता हूँ ?" प्रवाहणके नेत्रोंमें आँसू भर आए। उसने लोपाके ओठोंको चूमकर कहा—"मामीका मुँह ऐसा ही था, लोपा ! हम दोनों साथ सोए रहते। तेरी तो नहीं, मेरी आँखें कितनी ही बार खुली रहतीं; किन्तु जब मैं मामीको आते देखता, तो आँखोंको बन्द कर लेता। फिर मन्द निःश्वासके साथ उनके ओठोंके स्पर्शको अपने गालोंपर पाता। मैं आँखें खोल देता। मामी बोलतीं—वत्स, जागो ! फिर वह तेरे मुँहको चूमतीं; किन्तु तू बेसुध सोती रहती ?"

लोपाकी आँखोंमें भी आँसू थे। उसने उदास होकर कहा—"माँको मैं इतना कम देख सकी !"

"हाँ, तो उस समय मुझे तेरे पास मूक खड़ा देख मामीने कहा—यह तेरी बहन है, वत्स ! इसके ओठोंको चूम और कह कि आ, घोड़ा-घोड़ा खेलें।"

"हाँ, तो तूने मेरे ओठोंको चूमा और फिर घोड़ा-घोड़ा खेलनेके लिए कहा। मैंने माँके केशोंसे अपने मुँहको बाहर किया। तू वहाँ घोड़ा बन गया। मैं तेरी पीठपर चढ़ गई।"

"और मैं उसी वक्त तुझे बाहर ले गया।"

"मैं कितनी धृष्ट थी !"

"तू सदा निडर थी, लोपा ! और मेरे लिए तो तू सब कुछ थी।

मामाके डरसे मैं अपना पाठ याद करनेमें लगा रहता और जब थक जाता, तो तेरे पास आ जाता।"

"और तेरे ही लिए मैं भी तेरे पास बैठने लगी।"

"और मैं समझता हूँ, लोपा! यदि तू मुझसे आधा भी परिश्रम करती, तो मामाके अन्तेवासियोंमें सबसे आगे बढ़ जाती।"

"लेकिन तुझसे नहीं" लोपाने प्रवाहणकी आँखोंको एक बार खूब ग़ौरसे देखकर कहा—"मैं तुझसे आगे बढ़ना नहीं चाहती।"

"किन्तु मुझे प्रसन्नता होती।"

"क्योंकि हम दोनोंमें अलग अपनापन नहीं है।"

"लोपा, तूने मेरे मनमें उत्साह ही नहीं, शरीरमें बल भी दिया। मैं रातको कितना कम सोता था! फिर स्वयं रटने और दूसरोंको रटानेमें खाना-पीना तक भूल जाता था। तू मुझे स्वाध्याय-गृहके अँधेरेसे निकालकर ज़बर्दस्ती कभी बन कभी उद्यान और कभी गंगाकी धारामें ले जाती। मुझे ये चीज़ें अच्छी लगती हैं, लोपा! किन्तु साथ ही मैं चाहता हूँ तीनों वेदों और ब्राह्मणोंकी सारी विद्याओंको शीघ्र-से-शीघ्र समाप्त कर डालूँ।"

"किन्तु अब तो तू समाप्तिपर पहुँच चुका है। पिता कहते हैं कि प्रवाहण मेरे समान है।"

"यह मैं भी समझता हूँ। ब्राह्मणोंकी विद्या पढ़नेको अब बहुत कम रह गई है; किन्तु विद्या ब्राह्मणों ही तक समाप्त नहीं हो जाती।"

"यही मैं तुझसे कहनेवाली थी! किन्तु क्या अभी यह तेरा पलाश-दण्ड और रूखाकेश चलता ही रहेगा!

"नहीं इसकी चिन्ता मत कर, लोपा! पलाशदण्ड अब छूटनेवाला है। और सोलह सालके इन रूखे केशोंमें तू सुगन्धित तेल डालनेको स्वतन्त्र होगी।"

"प्रवाहण, मेरी समझमें यह नहीं आता कि रूखे केशोंके लिए इतना ज़ोर क्यों! तूने तो मेरे इन ओठोंका चूमना कभी छोड़ा नहीं।"

"क्योंकि वह बचपनसे लगी आदत थी।"

"तो क्या दूसरे आचार्य-कुलोंके अन्तेवासी इन कठोर व्रतोंका पालन करते हैं?"

"मजबूरी होनेपर, नहीं तो, लोपा, यह सब मानप्रतिष्ठाके लिए किया जाता है! लोग इसे ब्राह्मण-कुमारोंकी कठिन तपस्या समझते हैं।"

"और फिर कुरुराज पिताको गाँव, हिरण्य-सुवर्ण, दास-दासी और बड़वा (घोड़ी)-रथ देते हैं। मेरे घरमें पहले हीसे दासियाँ काफ़ी थीं। अब जो हालमें कुरुराजने तीन और भेजी हैं, उनके लिए यहाँ काम ही नहीं है।"

"बेच दे, लोपा! तरुणी हैं, एक-एकके तीस-तीस निष्क (अशर्फ़ियाँ) मिल जायँगे।"

"अफ़सोस! हम ब्राह्मण हैं, हम दूसरोंसे ज्यादा पठित और ज्ञानी भी होते हैं, क्योंकि हमें उसके लिए सुभीता है। किन्तु जब मैं इन दासोंके जीवनको देखती हूँ, तो मुझे ब्रह्मा, इन्द्र, वरुण सारे अपने देवताओं, वशिष्ठ, भरद्वाज, भृगु, अंगिरा सारे ऋषियों और अपने पिता-जैसे आजके सारे श्रोत्रिय ब्राह्मण महाशालों (महाधनियों)से घृणा हो जाती है। सभी जगह व्यापार, सौदा, लाभ, लोभ आदि दिखलाई पड़ते हैं। उस दिन काली दासीके पतिको पिताने कोसलके उस बनिएके हाथ पचास निष्कमें बेच डाला। काली मेरे पास रोती-गिड़गिड़ाती रही। मैंने पितासे बहुत कहा; किन्तु उन्होंने कहा—सारे दासोंको घरमें रख छोड़नेसे जगह नहीं रहेगी, और यदि रख ही छोड़ा जाय, तो वह धन काहेका? विदाईके दिनकी पहली रात दोनों कितना रोते रहे! और उनकी वह छोटी दो वर्षकी बच्ची—जिसका चेहरा, सभी कहते हैं, पितासे मिलता है—सबेरेके वक्त उठकर कितना चिल्ला रही थी! लेकिन कालीका पति बेच दिया गया। जैसे वह आदमी नहीं, पशु था; ब्रह्माने गोया उसे और उसकी सैकड़ों पीढ़ियोंको इसीलिए बनाया है। यह मैं नहीं मान सकती, प्रवाहण! तेरे जितना मैंने तीनों वेदोंको याद नहीं किया है; किन्तु उनको समझते

हुए सुना है। वहाँ सिर्फ़ आँखोंको न दिखलाई देनेवाली वस्तुओं, लोकों और शक्तियोंका प्रलोभन या भय-मात्र दिखलाया गया है।"

प्रवाहणने रोपाके आरक्त कपोलोंको अपनी आँखोंमें लगाकर कहा—"हमारा प्रेम मतभेद रखने हीके लिए हुआ है।"

"और मतभेद हमारे प्रेमको और पुष्ट करता है।"

"ठीक कहा, लोपा! यदि इन्हीं बातोंको कोई दूसरा कहता, तो मैं कितना गरम हो जाता; किन्तु यहाँ जब तेरे इन अधरोंसे अपने सारे देवताओं, ऋषियों और आचार्योंके ऊपर प्रखर बाण छोड़े जाते देखता हूँ, तो बार-बार इन्हें चूमनेकी इच्छा होती है। क्यों?"

"क्योंकि हमारे अपने भीतर भी दो तरहके विचारोंके द्वन्द्व अक्सर चलते रहते हैं, और हम उनके प्रति सहिष्णुता रखते हैं, इसीलिए कि वह हमारे अभिन्न अंग है।"

"तू भी मेरा अभिन्न अंग है, लोपा!"

(२)

"तूने शिविके इन दुशालोंको कभी नहीं ओढ़ा और काशीके चन्दन तथा सागरके मोतियोंसे अपनेको कभी नहीं विभूषित किया। प्रिये, इनसे इतनी उदासीनता क्यों?"

"क्या मैं इनमें ज्यादा सुन्दर लगूँगी?"

"मेरे लिए तू सदा सुन्दर है।"

"फिर इन बोझोंको लादकर शरीरको सासत देनेसे लाभ क्या? सच कहती हूँ, प्रिय! मुझे बड़ा बुरा लगता है, जब तू उस भारी बोझको अपने सरपर मुकुटके नामसे उठाता है।"

"किन्तु दूसरी स्त्रियाँ तो वस्त्र-आभूषणके लिए मार करती हैं।"

"मैं वैसी स्त्री नहीं हूँ।"

"तू पंचाल-राजके हृदयपर शासन करनेवाली स्त्री है।"

"प्रवाहणकी स्त्री हूँ, पंचालोंकी रानी नहीं।"

"हाँ, प्रिये! हमने कब इस दिनकी कल्पना की थी। मामाने हमसे बिल्कुल छिपा रखा था कि मैं पंचाल-राजका पुत्र हूँ।"

"उस वक्त पिता और क्या करते? पंचाल-राजकी सैकड़ों रानियोंमें एक मेरी बुआ भी थीं, और पंचाल-राजके दस पुत्र तुझसे बड़े थे, इसलिए कौन आशा रख सकता था कि तू एक दिन पंचालोंके राज-सिंहासनका अधिकारी होगा?"

"अच्छा, किन्तु तुझे यह राज-भवन क्यों नहीं पसन्द आता लोपा?"

"क्योंकि मैं गार्ग्य ब्राह्मण महाशालके प्रासादसे ही तंग आ गई थी। हमारे लिए वह प्रासाद था; किन्तु वहाँके दास-दासियोंके लिए? और यह राज-प्रासाद तो उस महाशालके प्रासादसे हज़ारगुना बढ़-चढ़कर है। यहाँ मुझे और तुझे छोड़कर सारे दास-दासी हैं। दो अ-दासोंके कारण दासोंसे भरा यह भवन अ-दास-भवन नहीं हो सकता। किन्तु मुझे आश्चर्य होता है, प्रवाहण, तेरा हृदय कितना कठोर है!"

"तभी तो वह कठोर वाग्बाणोंको सह सकता है।"

"नहीं, मानवको ऐसा नहीं होना चाहिए।"

"मैंने मानव बननेकी नहीं, योग्य बननेकी कोशिश की, प्रिये! यद्यपि उस योग्यता-अर्जनके समय मुझे कभी यह ख्याल न आया था कि एक दिन मुझे इस राज-भवनमें आना होगा।"

"तू पछताता तो नहीं, प्रवाहण! मेरे साथ प्रेम करके?"

"मैंने तेरे प्रेमको मातृ-क्षीरकी तरह अप्रयास पाया और वह अपनेपनका अंग बन गया। मैं संसारी पुरुष हूँ, लोपा! किन्तु मैं तेरे प्रेमके मूल्यको समझता हूँ। मनका प्रवाह सदा एक-सा नहीं रहता। जब कभी मनमें अवसाद आता है, तो मेरे लिए जीवन दुर्भर हो जाता है। उस वक्त तेरा प्रेम और तेरे सुविचार मुझे हस्तावलम्ब देते हैं।"

"किन्तु मैं जितना अवलम्ब देना चाहती हूँ, उतना नहीं दे सकती, प्रवाहण ! इसका मुझे अफ़सोस है।"

"क्योंकि मैं राज्य करनेके लिए पैदा किया गया हूँ।"

"लेकिन कभी तू महाब्राह्मण बननेकी धुनमें था।"

"उस वक़्त मुझे पता न था कि मैं पंचालपुर (कन्नौज)के राजभवन का अधिकारी हूँ।"

"किन्तु राज-काजसे बाहर जो तू हाथ डाल रहा है, इसकी क्या आवश्यकता ?"

"अर्थात् ब्रह्मासे आगे ब्रह्म तककी उड़ान ? किन्तु लोपा, यह राज-काजसे अलग चीज़ नहीं है। राज्यको अवलम्ब देने हीके लिए हमारे पूर्वज राजाओंने वशिष्ठ और विश्वामित्रको उतना सम्मानित किया था। वह ऋषि, इन्द्र, अग्नि और वरुणके नामपर लोगोंको राजाकी आज्ञा माननेके लिए प्रेरित करते थे। उस समयके राजा जनतामें विश्वास-सम्पादनके लिए इन देवताओंके नामपर बड़े-बड़े खर्चीले यज्ञ करते थे। आज भी हम यज्ञ करते हैं और ब्राह्मणोंको दान-दक्षिणा देते हैं। यह इसलिए कि जनता देवताओंकी दिव्य शक्तिपर विश्वास करे और यह भी समझे कि हम जो यह गन्धशालीका भात, गो-वत्सका मधुर मांस-सूप, सूक्ष्म वस्त्र और मणि-मुक्तामय आभूषणका उपयोग करते हैं, वह सब देवताओंकी कृपासे है।"

"तो यह पुराने देवता काफ़ी थे, अब इस नए ब्रह्मकी क्या आवश्यकता थी ?"

"पीढ़ियोंसे किसीने इन्द्र, वरुण, ब्रह्माको नहीं देखा। अब कितनोंके मनमें सन्देह होने लगा है।"

"तो ब्रह्ममें क्या सन्देह न होगा ?"

"ब्रह्मका स्वरूप मैंने ऐसा बतलाया है, कि कोई उसके देखनेकी माँग नहीं पेश करेगा। जो आकाशकी भाँति देखने-सुननेका विषय नहीं;

जो यहाँ-वहाँ सर्वत्र है, उसके देखनेका सवाल कैसे उठ सकता है? सवाल तो उन साकार देवताओंके बारेमें उठता था।"

"तू जो आकाश-आकाश कहकर साधारण नहीं, बल्कि उद्दालक आरुणि-जैसे ब्राह्मणोंको भी भरमा रहा है, क्या यह प्रजाको भ्रममें रखने हीके लिए?"

"लोपा! तू मुझे जानती है, तुझसे मैं क्या छिपा सकता हूँ? इस राज-भोगको हाथमें रखनेके लिए यह ज़रूरी है, कि सन्देह पैदा करने-वालोंकी बुद्धिको कुंठित कर दिया जाय, क्योंकि हमारे वास्ते आज सबसे भयं-कर शत्रु हैं देवताओं और उनकी यज्ञ-पूजाके प्रति सन्देह पैदा करनेवाले।"

"किन्तु तू ब्रह्मकी सत्ता और उसके दर्शनकी बात भी तो करता है?"

"सत्ता है, तो दर्शन भी होना चाहिए। हाँ, इन्द्रियोंसे नहीं, क्योंकि इन्द्रियोंसे दर्शन होनेकी बात कहनेपर सन्देहवादी फिर उसे दिखलानेके लिए कहेंगे। इसलिये मैं कहता हूँ कि उसके दर्शनके लिए दूसरी ही सूक्ष्म इन्द्रिय है, और उस इन्द्रियको पैदा करनेके लिए मैं ऐसे-ऐसे साधन बतलाता हूँ कि लोग छप्पन पीढ़ी तक भटकते रहें और विश्वास भी न खो सकें। मैंने पुरोहितोंके स्थूल हथियार को बेकार समझकर इस सूक्ष्म हथियारको निकाला है। तूने शबरोंके पास पत्थर और ताँबेके हथियार देखे हैं, लोपा?"

"हाँ, जब मैं तेरे साथ दक्षिणके जंगलोंमें गई थी।"

"हाँ, यमुनाके उस पार। शबरोंके वह पत्थर और ताँबेके हथियार क्या हमारे कृष्ण-लौह (असली लोहे)के इन हथियारोंका मुक़ाबला कर सकते हैं?"

"नहीं।"

"इसी तरह वशिष्ठ और विश्वामित्रके ये पुराने देवता और यज्ञ शबरों-जितनी बुद्धि रखनेवालोंको ही सन्तुष्ट कर सकते हैं, और समझ रखनेवाले इन सन्देहवादियोंकी तीक्ष्ण-बुद्धिके सामने वह व्यर्थ हैं।"

"उनके सामने तो यह तेरा ब्रह्म भी कुछ नहीं है। तू ब्राह्मण ज्ञानियोंको

शिष्य बना ब्रह्मज्ञान सिखलाता फिरता है, और मैं तेरे घरमें ही तेरी बातको सरासर झूठ-फ़रेब मानती हूँ।"

"क्योंकि तू असली रहस्य (उपनिषद्)को जानती है।"

"ब्राह्मण समझदार होते, तो क्या तेरे रहस्यको नहीं जान पाते?"

"वह भी तू देखती ही है। कोई-कोई ब्राह्मण रहस्यकी परख कर सकते हैं; किन्तु वह मेरे इस रहस्य-(उपनिषद्) हथियारको अपने लिए बहुत उपयोगी समझते हैं। उनकी पुरोहिती, गुरुआईपर लोगोंको अ-विश्वास हो चला था। जिसका परिणाम होता उस दक्षिणासे वंचित होना, जिससे उन्हें चढ़नेको बड़वा-रथ, खानेको उत्तम आहार, रहनेको सुन्दर प्रासाद और भोगनेको सुन्दर दासियाँ मिलती हैं।"

"यह तो व्यापार हुआ?"

"व्यापार, और ऐसा व्यापार, जिसमें हानिका भय नहीं। इसलिए उद्दालक-जैसे समझदार ब्राह्मण मेरे पास हाथमें समिधा लेकर शिष्य बनने आते हैं, और मैं ब्राह्मणोंके प्रति गौरव प्रदर्शित करते हुए उपनयन किए बिना—विधिवत् गुरु बने बिना—उन्हें ब्रह्मज्ञान प्रदान करता हूँ।"

"यह बहुत निकृष्ट भावना है, प्रवाहण!"

"मानता हूँ; किन्तु हमारे उद्देश्यके लिए यह सबसे अधिक उपयोगी साधन है। वशिष्ठ और विश्वामित्र की नावने हज़ार वर्ष भी काम नहीं दिया; किन्तु जिस नावको प्रवाहण तैयार कर रहा है वह दो हज़ार वर्ष आगे तक राजाओं और सामन्तों—परधन-भोगियों—को पार उतारती रहेगी। यज्ञ-रूपी नावको, लोपा! मैंने अदृढ़ समझा। इसीलिए इस दृढ़ नावको तैयार किया है, जिसे ब्राह्मण और क्षत्रिय मिलकर ठीकसे इस्तेमाल करते हुए ऐश्वर्य भोगते रहेंगे। किन्तु, लोपा! इस "आकाश" या ब्रह्मसे भी बढ़कर मेरा दूसरा आविष्कार है।"

"कौन?"

"मरकर फिर इसी दुनियामें लौटना—'पुनर्जन्म'।"

"यह सबसे भारी जाल है!"

"और सबसे कार्यकारी भी। जिस परिमाणमें हम सामन्तों, ब्राह्मणों और बनियोंके पास अपार भोग-राशि एकत्रित होती गई है, उसी परिमाणमें साधारण प्रजा निर्धन होती गई। इन निर्धनों—शिल्पियों, कृषकों और दास-दासियों—को भड़कानेवाले पैदा होने लगे हैं, जो कहते हैं—'तुम अपनी कमाई दूसरोंको देकर कष्ट उठाते हो; वह धोखेमें रखनेके लिए तुम्हें झूठे ही विश्वास दिलाते हैं कि तुम इस कष्ट, त्याग, दान करनेके लिए मरकर स्वर्गमें जाओगे। किसीने स्वर्गमें मृत-जीवोंके उन भोगोंको देखा नहीं है।' इसीका जवाब है: यहाँ संसारमें जो नीच-ऊँचके भाव—छोटी-बड़ी जातियों, निर्धन-धनिक आदिके भेद—पाए जाते हैं, वह सब पहले जन्मके कर्मों हीके कारण। हम इस प्रकार पहलेके सुकर्म-दुष्कर्मका फल प्रत्यक्ष दिखलाते हैं।"

"ऐसे तो चोर भी अपने चोरीके मालको पूर्वजन्मकी कमाई कह सकता है?"

"किन्तु उसके लिए हमने पहले हीसे देवताओं, ऋषियों और जन-विश्वासकी सहायता प्राप्त कर ली है, जिसके कारण चोरीके धनको पूर्वजन्मकी कमाई नहीं माना जायगा। इस जन्ममें परिश्रम बिना अर्जित धनको हम पहले देवताओंकी कृपासे प्राप्त बतलाते थे; किन्तु जब देवताओं और उनकी कृपापर सन्देह किया जाने लगा, तो हमें कोई दूसरा उपाय सोचना ज़रूरी था। ब्राह्मणोंमें यह सोचनेकी शक्ति नहीं रह गई है। पुराने ऋषियोंके मन्त्रों और वचनोंको रटनेमें ही वह चालीस-पैंतालीसकी आयु बिता देते हैं। वह दूसरी कोई गम्भीर बात कहाँसे सोच निकालेंगे?"

"किन्तु तूने भी तो, प्रवाहण! रटनेमें बहुत-सा समय लगाया था?"

"सिर्फ़ सोलह वर्ष। चौबीस वर्षकी उम्रके बाद मैं ब्राह्मणोंकी विद्याओंको पारकर बाहरके संसारमें आ गया था। यहाँ मुझे ज़्यादा

पढ़नेको मिला। मैंने राज-शासनकी बारीकियोंमें घुसनेके बाद देखा कि ब्राह्मणोंकी बनाई पु रानी नाव आजके लिए अदृढ़ है।"

"इसीलिए तूने दृढ़ नाव बनाई?"

"सत्य या असत्यसे मुझे मतलब नहीं, मेरा मतलब है उसके कार्योपयोगी होनेसे। लोपा! संसारमें लौटकर जन्मनेकी बात आज नई मालूम होती है और तुझे उसके भीतर छिपा हुआ स्वार्थ भी मालूम है; किन्तु मेरे ब्राह्मण चेले अभीसे उसे ले उड़े हैं। पितरों और देवताओंके रास्ते (पितृ-यान, देव-यान)को समझनेके लिए अभी ही लोग बारह-बारह साल गाय चरानेको तैयार हैं। लोपा! मैं और तू नहीं रहेंगे; किन्तु वह समय आयेगा जब कि सारी दरिद्र प्रजा इस पुनरागमनके भरोसे सारे जीवनकी कटुता, कष्ट और अन्यायको बर्दाश्त करनेके लिए तैयार हो जायगी। स्वर्ग और नरकको समझानेके लिए यह कैसा सीधा उपाय निकाला लोपा!"

"लेकिन यह अपने पेटके लिए सैकड़ों पीढ़ियोंको भाड़में झोंकना है।"

"वशिष्ठ और विश्वामित्रने भी पेटके लिए ही वेद रचे; उत्तर-पंचाल (रुहेलखंड)के राजा दिवोदास्के कुछ शबरदुर्गोंकी विजयपर कविता-पर-कविता बनाई। पेटका प्रबन्ध करना बुरा नहीं है, और जब हम अपने पेटके साथ हजार वर्षोंके लिए अपने बेटे-पोतों, भाई-बन्धुओं-के पेटका भी प्रबन्ध* कर डालते हैं, तो हम शाश्वत यशके भागी होते हैं। प्रवाहण वह काम कर रहा है, जिसे पूर्वज ऋषि भी नहीं कर पाए—जिसे धर्मकी रोटी खानेवाले ब्राह्मण भी नहीं कर सके।"

"तू बड़ा निष्ठुर है, प्रवाहण!"

"किन्तु मैंने अपने कामको योग्यतापूर्वक पूरा किया।"

---

*त्वं तदुक्थमिन्द्र बर्हणाकः प्रयच्छता सहसा शूर-दर्षि।
अव गिरेर्दासं शंबरं हन् प्रावो दिवोदासं चित्राभिरूती॥

—ऋग्वेद ६।२६।२५

(२)

प्रवाहण मर चुका था। उसके ब्रह्मवाद, उसके पुनर्जन्म या पितृयानवादकी विजय-दुन्दुभी सिन्धुसे सदानीरा (गंडक)के पार तक बज रही थी। यज्ञोंका प्रचार अब भी कम नहीं हुआ था, क्योंकि ब्रह्मज्ञानी उन्हें करनेमें खास तौरसे उत्साह प्रदर्शन करते थे, क्षत्रिय प्रवाहणके निकाले ब्रह्मवादमें ब्राह्मण बहुत दक्ष हो गए थे, और इसमें कुरुके याज्ञवल्क्यकी बड़ी ख्याति थी। कुरु पांचालमें—जिसने किसी वक्त मन्त्रोंके कर्त्ता और यज्ञोंके प्रतिष्ठाता वशिष्ठ, विश्वामित्र और भरद्वाजको पैदा किया था—याज्ञवल्क्य और उसके साथी ब्रह्मवादियों-ब्रह्मवादिनियोंकी धूम थी। ब्रह्मवादियोंकी परिषद् रचानेमें यज्ञोंसे भी ज्यादा नाम होता था। इसीलिए राजा राजसूय आदि यज्ञोंके साथ या अलग ऐसी परिषदें कराते थे, जिनमें हजारों गायें, घोड़े और दास-दासियाँ (दासी खास तौरसे, क्योंकि राजाओंके अन्तःपुरमें पली दासियोंको ब्रह्मवादी विशेष तौरसे पसन्द करते थे) वाद-विजेताको पुरस्कारमें मिलते थे।

याज्ञवल्क्य कई परिषदोंमें विजयी हो चुका था। अबकी बार उसने विदेह (तिर्हुत)के जनककी परिषद्में भारी विजय प्राप्त की, और उसके शिष्य सोमश्रवाने हज़ार गायें घेरी थीं। याज्ञवल्क्य विदेहसे कुरु तक उन गायोंको हाँककर लानेका कष्ट क्यों उठाने लगा। उसने उनको वहीं ब्राह्मणोंमें बाँट दिया। ब्रह्मवादी याज्ञवल्क्य की भारी ख्याति हुई। हाँ. हिरण्य (अशर्फ़ी) सुवर्ण, दास-दासी और अश्वतरी (खचरी) रथको वह अपने साथ कई नावोंमें भरकर कुरु-देश लाया।

प्रवाहणको मरे साठ साल हो गए थे। उस वक्त याज्ञवल्क्य अभी पैदा भी नहीं हुआ था। किन्तु सौ वर्षसे ऊपर पहुँची लोपा पंचालपुर (कन्नौज)के बाहरके राजोद्यानमें अब भी रहती थी। उद्यानके आम्र-कदली-जम्बू वृक्षों की छायामें रहना वह बहुत पसन्द करती थी। जीवनमें

प्रवाहणकी बातोंका वह बराबर विरोध किया करती थी; किन्तु अब इन साठ वर्षोंमें प्रवाहणके दोषोंको वह भूल चुकी थी। उसे याद था केवल प्रवाहणका वह जीवन-भरका प्रेम। अब भी वृद्धाकी आँखोंमें ज्योति थी, अब भी उसकी प्रतिभा बहुत धूमिल नहीं हुई थी; किन्तु ब्रह्मवादियों-से वह अब भी बहुत चिढ़ती थी। उस दिन पंचालपुरमें ब्रह्मवादिनी गार्गी वाचक्नवी उतरी। राजोद्यानके पास ही एक उद्यानमें गार्गीको बड़े सम्मानके साथ ठहराया गया। जनककी परिषद्में याज्ञवल्क्यने जिस तरह धोखेसे उसे परास्त किया था, गार्गी उसे भूल नहीं सकती थी। 'तेरा सिर गिर जायगा, गार्गी! यदि आगे प्रश्न किया तो'—यह कोई वादका ढंग न था। ऐसा उग्र-लोहितपाणि (ख़ूनसे हाथ रँगनेवाले) ही कर सकते हैं, गार्गी सोचती थी।

गार्गी लोपाके पितृ-कुलकी कन्या थी। लोपा उससे सुपरिचित थी, यद्यपि ब्रह्मवादके सम्बन्धमें वह उससे बिल्कुल असहमत थी। अबकी बार याज्ञवल्क्यने जिस तरहका ओछा हथियार उसके खिलाफ़ इस्तेमाल किया था, उससे गार्गी जल गई थी। इसलिए जब अपनी परदादी बुआ-के पास गई, तो उसके भावोंमें ज़रूर कुछ परिवर्तन था। लोपाने पास आई गार्गीके ललाट और आँखोंको चूमकर छातीसे लगाया और फिर स्वास्थ्य-प्रसन्नताके बारेमें पूछा। गार्गीने कहा—"मैं विदेहसे आ रही हूँ, बुआ!"

"मल्लयुद्ध करने गई थी, गार्गी बेटी!"

"हाँ, मल्लयुद्ध ही हुआ, बुआ! यह ब्रह्मवादियोंकी परिषदें मल्ल-युद्धसे बढ़कर कुछ नहीं हैं। मल्लोंकी भाँति ही इनमें प्रतिद्वन्द्वीको छल-बल-से पछाड़नेकी नीयत होती है।"

"तो कुरु-पंचालके बहुत-से ब्रह्मवादी अखाड़ेमें उतरे होंगे?"

"कुरु-पंचाल तो अब ब्रह्मवादियोंका गढ़ हो गया है।"

"मेरे सामने ही इस ब्रह्मवादकी एक छोटी-सी चिनगारी—सो भी

अच्छी नीयतसे नहीं—मेरे प्रवाहणने छोड़ी थी, और वह वनकी आग बन सारे कुरु-पंचालको जलाकर अब विदेह तक पहुँच रही है।"

"बुआ, तेरी बातकी सचाईको अब मैं कुछ-कुछ अनुभव करने लगी हूँ। वस्तुतः यह भोग-अर्जनका एक बड़ा रास्ता है। विदेहमें याज्ञवल्क्यको लाखोंकी सम्पत्ति मिली और दूसरे ब्राह्मणोंको भी काफ़ी धन मिला।"

"यह यज्ञसे भी ज्यादा नफ़ेका व्यापार है, बेटी! मेरा पति इसे राजाओं और ब्राह्मणोंके लिए भोग-प्राप्तिकी दृढ़ नौका कहा करता था। तो याज्ञवल्क्य जनककी परिषद्में विजयी रहा। और तू कुछ बोली या नहीं?"

"बोलना न होता, तो इतनी दूर तक गंगामें नाव दौड़ानेकी क्या ज़रूरत थी?"

"नावमें चोर-डाकू तो नहीं लगे?"

"नहीं, बुआ! व्यापारियोंके बड़े-बड़े साथों (कारवाँ)में भटोंका प्रबन्ध रहता है। हम ब्रह्मवादी इतने मूर्ख नहीं हैं कि अकेले-दुकेले अपने प्राणोंको संकटमें डालते फिरें।"

"और याज्ञवल्क्यने सबको परास्त कर दिया?"

"उसे परास्त करना ही न कहना चाहिए!"

"सो क्यों?"

"क्योंकि प्रश्नकर्त्ता याज्ञवल्क्यका उत्तर सुन चुप रह गए!"

"तू भी?"

"मैं भी; किन्तु मुझे उसने वादसे नहीं, बकवादसे चुप कर दिया।"

"बकवाद से?"

"हाँ, मैं ब्रह्मके बारेमें प्रश्न कर रही थी, और याज्ञवल्क्यको इतना घेर लिया था कि उसको निकलनेका रास्ता न था। इसी वक्त याज्ञ-वल्क्यने ऐसी बात कही, जिसके सुननेकी मुझे आशा न थी।"

"क्या बेटी!"

"उसने यह कहकर प्रश्नका उत्तर माँगनेसे मुझे रोक दिया—"तेरा सिर गिर जायगा, गार्गी, यदि आगे प्रश्न किया तो !"

"तुझे आशा न थी, बेटी ! किन्तु मुझे सब आशा हो सकती थी। गार्गी ! याज्ञवल्क्य प्रवाहणका पक्का प्रशिष्य सिद्ध हुआ। प्रवाहणके मिथ्यावादको इसने पूर्णताको पहुँचाया। अच्छा हुआ गार्गी ! जो तूने आगे प्रश्न नहीं किया।"

"तुझे कैसे मालूम हुआ, बुआ !"

"इसीसे कि मैं अपनी आँखोंसे तेरे सिरको कन्धेपर देख रही हूँ।"

"तो क्या तुझे विश्वास है, बुआ ! यदि मैं आगे प्रश्न करती, तो मेरा सिर गिर जाता ?"

"ज़रूर ! किन्तु याज्ञवल्क्यके ब्रह्म-बलसे नहीं, बल्कि वैसे ही, जैसे औरोंके सिर गिरते देखे जाते हैं।"

"नहीं, बुआ !"

"तू बच्ची है, गार्गी ! तू जानती है कि यह ब्रह्मवाद सिर्फ़ मनकी उड़ान, मनकी कलाबाजी है। नहीं गार्गी, इसके पीछे राजाओं और ब्राह्मणोंका भारी स्वार्थ छिपा हुआ है। जिस क्षण यह ब्रह्मवाद पैदा हुआ था, उस समय इसका जन्मदाता मेरी बग़लमें सोता था। यह राज-सत्ता और ब्राह्मण-सत्ताको दृढ़ करनेका भारी साधन है—वैसे ही, जैसे कृष्ण-लौह (लोहे)का खड्ग, जैसे उग्र लोहितपाणि भट।"

"बुआ, मैंने ऐसा नहीं समझा था।"

"बहुत से ऐसा नहीं समझते ! मैं नहीं समझती, जनक वैदेह भी इस रहस्य (उपनिषद्) को न समझता होगा। किन्तु याज्ञवल्क्य समझता है—वैसे ही, जैसे मेरा पति प्रवाहण समझता था। प्रवाहणको किसी देवता, देवलोक, पितृलोक, यज्ञ और ब्रह्मवादमें विश्वास नहीं था। उसे विश्वास था सिर्फ़ भोगमें, और उसने अपने जीवनके एक-एक क्षणको उस भोगके लिए अर्पण किया। मरनेके दिनसे तीन दिन पहले

विश्वामित्र-कुलीन पुरोहितकी सुवर्णकेशी कन्या उसके रनिवासमें आई। बचनेकी आशा न थी, तो भी वह उस बीस वर्षकी सुन्दरीसे प्रेम करता रहा।"

"गार्योंको दानकर विदेहराजकी दी हुई सुन्दर दासियोंको याज्ञवल्क्य अपने साथ लाया है, बुआ!"

"मैंने अभी कहा न कि वह प्रवाहणका पक्का चेला है। देखा न उसका ब्रह्मवाद? और यह तो तूने दूरसे देखा। यदि कहीं तुझे नज़दीकसे देखनेका मौक़ा मिलता, तो देखती बेटी!"

"तो बुआ, तू सचमुच समझती है कि यदि मैं आगे प्रश्न करती, तो मेरा सिर गिर जाता?"

"निस्सन्देह; किन्तु याज्ञवल्क्यके ब्रह्म-तेजसे नहीं, बेटी! दुनियामें कितनोंके सिर चुपचाप गिरा दिए जाते हैं।"

"मेरा सिर चकराता है, बुआ!"

"आज? और मेरा सिर तबसे चकराता है, जबसे मैंने होश सँभाला। सारा ढोंग, पूरी वंचना! प्रजाकी मशक्कतकी कमाईको मुफ्तमें खानेका तरीक़ा है यह राजवाद, ब्राह्मणवाद, यज्ञवाद। प्रजाको कोई इस जालसे तब तक नहीं बचा सकता, जब तक कि वह खुद सचेत न हो, और उसे सचेत होने देना इन स्वार्थियोंको पसन्द नहीं है।"

"क्या मानव-हृदय हमें इस वंचनासे घृणा करनेकी प्रेरणा नहीं देगा?"

"देगा बेटी! और मुझे एकमात्र उसीकी आशा है।"*

---

*आजसे १०८ पीढ़ी पहलेकी यह कहानी है, जब कि ऊपरी अन्तर्वेदमें उपनिषद्के महाज्ञानकी रचना प्रारम्भ हुई थी। उस वक्त तक उबान और असली लोहा भारतमें प्रचलित हो चुका था।

९—बंधुल मल्ल

(४९० ई० पू०)

(१)

बसन्तका यौवन था। वृक्षोंके पत्ते झड़कर नये हो गये थे। शाल अपने श्वेत पुष्पोंसे बनको सुगन्धित कर रहा था। अभी सूर्यकी किरणोंके प्रखर होनेमें देर थी। गहन शालबनमें सूखे पत्तोंपर मानवोंके चलनेकी पद-ध्वनि आ रही थी। एक बड़े वल्मीक (दीमकके टीले)के पास खड़े हुए दो तरुण-तरुणी उसे निहार रहे थे। तरुणीके अरुण गौर मुखपर दीर्घ कुंचित नीलकेश बेपरवाहीके साथ बिखरकर उसके सौन्दर्यकी वृद्धि कर रहे थे। तरुणने अपनी सबल भुजाको तरुणीके कन्धेपर रखकर कहा—

"मल्लिका! इस वल्मीकको देखनेमें इतनी तन्मय क्यों है?"

"देख, यह दो पोरिसाका है।"

"हाँ, साधारण वल्मीकोंसे बड़ा है, किन्तु इससे भी बड़े वल्मीक होते हैं। तुझे ख्याल आता होगा, क्या सचमुच वर्षा बरसनेपर इससे आग और धुआँ निकलता है।"

"नहीं, वह शायद झूठी दन्तकथा है; किन्तु यह चींटी जैसे छोटे-छोटे और उससे कहीं कोमल रक्तमुख श्वेत कीट कैसे इतने बड़े वल्मीकको बना लेते हैं?"

"मनुष्यके बनाये महलोंको यदि उसके शरीरसे नापा जाय, तो वह इसी तरह कई गुना बड़े मालूम होंगे। यह एक दीमकका काम नहीं है, शत-सहस्र दीमकोंने मिलकर इसे बनाया है। मानव भी इसी तरह मिलकर अपने कामोंको करता है।"

"इसलिए मैं भी उत्सुकतापूर्वक इसे देख रही थी, इनमें आपसमें कितना मेल है। यह अति क्षुद्र प्राणी समझे जाते हैं, और शत-सहस्र मिलकर एक साथ रह, इतने बड़े-बड़े प्रासादोंको बनाते हैं। मुझे दुःख है, हमारे मल्ल इन दीमकोंसे कुछ शिक्षा नहीं लेते।"

"मानव भी मेलसे रहनेमें किसीसे कम नहीं हैं; बल्कि मानव, जो आज श्रेष्ठ प्राणी बना है, वह मेल हीके कारण। तभी वह इतने बड़े-बड़े नगरों, निगमों (क़स्बों), गाँवोंको बसानेमें सफल हुआ है, तभी उसके जलपोत अपार सागरको पारकर द्वीप-द्वीपान्तरोंकी निधियोंको जमा करते हैं, तभी उसके सामने हाथी, गैंडे, सिंह नतशिर होते हैं।"

"किन्तु उसकी ईर्ष्या! यदि यह ईर्ष्या न होती, तो कितना अच्छा होता!"

"तुझे मल्लोंकी ईर्ष्याका ख्याल आता है?"

"हाँ, क्यों वह तुझसे ईर्ष्या करते हैं। मैंने तुझे कभी किसीको निन्दा-अपकार करते नहीं देखा-सुना, बल्कि तेरे मधुर व्यवहारसे दास-कर्मकर तक कितने प्रसन्न हैं, यह सभी जानते हैं। तो भी कितने ही सम्भ्रान्त मल्ल तुझसे इतनी डाह रखते हैं!"

"क्योंकि वह मुझे सर्वप्रिय होते देखते हैं, और गण (प्रजातन्त्र)में सर्वप्रियके डाह करनेवाले अधिक पाये जाते हैं, सर्वप्रियता हीसे तो यहाँ पुरुष गण-प्रमुख होता है।"

"किन्तु, उन्हें तेरे गुणोंको देखकर प्रसन्न होना चाहिए था। मल्लोंमें किसीको तक्षशिलामें इतना सम्मान मिला हो, आज तक नहीं सुना गया। क्या उन्हें मालूम नहीं कि आज भी राजा प्रसेनजित् कोशलके लेख (पत्र)पर लेख तुझे बुलानेके लिए आ रहे हैं।"

"हम तक्षशिलामें दस साल तक एक साथ पढ़ते रहे। उसे मेरे गुण ज्ञात हैं।"

"कुसीनाराके मल्लोंको वह अज्ञात हैं, यह मैं नहीं मानती। महा-

लिच्छवि जब यहाँ आकर तेरे पास ठहरा हुआ था, उस वक्त उसके मुँहसे तेरे गुणोंका बखान बहुतसे कुसीनारावालों ने सुना था।"

"किन्तु, मल्लिका! मेरे साथ ईर्ष्या करनेवाले मेरे गुणोंको जानकर ही वैसा करते हैं। गुणी और सर्वप्रिय होना गणोंमें ईर्ष्याका भारी कारण है। मुझे अपने लिए ख्याल नहीं है, मुझे अफ़सोस इसी बातका है कि मैंने मल्लोंकी सेवाके लिए तक्षशिलामें उतने श्रमसे शस्त्र-विद्या सीखी। आज वैशालीके लिच्छवियोंको कोसल और मगध अपने बराबर मानते हैं, किन्तु कुसीनारा कोसल-राजको अपने ऊपर मानती है। मैंने सोचा था; हम पावा, अनूपिया, कुसीनारा आदि सभी नौ मल्ल-गणोंको स्नेह-बन्धनमें बाँधकर लिच्छवियोंकी भाँति अपना नौ मल्लोंका एक सम्मिलित सुदृढ़गण बनावेंगे। नौ मल्लोंके मिल जानेपर प्रसेनजित् हमारी तरफ़ आँख भी नहीं उठा सकता। बस यही एकमात्र अफ़सोस है।"

बन्धुलके गौर मुखकी कान्तिको फीकी पड़ी देख मल्लिकाको अफ़सोस होने लगा, और उसने ध्यानको दूसरी ओर खींचते हुए कहा—

"तेरे साथी शिकारके लिए तैयार खड़े होंगे प्रिय! और मैं भी चलना चाहती हूँ; घोड़ेपर या पैदल?"

"गवय (घोड़रोज, नील गाय)का शिकार घोड़ेकी पीठसे नहीं होता मल्लिका! और क्या इस घुट्टी तक लटकते अन्तरवासक (लुंगी) इस तीन हाथ तक लहराते उत्तरासंग (चादर) और इन अस्त-व्यस्त केशोंको काली नागिनोंकी भाँति हवामें उड़ाते शिकार करने चलना है?"

"ये तुझे बुरे लगते हैं?"

"बुरे!" मल्लिकाके लाल ओठोंको चूमकर "मल्लिका नामसे भी जिसका सम्बन्ध हो, वह मुझे बुरा नहीं लग सकता। किन्तु शिकारमें जानेपर जंगलकी झाड़ियोंमें दौड़ना पड़ता है।"

"इन्हें तो मैं तेरे सामने समेटे लेती हूँ।" कह मल्लिकाने अन्तर-वासकको कसकर बाँध लिया, केशोंको सँभालकर शिरके ऊपर जूड़ा

करके कहा—"मेरे उत्तरासंग (ओढ़नी)की पगड़ी बाँध दे, बन्धुल !"

पगड़ी बाँध, बन्धुल कंचुकीके भीतरसे उठे क्षुद्र-बिल्व-स्पर्धी स्तनोंको अर्धालिंगन करते हुए बोला—"और ये तेरे स्तन ?"

"स्तन सभी मल्ल-कुमारियोंके होते हैं।"

"किन्तु, यह कितने सुन्दर हैं ?"

"तो क्या कोई इन्हें छीन ले जायेगा ?"

"तरुणोंकी नज़र लग जायेगी।"

"वह जानते हैं, यह बन्धुलके हैं।"

"नहीं, तुझे उज्र न हो, तो मल्लिका! भीतरसे मैं इन्हें अपने अँगोछेसे बाँध दूँ।"

"कपड़ोंके बाहरके दर्शनसे तुझे तृप्ति नहीं हो रही है ?"—मल्लिकाने मुस्कुराकर बन्धुलके मुँहको चूमते हुए कहा।

बंधुलने कंचुकीको हटा शुभ्र स्फाटिक-शिला सदृश वक्षपर आसीन उन आरक्त गोल स्तनोंको अँगोछेसे बाँध दिया। मल्लिकाने फिर कंचुकीको पहिनकर कहा—

"अब तो तेरा खतरा जाता रहा बन्धुल !"

"बन्धुलको अपनी चीज़के लिए खतरा नहीं है प्रिये! अब दौड़नेमें यह ज्यादा हिलेंगे भी नहीं।"

सभी तरुण मल्ल-मल्लियाँ शिकारी वेशमें तैयार इस जोड़ेकी प्रतीक्षा कर रहे थे, और इनके आते ही धनुष, खड्ग, भालेको सँभाल चल पड़े। गवयोंके मध्याह्न विश्रामका स्थान किसीको मालूम था। उसीके पथ-प्रदर्शनके अनुसार लोग चले। बड़े वृक्षोंकी अल्प-तृण-छायाके नीचे गवयोंका एक यूथ बैठा जुगाली कर रहा था, यूथपति एक नील गवय, खड़ा कानोंको आगे-पीछे तानते चौकी दे रहा था। मल्ल दो भागोंमें बँट गये—एक भाग तो अस्त्र-शस्त्र सँभाल एक ओर वृक्षोंकी आड़ लेकर बैठ गया; दूसरा भाग पीछेसे घेरनेके लिए दो टुकड़ियोंमें बँटकर चला।

हवा उधरसे आ रही थी, जिधर यह दोनों टुकड़ियाँ मिलने जा रही थीं। नील गवय अब भी अपनी हरिन जैसी छोटी दुमको हिला रहा था। दोनों टुकड़ियोंके मिलनेसे पहिले ही बाक़ी गवय भी खड़े हो नथुनोंको फुलाते, कानोंको आगे टेढ़ा करते उसी एक दिशाकी ओर अस्थिर शरीरसे देखने लगे। क्षण-भरके भीतर ही जान पड़ा, उन्हें खतरा मालूम हो गया, और नील गवयके पीछे वह हवा बहनेकी दिशाकी ओर दौड़ पड़े। अभी उन्होंने खतरेको आँखोंसे देखा न था, इसलिए बीच-बीचमें खड़े हो पीछेकी ओर देखते थे। छिपे हुए शिकारियोंके पास आकर एक बार फिर वह मुड़कर देखने लगे, इसी वक़्त कई धनुषोंके ज्याकी टंकार हुई। नील गवयके कलेजेको ताककर बन्धुलने अपना अचूक निशाना लगाया। उसीको मल्लिका और दूसरे कितनोंने भी लक्ष्य बनाया, किन्तु यदि बन्धुलका तीर चूक गया होता, तो वह हाथ न आता, यह निश्चित था। नील गवय उसी जगह गिर गया। यूथके दूसरे पशु तितर-बितर हो भाग निकले। बन्धुलने पहुँचकर देखा, गवय दम तोड़ रहा है। दो गवयोंके खूनकी बूँदोंका अनुसरण करते हुए शिकारियोंने एक कोसपर जा एकको धरतीपर गिरा पाया। इस सफलताके साथ आजके बन-भोजमें बहुत आनन्द रहा।

कुछ लोग लकड़ियोंकी बड़ी निर्धूम आग तैयार करने लगे। मल्लियोंने पतीले तैयार किये। कुछ पुरुषोंने गवयके चमड़ेको उतार मांस-खंडोंको काटना शुरू किया। सबसे पहिले आगमें भुनी कलेजी तथा सुरा-चषक लोगोंके सामने आये—मांस-खंड काटनेमें बन्धुलके दोनों हाथ लगे हुए थे, इसलिए मल्लिकाने अपने हाथसे मुँहमें भुना टुकड़ा और सुरा-चषक दिया।

मांस पककर तैयार नहीं हो पाया था, जब कि सन्ध्या हो गई। लकड़ीके दहकते अग्नि-स्कन्धोंकी लाल रोशनी काफ़ी थी, उसीमें मल्लोंका गान-नृत्य शुरू हुआ। मल्लिका—कुसीनाराकी सुन्दरतम तरुणी—ने शिकारी वेशमें अपने नृत्य-कौशलको दिखलानेमें कमाल किया। बन्धुलके

साथी इस अखिल जम्बू-द्वीपके मूल्यके नारी-रत्नका अधिकारी होनेके लिए, उसके भाग्यकी सराहना कर रहे थे।

(२)

कुसीनाराके संस्थागार (प्रजातन्त्र-भवन)में आज बड़ी भीड़ थी। गण-संस्था (पार्लमेंट)के सारे सदस्य शालाके भीतर बैठे हुए थे। कितने ही दर्शक और दर्शिकाएँ शालाके बाहर मैदानमें खड़े थे। शालाके एक सिरेपर एक विशेष स्थानपर गणपति बैठे थे। उन्होंने सदस्योंकी ओर ग़ौरसे देख, खड़ा होकर कहा—

"भन्ते (पूज्य) गण ! सुनै, आज जिस कामके लिए हमारा यह सन्निपात (बैठक) हुआ है, उसे गणको बतलाता हूँ। आयुष्मान् बन्धुल तक्षशिलासे युद्ध-शिक्षा प्राप्तकर मल्लोंके गौरवको बढ़ाते हुए लौटा है। उसके शस्त्र नैपुण्यको कुसीनारासे बाहरके लोग भी जानते हैं। उसे यहाँ आये चार साल हो गये। मैंने गणके छोटे-मोटे कामोंको अपनी सम्मतिसे उसे दिया, और हर कामको उसने बहुत तत्परता और सफलताके साथ पूरा किया। अब गणको उसे एक स्थायी पद-उप-सेनापतिका पद—देना है, यह ज्ञप्ति (प्रस्ताव-सूचना) है।

"भन्ते गण। सुनै ! गण आयुष्मान् बन्धुलको उप-सेनापतिका पद दे रहा है, जिस आयुष्मान्‌को यह स्वीकार हो वह चुप रहे, जिसे स्वीकार न हो वह बोले।

"दूसरी बार भी, भन्ते गण ! सुनै। गण आयुष्मान् बन्धुलको उप-सेनापतिका पद दे रहा है, जिस आयुष्मान्‌को यह स्वीकार हो वह चुप रहे, जिसे स्वीकार न हो वह बोले।

"तीसरी बार भी, भन्ते गण ! सुनै। गण आयुष्मान् बन्धुलको उप-सेनापति का पद दे रहा है, जिस आयुष्मान्‌को यह स्वीकार हो, वह चुप रहे, जिसे स्वीकार न हो, वह बोले।"

इसी वक्त एक सदस्य—रोज मल्ल—उत्तरासंग (चादर) को हटा दाहिना कन्धा नंगा रख कान्हासोतीकर खड़ा हो गया। गणपतिने कहा—

"आयुष्मान् कुछ बोलना चाहता है, अच्छा बोल।"

रोज मल्लने कहा—"भन्ते गण! सुनै। मैं आयुष्मान् बन्धुलकी योग्यताके बारेमें सन्देह नहीं रखता। मैं उसके उप-सेनापति बनाये जानेका खास कारणसे विरोध करना चाहता हूँ। हमारे गणका नियम रहा है कि किसीको उच्च पद देते वक्त उसकी परीक्षा ली जाती रही है। मैं समझता हूँ आयुष्मान् बन्धुलपर भी वह नियम लागू होना चाहिए।"

रोज मल्लके बैठ जानेपर दो-तीन दूसरे सदस्योंने भी यही बात कही। कुछ सदस्योंने परीक्षाकी आवश्यकता नहीं है, इस बातपर ज़ोर दिया। अन्तमें गणपतिने कहा—

"भन्ते गण! सुनै। गणका आयुष्मान् बन्धुलके उप-सेनापति बनाये जानेमें थोड़ासा मतभेद है, इसलिए छन्द (वोट) लेनेकी ज़रूरत है शलाका-ग्रहापक (शलाका बाँटनेवाले) छन्द-शलाकाओं (वोटकी काष्ठ-मय तीलियों)को लेकर आपके पास जा रहे हैं। उनके एक हाथकी तीलिएँ लाल शलाकाएँ हैं, दूसरीमें काली। लाल शलाका 'हाँ' के लिए है, काली 'नहीं'के लिए। जो आयुष्मान् आयुष्मान् रोजके मतके साथ हों, मूल ज्ञप्ति (प्रस्ताव)को स्वीकार नहीं करते, वह काली शलाका लें, जो मूल ज्ञप्तिको स्वीकार करते हैं वह लालको।"

शलाका-ग्रहापक छन्द-शलाकाओंको लेकर एक-एक सदस्यके पास गये। सबने अपनी इच्छानुसार एक-एक शलाका ली। लौट आनेपर गणपतिने बाक़ी बची शलाकाओंको गिना। लाल शलाकाएँ ज़्यादा थीं, काली कम; जिसका अर्थ हुआ काली शलाकाओंको लोगोंने ज़्यादा लिया। गणपतिने घोषित किया—

"भन्ते गण! सुनै। काली छन्द-शलाकाएँ ज़्यादा उठाई गईं, इस-लिए मैं धारण करता हूँ कि गण आयुष्मान् रोज मल्लसे सहमत है। अब

गण निश्चय करे, कि आयुष्मान् बन्धुलसे किस तरहकी परीक्षा ली जाये।"

कितने ही समयके वाद-विवाद तथा छन्द-शलाका उठवानेके बाद निश्चित हुआ कि बन्धुल मल्ल लकड़ीके सात खूँटोंको एक साँसमें तलवारसे काट डाले। इसके लिए सातवाँ दिन निश्चितकर सभा उठ गई।

सातवें दिन कुसीनाराके मैदानमें स्त्री-पुरुषोंकी भारी भीड़ जमा हुई। मल्लिका भी वहाँ मौजूद थी। ज़रा-ज़रा दूरपर कठोर काष्ठके सात खूँटे गड़े हुए थे। गणपतिके आज्ञा देनेपर बन्धुलने तलवार सँभाली। सारी जन-मंडली साँस रोककर देखने लगी। बन्धुल मल्लकी दृढ़ भुजाओं-में उस लम्बे सीधे खड्गको देखकर लोग बन्धुलकी सफलताके लिए निश्चित थे। बन्धुलकी बिजलीसी चमकती तलवारको लोगोंने उठते-गिरते देखा—पहिला खूँटा कटा, दूसरा, तीसरा, छठेके कटते वक्त बन्धुलके कानोंमें झनकी आवाज़ आई, उसके ललाटपर बल आ गया, और उत्साह ठंडा हो गया। बन्धुलकी तलवार सातवें खूटेके अन्तिम छोरपर पहुँचनेसे ज़रा पहिले रुक गई। बन्धुल जल्दीसे एक बार सभी खूँटोंके सिरोंको देख गया। उसका शरीर काँप रहा था, मुँह गुस्सेमें लाल था, किन्तु वह बिल्कुल चुप रहा।

गणपतिने घोषित किया कि सातवें खूँटेका सिरा अलग नहीं हो पाया। लोगोंकी सहानुभूति बन्धुल मल्लकी ओर थी।

घर आ मल्लिकाने बन्धुलके लाल और गम्भीर चेहरेको देखकर अपनी उदासीको भूल उसे सान्त्वना देना चाहा। बन्धुलने कहा—

"मल्लिका! मेरे साथ भारी धोखा किया गया। मुझे इसकी आशा न थी।"

"क्या हुआ प्रिय!"

"एक-एक खूँटेमें लोहेकी कीलें गाड़ी हुई थीं। पाँचवें खूटे तक मुझे कुछ पता न था, छठवेंके काटनेपर मुझे झन-सी आवाज़ साफ़ सुनाई दी। मैं धोखा समझ गया। यदि इस आवाज़को न सुना होता, तो सातवें खूँटेको भी साफ़ काट जाता, किन्तु फिर मेरा मन क्षुब्ध हो गया।"

"ऐसा बोला ! यह तो उसकी भारी नीचता है, जिसने ऐसा किया।"

"किसने किया, इसे हम नहीं जान सकते, रोजपर मुझे बिल्कुल गुस्सा नहीं है, आखिर वह उचित कह रहा था और उसकी सम्मतिसे गणके बहुसंख्यक सदस्य सहमत थे। किन्तु, मुझे क्षोभ और गुस्सा इसपर है कि कुसीनारामें मुझसे स्नेह रखनेवालोंका इतना अभाव है !"

"तो बन्धुल मल्ल कुसीनारासे नाराज़ हो रहा है !"

"कुसीनारा मेरी माँ है, जिसने पाल-पोसकर मुझे बड़ा किया; किन्तु अब मैं कुसीनारामें नहीं रहूँगा।"

"कुसीनाराको छोड़ जाना चाहता है ?"

"क्योंकि कुसीनाराको बन्धुल मल्लकी ज़रूरत नहीं है।"

"तो कहाँ चलेगा ?"

"मल्लिका तू मेरा साथ देगी !"—विकसित वदन हो बन्धुलने कहा।

"छायाकी भाँति, मेरे बन्धुल !"—मल्लिकाने बन्धुलकी लाल आँखों-को चूम लिया और तुरन्त उनकी रूक्षता जाती रही।

"मल्लिका ! अपने हाथोंको दे" फिर मल्लिकाके हाथोंको अपने हाथोंमें लेकर बन्धुलने कहा—"यह तेरे हाथ मेरे लिए शक्तिके स्रोत हैं, इन्हें पाकर बन्धुल कहीं भी निर्भय विचर सकता है।"

"तो प्रिय ! कहाँ चलनेको तै कर रहा है और कब ?"

"बिना ज़रा भी देर किये, क्योंकि खूँटोंकी कीलोंका पता गणपति-को लगने ही वाला है, उसके बाद वह फिरसे परीक्षा-दिन निश्चित करेंगे, हमें लोगोंके आग्रहसे पहिले चल देना चाहिए।"

"अन्यायका परिमार्जन क्यों नहीं होने देता ?"

"कुसीनाराने मेरे बारेमें अपनी सम्मति दे दी है, मल्लिके ! मेरा यहाँ काम नहीं है, कम-से-कम इस वक़्त। कुसीनाराको जब बन्धुलकी ज़रूरत होगी, उस वक़्त वह यहाँ आ मौजूद होगा।"

"उसी रातको ले चलने लायक़ चीज़ोंको ले मल्लिका और बन्धुल-ने कुसीनाराको छोड़ दिया, और दूसरे दिन अचिरवती (रापती)के तटपर अवस्थित ब्राह्मणोंके ग्राम मल्लग्राम (मलाँव, गोरखपुर)में पहुँच गये। मल्लोंके जनपदमें मल्लग्रामके सांकृत्य अपनी युद्ध-वीरताके लिए ख्याति रखते थे। वहाँ बन्धुलके मित्र भी थे, किन्तु बन्धुल मित्रोंकी मुलाक़ातके लिए नहीं गया था—वह गया था वहाँसे नाव द्वारा श्रावस्ती (सहेट-महेट) जानेके लिए। मल्लग्राममें श्रेष्ठी सुदत्तके आदमी रहते थे, और उनके द्वारा नावोंका पाना आसान था। सांकृत्य ब्राह्मणोंने अपने कुलाचारके अनुसार अपने द्वारपर एक मोटा सुअरका बच्चा काटा और अपने हाथसे पकाकर बन्धुल मल्ल तथा मल्लिकाको उसी सूकर मार्दवसे सन्तुप्त किया।

(३)

श्रावस्ती राजधानीमें कोसल-राज प्रसेनजित्‌ने अपने सहपाठी मित्र बन्धुल मल्लका बड़े ज़ोरोंसे स्वागत किया। तक्षशिलामें ही प्रसेनजित्‌ने इच्छा प्रकट की थी कि मेरे राजा होनेपर तुझे मेरा सेनापति बनना होगा। राजा हो जानेपर भी कई बार वह इसके बारेमें लिख चुका था, किन्तु कोसल-काशी जैसे अपने समयके सबसे समृद्ध और विशाल राज्यका सेनापति होनेकी जगह, बन्धुल अपनी कुसीनाराके एक मामूली गणका उप-सेनापति रहना ज्यादा पसन्द करता था। किन्तु अब कुसीनाराने उसे ठुकरा दिया था, इसलिए प्रसेनजित्‌के प्रस्ताव करनेपर उसने शर्त रखी—

"मैं स्वीकार करूँगा, मित्र! तेरी बातको; किन्तु, उसके साथ कुछ शर्त है।"

"खुशीसे कह, मित्र बन्धुल!"

"मैं मल्ल-पुत्र हूँ।"

"हाँ, मैं जानता हूँ, और मल्लोंके विरुद्ध जानेकी मैं तुझे कभी आज्ञा नहीं दूँगा।"

"बस इतना ही।"

"मित्र! मल्लोंके साथ जो सम्बन्ध हमारा है, बस मैं उतना ही क़ायम रखना चाहता हूँ। तू जानता है कि मुझे राज्य-विस्तारकी इच्छा नहीं है। यदि किसी कारणसे मुझे मल्लोंका विरोध करना पड़ा, तो तुझे स्वतन्त्रता होगी चाहे जो पक्ष ले। और कुछ मैं अपने प्रिय मित्र-के लिए कर सकता हूँ?"

"नहीं, महाराज! बस इतना ही।"

(४)

बन्धुल मल्ल कोसल-सेनापति था। प्रसेनजित् जैसे नरम, उत्साह-हीन राजाके लिए एक ऐसे योग्य सेनापतिकी बड़ी ज़रूरत थी। वस्तुतः यदि उसे बन्धुल मल्ल न मिला होता, तो शायद मगधों और वत्सोंने उसके राज्यके कितने ही भाग दाब लिये होते।

श्रावस्ती पहुँचनेके कुछ समय बाद मल्लिकाको गर्भ-लक्षण दिखलाई देने लगा। बन्धुल मल्लने एक दिन पूछा—

"प्रिये! किसी चीज़का दोहद हो तो कहना।"

"हाँ, दोहद है प्रियतम! किन्तु बड़ा दुष्कर।"

"बन्धुल मल्लके लिए दुष्कर नहीं हो सकता, मल्लिके! बोल क्या दोहद है?"

"अभिषेक-पुष्करिणीमें नहाना।"

"मल्लोंकी?"

"नहीं, वैशालीमें लिच्छवियोंकी।"

"तूने ठीक कहा मल्लिके! तेरा दोहद दुष्कर है। किन्तु बन्धुल मल्ल उसे पूरा करेगा। कल सबेरे तैयार हो जा, रथपर हम दोनों चलेंगे।"

दूसरे दिन पाथेय ले अपने खड्ग, धनुष आदिके साथ दोनों रथ-पर सवार हुए।

दूरकी मंज़िलको अनेक सप्ताहमें पारकर एक दिन बन्धुलका रथ वैशालीमें इसी द्वारसे प्रविष्ट हुआ, जिसपर उसका सहपाठी—कुछ लिच्छवियोंकी ईर्ष्यासे अन्धा हुआ—महालि अध्यक्ष था। एक बार बन्धुलकी इच्छा हुई महालिसे मिल लेनेकी, किन्तु दोहदकी पूर्तिमें विघ्न देख उसने अपने इरादेको छोड़ दिया।

अभिषेक-पुष्करिणीके घाटोंपर पहरा था। वहाँ जीवनमें सिर्फ़ एक बार किसी लिच्छवि-पुत्रको नहाने (अभिषेक पाने)का सौभाग्य होता था; जब कि वह लिच्छवि गणके ९९९ सदस्योंके किसी रिक्त स्थानपर चुना जाता। रक्षी पुरुषोंने बाधा डाली, तो बन्धुलने कोड़ोंसे मारकर उन्हें भगा दिया, और मल्लिकाको स्नान करा रथपर चढ़ तुरन्त वैशाली-से निकल पड़ा। रक्षी पुरुषोंसे खबर पा पाँच सौ लिच्छवि रथी बन्धुल-के पीछे दौड़े। महालिने सुना तो उसने मना किया; किन्तु गर्वीले लिच्छवि कहाँ माननेवाले थे। दूरसे रथोंके चक्करोंकी आवाज़ सुन पीछे देख मल्लिकाने कहा—

"प्रिय! बहुतसे रथ आ रहे हैं।"

"तो प्रिये! जिस वक्त सारे रथ एक रेखामें हों, उस वक्त कहना।"

मल्लिकाने वैसे समय सूचित किया। पुराने ऐतिहासिकोंका कहना है कि बन्धुलने खींचकर एक तीर मारा, और वह पाँच सौ लिच्छवियों-के कमरबन्दके भीतरसे होता निकल गया। लिच्छवियोंने नज़दीक पहुँच-कर लड़नेके लिए ललकारा। बन्धुलने सहज भावसे कहा—

"मैं तुम्हारे जैसे मरोंसे नहीं लड़ता।"

"देख भी तो हम कैसे मरे हैं।"

"मैं दूसरा वाण ख़र्च नहीं करता। घर लौट जाओ, प्रियों-बन्धुओंसे पहले भेंट कर लेना, फिर कमरबन्दको खोलना"—कह बन्धुलने मल्लिकाके हाथसे रास ले ली और रथको तेज़ीसे हाँककर आँखोंसे ओझल हो गया।

कमरबन्द खोलनेपर सचमुच ही पाँचो सौ लिच्छवि मरे पाये गये।

(५)

श्रावस्ती (आजकलका उजाड़ सहेट-महेट) उस वक्त जम्बू-द्वीपका सबसे बड़ा नगर था। प्रसेनजित्‌के राज्यमें श्रावस्तीके अतिरिक्त साकेत (अयोध्या) और वाराणसी (बनारस) दो और महानगर थे। श्रावस्तीके सुदत्त (अनाथ-पिंडक) और मृगार, साकेतके अर्जुन जैसे कितने ही करोड़-पति सेठ काशी कोसलके सम्मिलित राज्यमें बसते थे, जिनके सार्थ (कारवाँ) जम्बूद्वीप हीमें नहीं बल्कि ताम्रलिप्तसे होकर पूर्व-समुद्र (बंगाल-की खाड़ी) और भरुकच्छ (भड़ौंच) तथा सुप्पारक (सोपारा)से होकर पश्चिम समुद्र (अरब सागर) द्वारा दूर-दूरके द्वीपों तक जाते थे। ब्राह्मण-सामन्तों (महाशालों) तथा क्षत्रिय-सामन्तोंके बराबर तो उनका स्थान नहीं था, तो भी यह लोग समाजमें बहुत ऊँचा स्थान रखते थे, और धनमें तो उनके सामने सामन्त तुच्छ थे। सुदत्तने जेत राजकुमारके उद्यान जेतवनको कार्षापणों (सिक्कों)को बिछाकर खरीदा, और गौतम बुद्धके लिए वहाँ जेतवन-विहार बनवाया था। मृगारके लड़के पुण्ड्रवर्धनके ब्याहमें राजा प्रसेनजित् स्वयं सदलबल साकेत गया था, और कन्या-पिता अर्जुन श्रेष्ठीका मेहमान रहा। अर्जुनकी पुत्री तथा मृगारकी पुत्र-बधू विशाखाने अपने हारके दामसे हजार कोठरियोंका एक सात तल्ला विशाल बिहार (मठ) बनवाया, जिसका नाम पूर्वाराम मृगारमाता-प्रासाद पड़ा। देश-देशान्तरका धन इन श्रेष्ठियोंके पास दुहकर चला आता था, फिर उनकी अपार सम्पत्तिके बारेमें क्या कहना है!"

जैवलि, उद्दालक, याज्ञवल्क्यने यज्ञवादको गौण—द्वितीय—स्थान देते हुए, वास्तविक निस्तारके लिए ब्रह्मवादकी दृढ़ नौकाका निर्माण किया। जनक जैसे राजाओंने बड़े-बड़े पुरस्कार रख ब्रह्मसम्बन्धी शास्त्रार्थ-की परिषदें बुलानी शुरू कीं; जिनसे वेदसे बाहर भी कल्पना करनेका रास्ता खुला। अब यह वह समय था, जब कि देशमें स्वतन्त्र चिन्तनकी

एक बाढ़-सी आ गई थी, और विचारक (तीर्थंकर) अपने-अपने विचारोंको लोगोंके सामने साधारण सभाओंमें रखते थे।—कहीं उसका रूप साधारण उपदेश (अववाद, सूक्त) के रूपमें होता था, कहीं कोई वादके आह्वान (चैलेंज) की घोषणाके तौरपर जम्बू (जामुन) की शाखाको गाड़ते घूमता फिरता। प्रवाहणने छप्पन पीढ़ियोंको भटकानेके लिए ब्रह्म-साक्षात्कारके बहुतसे उपाय बतलाये थे, जिनमें प्रव्रज्या (सन्यास) ध्यान, तप आदि शामिल थे। अब उपनिषद्‌की शिक्षासे बाहरवाले आचार्य भी अपने स्वतंत्र विचारोंके साथ प्रव्रज्या और ब्रह्मचर्यपर ज़ोर देते थे। अजित केसकम्बल बिल्कुल जड़वादी था, सिवाय भौतिक पदार्थोंके वह किसी आत्मा, ईश्वर-भक्ति नित्य तत्त्व, या स्वर्ग-नर्क-पुनर्जन्मको नहीं मानता था; तो भी वह स्वयं गृह-त्यागी ब्रह्मचारी था। जिन सामन्तोंका उस वक्त शासन था, उनकी सहानुभूतिका पात्र बनने ही नहीं, बल्कि उनके कोपसे बचनेके लिए भी यह ज़रूरी था, कि अपने जड़वादको धर्मका रूप दिया जाये। लौहित्य ब्राह्मण-सामन्त तथा पायासी जैसे राजन्य-सामन्त जड़वादी थे, और अपने विचारोंके लिए लोगोंमें इतने प्रसिद्ध थे, कि जड़वादको छोड़नेमें भी वह लोक लज्जा समझते थे, तो भी इसका जड़वाद समाजके लिए खतरनाक नहीं था।

जड़वादका प्रचार देखा जाता था, लेकिन ब्राह्मण-क्षत्रिय सामन्तों तथा धन कुबेर व्यापारियोंकी सबसे अधिक आस्था गौतम बुद्धके अनात्मवादकी ओर थी—कोसलमें विशेषकर। इसमें एक कारण यह भी था, कि गौतम स्वयं कोसलके अन्तर्गत शाक्य गणके निवासी थे। गौतम जड़वादियोंकी भाँति कहते थे—आत्मा, ईश्वर आदि कोई नित्यवस्तु विश्वमें नहीं है, सभी वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं, और शीघ्र ही विलीन हो जाती हैं। संसार वस्तुओंका समूह नहीं, बल्कि घटनाओंका प्रवाह है। समझदार आदमियोंके लिए यह विचार बहुत ही युक्ति संगत, हृदयंगम जान पड़ते थे। किन्तु, ऐसे अनित्यवादसे लोक-मर्यादा, गरीब-अमीर, दास-

स्वामीके मेदको ठोकर लग सकती थी, इसीलिए तो अजितका जड़वाद सामन्त और व्यापारी वर्गमें सर्वप्रिय नहीं हो सका। गौतम बुद्धने अपने अनात्मवाद—जड़वाद—में कुछ और बातोंको मिलाकर उसकी कड़वाहटको दूर किया था। उनका कहना था—किसी नित्य आत्माके न होनेपर भी चेतना-प्रवाह स्वर्ग या नर्क आदि लोकोंके भीतर एक शरीरसे दूसरे शरीर—एक शरीर-प्रवाहसे दूसरे शरीर-प्रवाहमें बदलता रहता है। इस विचारमें प्रवाहण राजाके आविष्कृत हथियार—पुनर्जन्मकी पूरी गुंजाइश हो जाती थी। यदि गौतम कोरे जड़वादका प्रचार करते, तो निश्चय ही श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी, राजगृह भद्रिकाके श्रेष्ठिराज न अपनी थैलियाँ खोलते, और न ब्राह्मण-क्षत्रिय-सामन्त, तथा राजा उनके चरणोंमें सिर नवानेके लिए होड़ लगाते।

श्रावस्तीके ऊँचे वर्गकी स्त्रियोंकी गौतम बुद्धके मतमें बड़ी आस्था थी। प्रसेनजित्‌की पटरानी मल्लिका देवी बुद्ध धर्ममें बहुत अनुरक्त थी, उसके नगरके सेठकी पुत्रवधू तथा उसकी सखी विशाखाने अपने श्रद्धाके रूपमें पूर्वाराम जैसा एक महा-विहार ही बनाकर बुद्धको दान दे दिया था। बन्धुल मल्ल सेनापतिकी पत्नी मल्लिका, मल्लिका पटरानीकी बड़ी प्रिय सखी थी, उसीसे प्रेरित हो वह भी बुद्धके उपदेशोंमें जाने लगी, तथा कुछ समय बाद बुद्धोपासिका होके रही।

मल्लिकाका घर अब बहुत समृद्ध था। कोसल जैसे महान् राज्यके सेनापतिका घर समृद्ध होना ही चाहिए। मल्लिकाके दस वीर पुत्र हुए, जो राज-सेनाके ऊँचे पदोंपर थे। बन्धुल मल्लने एक युग तक राजाके ऊपर अपना प्रभाव रखा। इसी बीच उसके बहुतसे शत्रु हो गये। दूसरे जनपदके आदमीको इतने ऊँचे पदपर देखना वह नहीं पसन्द करते थे। ईर्ष्यालुओंने राजाके पास चुगली करनी शुरू की। राजा कुछ मन्दबुद्धि था भी, "बन्धुल मल्ल तो महाराजको निर्बुद्धि कहता है" कहकर उसे भड़काया गया। अन्तमें यहाँ तक बतलाया गया कि सेनापति राज्यको

छीनना चाहता है। प्रसेनजित्‌को बात ठीक बँच गई। वह उसके और अपने शत्रुओंके हाथमें खेलने लगा। बन्धुल मल्लको चिन्तित देख एक दिन मल्लिकाने कहा—

"प्रिय ! तू क्यों इतना चिन्तित है !"

"क्योंकि राजा मुझपर सन्देह करने लगा है।"

"तो क्यों न सेनापतिका स्थान छोड़ कुसीनारा चले चलें। वहाँ अपनी जीविकाके लिए हमारे पास काफ़ी कर्मान्त (कामत, खेती) है।"

"इसका अर्थ है राजाको उसके शत्रुओंके हाथमें छोड़ देना। देखती नहीं मल्लिका! मगधराज अजातशत्रु कई बार काशीपर आक्रमण कर चुका है। एक बार हमने उसे बन्दी बना लिया, महाराजने उदारता दिखलाते हुए राजपुत्री वज्रासे ब्याहकर उसे छोड़ दिया। किन्तु अजातशत्रु सारे जम्बूद्वीपका चक्रवर्ती बनना चाहता है मल्लिका! वह इस ब्याहसे चुप होनेवाला नहीं है। उसके गुप्तचर राजधानीमें भरे हुए हैं। हमारे दूसरे पड़ोसी अवन्तिराजके दामाद वत्सराज उदयनकी नीयत भी ठीक नहीं है, वह भी सीमान्तपर तैयारी कर रहा है। ऐसी अवस्थामें श्रीवस्तीको छोड़ भागना भारी कायरता होगी मल्लिका!"

"और मित्र-द्रोह भी।"

"मुझे अपनी चिन्ता नहीं है मल्लिका! युद्धोंमें कितनी बार मैं मृत्युके मुखमें जाकर बाहर निकला हूँ, इसलिए किसी वक़्त मृत्यु यदि अपने जबड़ेके भीतर मुझे बन्द कर ले, तो कोई बड़ी बात नहीं।"

मालीकी लड़की मल्लिका—जो कि एक साधारण कमकरकी लड़की हो अपने गुणोंसे प्रसेनजित्‌की पटरानी बनी—अब नहीं थी नहीं तो हो सकता था राजाके कानोंको लोग इतना खराब न कर पाते। एक दिन राजाने सीमान्तके विद्रोहकी बात कहकर एक जगह बन्धुल मल्लके पुत्रोंको भेज दिया। जब वह सफल हो लौट रहे थे, तो धोखेसे उन्हींके खिलाफ़ बन्धुल मल्लको भेजा, इस प्रकार बाप और उसके दसों लड़के एक ही

जगह काम आये। जिस वक्त इस घटना की चिट्ठी मल्लिकाके पास आई, उस वक्त वह बुद्ध और उनके भिक्षु संघको भोजन कराने जा रही थी, उसकी दसों तरुण बहुओंने बड़े प्रेमसे कई तरहके भोजन तैयार किये थे। मल्लिकाने चिट्ठी पढ़ी, उसके कलेजेमें आग लग गई, किन्तु उसने उस वक्त अपने ऊपर इतना क़ाबू किया कि आँखोंमें आँसू क्या मुँहको म्लान तक नहीं होने दिया। चिट्ठीको आँचरके कोनेमें बाँध उसने सारे संघको भोजन कराया। भोजनोपरान्त बुद्धके उपदेशको श्रद्धासे सुना, तब अन्तमें चिट्ठीको पढ़ सुनाया। बन्धुल परिवारपर बिजली गिर गई। मल्लिकामें काफ़ी धैर्य था, किन्तु उन तरुण विधवाओंको धैर्य दिलाना बुद्धके लिए भी मुश्किल था।

समय बीतनेपर प्रसेनजित्को सच्ची बातें मालूम हुईं, उसे बहुत शोक हुआ, किन्तु अब क्या हो सकता था। प्रसेनजित्ने अपने मनकी सान्त्वनाके लिए बन्धुलके भागिनेय दीर्घ कारायणको अपना सेनापति बनाया।

(६)

जाड़ोंका दिन था, कपिलवस्तुके आसपासके खेतोंमें हरे-भरे गेहूँ, जौ, तथा फूली हुई पीली सरसों लगी थी। आज नगरको ख़ूब अलंकृत किया गया था, जगह-जगह तोरण-बन्दनवार लगे थे। संस्थागार (प्रजातन्त्र-भवन)को खास तौरसे सजाया गया था। तीन दिनकी भारी मेहनतके बाद आज ज़रा-सा अवकाश पा कुछ दास किसी घरके एक कोनेमें बैठे हुए थे। काकने कहा—

"हम दासोंका भी कोई जीवन है! आदमीकी जगह यदि बैल पैदा हुए होते, तो अच्छा था; उस वक्त हमें मनुष्य जैसा ज्ञान तो न होता।"

"ठीक कहते हो काक! कल मेरे मालिक दंडपाणिने लाल लोहा करके मेरी स्त्रीको दाग़ा दिया।"

"क्यों दाग़ा?"

"क्यों इनसे कौन पूछे। यह तो दासोंके पति-पत्नीके सम्बन्धको भी नहीं मानते। तिसपर यह दंडपाणि अपनेको निगंठ-श्रावक (जैन) कहता है—जो निगंठ कि भूमिके कीड़ेको हटानेके लिए अपने पास मोरपंखी रखते हैं। कसूर यही था कि मेरी स्त्री कई दिनसे सख्त बीमार हमारी बच्चीकी बेहोशीकी बात मुझसे कहने आई थी। बेचारी बच्ची आखिर बची भी नहीं। अच्छा हुआ मर गई, संसारमें उसे भी तो हमारे ही जैसा जीवन जीना पड़ता। सचमुच काक! हम दासोंका कोई जीवन नहीं है। इतना ही नहीं, हमारा क़साई स्वामी कह कर रहा है कि इस चहल-पहलके बीतते ही वह मेरी स्त्रीको बेच देगा।"

"तो, उस क़साई दंडपाणिको लोहेसे दाग़नेसे भी सन्तोष नहीं आया?"

"नहीं भाई! वह कहता है कि बारह वर्ष बाद उस बच्चीके उसे पचास निष्क (अशर्फियाँ) मिलते। मानों, हमने जान-बूझकर उसके पचास निष्क बर्बाद कर दिये।"

"और मानों, हम दासोंके पास माँ-बापका हृदय ही नहीं है।"

एक तीसरे वृद्ध दासने बीचमें कहा—"और एक यह भी दासी ही का लड़का है, जिसके स्वागतके लिए यह सारी तैयारी की जा रही है।"

"कौन दादा?"

"यही कोसल-राजकुमार विडूडभ।"

"दासीका पुत्र!"

"हाँ, महानाम शाक्यकी उस बुढ़िया दासीको नहीं जानता, हमारे जैसी काली नहीं—किसी शाक्यके वीर्यसे होगी।"

"और दासियोंमें उसकी क्या कमी है दादा!"

"हाँ, तो उसी दासीसे महानामकी एक लड़की पैदा हुई थी। बड़ी गौर, बड़ी सुन्दर देखनेमें शाक्यानी मालूम होती थी।"

"क्यों न मालूम होगी! और सुन्दर लड़कियोंको चाहे वह दासीकी भी हों, मालिक बड़े चावसे पालते-पोसते हैं।"

"कोसलराज प्रसेनजित् किसी शाक्य-कुमारीसे ब्याह करना चाहता था, किन्तु कोई शाक्य अपनी कन्याको देना नहीं चाहता था—शाक्य अपनेको तीनों लोकमें सबसे कुलीन मानते हैं काक! किन्तु साफ़ इन्कार करनेसे कोसलराज शाक्योंके गणपर कोप करता। इसीलिए महानामने अपनी इसी दासीकी लड़कीको शाक्य-कुमारी कहकर प्रसेनजित्को दे दिया। इसी लड़की वार्षभत्त्रियाका लड़का है यह विदूडभ राजकुमार।"

"लेकिन, अब तो वह भी हमारे खूनका वैसा ही प्यासा होगा, जैसे शाक्य।"

बाजे बजने लगे, शाक्योंने कोसल राजकुमारकी अगवानीकर सस्थागारमें बड़े धूम-धामसे उसका स्वागत किया, यद्यपि भीतरसे दासीपुत्र समझ सभी उसके ऊपर घृणा कर रहे थे।

विदूडभ अपने "मातुलकुलका" स्वागत ले, नाना महानामका आशीर्वाद पा खुशी-खुशी कपिलवस्तुसे विदा हुआ। दासी-पुत्रके पैरसे संस्थागार अपवित्र हो गया था, इसलिए उसकी शुद्धि होनी ज़रूरी थी, और कितने ही दास-दासी आसनोंको धूलसे धोकर शुद्ध करनेमें लगे थे। एक मुँहचली दासी धोते वक्त दासी-पुत्र विदूडभको दस हज़ार गाली देती जा रही थी। विदूडभका एक सैनिक अपने भालेको संस्थागारमें भूल गया था। लौटकर भाला लेते वक्त उसने दासीकी गालीको ध्यानसे सुना। धीरे-धीरे सारी बातका पता विदूडभको लगा। उसने संकल्प किया कि कपिलवस्तुको निःशाक्य करूँगा और आगे चलकर उसने यह कर दिखलाया। उसके क्रोधका दूसरा लक्ष्य था प्रसेनजित्, जिसने उसे दासीमें पैदा किया।

दीर्घकारायण अपने मामा और ममेरे भाइयोंके खूनको भूल नहीं सकता था। उधर बुढ़ापेमें अपनी सारी भूलोंका पश्चात्ताप करते प्रसेनजित् अधिकअधिके क विश्वास और मृदुता दिखलाना चाहता था। एक

दिन मध्याह्न भोजनके बाद उसे बुद्धका ख्याल आया। कुछ ही योजनोंपर शाक्योंके किसी गाँवमें ठहरे सुन, कारायण, और कुछ सैनिकोंको लेकर वह चल पड़ा। उसने बुद्धके वास-गृहमें जाते वक्त मुकुट, खड्ग आदि राजचिह्नोंको कारायणके हाथमें दे दिया। कारायण विदूडभसे मिला हुआ था, उसने एक रानीको छोड़, विदूडभको राजा घोषितकर, श्रावस्तीका रास्ता लिया।

कितनी ही देर तक उपदेश सुन, प्रसेनजित् बाहर निकला, तो रानीने बिलख-बिलखकर सारी बात बतलाई। वहाँसे प्रसेनजित् अपने भांजे मगध-राज अजातशत्रुसे मदद लेनेके लिए राजगृहकी ओर चला। बुढ़ाईमें कई सप्ताह पैदल चलनेसे रास्ते हीमें उसका शरीर जवाब दे चुका था। शामको जब राजगृह पहुँचा, तो नगरद्वार बन्द हो चुका था। द्वारके बाहर उसी रात एक कुटियामें प्रसेनजित् मर गया। सबेरे रानीका विलाप सुन अजातशत्रु और वज्रा दौड़ आये, किन्तु उस मिट्टीको ठाट-बाटसे जलानेके सिवाय वह क्या कर सकते थे।

बन्धुलके खूनका यह बदला था, दासताके दुष्कर्मका यह परिणाम था।*

---

*आजसे सौ पीढ़ी पहिलेकी यह एक ऐतिहासिक कहानी है। उस वक्त तक सामाजिक विषमतायें बहुत बढ़ चुकी थीं। धनी व्यापारी वर्ग समाजमें एक महत्त्वपूर्ण स्थान ग्रहण कर चुका था। परलोकका रास्ता बतलानेवाले, नरकसे उद्धार करनेवाले कितने ही पथप्रदर्शक पैदा हो गये थे; किन्तु गाँव-गाँवमें दासताके नर्कको धधकता देखकर भी सबकी आँखें ऊपरसे मुँदी हुई थीं।

१०—नागदत्त

काल—३३५ ई० पू०

(१)

"उचितपर हमें ध्यान देना चाहिए, विष्णुगुप्त ! मनुष्य होनेसे हमारे कुछ कर्त्तव्य हैं, इसलिए हमें उचितका ख्याल रखना चाहिए।"

"कर्त्तव्य धर्म है न ?"

"मैं धर्मको ढोंग समझता हूँ। धर्म केवल परधन-अपहारकोंको शान्तिसे परधन उपभोग करनेका अवसर देनेके लिए है। धर्मने क्या कभी ग़रीबों और निर्बलोंकी सुध ली ! विश्वकी कोई जात नहीं है, जो धर्मको न मानती हो, किन्तु क्या कभी उसने ख्याल किया कि दास भी मनुष्य हैं। दासोंको छोड़ दो, अदास स्त्रियोंको ले लो, क्या धर्मने कभी उनपर न्याय किया ! धन चाहिए, तुम दो, चार, दस, सौ स्त्रियोंको विवाहिता बना सकते हो। वह दासीसे बढ़कर नहीं होंगी, और धर्म इसे ठीक समझता है। मेरा उचितका मतलब धर्मसे उचित नहीं है, बल्कि स्वस्थ मानवका मन जिसे उचित समझता है।"

"तो मैं कहता हूँ, जो आवश्यक है वही उचित है।"

"तब तो उचित अनुचितका भेद ही नहीं रह जायेगा।"

"भेद रहेगा मित्र ! आवश्यकसे मतलब मैं सिर्फ़ एकके लिए जो आवश्यक हो, उसे नहीं लेता।"

"ज़रा साफ़ करके कह विष्णुगुप्त !"

"यही हमारे तक्षशिला-गन्धारको ले ले भाई ! हमारे लिए अपनी स्वतन्त्रता कितनी प्रिय और उचित भी है; किन्तु हमारा देश इतना

छोटा है, कि वह बड़े शत्रुका मुक़ाबिला नहीं कर सकता। जब तक मद्र, पश्चिम गन्धार जैसे छोटे-छोटे गण हमारे पड़ोसी थे तब तक चैनसे रहे—कभी-कभी लड़ाई हो पड़ती थी, किन्तु उसका परिणाम कुछ आदमियोंका बलि-मात्र होता था। हमारी स्वतन्त्रताका अपहरण नहीं; क्योंकि तक्षशिलाके काँटेदार आहारको पचाना किसीके लिए आसान न था, किन्तु जब पार्शव (ईरानी) पश्चिमी पड़ोसी बने, तो हमारी स्वतन्त्रता उनकी कृपापर रह गई। हमारी स्वतन्त्रताके लिए क्या आवश्यक है? यही कि हम पार्शवों जितने मज़बूत बनें।"

"और मज़बूत बननेके लिए क्या करें?"

"छोटेसे गणसे काम नहीं चलेगा, हमें छोटे-छोटे जनपदोंकी जगह विशाल राज्य-क़ायम करना चाहिए।"

"उस विशाल राज्यमें छोटे-छोटे जनपदोंका क्या स्थान रहेगा?"

"अपनेपनका ख्याल।"

"यह गोलमोल शब्द है विष्णुगुप्त! दास कभी स्वामीमें अपनेपनका ख्याल रखता है?"

"तो मित्र नागदत्त! स्थान पाना इच्छा या ख्यालपर निर्भर नहीं करता, वह निर्भर करता है योग्यतापर; यदि तक्षशिला-गन्धारमें योग्यता होगी, तो वह उस विशाल राज्यमें उच्च स्थान ग्रहण करेगा, नहीं तो मामूली।"

"ग़ुलामका स्थान?"

"किन्तु मित्र! यह ग़ुलामका स्थान भी उससे कहीं अच्छा होगा, जो कि पश्चिमी गन्धारको दारयोशके राज्यमें मिला हुआ है। अच्छा, मेरी औषधिको जाने दे, तू ही बतला हमें अपनी स्वतन्त्रताको क़ायम रखनेके लिए क्या करना चाहिए, जब कि यह निश्चित है, कि हम एक क्षुद्र जनपदके रूपमें अपने अस्तित्वको क़ायम नहीं रख सकते?"

"मैं कहूँगा विष्णुगुप्त! हमें अपने गण-स्वातन्त्र्यको क़ायम रखना चाहिए और किसी राजाके आधीन नहीं बनना चाहिए। मैं मानता हूँ,

हम एक क्षुद्रगणके रूपमें अपनी स्वतन्त्रता नहीं क़ायम रख सकते, इसीलिए हमें सारे उत्तरापथ (पंजाब) के गणोंका एक संघ संगठित करना चाहिए।"

"उस संघमें, प्रत्येक गण स्वतन्त्र रहेगा, या संघ सर्वोपरि रहेगा?"

"मैं समझता हूँ, जैसे हम सब व्यक्तियोंके ऊपर गण हैं, उसी तरह गन्धार, मद्र, मल्ल, शिवि आदि सभी गणोंके ऊपर संघको मानना होगा।"

"इसे कैसे मनवायेंगे? आखिर गणके बाहरी शत्रुओंकी रक्षाके लिए हमें सेना रखनी होगी। बलि (कर) लेनी होगी।"

"जैसे हम गणके भीतरके लोगोंसे कराते हैं, वैसे संघके भीतर गणोंसे करा सकते हैं।"

"गणके भीतर हमारा पहलेसे चला आया एक जन एक खूनका परिवार है, अनादिकालसे इस परिवारको गण-नियमके माननेकी आदत बन गई है; किन्तु यह गणोंका संघ नई चीज़ होगा, यहाँ खूनका सम्बन्ध नहीं बल्कि खूनका झगड़ा प्रतिद्वन्द्विता अनादिकालसे चली आई है, फिर कैसे हम संघके नियमको मनवा सकते हैं? यदि मित्र! तू इसपर व्यवहारकी दृष्टिसे विचारता, तो कभी इसके लिए न कहता। संघकी बात गण तभी मानेंगे, जब कि उन्हें वैसा माननेके लिए मजबूर किया जायेगा। और वह मजबूर करनेवाली शक्ति कहाँसे आयेगी?"

"मैं समझता हूँ, उसे भीतरसे पैदा करनी चाहिए।"

"मैं कहता हूँ, भीतरसे पैदा होती तो अच्छी बात है, किन्तु पार्शवोंके प्रहारको अनेक बार सहकर हमने देख लिया कि वह भीतरसे ही नहीं पैदा की जा सकती, इसीलिए हमें जैसे हो वैसे उसे पैदा करना चाहिए।"

"राजा स्वीकार कर भी?"

"सिर्फ़ तक्षशिलाका नहीं, तक्षशिला-गन्धार जैसे अनेक जनपदोंका एक राजा—चक्रवर्ती—भी स्वीकार करना हो, तो हर्ज नहीं।"

"तो फिर पार्शव दारयोशको ही क्यों न राजा मान लें।"

"पार्शव दारयोश् हमारा नहीं है, मित्र ! यह तू खुद जानता है हम जम्बूद्वीपके हैं।"

"अच्छा, तो नन्दको।"

"यदि हम उत्तरापथ (पंजाब) के सारे गणोंका संघ नहीं बना सकते, तो हमें नन्दको स्वीकार करनेमें भी उज्र नहीं होना चाहिए। पश्चिमी गन्धारकी भाँति दारयोश्का दास बनना अच्छा है, या अपने एक जम्बूद्वीपीय चक्रवर्तीके आधीन रहना अच्छा है ?"

"तूने विष्णुगुप्त ! राजाका राज्य अभी देखा नहीं है, देखता तो समझता, कि वहाँ साधारण जन दाससे बढ़कर हैसियत नहीं रखते।"

"मैं मानता हूँ, मैंने पश्चिमी गन्धार छोड़ किसी राजाके राज्यमें पैर नहीं रखा, किन्तु देश-भ्रमणकी इच्छा मेरे दिलमें है। मैं तेरी तरह बीच-बीचमें चक्कर काटनेकी जगह अध्ययन समाप्तकर एक ही बार उसे करना चाहता हूँ। किन्तु, इससे मेरे इस विचारमें कोई अन्तर नहीं आ सकता, कि हमें यदि विदेशियोंकी घृणित दासतासे बचना है, तो छोटी सीमाओंको तोड़ना होगा। कोरोश् और दारयोश्की सफलताकी यही कुंजी है।"

"उन्हें कितनी सफलता मिली, इसे मैं नज़दीकसे देखना चाहता हूँ—"

"नज़दीकसे !"

"हाँ, मैंने प्राचीमें मगध तक देख लिया, और देख लिया नन्दका राज्य जो हमारे पूर्व गन्धार (तक्षशिला) की तुलनामें नर्क है; मज़बूत वह ज़रूर है ग़रीबोंको पीस देनेके लिए, किन्तु मेहनत करनेवाले लोग—कृषक, शिल्पी, दास—कितने पीड़ित हैं, इसे ब्यान नहीं कर सकता।"

"यह इसीलिए, कि नन्दके राज्यमें तक्षशिला जैसा कोई स्वाभिमानी स्वतन्त्रताप्रेमी गण नहीं सम्मिलित हुआ।"

"सम्मिलित हुआ है विष्णुगुप्त ! लिच्छवियोंका गण हमारे गन्धारसे भी ज़बर्दस्त था, किन्तु आज वैशाली मगधकी चरणदासी है, और लिच्छवि मगध-शिकारीके ज़बर्दस्त कुत्ते—इससे बढ़कर कुछ नहीं। वैशालीको जाकर

देखो, उजाड़ हो रही है, पिछले डेढ़ सौ वर्षोंमें उसकी जनसंख्या तिहाई भी नहीं रह गई। शताब्दियोंसे अर्जित स्वतन्त्रता, स्वाभिमानके भाव अब मगध-राजके लड़ाके सैनिक बनानेमें काम आ रहे हैं। एक बार जहाँ, किसी बड़े राज्यके हाथमें अपनेको दे दिया, तो फिर उसके हाथसे छूटना मुश्किल है।"

"मित्र नागदत्त ! मैं भी किसी वक्त तेरी ही तरहसे विचारता था, किन्तु मैं समझता हूँ, अब छोटे-छोटे गणोंका युग बीत गया, और बड़ा गण या संघ क़ायम करना सपना मात्र है, इसीलिए मैं समयकी आवश्यकता-को उचित कहता हूँ। किन्तु, यह बतला अब क्या पश्चिमकी तैयारी है ?"

"हाँ, पहिले पार्शवोंके देशको, फिर हो सका तो देखना चाहता हूँ, यवनों (यूनानियों)को भी। हमारी तरह उनके भी गण हैं; किन्तु, देखना है, कैसे उन्होंने महान् दारयोश् तथा उनके वंशजोंको अपने मनसूबेमें सफल नहीं होने दिया, इसे मैं अपनी आँखों देखना चाहता हूँ।"

"और मैं भी चल रहा हूँ मित्र ! प्राचीको देखूँ मगधमें सारे जम्बू-द्वीपको एक करनेकी शक्ति है या नहीं। चलो हमलोग पढ़ाई समाप्तकर, धन-अर्जन, परिवार-पोषणकी जगह यही काम करें। लेकिन मित्र ! तूने जो साथ ही साथ वैद्यकी विद्या पढ़ी; अच्छा किया; मैं पछताता हूँ; यात्रा करनेवालोंके लिए यह बड़े लाभकी विद्या है।"

"किन्तु, तू उससे भी लाभकी विद्या ज्योतिष और सामुद्रिक तन्त्र-मन्त्र जानता है।"

"तू जानता है मित्र ! यह झूठी विद्याएँ हैं।"

"लेकिन, विष्णुगुप्त चाणक्यको झूठी-सच्ची विद्याओंसे क्या वास्ता ? उसके लिए तो जो आवश्यक है, वह उचित है।"

बचपनसे साथ खेलते, साथ पढ़ते तक्षशिलाके नागदत्त काप्य और विष्णुगुप्त चाणक्यके विद्यार्थी जीवनकी यह अन्तिम भेंट थी। एकसे अधिक बार पार्शवोंके हाथमें चली गई तक्षशिलाकी स्वतन्त्रताको बचानेके लिए दोनों अपने-अपने विचारके अनुसार कोई रास्ता ढूँढ़ रहे थे।

(२)

चारों ओर छोटे-छोटे नंगे—वृक्ष वनस्पति-शून्य—पहाड़ थे, वहाँ हरियाली देखनेको आँखें तरस रही थीं। पहाड़ोंके बीचमें विस्तृत उपत्यका, जिसमें भी जल और वनस्पतिका चिह्न शायद ही कहीं दिखाई पड़ता हो, इसी उपत्यकाके किनारे-किनारे कारवाँका रास्ता था, जिसपर सदा लोग आते-जाते रहते थे, और कारवाँ और उनके पशुओंके आरामके लिए पान्थशालाएँ (सराएँ) बनी हुई थीं। आस-पासके भूखंडके देखनेसे आशा नहीं होती, कि इन पान्थशालाओंमें हर तरहका आराम है। न जाने कहाँसे इतनी चीज़ें इस मरुभूमिमें प्रकट हो जाती थीं।

पड़ावोंमें पान्थशालाएँ एकसे अधिक थीं, जिनमें कुछ साधारण राजकर्मचारियों और सैनिकोंके लिए थीं, कुछ व्यापारियोंके लिए और कमसे कम एक तो राजाका पान्थ-प्रासाद होता था, जिसमें शाह और उसके क्षत्रप विश्राम करते थे। आज इस पड़ावके पान्थ-प्रासादमें कोई ठहरा हुआ था, उसकी अस्तबलोंमें घोड़े बँधे थे, आँगनमें बहुतसे दास-कर्मचर दिखलाई पड़ते थे; किन्तु सबके चेहरेपर उदासी थी। इतने आदमियोंके होनेपर भी पान्थ-प्रासादमें ग़ज़बकी नीरवता छाई हुए थी। इसी समय फाटकसे उद्विग्नमुख तीन राजकर्मचारी निकले, और वह साधारण पान्थ-शालाओंमें घुस गये। उनके बहुमूल्य वस्त्रों, रोबीले मुखको देखते ही लोग भय और सम्मानके साथ एक ओर खड़े हो जाते। वह पूछ रहे थे, कि वहाँ कोई वैद्य है। अन्तमें साधारण जनोंकी पान्थशालामें पता लगा, कि उसमें एक हिन्दू वैद्य ठहरा हुआ है। वर्षा उस भूमिमें बहुत कम होती है, और उसकी ऋतु कबकी बीत चुकी थी। सेब, अंगूर, खर्बूज़े जैसे फल अपने सस्तेपनके कारण इस पान्थशालामें बिक रहे थे। राजकर्मचारी जब वैद्यके सामने पहुँचा, तो वह एक बड़ेसे खर्बूज़े (सर्दे)को काटकर खा रहा था, उसके आस-पास उसीकी तरहके भिखमंगों जैसे भेषमें

कितने ही और ईरानी बैठे थे, जिनके सामने भी वैसे ही खर्बूज़े रखे हुए थे।

राजकर्मचारीको देखते ही, भिखमंगे भयभीत हो इधर-उधर भाग खड़े हुए। एक आदमीने वहाँ खड़े आदमीकी ओर इशारा करके कहा—

"स्वामी ! यह हिन्दू वैद्य है।"

वैद्यके मलिन कपड़ोंकी ओर देखकर राजकर्मचारीका मुँह पहिले बिगड़सा गया। फिर उसने उसके चेहरेकी ओर देखा। वह उन कपड़ोंके लायक़ न था, वहाँ भय, दीनताका नाम न था। राजकर्मचारीपर उन नीली आँखोंसे निकलती किरणोंने कुछ प्रभाव डाला, उसके ललाटकी सिकुड़न चली गई, और कुछ शिष्ट-स्वरमें उसने कहा—

"तुम वैद्य हो।"

"हाँ!"

"कहाँ के?"

"तक्षशिलाका।"

तक्षशिलाका नाम सुनकर राजकर्मचारी और नम्र हो गया, और बोला—

"हमारे क्षत्रप—वक्षु-सोग्दके क्षत्रपकी स्त्री शाहंशाहकी बहिन बीमार हैं, क्या तुम उनकी चिकित्सा कर सकते हो?"

"क्यों नहीं, मैं वैद्य जो हूँ।"

"किन्तु, यह तुम्हारे कपड़े"

"कपड़े नहीं चिकित्सा करेंगे, मैं चिकित्सा करूँगा।"

"किन्तु, यह ज्यादा मैले हैं।"

"आज इन्हें बदलने ही वाला था। एक क्षणके लिए ठहरें"—कह वैद्यने एक धुले ऊनी चोगे—जो पहिलेसे थोड़ा ही अधिक साफ़ था—को पहिना, और हाथमें दवाओंकी पोटलियोंसे भरी एक चमड़ेकी थैली ले राजकर्मचारीके साथ चल पड़ा।

कहनेको यह पान्थशाला थी, किन्तु इसके आँगनमें गदहोंकी न वह लीद थी, न भिखमंगोंकी गुदड़ियोंके जूएँ। यहाँ सभी जगह सफ़ाई थी। ऊपर चढ़नेकी सीढ़ीपर रंगबिरंगे कामवाले क़ालीन बिछे हुए थे, सीढ़ीकी बाहोंमें सुन्दर कारुकार्य थे घरोंमें भी उसी तरह नीचे महार्घ क़ालीन थे, दर्वाज़ोंपर सूक्ष्म दुकूलके पर्दे लटक रहे थे, जिनके पास संगमर्मरकी मूर्त्तिकी भाँति नीरव सुन्दरियाँ खड़ी थीं। एक द्वारपर जाकर कर्मचारीने वैद्यको खड़ा रहनेका इशारा किया, और एक सुन्दरीके कानोंमें कुछ कहा। उसने बहुत धीरेसे द्वारको खोला। भीतरके पर्देके कारण वहाँ कुछ दिखलाई न पड़ता था। कुछ क्षणमें ही सुन्दरी लौट आई, और उसने वैद्यको अपने साथ चलनेको कहा।

भीतर घुसते ही वैद्यने मधुर सुगन्धसे सारे कमरेको वासित पाया, फिर जल्दीमें आसपास नज़र दौड़ाई। उस कमरेके सजानेमें कमाल किया गया था। क़ालीन, पर्दे, मसनद, दीपदान, चित्र, मूर्त्तियाँ सभी ऐसी थीं, जिन्हें वैद्यने अभी तक न देखा था। सामने एक कोमल गद्दी थी, जिसपर दीवारके पास दो-तीन मसनदें रखी थीं, जिनमेंसे एकके सहारे एक अधेड़ उम्रका स्थूलकाय पुरुष बैठा था। उसकी कान तक फैली बड़ी-बड़ी मूछोंके भूरे बालोंमें कुछ सफ़ेद हो चले थे। उसकी बड़ी पीली आँखोंपर अतिजागरण और तीव्र चिन्ताकी छाप थी। उसकी बग़लमें एक अनुपम सुन्दरी बैठी थी, जिसका वर्ण ही श्वेत मक्खनसा नहीं था, बल्कि मालूम होता था, वह उससे अधिक कोमल है, उसके श्वेत कपोलोंपर हल्कीसी लाली थी, जो अब धूमिल हो गई थी। उसके पतले ओठोंकी चमकती लालीको शुक-चंचुसे उपमा नहीं दी जा सकती। उसकी पतली धनुषाकार भौंहोंमें मृदु पीत रोम थे, और नीचे कानोंके पास तक चले गये दीर्घपक्ष्मवाले नील नेत्र, जो सूजे और आरक्तसे थे। उसके शिरपर मानों सुवर्णके सूक्ष्म तन्तुओंको बलित करके सजाया गया था। उसके शरीरमें एक पूरे बाँहकी हरित दुकूलकी कंचुकी, और नीचे लाल दुकूलका

सुत्थन था। उस सौन्दर्यमय कोमल शरीरपर मणिमुक्ताके आभूषण केवल भार मालूम होते थे। इन दोनोंके अतिरिक्त कमरेमें कितनी ही और सुन्दरियाँ खड़ी थीं, जिनके चेहरे और विनीत भावको देखनेसे वैद्यको समझनेमें देर नहीं हुई कि यह क्षत्रपके अन्तःपुरकी परिचारिकाएँ हैं।

पुरुष—जो कि क्षत्रप ही था—ने वैद्यको एक बार शिरसे पैर तक निहारा, किन्तु उसकी दृष्टिको उसके नीले नेत्रोंने अपनी ओर खींच लिया। उसे यह समझनेमें देर न लगी कि यदि मैं अपने कपड़ोंको इसी समय पहना दूँ, तो यह पर्शुपुरी (पर्सेपोली)के सुन्दरतम तरुणोंमें गिना जायेगा। क्षत्रपने विनीत स्वरमें कहा—

"आप तक्षशिलाके वैद्य हैं?"

"हाँ, महाक्षत्रप!"

"मेरी स्त्री बहुत बीमार है। कलसे उसकी अवस्था बहुत खराब हो गई है। मेरे अपने दो वैद्योंकी दवाओंका कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा है।"

"मैं महाक्षत्रपकी पत्नीको देखनेके बाद आपके वैद्योंसे बात करना चाहूँगा।"

"वह यहाँ हाज़िर रहेंगे। अच्छा तो भीतर चलें।"

श्वेत भीतसे जैसे ही श्वेत पर्देको हटाया गया, वहाँ भीतर जानेका द्वार था। क्षत्रप और षोडशी आगे-आगे चलीं, उनके पीछे-पीछे वैद्य था। भीतर हाथीदाँतके पावोंका एक पलंग बिछा था, जिसपर फेनसदृश श्वेत कोमल शय्यापर रोगिणी सोई हुई थी, उसका शरीर श्वेत कदली-मृग (समूर)-चर्मके प्रावरणसे ढँका था, और सिर्फ़ चिबुकके ऊपरका भाग भर खुला था। क्षत्रपको आते देख परिचारिकाएँ अलग खड़ी हो गईं। वैद्यने नज़दीकसे जाकर देखा, क्षत्रपानीका चेहरा उस षोडशीसे हूबहू मिलता था, किन्तु उसके तरुण-सौन्दर्यकी जगह यहाँ प्रौढ़ावस्थाका प्रभाव और उसपर चिररोगके झंझावातका असर था। वह लाल ओठ अब पीले थे, उसके मांसल कपोल सूखकर नीचे धँस गये थे। आँखें बन्द

तथा कोटरलीन थीं; हाँ पीली भौंहोंकी कमान अभी भी तनी हुई थी। ललाट-की स्निग्ध श्वेतिमा रूखी और निस्तेज हो गई थी।

क्षत्रपने मुँह नज़दीक ले जाकर कहा—

'अफ़्शा!"

रोगिणीने ज़रासी आँखें खोलीं, फिर बन्द कर लिया।

वैद्यने कहा—"मूर्छा, आंशिक मूर्छा।" फिर उसने हाथोंको निकालकर नाड़ी देखी, मुश्किलसे उसका पता लग रहा था, शरीर क़रीब-क़रीब ठंडा था। क्षत्रपने वैद्यके चेहरेको गम्भीर होते देखा। ज़रासा सोचकर वैद्यने कहा—

"थोड़ीसी द्राक्षी सुरा, पुरानी जितनी मिल सके।"

क्षत्रपके पास उसकी कमी न थी, इस यात्रामें भी। एक काँचकी श्वेत सुराही रुधिर जैसी लाल द्राक्षी सुरासे भरी और एक मणि-जटित सुवर्ण-चषक आया। वैद्यने एक पोटली खोली और दाहिने हाथका काली अँगुलीके बढ़े नखसे एक रत्ती कोई दवा निकाल रोगिणीका मुँह खोलनेके लिए कहा। क्षत्रपको मुँह खोलनेमें दिक्कत नहीं हुई। उसने दवा मुँहमें डाल एक घूँट सुरा मुँहमें डाल दी, रोगिणीको घोंटते देख वैद्यको सन्तोष हो गया। उसने क्षत्रपसे कहा—

"अब मैं बाहर महाक्षत्रपके वैद्योंसे मिलना चाहता हूँ, थोड़ी देरमें महाक्षत्रपानी आँख खोलेंगी, उस वक़्त मेरे आनेकी ज़रूरत होगी।"

दूसरे कमरेमें जाकर वैद्यने पार्श्व वैद्योंसे मन्त्रणा की। उन्होंने, सोग्दसे चलनेके समय जो साधारण ज्वर आया था, तबसे लेकर आज तककी अवस्थाका सारा वर्णन किया इसी वक़्त परिचारिकाने आकर सूचना दी, कि स्वामिनी महाक्षत्रपको बुलाती हैं। महाक्षत्रपके चेहरेपर नया प्रकाशसा दौड़ गया, वह वैद्यको लेकर भीतर गया। क्षत्रपानीकी आँखें पूरी तौरसे खुली हुई थीं। उसके चेहरेमें कुछ जीवनका चिह्न दिखलाई दे रहा था। क्षत्रपानीने धीरेसे किन्तु संयत स्वरमें कहा—

"मैं जान रही हूँ, तुम बहुत खिन्न हो, मैंने यही कहनेके लिए बुलाया, कि मैं अच्छी हो जाऊँगी; मैं अनुभव कर रही हूँ, मुझमें शक्ति आ रही है।"

क्षत्रपने कहा—"यही बात मुझसे यह हिन्दू वैद्य भी कह रहे थे।"

चेहरेको और उज्ज्वल करते हुए क्षत्रपानीने कहा—"हिन्दू वैद्य जानते हैं, मेरी बीमारीको; मेरी बीमारी खतम हो चुकी है, क्यों वैद्य!"

"हाँ, बीमारी खतम हो गई, किन्तु महाक्षत्रपानीको थोड़ासा विश्राम करना पड़ेगा। मैं यही सोच रहा हूँ, कि कितनी जल्दी आपको पर्शुपुरी जाने लायक़ कर दिया जाय। मेरे पास अद्भुत रसायन हैं, हिन्दुओंके रसायनको मैं दे रहा हूँ। थोड़ा-थोड़ा द्राक्षा और दाड़िमके रसको पीना होगा।"

"वैद्य! तुम रोगको पहचानते हो, दूसरे तो गदहे हैं गदहे। तुम जैसा कहोगे, वैसा ही करूँगी। रोशना!"

षोडशी सामने खड़ी होकर बोली—

"माँ!"

"बेटी! तेरी आँखें गीली हैं, वे वैद्य मुझे मार डालते, किन्तु अब चिन्ता नहीं। हिन्दू वैद्यको अहुर-मज़्दाने भेजा है, इन्हें तकलीफ़ न होने देना। मुझे जो खाने-पीनेको वैद्य कहें, तू अपने हाथसे देना।"

वैद्य रोशनाको कुछ बातें बतलाकर बाहर निकला। क्षत्रपका चेहरा खिला हुआ था। वैद्यने कुछ दवाओंको भोजपत्रके टुकड़ोंमें बाँधकर, क्षत्रपके हवाले कर जब अपनी पान्थशालामें जाना चाहा, तो क्षत्रपने कहा—

"तुमको हमारे साथ रहना चाहिए।"

"किन्तु, मैं दर्बारमें रहनेका तरीक़ा नहीं जानता।"

"तो भी मनुष्यके रहनेका तरीक़ा तुम अच्छी तरह जानते हो। तरीक़ा जाति-जातिका अलग होता है।"

"मेरी रहन-सहन से आपके परिचारिकोंको कष्ट होगा।"

"मैं एक बिल्कुल अलग कमरा, पास ही दे रहा हूँ। तुम्हारे पास रहनेसे हमें सन्तोष रहेगा।"

"महाक्षत्रपानीकी अब कोई चिन्ता न करें। वैद्योंने बीमारीको ठीकसे पहिचाना नहीं था। मैं दो घंटा और न आया होता, तो फिर आशा न थी। किन्तु अब उनकी बीमारी चली गई समझें।"

क्षत्रपके आग्रहपर वैद्यने वहीं एक कमरेमें रहना स्वीकार किया।

क्षत्रपानी चौथे दिनसे बैठने लगीं, और उनके चेहरेकी सिकुड़नें बड़ी तेज़ीसे मिटने लगीं। सबसे ज्यादा प्रसन्न थी रोशना। दूसरे ही दिन उसने क्षत्रपके दिये महार्घ दुशालेके चोगेको लाकर अपने हाथों वैद्यको प्रदान किया। उस चोगे, उस सुनहले कमरबन्द, उस स्वर्णखचित जूतोंके साथ अब वह भिखमंगोंमें बैठ खर्बूज़ा खानेवाला आदमी न था।

क्षत्रपानी अब हल्का आहार ग्रहण करने लगी थीं। छठें दिन शामको उन्होंने वैद्यको बुला भेजा। वैद्य उन्हें बिल्कुल नया पुरुष मालूम होता था, जान पड़ा उनके भतीजोंमेंसे कोई आ रहा है। पास आनेपर बैठनेके लिए कहा, और बैठ जानेपर बोलीं—

"वैद्य! मैं तुम्हारी बड़ी कृतज्ञ हूँ। इस निर्जन बयाबानमें मज़्दाने तुम्हें मुझे बचानेके लिए भेजा। तुम्हारा जन्मनगर क्या है?"

"तक्षशिला।"

"तक्षशिला! बहुत प्रसिद्ध नगर है, विद्याके लिए प्रख्यात है। तुम उसके रत्न हो।"

"नहीं, मैं उसका एक अति साधारण नया वैद्य हूं।"

"तुम तरुण हो निस्सन्देह, किन्तु तरुणाई और गुणसे वैर नहीं है। तुम्हारा नाम क्या है, वैद्यराज?"

"नागदत्त काप्य।"

"पूरा नाम बोलना मेरे लिए मुश्किल होगा, नाग कहना काफ़ी होगा?"

"काफ़ी होगा, महाक्षत्रपानी!"

"तुम कहाँ जा रहे हो?"

"अभी तो पर्शुपुरी (पर्सेपोलीस)।"

"फिर ?"

"चलने, यात्रा करनेकी इच्छासे ही मैंने घर छोड़ा है।"

"हम भी पर्शुपुरी जा रहे हैं, तुम हमारे साथ चलो। हम तुम्हारा हर तरहसे ख़्याल रखेंगे। रोशना! तू वैद्यराजके आरामका खुद ख्याल किया कर, दास बेपर्वाही करेंगे।"

"नहीं, माँ! मैं खुद देखती रहती हूँ, मैंने सोफ़ियाको इस काममें लगा दिया है।"

"सोफ़िया यवनी (यूनानी) जिसे मेरे भाईने यहाँ मेरे लिए भेजा था ?"

"हाँ, माँ! तुम्हारा तो कोई काम न था, और लड़की बहुत होशियार मालूम होती है, इसलिए मैंने उसे ही लगा दिया है।"

"तो वैद्यराज! हमारे साथ पर्शुपुरी चलना होगा, मैं तुम्हारी इच्छाके प्रतिकूल कुछ न करूँगी, किन्तु मैं चाहूँगी तुम हमारे परिवारके वैद्य रहो।"

नागदत्त कुछ देर बैठकर अपने कमरेमें चला गया।

(३)

संसारके इतने विशाल राज्यकी राजधानी इन नंगे, वृक्ष-वनस्पतिहीन पहाड़ोंमें, इतनी प्राकृतिक दरिद्रताके साथ होगी, नागदत्तको इसका ख्याल भी न था। पर्शुपुरी महानगरी थी। राजप्रासादके विशाल चमकते पाषाण-स्तम्भों, उसके गगनचुम्बी शिखरोंको बाहरसे देखनेपर ही शाहंशाही वैभवका पता लगता था, नगरकी समृद्धि भी उसीके अनुरूप थी; किन्तु, यह सब मनुष्यके हाथोंका निर्माण था। प्रकृतिने अपनी ओरसे सचमुच ही उसे अत्यन्त दरिद्र बनाया था।

पर्शुपुरी और शाहंशाहके वैभवको देखनेके लिए शाहंशाहकी बहिन अफ़शाके आश्रयसे बढ़कर अच्छा अवसर नहीं मिल सकता था। क्षत्रपानीने पर्शुपुरी पहुँचकर नागदत्तके आरामका बहुत ध्यान रखा, और जब उसने दक्षिणाके लिए ज़ोर दिया, तो वैद्यने सोफ़ियाको माँग लिया।

जब सोफ़ियाकी टूटी-फूटी पारसीको समझना मुश्किल हो रहा था, उस वक्त भी नागदत्तको इतना पता लग गया था, कि उन चमकीले नेत्रोंके भीतर तीक्ष्ण प्रतिभा छिपी हुई है। जब वह उसकी हो गई—हाँ, दासीके तौरपर, तो नागदत्तने उसे कभी दासीके तौरपर स्वीकार नहीं किया, और धीरे-धीरे-भाषाका परिचय भी और अधिक बढ़ने लगा। नागदत्तने स्वयं यवनानी (यूनानी) लिपि सीखी, और सोफ़िया उसे बड़े परिश्रमसे एथेन्स-की भाषा सिखाने लगी। साल बीतते-बीतते वह उसमें निपुण हो गया। एक दिन सोफ़ियाने तरुण वैद्यके प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा—

"भाग्य या संयोग भी कैसी चीज़ है, मुझे कभी आशा नहीं हुई थी, कि मैं तुम्हारे जैसे कोमल स्वभावके स्वामीकी दासी बनूँगी।"

"नहीं, सोफ़िया! तुम यदि क्षत्रपानीके साथ रहती, तो तुम्हें शायद ज्यादा आराम होता। लेकिन सोफ़ी! मुझे स्वामी न कहो। दासप्रथाका नाम सुनकर मुझे ज्वर आता है।"

"किन्तु मैं तुम्हारी दासी हूँ।"

"तुम दासी नहीं हो, मैंने क्षत्रप-दम्पतीको सूचित कर दिया है, कि सोफ़ियाको मैंने दासतासे मुक्त कर दिया।"

"तो मैं अब दासी नहीं हूँ!"

"नहीं, अब तुम मेरी ही तरह स्वतन्त्र हो, और जहाँ चाहो, मैं कोशिश करूँगा, तुम्हें वहाँ पहुँचानेकी।"

"किन्तु, यदि मैं तुम्हारे पास और रहना चाहूँ, तो बाहर तो नहीं करोगे।"

"यह बिल्कुल तुम्हारी इच्छापर है।"

"दासता मनुष्यको कितना दबा देती है! पिताके घरमें मैंने अपने दासोंको देखा था, वह हँसते थे, आमोद-प्रमोद करते थे; मैंने कभी नहीं समझा था कि उस हँसीके भीतर इतनी व्यथा छिपी हुई है। जब मैं स्वयं दासी हुई, तब मुझे अनुभव हुआ, कि दासता कैसा नर्क है।"

"तुम कैसे दासी हुई, सोफ़ी! यदि कष्ट न हो तो बताओ।"

"मेरे पिता एथेन्स नगरीके एक प्रमुख नागरिक थे। जब मक़दूनियाके राजा फ़िलिप्‌ने हमारी नगरीका विजय किया, तो पिता परिवारके व्यक्तियों-को ले नावसे एसिया भाग आये। हमने समझा था, यहाँ हमें शरण मिलेगी, किन्तु जिस नगरीमें हम उतरे, चन्द महीने बाद ही पार्शवोंने उसपर आक्रमण कर दिया। नगरका पतन हुआ, और उस भगदड़में कोई कहीं गया, कोई कहीं, कितने नागरिकोंको पार्शवोंने बन्दी बनाया, मैं भी उन्हीं बन्दियोंमें थी, और अच्छे रूप और तरुणाईके कारण मुझे सेनापतिके पास भेजा गया, सेनापतिसे शाहके पास। शाहके पास मेरी जैसी सैकड़ों यवन-तरुणियाँ थीं, उसने अपनी बहिनको आते सुन, मुझे उसके पास भेज दिया। यद्यपि मैं दासी थी, किन्तु अपने रूपके कारण खास स्थान रखनेवाली दासी थी, इसलिए मेरा अनुभव साधारण दासियोंका नहीं हो सकता, तो भी मैं ही जानती हूँ इस यातनाको। मुझे जान पड़ता था, मैं मानवी ही नहीं हूँ।"

"तो सोफ़ी! तुम्हारी पितासे फिर भेंट नहीं हो सकी?"

"मुझे विश्वास नहीं कि वह ज़िन्दा बचे होंगे। अब तो हम हवामें उड़ते सूखे पत्ते हैं। प्यारी एथेन्स बर्बाद हो गई, अब जीवित होनेपर भी मिलनेका ठाँव कहाँ रहा?"

"एथेन्स महानगरी है सोफ़िया?"

"थी कभी स्वामी!—"

"स्वामी नहीं, नाग कहो, सोफ़ी।"

"थी कभी नाग! किन्तु अब तो वह उजड़ चुकी है; हमारा गण जिसने महान् दारयोश्‌के दाँत खट्टे किये, उसे क्षुद्र फ़िलिप्‌ने आनतशिर कर दिया।"

"क्यों ऐसा हुआ, सोफ़ी!"

"पार्शवोंके अनेक आक्रमणका प्रतीकार करके भी एथेन्सके कितने ही विचारकोंके दिमाग़में यह ख्याल बैठ गया, कि जब तक पार्शवोंके

मुक़ाबिलेमें हम भी एक बड़ा राज्य नहीं क़ायम कर लेते, तब तक निस्तार नहीं। फ़िलिप् कभी सफल न होता, यदि एथेन्ससे उसे सहायता न मिली होती।"

"आह, तक्षशिला! तूने भी विष्णुगुप्तको पैदा किया।"

"तक्षशिला, विष्णुगुप्त क्या है नाग!"

"अभिमानिनी तक्षशिला, मेरी जन्मभूमि, पूर्वकी एथेन्स। हमारे गणने भी महान् दारयोश् और उसके उत्तराधिकारियोंको कई बार मार भगाया, किन्तु मेरा सहपाठी विष्णुगुप्त अब वही बात कह रहा है, जिसे फ़िलिप्को सहायता पहुँचानेवाले एथेन्सके नागरिकोंने कहा था।"

"क्या तक्षशिला भी हमारे एथेन्सकी भाँति ही गण है?"

"हाँ, गण है। और हमारी तक्षशिलामें कोई दास नहीं, उसकी भूमिपर पैर रखते ही दास अदास हो जाते हैं।"

"आह, करुणामयी तक्षशिला! तभी नाग, मैंने पहिले दिनसे ही देखा, दासोंके साथ बर्तनेका तुम्हें ढंग नहीं मालूम है।"

"और मैं कभी मालूम नहीं होने दूँगा। मैंने विष्णुगुप्तको कहा, यदि तुम मागधोंको लाओगे, तो तक्षशिलाकी पवित्र भूमिपर दासताका कलंक लगे बिना नहीं रहेगा।"

"मागध कौन है नाग!"

"हिन्दके फ़िलिप्, तक्षशिलासे पूर्व एक विशाल हिन्दू-राज्य। पार्शवोंके आक्रमणसे हम तंग आ गये हैं, जीतते-जीतते भी हम निर्बल और हारेसे हो गये हैं। वस्तुतः अकेली तक्षशिला पार्शव शाहंशाहसे मुक़ाबिला नहीं कर सकती, किन्तु मैं इसकी दवा अपने अनेक गणोंके संघको बतलाता हूँ।"

"किन्तु, नाग! हमारे देशमें यह भी करके देख लिया गया। हमारी हेल्ला जातिके कितने ही गणोंने संघ बाँधकर पार्शवोंका मुक़ाबिला किया, किन्तु वह संघ स्थायी नहीं हो सका। गणोंमें अपने-अपने गणकी स्वतंत्रता-

का इतना ख्याल होता है, कि वह संघको वह स्थान देनेके लिए तैयार नहीं होते।"

"तो क्या मैं ग़लत साबित होऊँगा और विष्णुगुप्त ही सही।"

"क्या विष्णुगुप्त संघमें सफलता नहीं देखता।"

"हाँ, वह कहता है, हमारा शत्रु जितना मज़बूत है, उसका मुक़ाबिला गणोंके संघसे नहीं हो सकता; अनेक गणोंकी सीमा मिटाकर यदि एक महान् गण बनाया जा सके, तो शायद सम्भव हो, किन्तु गण इसे नहीं मानेंगे।"

"शायद, नाग! तुम्हारा मित्र ठीक कहता है, किन्तु, हमने अन्त तक एथेन्सकी स्वतन्त्रताको ख़ुशीसे देनेका ख्याल मनमें नहीं आने दिया।"

"तो सोफ़ी! गण होते हुए एथेन्सने इस दासताको क्यों स्वीकार किया?"

"अपने पतनको जल्दी बुलानेके लिए। धनिकोंके लोभने दासताको जारी किया, और धीरे-धीरे दास स्वामियोंसे भी संख्यामें बढ़ गए।"

"तुम्हें यहाँ पार्शवोंमें सबसे बुरी बातें क्या मालूम हुईं?"

"दासता जो कि हमारे यहाँ भी थी। फिर शाहंशाहों और धनिकोंका रनिवास।"

"तुम्हारे यहाँ ऐसा नहीं होता?"

"हमारे यहाँ मक़दूनियाका राजा फ़िलिप् भी एकसे अधिक ब्याह नहीं कर सकता। यहाँ तो छोटे-छोटे राजकर्मचारी तक कई-कई शादियाँ करते हैं।"

"हमारे यहाँ कभी-कभी एकसे अधिक ब्याह देखे जाते हैं, यद्यपि उनकी संख्या कम है; किन्तु, मैं अनुभव करता था कि यह स्त्रियोंकी दासताकी निशानी है। एथेन्सने यदि दासता रखी, तो तक्षशिलाने अनेक स्त्रीके साथ विवाह को जारी रखकर उसे क़ायम रखा।"

"और धनका थोड़े ही घरोंमें जमा होना।"

"मैंने विष्णुगुप्तको कहा था, गणमें कितना ही धन किसका क्यों न बढ़े, किन्तु वह राजाओंकी भाँति पानीकी तरह नहीं बहाया जा सकता। यहाँ तो तुम देख ही रही हो सोफ़ी ! महार्घ मृगचर्म, दुकूल, मणि, मुक्ता आदि वस्तुओंके साथ किस तरहका व्यवहार किया जाता है। ये गुलाबी गाल, ये प्रवाली अधर ख्याल भी नहीं करते, कि इन वस्तुओंको पैदा करनेके लिए कितने करोड़-करोड़ आदमी भूखे मर रहे हैं।"

"हमारे घरोंपर गिरे पानीको छीनकर समुद्रको महान् जलराशि मिली है।"

"मिट्टीसे सोना पैदा करनेवाले भूखे-नंगे मरते हैं और सोनेको मिट्टी करनेवाले मौज उड़ाते हैं। मैं तीन बार शाहंशाहके सामने गया, हर बार लौटते वक्त मेरे सिरमें दर्द होने लगा। मैंने उसके सारे वैभवसे जाड़ोंमें ठिठुरकर, गर्मियोंमें जलकर मरनेवाले कमकरोंकी आह निकलती देखी, उसकी लाल मदिरा मुझे सताई गई प्रजाके खूनके रूपमें दिखलाई पड़ी। मैं पर्शुपुरीसे तंग आ गया हूँ, और जल्दी निकल भागना चाहता हूँ।"

"कहाँ जाना चाहते हो नाग ?"

"पहिले तुम्हारे बारेमें जानना चाहता हूँ।"

"मैं कहाँ बतला सकती हूँ।"

"यवन-लोक (यूनान)।"

"पसन्द होगा।"

"तो उधर ही चलेंगे।"

"किन्तु, रास्तेमें मुझे फिर कोई छीन लेगा, और अबकी बार नाग जैसा त्राता नहीं प्राप्त कर सकूँगी।"—सोफ़ियाका स्वर असाधारण कोमल हो गया था, उसके सुन्दर आयत नयन कातरसे दीख पड़ रहे थे।

नागदत्तने उसके कानके ऊपरसे लटकते सुनहले बालोंको छूते हुए कहा—

"मैंने उसके लिए उपाय सोच रखा है, किन्तु उसमें तुम्हारी सम्मतिकी भी ज़रूरत है।"

"क्या ?"

"क्षत्रप, क्षत्रपानी और शाहंशाहसे अपने बारेमें पत्र ले लूँगा, कि यह शाहंशाहसे सम्मानित हिन्दू वैद्य है।"

"तो तुमको कोई नहीं छेड़ेगा।"

"और तुम दुनियाके दिखलानेके लिए वैद्यकी स्त्री यदि बनना चाहो, तो पत्रमें तुम्हारा नाम भी लिखवा दूँगा।"

सोफ़ियाकी आँखोंमें आँसू छलछल उतर आए थे, उसने नागदत्तके हाथको अपने हाथोंमें लेकर कहा—

"नाग! तुम कितने उदार हो, और साथ ही तुम उसे जाननेकी कोशिश भी नहीं करना चाहते। तुम कितने सुन्दर हो, किन्तु, कभी तुमने यहाँ अपनी ओर झाँकती पुष्पराग और नीलमकी आँखोंको नहीं देखा। नाग! रोशनाने कितनी ही बार मेरे सामने तुम्हारे लिए प्रेम प्रकट किया था। उसका एक कोई मरियल सा भाई है, माँ-बाप चाहते हैं, उसीसे ब्याह कर देना; किन्तु, वह तुमको चाहती है।"

"अच्छा हुआ, जो मैंने नहीं जाना, नहीं तो इन्कार ही करना पड़ता। सोफ़िया! मैं इन प्रासादपोषिताओंके लिए नहीं हूँ। मैं शायद किसीके लिए नहीं हूँ, क्योंकि मुझसे प्रेम करनेवालीको कभी सुखकी नींद सोनेको नहीं मिलेगी। किन्तु, यदि तुम चाहो, तो शाहंशाहके पत्रमें— पत्र भरके लिए—अपनी स्त्री लिखवा लूँ। शायद यवनदेशमें तुम्हारा कोई प्रिय मिल जाय, फिर तुम अपना रास्ता लेना।"

(४)

वैद्य नागदत्तकी हर जगह आवभगत होती थी, वह हिन्दू वैद्य था, पार्शव शाहंशाह दारयोश्का वैद्य रह चुका था, साथ ही चिकित्सामें उसका अद्भुत अधिकार था। पर्शुपुरीमें रहते ही वह यवन-भाषा सीख गया था, फिर सोफ़िया उसकी सहचरी थी। उसने मक़दूनिया देखी,

फ़िलिप्‌के पुत्र अलिकसुन्दर (सिकन्दर)के गुरु अरस्तूको देखा। नागदत्त स्वयं भी दार्शनिक था, किन्तु भारतीय ढंगका। अरस्तूकी शाहंशाहपसन्दी-से उसका मतभेद था, तो भी वह अरस्तूके लिए भारी सम्मान लेकर मक़दूनियासे बिदा हुआ। अरस्तूकी सबसे बड़ी बात जो उसे पसन्द आई वह थी, सत्यकी कसौटी दिमाग़ नहीं, जगत्‌के पदार्थ, प्रकृति है। अरस्तू प्रयोग—तजर्बेको बहुत ऊँचा स्थान देता था। नागदत्तको अफ़सोस होता था कि भारतीय दार्शनिक सत्यको मनसे उत्पन्न करना चाहते हैं। नागदत्तने अरस्तूके मनस्वी शिष्यकी प्रशंसा उसके गुरुके मुँहसे सुनी थी, और खुद भी कई बार उससे बातचीत की थी। उस तरुणमें असाधारण शौर्य ही नहीं बल्कि असाधारण परख भी थी।

नागदत्तने अरस्तूसे एथेन्स जाकर लौट आनेके लिए छुट्टी ली थी, किन्तु, उसे क्या मालूम था कि यही उसकी यवन दार्शनिकसे अन्तिम भेंट होगी।

वीरोंकी जननी गणतन्त्रकी विजय-ध्वजा-धारिणी एथेन्स नगरीके भीतर वह उतनी ही श्रद्धा और प्रेमके साथ प्रविष्ट हुआ, जितना कि तक्षशिलाके लिए करता। नगर फिरसे आबाद हो गया था, किन्तु सोफ़ियाने बतलाया कि अब यह वह एथेन्स नहीं रहा। वेनस्, ज्युपितरके मन्दिर अब भी अमर कलाकारोंकी सुन्दर कृतियोंसे अलंकृत थे, किन्तु एथेन्सके नागरिकोंमें वह उत्साह, वह जीवन नहीं था, जिसे कि सोफ़ियाने देखा था।

सोफ़ियाके पिताका घर—नहीं उसकी भूमिपर बने घरका स्वामी कोई मक़दूनियन व्यापारी था। उस घरको देखकर वह इतनी उद्विग्न हुई, कि एक दिन-रात उसकी चेष्टाएँ उसकी स्वाभाविक गम्भीरताके विरुद्ध होती थीं, किन्तु वह बोलती कम थी। कभी उसके नेत्रोंसे आँसुओंके बूँद झरते थे, और कभी वह संगमर्मरकी मूर्त्तिसी निश्चल हो जाती। नागदत्त समझ गया कि अपने बाल्यके प्रिय स्थानको ऐसी अवस्थामें

देखकर उसकी यह हालत हुई है। किन्तु, बड़ी मुश्किल यह थी, कि समझानेका वहाँ अवसर न था और अन्तमें सोफ़ियाके इस मर्मान्तक शोकका असर नागदत्तपर भी पड़ा।

जब सोफ़िया फिर प्रकृतिस्थ हुई, तो वह बिल्कुल बदली हुई थी। अपने शरीरको सजानेका उसे कभी ख्याल न होता था, किन्तु अब वह गणतान्तरिक एथेन्सकी तरुणियोंकी भाँति अपने खुले सुवर्ण-केशोंको ताज़े फूलोंकी मालाकी मेखलासे बाँधती थी। बदनपर यवन-सुन्दरियोंका पैर तक लटकता अनेक चुनावोंवाला सुन्दर कंचुक होता और पैरोंमें अनेक बद्धियोंकी चप्पल। उसके सुन्दर श्वेत ललाट, गुलाबी कपोलों, अतिरक्त ओठोंमें तारुण्य, सौन्दर्य और स्वास्थ्यका अद्भुत सम्मिश्रण था। और प्रसन्नता, मुस्कान तो उसके चेहरे, ओठोंपर, हर वक्त नाचती रहती थी।

नागदत्तको यह देखकर आश्चर्य नहीं, अपार हर्ष हुआ। उसके पूछनेपर सोफ़ियाने कहा—

"प्रिय नाग! मैंने जीवनको अब तक एक मात्र शोक और चिन्ताकी वस्तु समझ रखा था, किन्तु, मुझे वह दृष्टि ग़लत मालूम हो रही है। जीवनपर इस तरहकी एकांगी दृष्टि जीवनके मूल्यको कम कर देती है, और उसके कार्य करनेकी क्षमताको भी निर्बल कर देती है। आखिर तुम भी नाग! तक्षशिलाके भविष्यके लिए कम चिन्ता नहीं रखते, किन्तु तुम चित्तको शीतल रख उपाय सोचनेमें सारी शक्ति लगाते हो।"

'मुझे बड़ी प्रसन्नता है सोफ़ी! तुम्हें इतना आनन्दित देखकर।"

"मुझे आनन्द क्यों न होगा, मैंने एथेन्समें लौटकर अपने प्रियको पा लिया।"

नागदत्तने हर्षोल्लाससे पुलकित हो कहा—"यह और भी आनन्दकी बात है कि तुमने अपने प्रियको इतने दिनों बाद पा लिया।"

"मैं देखती हूँ, नाग! तुम मनुष्य नहीं हो, देवताओंसे भी ऊपर हो, तुममें ईर्ष्या छू तक नहीं गई है।"

"ईर्ष्या ! ईर्ष्याका यहाँ क्या काम ? मैंने सोफ़ी ! क्या ज़िम्मा नहीं लिया था, तुम्हें यवन-देशमें पहुँचानेका ? मैंने क्या तुमसे कहा नहीं था कि तुम वहाँ अपने प्रियको ढूँढ़ लेना ?"

"हाँ, कहा था।"

"तुम्हारे इस असाधारण हर्षको देखकर मुझे ख्याल होने लगा था, कि तुम्हें कोई असाधारण प्रिय वस्तु प्राप्त हुई है।"

"तुम्हारा ख्याल ठीक निकला नाग !"

"अच्छा तो मुझे आज्ञा दो तुम्हारे प्रियतमको यहाँ निमन्त्रित करनेकी, या यदि वह अभी यहाँ न आ सकता हो तो उसे देखनेकी।"

"किन्तु, तुम इतने उतावले क्यों हो रहे हो ?"

"सचमुच ही मैं उतावला हो रहा हूँ ! तुम ग़लत नहीं कह रही हो।" नागदत्तने अपनेको रोकनेकी कोशिश की।

सोफ़ियाको भय मालूम होने लगा, कि वह अपने आँसुओंको रोक न सकेगी। उसने एक ओर मुँह फेरकर कहा—

"देख सकते हो, किन्तु, तुम्हें एथेन्सके तरुणका भेष धारण करना होगा, इससे कुछ अच्छा।"

"वह नया तोगा, नया चप्पल जो तुम कल खरीद लाई, मैं उसे पहिने लेता हूँ।"

"जाओ, पहिन आओ, तब तक मैं अपने प्रियतमके लिए माला ले लूँ, लिदिया उसे गूँथ रही है।"

"अच्छा" कह नागदत्त दूसरे कमरेमें चला गया। सोफ़िया बैठकके बड़े दर्पणके सामने खड़ी हुई, उसने अपने वस्त्रों और फूलके आभूषणों-पर एक बार फिर हाथ फेरा, फिर एक मालाको दर्पणके पीछे रख, चुपकेसे कमरेके द्वारपर जाकर बोली—

"नाग ! बहुत देर हो रही है, कहीं मेरा प्रियतम किसी प्रमोद-शालामें न चला जाये।"

"जल्दी कर रहा हूँ सोफ़ी ! यह तुमने कैसा तोगा ला दिया है, इसकी चुन्दन ठीक नहीं बैठ रही है।"

"मैं सहायता कर दूँ।"

"बड़ी कृपा होगी।"

उलझी चुन्दनका सुलझाना आसान था। फिर नागदत्तने नये चप्पलको पहिना। नागदत्तके खिले मुँहकी ओर देखनेका सोफ़ीको साहस नहीं हुआ। उसने उसके हाथको पकड़कर कहा—"पहिले चलो दर्पणमें अपनी नई पोशाकको देख तो लो।"

"तुमने देख लिया सोफ़ी ! यही बहुत है। विनीत भेस होना चाहिए।"

"हाँ, मैं तो समझती हूँ विनीत है, किन्तु एक बार देख लेना बुरा नहीं है।"

सोफ़ीने नागदत्तको दर्पणके सामने खड़ा कर दिया, वह अपने वस्त्रको देखने लगा। उसी वक्त उसने माला निकालकर कहा—

"यह माला मैंने प्रियतमके लिए बनाई है।"

"बहुत अच्छी माला है, सोफ़ी !"

"किन्तु, मालूम नहीं उसे कैसी लगेगी।"

"क्यों, बहुत अच्छी लगेगी।"

"उसके पीले केश हैं, और यह माला अतिरक्त गुलाबोंकी है।"

"सुन्दर मालूम होगी।"

"ज़रा तुम्हारे शिरपर रखकर देख लूँ।"

"तुम्हारी मर्ज़ी। मेरे भी केश पीले हैं।"

"इसीलिए तो निश्चय कर लेना चाहती हूँ।" मालाको शिरपर रखकर सामनेसे देख फिर दर्पणसे मुँह दूसरी ओर घुमानेके लिए कह "तो तुम आज मेरे प्रियतमको देखोगे नाग ! अभी। यह देखो।"

नागने मुँह घुमाया, सोफ़ियाकी अँगुली दर्पणकी ओर नागदत्तके प्रतिबिंबकी ओर थी। उसने आनन्दाश्रुपूर्ण नेत्रोंसे कहा—"वह है मेरा

प्रियतम !" और फिर दूसरे ही क्षण उसने अपनी भुजाओंमें नागदत्तको बाँध, उसके ओठोंपर अपने ओठोंको रख दिया। नागदत्त कितनी देर तक चुप रहा, फिर सोफ़ीने ओठोंको हटा अपने कपोलसे उसके कपोलको लगा कर कहा—

"मेरा प्रियतम ! कितना अच्छा है नाग !"

"सोफ़ी ! मैं अपनेको तुम्हारे योग्य नहीं समझता।"

"मैं अपनेको समझती हूँ। मेरे नाग ! अब मृत्यु तक हम साथ रहेंगे।"

नागदत्तके आँसुओंका बाँध अब टूटा, उसने कहा—"मृत्यु तक !"

(५)

नागदत्तकी बड़ी इच्छा थी, सलामीकी खाड़ी देखनेकी, जहाँ कि यवन नौसेनाने पार्शवोंको ज़बर्दस्त पराजय दी थी। दोनों स्थलके रास्ते चले जा रहे थे। नागदत्त अपनेमें नया उत्साह पा रहा था, और उसका ख्याल रह-रहकर तक्षशिलाकी ओर जाता था। दोनों रास्तेमें एक वृक्षके नीचे विश्राम कर रहे थे, उस वक्त सोफ़ियाने कहा—

"सुना न नाग ! फ़िलिप् मर गया, अलिकसुन्दर मकदूनियाका राजा बना है, और वह बड़ी ज़बर्दस्त सैनिक तैयारी कर रहा है।"

"हाँ, वह सारे यवन (भूमध्य)-सागरके तटपर अधिकार करना चाहता है। किन्तु इसके पूर्वी और दक्षिणी (मिश्रका) तट तो पार्शवोंके हाथमें है।"

"जिसका अर्थ है, वह पार्शवोंसे युद्ध करना चाहता है।"

"और इस प्रकार गणतन्त्री यवनोंसे अपने राज्यकी स्थापनामें सहायता लेना चाहता है। एक ढेलेसे दो चिड़िया मारना चाहता है सोफ़ी ! शाहंशाहको यवन सागरसे हटाना—यदि और आगे न बढ़ सका तो—और अभिमानी यवनगणोंकी राजभक्तिको प्राप्त करना।"

"अरस्तूने उसको शिक्षा दी, अरस्तूने उसके साहसको बढ़ाया !"

"दार्शनिक अरस्तूने !"

"हाँ, और उसके गुरु अफ़लातूँने एक आदर्श गणकी कल्पना की थी, किन्तु उसने भी उसमें साधारण जनताको हरवाहा-चरवाहा ही रखना चाहा। अरस्तूने आदर्श गणकी जगह 'आदर्श' राजा चक्रवर्तीकी कल्पना की। क्या जाने, यह यवन-चक्रवर्ती पार्शव-शाहंशाहको हराकर कहाँ तक जाय।"

"एक बार पैर बढ़ा देनेपर उसे रोकना अपने हाथमें नहीं रहता सोफ़ी! और उधर मेरा सहपाठी विष्णुगुप्त चाणक्य भी मगधमें चक्र-वर्ती खोजने गया था।"

"क्या यवन और हिन्दू चक्रवर्तियोंका सिन्धुतटपर मिलन तो न होगा?"

"पहिली पीढ़ीमें नहीं तो दूसरी पीढ़ीमें सोफ़ी! किन्तु, तब पृथिवी कितनी छोटी हो जायगी।"

× × ×

समुद्रतटसे वह नावपर सलामीके लिए रवाना हुए। समुद्र शान्त था, हवा बिल्कुल रुकी हुई थी। सोफ़ी और नागदत्त दो शताब्दीके पहिलेके इस समुद्रको बड़े कृतज्ञतापूर्ण हृदयसे देख रहे थे, इसने ही पार्शवोंकी नौवाहिनाके ध्वंस करनेमें सहायता प्रदान की थी।

समुद्रमें काफ़ी दूर चले जानेपर एक भारी तूफ़ान आया। दोनों अभी इस ख्यालमें थे, कि यह सौ साल पहिलेवाला तूफ़ान है उसी वक्त उनकी दृष्टि नौकारोहियोंके भयभीत चेहरोंपर पड़ी, और फिर देखा कि पाल टूट गया, और नाव करवट लेने लगी। स्थिति स्पष्ट थी। सोफ़ीने इसी वक्त नागदत्तको अपनी भुजाओंसे बाँध छातीसे लगा लिया, उसके चेहरेपर मुस्कुराहट थी, जब उसने कहा—"मृत्यु तक।"

"हाँ, मृत्यु तक"—कह नागदत्तने सोफ़ियाके ओठोंपर अपने ओठों-को रख दिया, फिर दोनों चार भुजपाशोंमें बँध गए।

दूसरे क्षण नाव उलट गई, दोनों सचमुच मृत्यु तक साथी रहे।

११—प्रभा

काल—५० ईसवी

(१)

साकेत (अयोध्या) कभी किसी राजाकी प्रधान राजधानी नहीं बना। बुद्धके समकालीन कोसलराज प्रसेनजित्का यहाँ एक राजमहल जरूर था; किन्तु राजधानी थी श्रावस्ती (सहेटमहेट, वहाँसे छै योजन दूर। प्रसेनजित्के दामाद अजातशत्रुने कोसलकी स्वतन्त्रताका अपहरण किया उसी वक्त श्रावस्तीका भी सौभाग्य लुट गया। सरयू-तटपर बसा साकेत पहले भी नौ-व्यापारका ही नहीं, बल्कि पूरब (प्राची)से उत्तरापथ (पंजाब) के सार्थ-पथपर बसा रहनेसे स्थल-व्यापारका भी भारी केन्द्र था। यह पद उसे बहुत समय तक प्राप्त रहा। विष्णुगुप्त चाणक्यके शिष्य चन्द्रगुप्त मौर्यने मगधके राज्यको पहले तक्षशिला तक, फिर यवनराज सैलाक्ष (सैल्यूकस)को पराजित कर हिन्दूकुश पर्वतमाला (अफ़ग़ानिस्तान)से बहुत पच्छिम हिरात और आमू दरिया तक फैलाया। चन्द्रगुप्त और उसके मौर्य-वंशके शासनमें भी साकेत व्यापार केन्द्रसे ऊपर नहीं उठ सका। मौर्य-वंश-ध्वंसक सेनापति पुष्यमित्रने पहले-पहल साकेतको राज-धानीका पद प्रदान किया; किन्तु शायद पाटलिपुत्रकी प्रधानताको नष्ट करके नहीं। वाल्मीकिने अयोध्या नामका प्रचार किया; जब उन्होंने अपनी रामायणको पुष्यमित्र या उसके शुंगवंशके शासन-कालमें लिखा। इसमें तो शक ही नहीं कि अश्वघोषने वाल्मीकिके मधुर काव्यका रसास्वादन किया था। कोई ताज्जुब नहीं, यदि वाल्मीकि शुंगवंशके आश्रित कवि रहे हों, जैसे कालिदास चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यके, और शुंग-वंशकी

राजधानीकी महिमाको बढ़ाने हीके लिए उन्होंने जातकोंके दशरथकी राजधानी वाराणसीसे बदलकर साकेत या अयोध्या कर दी और रामके रूपमें शुंग-सम्राट् पुष्यमित्र या अग्निमित्रकी प्रशंसा की—वैसे ही, जैसे कालिदासने 'रघुवंश'के रघु और 'कुमारसम्भव'के कुमारके नामसे पिता-पुत्र चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य और कुमारगुप्तकी की।

सेनापति पुष्यमित्र अपने स्वामीका बधकर सारे मौर्य साम्राज्यको नहीं ले सका। पंजाब सारा यवनराजा मिनान्दरके हाथमें चला गया, और एक बार तो उसने साकेतपर भी घेरा डाल दिया था, जैसा कि पुष्यमित्रके पुरोहित ब्राह्मण पतंजलिने लिखा है। इससे यह भी पता लगता है कि पुष्यमित्रके शासन-कालके आरम्भिक दिनोंमें भी साकेतका खास महत्त्व था, और यह भी कि पतंजलि और पुष्यमित्रके समय अयोध्या नहीं, साकेत ही इस नगरका नाम था।

पुष्यमित्र, पतंजलि और मिनान्दरके समयसे हम दो सौ साल और पीछे आते हैं। इस समय भी साकेतमें बड़े-बड़े श्रेष्ठी (सेठ) बसते थे। लक्ष्मीका निवास होनेसे सरस्वतीकी भी थोड़ी-बहुत क़द्र होना ज़रूरी था, और फिर धर्म तथा ब्राह्मणोंका गुड़-चींटेकी तरह आ मौजूद होना भी स्वाभाविक था। इन्हीं ब्राह्मणोंमें एक धन-विद्या-सम्पन्न कुल था, जिसके स्वामीका नाम कालने भुला दिया; किन्तु स्वामिनीका नाम उसके पुत्रने अमर कर दिया। ब्राह्मणीका नाम था सुवर्णाक्षी, उसके नेत्र सुवर्ण जैसे पीले थे। उस वक्त पीले-नीले नेत्र ब्राह्मणों और क्षत्रियों-में आम तौरपर पाए जाते थे, और पीली आँखोंका होना दोष नहीं समझा जाता था। ब्राह्मणी सुवर्णाक्षीका एक पुत्र उसीकी भाँति सुवर्णाक्ष, उसीकी भाँति पिंगल केश और उसीकी भाँति सुगौर था।

(२)

वसन्तका समय था। आमकी मंजरी चारों ओर अपनी सुगन्धिको

फैला रही थी। वृक्ष पुराने पत्तोंको छोड़ नए पत्तोंका परिधान धारण किए हुए थे। आज चैत्र शुक्ला नवमी तिथि थी। साकेतके नर-नारी सरयूके तटपर जमा हो रहे थे—तैराकीके लिए। तैराकी द्वारा ही साकेतवासी वसन्तोत्सव मनाया करते थे। तैराकीमें तरुण-तरुणी दोनों भाग लेते थे और नंगे बदन एक घाटपर। तरुणियोंमें कितनी ही कर्पूर-श्वेत यवनियाँ (यूनानी स्त्रियाँ) थीं, जिनका सुन्दर शरीर यवन चित्रकार-निर्मित अनुपम मर्मरमूर्त्ति जैसा था, जिसके ऊपर उनके पिंगल या पाण्डुर केश बड़े सुन्दर मालूम होते थे। कितनी ही नील या पीत-केशधारिणी सुवर्णाक्षी ब्राह्मण-कुमारियाँ थीं, जो सौन्दर्यमें यवनियोंसे पीछे न थीं। कितनी ही घनकृष्णकेशी गोधूमवर्णा वैश्य-तरुणियाँ थीं, जिनका अचिर-स्थायी मादक तारुण्य कम आकर्षक न था। आज सरयूतटपर साकेतके कोने-कोनेकी कौमार्य रूपराशि एकत्रित हुई थी। तरुणियोंकी भाँति नाना कुलोंके तरुण भी वस्त्रोंको उतार नदीमें कूदनेके लिए तैयार थे। उनके व्यायाम-पुष्ट, परिमंडल सुन्दर शरीर कर्पूरसे गोधूम तकके वर्ण-वाले थे। उनके केश, मुख, नाकपर खास-खास कुलोंकी छाप थी। आजके तैराकी-महोत्सवसे बढ़कर अच्छा अवसर किसी तरुण-तरुणीको सौन्दर्य परखनेका नहीं मिल सकता था। हर साल इस अवसर पर कितने ही स्वयंवर सम्पन्न होते थे। माँ-बाप तरुणोंको इसके लिए उत्साहित करते थे। उस वक्तका यह शिष्टाचार था।

नावपर सरयू-पार जा तैराक तरुण-तरुणियाँ जलमें कूद पड़े। सरयूके नीले जलमें कोई अपने सुवर्ण, पाण्डु, रजत या रक्त दीर्घ कचों-को प्रदर्शित करते और कोई अपने नीले-काले केशोंको नील जलमें एक करते दोनों भुजाओंसे जलको फाड़ते आगे बढ़ रहे थे। उनके पास कितनी ही क्षुद्र नौकाएँ चल रही थीं, जिनके आरोही तरुण-तरुणियोंको प्रोत्साहन देते तथा थक जानेपर उठा लेते थे—हज़ारों प्रतिस्पर्द्धियोंमें कुछका हार स्वीकार करना सम्भव था। सभी तैराक शीघ्र आगे बढ़नेके

लिए पूरी चेष्टा कर रहे थे। जब तट एक-तिहाई दूर रह गया, तो बहुत-से तैराक शिथिल पड़ने लगे। उस वक्त पीछेसे लपकते हुए केशों-में एक पिंगल था और दूसरा पाण्डुश्वेत। तटके समीप आनेके साथ उनकी गति और तीव्र हो रही थी। नावपर चलनेवाले साँस रोककर देखने लगे। उन्होंने देखा कि दो पिंगल और पाण्डुश्वेत केश सबसे आगे बढ़कर एक पाँतीमें जा रहे हैं। तट और नज़दीक आ गया। लोग आशा रखते थे कि उनमेंसे एक आगे निकल जायगा; किन्तु देखा, दोनों एक ही पाँतीमें चल रहे हैं। शायद नौकारोहियोंमेंसे किसीने उन्हें एक दूसरेको आगे जानेके लिए ज़ोर देते सुना भी।

दोनों साथ ही तीरपर पहुँचे। उनमें एक तरुण था और दूसरी तरुणी। लोगोंने हर्षध्वनि की। दोनों ने कपड़े पहने। खुली शिविकाओं-पर उनकी सवारी निकाली गई। दर्शकोंने फूलोंकी वर्षा की। तरुण-तरुणी एक-दूसरेको नज़दीकसे देख रहे थे। लोग उनके तैरनेके कौशल हीको नहीं, सौन्दर्यकी भी प्रशंसा कर रहे थे। किसीने पूछा—"कुमारी-को तो मैं जानता हूँ; किन्तु तरुण कौन है, सौम्य?"

"सुवर्णाक्षी-पुत्र अश्वघोषका नाम नहीं सुना?"

"नहीं, मैं अपने पुरोहितके ही कुलको जानता हूँ। हम व्यापारी इतना जाननेकी फ़ुर्सत कहाँ रखते हैं?"

तीसरेने कहा—"अरे अश्वघोषकी विद्याकी ख्याति साकेतसे दूर-दूर तक पहुँच गई है। यह सारे वेदों और सारी विद्याओंमें पारंगत है।"

पहला—"लेकिन इसकी उम्र तो चौबीससे अधिककी न होगी।"

तीसरा—"हाँ, इसी उम्रमें। और इसकी कविताएँ लोग झूम-झूमकर पढ़ते-गाते हैं।"

दूसरा—"अरे, यही कवि अश्वघोष है, जिसके प्रेम-गीत हमारे तरुण-तरुणियोंकी जीभपर रहते हैं?"

तीसरा—"हाँ, यह वही अश्वघोष है ! और कुमारीका क्या नाम है, सौम्य ?"

पहला—"साकेतमें हमारे यवन-कुलके प्रमुख तथा कोसलके विख्यात सार्थवाह दत्तमित्रकी पुत्री प्रभा ।"

दूसरा—"तभी तो ! ऐसी सुन्दरता दूसरोंमें बहुत कम पाई जाती है । देखनेमें शरीर कितना कोमल मालूम होता है; किन्तु तैरनेमें कितना दृढ़ !"

पहला—"इसके माँ-बाप दोनों बड़े स्वस्थ बलिष्ट हैं ।"

नगरोद्यानमें जा विशेष सम्मान प्रकट करते हुए लोगोंको दोनों तैराकोंका परिचय दिया गया, और उन दोनोंने भी लज्जावनत सिरसे एक-दूसरेका परिचय प्राप्त किया ।

(२)

साकेतका पुष्योद्यान सेनापति पुष्यमित्रके शासनका स्मारक था । सेनापतिने इसके निर्माणमें बहुत धन और श्रम लगाया था और यद्यपि अब न पुष्यमित्रके वंशका राज्य रहा, न साकेत कोई दूसरी श्रेणीकी भी राजधानी, तो भी नैगम (नगर-सभा)ने उसे साकेतका गौरव समझ उसी तरह सुरक्षित रखा, जैसा कि वह दो सौ वर्ष पूर्व पुष्यमित्रके शासन-कालमें था । बाग़के बीचमें एक सुन्दर पुष्करिणी थी, जिसके नील विशुद्ध जलमें पद्म, सरोज, पुंडरीक आदि नाना वर्णोंके कमल खिले तथा हंस-मिथुन तैर रहे थे । चारों ओर श्वेत-पाषाणके घाट थे, जिनके सोपान स्फटिककी भाँति चमकते थे । सरोवरके किनारेपर हरी दूबकी काफ़ी चौड़ी मगजी लगी थी । फिर कहीं गुलाब, जूही, बेला आदि फूलोंकी क्यारियाँ थीं और कहीं तमाल-बकुल-अशोक-पंक्तियोंकी छाया । कहीं लता-गुल्मोंसे घिरे पाषाण-तलवाले छोटे-बड़े लतागृह थे और कहीं कुमार-कुमारियोंके कन्दुक-क्षेत्र । उद्यानमें कई पाषाण, मृत्तिका और हरित वनस्पतिसे अच्छा-

दित रम्य क्रीड़ा-पर्वत थे। कहीं-कहीं जलयन्त्र (फ़व्वारे) जल-शीकर छोड़ वर्षाका अभिनय कर रहे थे।

अपराह्णमें अक्सर एक लतागृहके पास साकेतके तरुण-तरुणियोंकी भीड़ देखी जाती। यह भीड़ उनकी होती, जो भीतर स्थान न पा सके होते। आज भी वहाँ भीड़ थी; किन्तु चारों ओरकी नीरवताके साथ। सभीके कान लतागृहकी ओर लगे हुए थे। और भीतर? शिलाच्छादित फर्शपर वही तरुण है, जिसने एक मास पहले तैराकीमें विजय प्राप्त करनेसे इन्कार कर दिया था। उसके शरीरपर मसृण (चिकने) सूक्ष्म दुकूलका कंचुक है। उसके दीर्घ पिंगल-केश सिरके ऊपर जूट की तरह बँधे हुए हैं। उसके हाथमें मुखर वीणा है, जिसपर तरुणकी अँगुलियाँ अप्रयास थिरकती मनमाना स्वर निकाल रही हैं। तरुण अर्द्धमुद्रित नेत्रोंके साथ लयमें लीन कुछ गा रहा है—दूसरेके नहीं, अपने ही बनाए गीत। उसने अभी, "वसन्त-कोकिला"का गीत संस्कृतमें समाप्त किया। संस्कृत-के बाद प्राकृत गीत गाना ज़रूरी था, क्योंकि गायक कवि जानता है, उसके श्रोताओंमें प्राकृत-प्रेमी ज्यादा हैं। कविने अपनी नवनिर्मित रचना "उर्वशी-वियोग" सुनाई—उर्वशी लुप्त हो गई और पुरूरवा अप्सरा (पानीमें चलनेवाली) कहकर उर्वशीको सम्बोधित करते पर्वत, सरिता, सरोवर, वन, गुल्म आदिमें ढूँढ़ता फिरता है। वह अप्सराका दर्शन नहीं कर पाता; किन्तु उसके शब्द उसे वायुमें सुनाई देते हैं। पुरूरवाके आँसुओंके बारेमें गाते वक्त गायकके नेत्रोंसे आँसू गिरने लगे, और सारी श्रोतृ मण्डलीने उसका साथ दिया।

संगीत-समाप्तिके बाद लोग एक-एक करके चलने लगे। अश्वघोष जब बाहर निकला, तो कुछ तरुण-तरुणी उसे घेरकर खड़े हो गए। उनमें सूजे आरक्त नयनोंके साथ प्रभा भी थी। एक तरुणने आगे बढ़कर कहा—"महाकवि!"

"महाकवि! मैं कवि भी नहीं हूँ, सौम्य!"

"मुझे अपनी श्रद्धाके अनुसार कहने दो, कवि ! साकेतके हम यवनोंकी एक छोटी-सी नाट्यशाला है।"

"नृत्यके लिए ? मुझे भी नृत्यका शौक़ है।"

"नृत्यके लिए ही नहीं, उसमें हम अभिनय भी किया करते हैं।"

"अभिनय !"

"हाँ, यवन-रीतिका अभिनय एक विशेष प्रकारका होता है, कवि ! जिसमें भिन्न-भिन्न काल तथा स्थानके परिचायक बड़े-बड़े चित्रपट रहते हैं और सभी घटनाओंको वास्तविक रूपमें दिखलानेकी कोशिश की जाती है।"

"मुझे कितना अफ़सोस है, सौम्य ! साकेतमें जन्म लेकर भी मैंने ऐसे अभिनयको नहीं देखा।"

"हमारे अभिनयोंके दर्शक यहाँके यवन-परिवारों तथा कुछ इष्ट-मित्रों तक ही सीमित हैं, इसीलिए बहुत-से साकेतवासी यवन-अभिनय—"

"नाटक कहना चाहिए, सौम्य !"

"हाँ, यवन नाटकको। आज हम लोग एक नाटक करनेवाले हैं। हम चाहते हैं कि तुम भी हमारे नाटकको देखो।"

"ख़ुशीसे। यह आप मित्रोंका बहुत अनुग्रह है।"

अश्वघोष उनके साथ चल पड़ा। नाट्यशालामें रंगके पास उसे स्थान दिया गया। अभिनय किसी यवन (यूनानी) दुःखान्त नाटकका था और प्राकृत भाषामें किया गया था। यवन कुल-पुत्रों और कुल-पुत्रियोंने हरएक पात्रका अभिनय किया था। अभिनेताओं तथा अभिनेत्रियोंकी पोशाक यवन-देशीयों जैसी थी। भिन्न-भिन्न दृश्योंके चित्रपट भी यवनी रीतिसे बने थे। नायिका बनी थी प्रभा, अश्वघोषकी परिचिता। उसके अभिनयकौशलको देखकर वह मुग्ध हो गया। नाटकके बीचमें एक उचित अवसर देखकर पूर्व-परिचित यवन तरुणने "उर्वशी-वियोग" गानेकी प्रार्थना की। अश्वघोष बिना किसी हिचकके वीणा उठा रंगमंच-

पर पहुँच गया। फिर उसने अपने गानेसे स्वयं रो, दूसरोंको रुलाया। उस वक्त एक बार उसकी दृष्टि प्रभाके कातर नेत्रोंपर पड़ी थी।

नाटक समाप्त हो जानेपर नेपथ्यमें सारे अभिनेता कुमार-कुमारियों-का कविसे परिचय कराया गया। अश्वघोषने कहा—"साकेतमें रहते हुए भी मैं इस अनुपम कलासे बिल्कुल अनभिज्ञ रहा। आप मित्रोंका मैं बहुत कृतज्ञ हूँ, कि आपने मुझे एक अज्ञात प्रभालोकका दर्शन कराया।"

"प्रभालोक" कहते समय कुछ तरुणियोंने प्रभाकी ओर देखकर मुस्करा दिया। अश्वघोषने फिर कहा—"मेरे मनमें एक विचार आया है। तुमने जैसे यवन नाटकके प्राकृत-रूपान्तरका आज अभिनय किया, मैं समझता हूँ, उसी ढंगके अनुसार हम अपने देशकी कथाओंको ले अच्छे नाटक तैयार कर सकते हैं।

"हमें भी पूरा विश्वास है, यदि कवि! तुम करना चाहो, तो मूल यवन-नाटकसे भी अच्छा नाटक तैयार कर सकते हो।"

"इतना मत कहो, सौम्य! यवन-नाटककारका मैं शिष्य-भर ही होने लायक हूँ। अच्छा, यदि मैं उर्वशीवियोगपर एक नाटक लिखूँ?"

"हम उसका अभिनय भी करनेके लिए तैयार हैं; लेकिन साथ ही पुरूरवाका पाट तुम्हें लेना होगा।"

"मुझे उज्र न होगा, और मैं समझता हूँ, थोड़ा-सा अभ्यास कर लेनेपर मैं उसे बुरा न करूँगा।"

"हम चित्रपट भी तैयार करा लेंगे।"

"चित्रपटपर हमें पुरूरवाके देशके दृश्य अंकित करने होंगे। मैं भी चित्र कुछ खींच लेता हूँ। अवसर मिलनेपर उसमें मैं कुछ मदद करूँगा।"

"तुम्हारे आदेशके अनुसार दृश्योंका अंकित होना अच्छा होगा। पात्रोंकी वेश-भूषाका निर्देश भी, सौम्य, तुम्हें ही देना होगा। और पात्र?"

"पात्र तो, सौम्य, सभी अभी नहीं बतलाए जा सकते। हाँ, उनकी संख्या कम रखनी होगी। कितनी रखनी चाहिए?"

"सोलहसे तीस तकको हम आसानीसे तैयार कर सकते हैं।"

"मैं सोलह तक ही रखनेकी कोशिश करूँगा।"

"पुरूरवा, तो सौम्य ! तुम्हें बनना होगा और उर्वशीके लिए हमारी प्रभा कैसी रहेगी ? आज तुमने देखा उसके अभिनयको।"

"मेरी अनभ्यस्त आँखोंको तो वह निर्दोष मालूम हुआ।"

"तो प्रभाको ही उर्वशी बनना होगा। हमारी मंडलीमें जो काम जिसको दिया जाता है, वह उससे इन्कार नहीं कर सकता।"

प्रभाके नेत्र कुछ संकुचित होने लगे थे, किन्तु प्रमुख तरुणके "क्यों प्रभा !" कहनेपर उसने ज़रा रुककर "हाँ" कर दिया।

(४)

अश्वघोषने प्रमुख यवन तरुण—बुद्धप्रिय—के साथ कुछ यवन-नाटकोंके प्राकृत-रूपान्तरोंको पढ़ा और उनके स्थान आदिके संकेतके बारेमें बातचीत की। नाटकके चित्रपटोंका नामकरण उसने यवन (यूनानी) कलाके स्मरणके रूपमें यवनिका रखा। नाटकको संस्कृत-प्राकृत, गद्य-पद्य दोनोंमें लिखा। उस समयकी प्राकृत संस्कृतके इतना समीप थी कि सम्भ्रान्त परिवारोंमें उसे आसानीसे समझा जाता था। यही "उर्वशी-वियोग" प्रथम भारतीय नाटक था, और अश्वघोष था प्रथम नाटककार। कविका यह पहला प्रयास था, तो भी वह उसके "राष्ट्रपाल", "सारिपुत्र" आदि नाटकोंसे कम सुन्दर नहीं था।

रंगकी तैयारी तथा अभिनयके अभ्यासमें तरुण-कविको खाना-पीना तक याद नहीं रहता था। इसे वह अपने जीवनकी सुन्दरतम घड़ियाँ समझता था। रोज़ घंटों वह और प्रभा साथ तैयारी करते थे। तैराकीके दिन उनके हृदयोंमें पड़ा प्रेम-बीज अब अंकुरित होने लगा था। यवन तरुण-तरुणी अश्वघोषको आत्मीयके तौरपर देखना चाहते थे, इसलिए वह इसमें सहायक होना अपने सौभाग्यकी बात समझते थे। एक दिन

घड़ियोंके तूलिका-संचालनके बाद अश्वघोष नाट्यशालाके बाहर क्षुद्रोद्यानमें रखी आसन्दिकापर जा बैठा। उसी समय प्रभा भी वहाँ आ गई। प्रभाने अपने स्वाभाविक मधुर स्वरमें कहा—"कवि, तुमने उर्वशी-वियोग गीत बनाते वक्त अपने सामने क्या रखा था?"

"उर्वशी और पुरूरवाके कथानकको।"

"कथानक तो मैं भी जानती हूँ। उर्वशीको अप्सरा करके तुमने बार-बार सम्बोधित किया था?"

"उर्वशी थी ही अप्सरा।"

"फिर उसमें पुरूरवाको उर्वशीके वियोगमें सरिता, सरोवर, पर्वत, वन सबमें ढूँढ़नेमें विह्वल चित्रित किया था।"

"पुरूरवाकी उस अवस्थामें यह स्वाभाविक था।"

"फिर उर्वशी-वियोगके गायकने लतागृहमें अश्रुधाराको वीणाकी भाँति गीतका संगी बना दिया था।"

"गायक और अभिनेताको तन्मय हो जाना चाहिए, प्रभा!"

"नहीं, तुम मुझे साफ़ बतलाना नहीं चाहते।"

"तुम क्या समझती हो!"

"मैं समझती हूँ, तुमने किसी पुरानी उर्वशीके वियोगका गान नहीं गाया था।"

"और फिर?"

"तुम्हारी उर्वशी—उर-वसी (हृदयमें बसी)—थी, वह अप्सरा—अप = सरयूके जलमें, सरा = तैरनेवाली—थी।"

"और फिर?"

"इस उर्वशीका पुरूरवा किसी हिमालय-जैसे पर्वत, वनखंड, सरिता, सरोवर और गुल्ममें नहीं बल्कि साकेतकी सरयू, पुष्पोद्यानके सरोवर, क्रीड़ा-पर्वत, वन और गुल्मको ढूँढ़ता फिरता था।"

"और फिर?"

"उसके आँसू किसी पुराने पुरूरवाकी सहानुभूतिमें नहीं, बल्कि अपनी ही आगको बुझानेके लिए निकले थे।"

"और एक बात मैं भी कहूँ, प्रभा!"

"कहो, अब तक मैंने ही अधिक कहा।"

"और उस दिन लतागृहसे निकलते वक्त मैंने तुम्हारे इन मनहर नीले नयनोंको आरक्त और अधिक सूजे देखा था।"

"तुमने अपने गानसे रुलाया था।"

"तुमने अपने वियोगसे वह गीत प्रदान किया था।"

"किन्तु, तुम्हारे गीतकी उर्वशी कोई पाषाणी थी, कवि! कमसे कम तुमने उसे वैसा ही चित्रित किया था।"

"क्योंकि मैं व्याकुल और निराश था।"

"क्या समझकर?"

"मैं उस अचिरप्रभा (बिजली)के दर्शनका सौभाग्य न प्राप्त कर सकूँगा। वह कबकी मुझे भूल गई होगी।"

"तुम इतने अकिंचन थे, कवि!"

"जब तक आत्म-विश्वासका कोई कारण न हो, तब तक आदमी अकिंचन छोड़ अपनेको और क्या समझ सकता है।"

"तुम साकेत ही नहीं, हमारे इस विस्तृत भूखंडके महिमा-प्राप्त कवि हो। तुम साकेतके सरिता-तरणके विजेता हो। तुम्हारी विद्याकी प्रशंसा हर साकेतवासीकी जिह्वापर है। और नारीकी दृष्टिसे देखो, तो साकेतकी सुन्दरियाँ तुम्हें अपनी आँखोंका तारा बनाकर रखनेको तैयार हैं।"

"किन्तु, इससे क्या? मेरे लिए तो अपनी उर्वशी सब-कुछ थी। मैंने जब दो सप्ताह उसे नहीं देखा, तो जीवन निस्सार मालूम होने लगा। सच कहता हूँ प्रभा! मैंने अपने चित्तको कभी इतना निर्बल नहीं पाया था। यदि एक सप्ताह और न तुम्हें देख पाया होता, तो न-जाने क्या कर डालता।"

"कवि ! तुम इतने स्वार्थी न बनो। तुम अपने देशके शाश्वत गायक हो। तुमसे अभी वह क्या-क्या आशा रखता है। तुम्हारे इस 'उर्वशी-वियोग' नाटकका जानते हो, कितना बखान हो रहा है ?"

"मैंने नहीं सुना।"

"पिछले सप्ताह मेरे बन्धु एक यवन व्यापारी भरुकच्छ (भड़ौंच)से यहाँ आए थे। भरुकच्छमें यवन नागरोंकी भारी संख्या रहती है। हमारे साकेतके यवन (यूनानी) तो हिन्दू हो गए हैं; किन्तु भरुकच्छवाले अपनी भाषाको भूले नहीं हैं। भरुकच्छमें यवन देशसे व्यापारी और विद्वान् आया करते हैं। हमारे यह बन्धु यवन साहित्यके बड़े मर्मज्ञ हैं। उन्होंने तुम्हारे नाटककी उपमा एम्पीदोकल और युरोपिद्—श्रेष्ठ यवन-नाटककारों—की कृतियोंसे दी। वह इसे उतरवाकर ले गए हैं। कहते थे—मिस्रका राजा तुरमाय (तालिमी) बड़ा नाट्य-प्रेमी है, उसके पास यवन भाषान्तर कर इसे भेजेंगे। भरुकच्छसे मिस्रको बराबर जलपोत आया-जाया करते हैं। जिस वक्त मैं उनके वार्त्तालापको सुन रही थी, उस वक्त मेरा हृदय अभिमानसे फूल उठा था।"

"मेरे लिए तुम्हारे हृदयका अभिमान ही सब-कुछ है, प्रभा!"

"कवि! तुम अपना मूल्य नहीं जानते।"

"मेरे मूल्यकी कसौटी तुम थीं, प्रभा! अब मैं उसे जानता हूँ।"

"नहीं, तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए! तुम्हें प्रभाके प्रेमी अश्वघोष और युगके महान् कवि अश्वघोषको अलग-अलग रखना होगा। प्रभाके प्रेमी अश्वघोषको चाहे जो कुछ कहो-करो; किन्तु महान् कविको उससे ऊपर, सारी वसुन्धराका समझना होगा।"

"तुम जैसा कहोगी, इस बातमें मैं तुम्हारा अनुसरण करूँगा।"

"मैंने अपनेको इतनी सौभाग्यशालिनी होनेकी कभी आशा न की थी।"

"क्यों?"

"सोचती थी, तुम मुझे भूल चुके होगे।"

"तुम इतनी साधारण थीं।"

"तुम्हारे सामने थी और अब भी हूँ।"

"तुमसे मुझे कविताका नया वर मिला है। मैं अपनी कविताओंमें अब नई प्रेरणा, नई स्फूर्ति पाता हूँ। 'उर्वशी-वियोग' गीत तुम्हारी प्रेरणासे प्रकट हुआ और यह नाटक भी। नाटकको मैं देशकी अपनी चीज़ बना रहा हूँ, प्रभा! किन्तु तुमने कैसे समझा कि मैं तुम्हें भूल जाऊँगा?"

"कहींसे भी मैं अपनेको तुम्हारे पास पहुँचने लायक़ नहीं पाती थी। एक-एककर जब मैं तुम्हारे गुणोंसे पूर्णतया परिचित हो गई, तो उससे निराश ही होती गई। साकेतकी एक-से-एक सुन्दरियोंको मैंने तुम्हारे नामपर बावली होते देखा, इससे भी आशा नहीं हो सकती थी। फिर सुना, तुम उच्च कुलके ब्राह्मण हो। यद्यपि मैं ब्राह्मणोंके बाद उच्च स्थान रखनेवाले राजपुत्र यवनकी कन्या हूँ, तो भी कुलीन ब्राह्मण—जो माता-पिताकी सात पीढ़ियों तककी छान-बीन किए बिना ब्याह नहीं करता—कैसे मेरे प्रेमका स्वागत करेगा!

"मुझे खेद है प्रभा! जो अश्वघोषने तुम्हारे चित्तको इस तरह दुखाया।"

"तो तुम प्रभा—" कहते-कहते वह रुक गई।

अश्वघोषने प्रभाके वाष्पपूर्ण नेत्रोंको चूम, कण्ठसे लगाकर कहा - "प्रभा, अश्वघोष सदा तुम्हारा रहेगा। काल भी तुम्हें उससे पराई नहीं बना सकता।"

प्रभाके नेत्रोंसे छलछल आँसू बह रहे थे और अश्वघोष कण्ठसे लगाए उसके आँसुओंको पोंछ रहा था।

"उर्वशी-वियोग" बहुत अच्छा खेला गया और एकसे अधिक बार। साकेतके सभी सम्भ्रान्त नागरिकोंने उसे देखा। उन्हें कभी ख्याल भी न था कि अभिनयकी कला इतनी पूर्ण, इतनी उच्च हो सकती है। अश्वघोषने अन्तिम यवनिकापातके समय कई बार दोहराया था कि मैंने सब

कुछ यवन-रंगमंचसे लिया है; किन्तु उसके नाटक इतने स्वभूमिज थे कि कोई उनपर किसी प्रकारके विदेशी प्रभावकी गन्ध भी नहीं पाता था।

जिस तरह अश्वघोषके संस्कृत-प्राकृत गीत और कविताएँ साकेत और कोसलकी सीमा पार कर गए थे, उसके नाटक उससे भी दूर तक फैल गए। उज्जयिनी, दशपुर, सुप्पारक, भरुकच्छ, शाकला (स्यालकोट), तक्षशिला, पाटलिपुत्र जैसे महानगरोंमें—जहाँ कि यवनोंकी काफ़ी संख्या और उनकी नाट्यशालाएँ थीं—उसके नाटक रंगमंचपर बहुत जल्द पहुँचे, और फिर सारे ही सामन्तों और व्यापारियोंमें वह बहुत प्रिय हुए।

(५)

अश्वघोषका रंगमंचपर अभिनय और यवन-कन्यासे प्रेम उसके माता-पितासे छिपा नहीं रह सकता था। इसे सुनकर पिता खास तौरसे चिन्तित हुए। ब्राह्मणने सुवर्णाक्षीको पहले समझानेके लिए कहा। माताने जब कहा कि हमारे ब्राह्मण-कुलके लिए ऐसा सम्बन्ध अधर्म है, तब ब्राह्मणोंके सारे वेद-शास्त्रोंके ज्ञाता अश्वघोषने माँको पुराने ऋषियोंके आचरणोंके सैकड़ों प्रमाण दिए (जिनमेंसे कुछको पीछे उसने अपनी 'वज्रच्छेदिका'में जमा किया, जो आज भी 'वज्रच्छदिकोपनिषद्'के नामसे उपनिषद्-गुटकामें सम्मिलित है)। किन्तु माँने कहा—"यह तो सब ठीक है, बेटा, किन्तु आजके ब्राह्मण उस पुराने आचरणको नहीं मानते।"

"तो ब्राह्मणोंके लिए मैं एक नया सदाचार उपस्थित करूँगा।"

माँ अश्वघोषकी युक्तियोंसे सन्तुष्ट नहीं हो सकती थी; किन्तु जब उसने कहा कि प्रभा और मेरे प्राण अलग नहीं रह सकते, तो वह पुत्रके पक्षमें हो गई और बोली—"पुत्र, मेरे लिए तू ही सब-कुछ है।"

अश्वघोषने एक दिन प्रभाको माँके पास भेजा। माँने रूपके समान ही गुण और स्वभावमें भी आगरी इस कन्याको देख आशीर्वाद दिया।

किन्तु ब्राह्मण इसे मान नहीं सकता था। उसने एक दिन अश्वघोषसे

सीधे कहा—"पुत्र ! हमारा श्रोत्रियोंका श्रेष्ठ ब्राह्मण-कुल है । हमारी पचासों पीढ़ियोंसे सिर्फ़ कुलीन-ब्राह्मण-कन्याएँ ही हमारे घरमें आया करती हैं । आज यदि इस सम्बन्धको तुम स्वीकार करते हो, तो हम और हमारी आगे आनेवाली सन्तान सदाके लिए जातिभ्रष्ट हो जायँगे; हमारी सारी मान-मर्यादा जाती रहेगी ।"

अश्वघोषके लिए प्रभाका त्याग अचिन्तनीय था ।

ब्राह्मणने फिर प्रभाके माता-पितासे अनुनय-विनय की; किन्तु वह असमर्थ थे । अन्तमें उसने प्रभाके सामने पगड़ी रखी । प्रभाने इतना ही कहा कि मैं अश्वघोषसे आपकी बात कहूँगी ।

(६)

प्रभा और अश्वघोष अभिन्न सहचर थे । चाहे सरयू-तीर हो, चाहे पुष्योद्यान, यात्रोत्सव, नृत्यशाला, नाट्यशाला या दूसरी जगह, एकके होनेपर दूसरेका वहाँ रहना ज़रूरी था । प्रभा सूर्य-प्रभाकी भाँति अश्वघोषके हृदय-पद्मको विकसित रखती थी । दूध-सी छिटकी चाँदनीके प्रकाशमें दोनों अक्सर सरयूकी रेतमें जाते और प्रणय-लीलामें ही अपना समय नहीं बिताते, बल्कि वहाँ कितनी ही बार जीवनकी दूसरी गम्भीर बातें भी छिड़ जातीं । एक दिन उस चाँदनीमें सरयूकी काली धाराके पास श्वेत सिकतापर बैठी प्रभाके रूपका चित्र वह अपने मनमें खींचने लगा । एकाएक उसके मुँहसे उद्गार निकल आया—"प्रभा, तुम मेरी कविता हो । तुम्हारी ही प्रेरणाको पाकर मैंने 'उर्वशी-वियोग' लिखा । तुम्हारी यह रूपराशि मुझसे कितने ही काव्य-सौन्दर्यकी रचना कराएगी । कविता भीतरकी अभिव्यक्ति बाहर नहीं है, बल्कि वह बाहरकी अभिव्यक्ति भीतर है, इस तत्त्वको मुझे तुमने समझाया, प्रिये !"

प्रभा अश्वघोषकी बातको सुनते-सुनते शीतल सिकतातलपर लेट रही । उसके दीर्घ अम्लान केशोंको बालूपर फैलते देख अश्वघोषने

उसके सिरको अपनी गोदमें ले लिया। नेत्रोंको ऊपरकी ओर करके प्रभा अश्वघोषके मुखकी रूपरेखा देख रही थी। अश्वघोषकी बातको समाप्ति-पर पहुँचते देख प्रभाने कहा—"मैं तुम्हारी सभी बातोंको माननेके लिए तैयार हूँ। काव्य वस्तुतः साकार सौन्दर्यसे प्रेरित हुए बिना पूर्ण नहीं होता। मैं भी तुम्हारा काव्यमय चित्रण करती, और मूक चित्रण मैं करती भी हूँ; किन्तु कविता मेरे बसकी बात नहीं है। मैंने उस दिन कहा था कि तुम्हें अपने भीतर दो अश्वघोषोंको देखना चाहिए, जिनमें युगके महान् कवि शाश्वत अश्वघोषका ही ख्याल मुख्य होना चाहिए; क्योंकि वह एक व्यक्तिका नहीं, बल्कि विश्वकी महानिधि है। कालकारामके उस विद्वान् भिक्षुकी बात याद है न, जिसे हम परसों देखने गए थे?"

"वह अद्भुत मेधावी मालूम होता है।"

"हाँ, और बहुत दूर-दूर तक घूमा भी। उसका जन्म मिस्रकी अलसन्दा (सिकन्दरिया) नगरीका है।"

"हाँ, मैंने सुना है। एक बात मुझे समझमें नहीं आती, प्रिये! यवन सारे ही बौद्धधर्मको क्यों मानते हैं?

"क्योंकि वह उनकी मनोवृत्ति और स्वतन्त्र प्रकृतिके अनुकूल मालूम होता है।"

"लेकिन बौद्ध सबको विरागी, तपस्वी और भिक्षु बनाना चाहते हैं?"

"बौद्धोंमें गृहस्थोंकी अपेक्षा भिक्षु बहुत कम होते हैं, और बौद्ध गृहस्थ-जीवनका रस लेनेमें किसीसे पीछे नहीं रहते।"

"इस देशमें और भी कितने ही धर्म हैं, आखिर यवनोंका बौद्ध-धर्मपर इतना पक्षपात क्यों? यह फिर भी समझमें नहीं आता।"

"यहाँ बौद्ध ही सबसे उदार धर्म है। जब हमारे पूर्वज भारतमें आए, तो सब म्लेच्छ कहकर हमसे घृणा करते थे। आक्रमणकारी यवनोंकी बात मैं नहीं कर रही हूँ, यहाँ बस जानेवाले अथवा व्यापार आदिके सम्बन्धसे आनेवाले यवनोंके साथ भी यही बर्ताव था। किन्तु बौद्ध उनसे

कोई घृणा नहीं करते थे। यवन वस्तुतः अपने देशमें भी बौद्धधर्मसे परिचित हो गए थे।"

"अपने देशमें भी ?"

"हाँ, चन्द्रगुप्त मौर्यके पौत्र अशोकके समय कितने ही बौद्ध-भिक्षु यवन-लोक (यूनानी लोगों)में पहुँचे थे। हमारे धर्मरक्षित इस देशमें आकर भिक्षु नहीं बने। वह मिस्रमें अलसन्दा (सिकन्दरिया)के विहारमें भिक्षु हुए थे।"

"मैं, उनसे फिर मिलाना चाहता हूँ, प्रभा !"

"ज़रूर मिलना चाहिए। वह तुम्हें और गम्भीर बातें बतलाएँगे—बौद्धधर्मके बारेमें ही नहीं, यवन-दर्शनके बारेमें भी।"

"यवन भी दार्शनिक हुए हैं ?"

"अनेक महान् दार्शनिक, जिनके बारेमें भदन्त धर्म-रक्षित तुम्हें बतलाएँगे। किन्तु, प्रिय, कहीं बौद्ध दर्शन सुन प्रभासे वैराग्य न कर लेना।"—कह प्रभाने अपनी बाँहोंमें अश्वघोषको बाँध लिया, मानो उसे कोई छीने लिए जा रहा हो।

"कुछ बातें तो कालकारामकी मुझे भी बहुत आकर्षक मालूम हुईं ! ख्याल आता था, यदि हमारा सारा देश कालकाराम-जैसा होता।"

प्रभाने बैठकर कहा—"नहीं, प्रिय ! कहीं तुम मुझे छोड़कर कालकाराममें न चले जाना।"

"तुम्हें छोड़ जाना जीते-जी ! असम्भव प्रिये ! मैं कह रहा था वहाँकी भेद-भाव-शून्यताके बारेमें। देखो, वहाँ यवन धर्मरक्षित, पार्शव (पर्सियन) सुमन जैसे देश-देशान्तरोंके विद्वान् भिक्षु रहते हैं, और साथ ही हमारे देशके ब्राह्मणसे चण्डाल तक सारे कुलोंके भिक्षु एक साथ रहते, एक साथ खाते-पीते और एक साथ ज्ञान अर्जन करते हैं। कालकारामके उन बूढ़े काले-काले भिक्षुका क्या नाम है ?"

"महास्थविर धर्मसेन। वह साकेतके सभी विहारोंके भिक्षुओंके प्रधान हैं।"

"सुना है, उनका जन्म-कुल चण्डाल है। और उनके सामने मेरे अपने चचा भिक्षु शुभगुप्त उकड़ूँ बैठ प्रमाण करते हैं। ख्याल करो, कहाँ शुभगुप्त एक समृद्ध श्रोत्रिय ब्राह्मण-कुलके विद्वान् पुत्र और कहाँ चण्डालपुत्र धर्मसेन!"

"किन्तु महास्थविर धर्मसेन भी बड़े विद्वान् हैं।"

"मैं ब्राह्मणोंके धर्मकी दृष्टिसे कहता हूँ, प्रभा! क्या उनका बस चलता, तो धर्मसेन मनुष्य भी बन सकते थे. देवता बनकर पूजित होने-की तो बात ही और!"

"बुद्धने अपने भिक्षु-संघको समुद्र कहा है। उस संघमें जो भी जाता है, वह नदियोंकी भाँति नाम-रूप छोड़ समुद्र बन जाता है।"

"और बौद्ध गृहस्थ भी, प्रिये! वैसा ही क्यों नहीं करते।"

"बौद्ध गृहस्थ देशके दूसरे गृहस्थोंसे छिन्न-भिन्न होकर रह नहीं सकते। आखिर उनके ऊपर परिवारका बोझ होता है।"

"मैं तो बहुत अच्छा समझता, यदि कालकारामके भिक्षुओंकी भाँति सारे पुर और जनपद (देहात)के लोग भेद-शून्य हो जाते—न कोई जातिका भेद होता, न कोई वर्णका।"

"एक बात मैंने तुमसे नहीं कही, प्रिये! तुम्हारे पिताने एक दिन मेरे सामने पगड़ी रख दी, और कहने लगे कि प्रभा! अश्वघोषको तू मुक्त कर दे।"

"गोया तुम्हारे मुक्त करनेपर वह अपने पुत्रको पा सकेंगे। तुमने क्या कहा, प्रभा?"

"मैंने कहा, आपकी बात मैं अश्वघोषसे कहूँगी।"

"और तुमने कह दिया। मुझे ब्राह्मणोंके पाखण्डोंसे अपार घृणा है। घृणासे सारा गात्र जलता है। एक ओर वह कहते हैं कि हम अपने वेद-शास्त्रको मानते हैं। मैंने बड़े परिश्रम और श्रद्धासे उनकी सारी विद्याएँ पढ़ीं; किन्तु वह क्या मानते हैं, मुझे तो कुछ समझमें नहीं आता। शायद वह केवल अपने स्वार्थको मानते हैं। जब किसी बातको उनके पुराने ऋषियों

के वचनोंसे निकालकर दिखलाओ, तो कहते हैं—इसका आजकल रिवाज़ नहीं है। रिवाजको ही मानो या ऋषि-वाक्योंको ही। यदि पुरानी वेद-मर्यादाको किसीने तोड़ा, तभी न नया रिवाज़ चला? कायर, डरपोक, स्वार्थी ऐसोंको ही कहते हैं। बस, इन्हें मोटे बछड़ोंका मांस और अपनी भूयसी-दक्षिणा चाहिए; यह कोई भी ऐसा काम करनेके लिए तैयार हैं, जिससे इनके आश्रयदाता राजा और सामन्त प्रसन्न हों।"

"ग़रीबों और जिनको यह नीच जातियाँ कहते हैं, वह सभी ग़रीब हैं—के लिए इनके धर्ममें कोई स्थान नहीं है।"

"हाँ, यवन, शक, आभीर दूसरे देशोंसे आई जातियोंको इन्होंने क्षत्रिय, राजपुत्र मान लिया; क्योंकि उनके पास प्रभुता थी, धन था। उनसे इन्हें मोटी-मोटी दक्षिणा मिल सकती थी। किन्तु अपने यहाँके शूद्रों, चण्डालों, दासोंको इन्होंने हमेशाके लिए वहीं रखा। जिस धर्मसे आदमीका हृदय ऊपर नहीं उठता, जिस धर्ममें आदमीका स्थान उसकी थैली या डंडेके अनुसार होता है, मैं उसे मनुष्यके लिए भारी कलंक समझता हूँ। संसार बदलता है; मैंने ब्राह्मणोंके पुरानेसे आज तकके ग्रन्थोंमें आचार-व्यवहारोंको पढ़कर वहाँ साफ़ परिवर्त्तन देखा है; किन्तु आज इनसे बात करो, तो वह सारी बातोंको सनातन, स्थिर मनवाना चाहते हैं। यह केवल जड़ता है, प्रिये!"

"मैं तो कारण नहीं हो रही हूँ इन उद्गारोंके लिए, मेरे घोष!"

"कारण होना प्रशंसाकी बात है मेरी प्रभा! तुमने मेरी कवितामें नया प्राण, नई प्रेरणा दी है। तुम मेरी अन्तर्दृष्टिमें भी नया प्राण, नई प्रेरणा दे मेरा भारी हित कर रही हो। किसी वक़्त समझता था कि मैं ज्ञानके छोरपर पहुँच गया। ब्राह्मण इस झूठे अभिमानके बहुत आसानी-से शिकार हो जाते हैं; किन्तु अब जानता हूँ कि ज्ञान ब्राह्मणोंकी श्रुतियों, उनकी ताल तथा भुर्जपत्रकी पोथियों तक ही सीमित नहीं है; वह उनसे कहीं विशाल है।"

"मैं एक स्त्री-मात्र हूँ।"

"और जो स्त्री-मात्र होनेसे किसीको नीच कहता है, उसे मैं घृणाकी दृष्टिसे देखता हूँ।"

"यवनोंमें स्त्रियोंका सम्मान तब भी दूसरोंसे ज्यादा है। उनमें आज भी चाहे निस्सन्तान मर जाय; किन्तु एक स्त्रीके रहते दूसरेसे ब्याह नहीं हो सकता।"

"और यह ब्राह्मण तो सौसे ब्याह कराते फिरते हैं, सिर्फ़ दक्षिणाके लिए, छिः! मैं खुश हूँ, जो कोई यवन ब्राह्मण-धर्मको नहीं मानता।"

"बौद्ध होनेपर भी पूजा-पाठके लिए हमारे यहाँ ब्राह्मण आते हैं।"

"जब उन्होंने अपने स्वार्थके लिए यवनोंको क्षत्रिय स्वीकार कर लिया है, तो उतना क्यों नहीं करेंगे—दक्षिणाकी जो बात ठहरी।"

"तो क्या मैं तुम्हारे ब्राह्मणत्वके अभिमानको दूर करनेमें कारण तो नहीं बनी?"

"बुरा नहीं हुआ। यदि ब्राह्मण-अभिमान मुझमें और तुममें भेद डालना चाहता है, तो वह मेरे लिए तुच्छ, घृणास्पद वस्तु है।"

"यह जानकर मुझे कितनी ख़ुशी है कि तुम मुझे प्रेम करते हो, घोष!"

"अन्तस्तमसे प्रिये! तुम्हारे प्रेमसे वंचित अश्वघोष निष्प्राण जड़ रह जायगा।"

"तो मेरे प्रेमका पुरस्कार, वरदान भी देना चाहते हो?"

"उसी एक प्रेमको छोड़कर सब कुछ।"

"मेरा प्रेम यदि मेरे शाश्वत अश्वघोष, युगके महान् कवि अश्वघोषको ज़रा भी हानि पहुँचा सका, तो उसे धिक्कार है।"

"साफ़ कहो, प्रिये!"

"प्रेममें मैं बाधा नहीं डालना चाहती; किन्तु मैं उसे तुम्हारे शाश्वत निर्माणमें सहायक देखना चाहती हूँ। और यदि मैं न रही—"

अश्वघोषने विक्षिप्तकी भाँति खड़े हो प्रभाको उठाकर जब दृढ़ता-पूर्वक अपनी छाती और गलेसे लगाया, तो प्रभाने देखा, उसके गाल भीगे हुए हैं। वह अश्वघोषको बार-बार चूमती और बार-बार दुहराती रही—"मेरे घोष!" फिर थोड़ा शान्त होनेपर प्रभाने कहा—"सुनो प्यारे, मेरा प्रेम तुमसे कुछ बड़ी चीज़ माँगना चाहता है, उसे तुम्हें देना चाहिए।"

"तुम्हारे लिए कुछ भी अदेय नहीं है प्रिये!"

"फिर तुमने मुझे बात भी समाप्त नहीं करने दी!"

"किन्तु तुम तो वज्र-अक्षर अपने मुँहसे निकालना चाहती थीं।"

"लेकिन उस वज्र-अक्षरको शाश्वत अश्वघोषके हितके लिए कहना ज़रूरी है। मेरा प्रेम चाहता है कि महान् कवि अश्वघोष अपने शाश्वत कवि-रूपकी भाँति प्रभाके प्रेमको भी शाश्वत समझे, उसे सामने बैठी प्रभाके शरीरसे न नापे। शाश्वत अश्वघोषकी प्रभा शाश्वत तरुणी, शाश्वत सुन्दरी है। मैं बस इतना ही तुम्हारे मनसे मनवाना चाहती हूँ।"

"तो वास्तविक प्रभाकी जगह तुम काल्पनिक प्रभाको मेरे सामने रखना चाहती हो?"

"मैं दोनोंको वास्तविक समझती हूँ, मेरे घोष! फ़र्क़ इतना ही है कि उनमेंसे एक सिर्फ़ सौ या पचास वर्ष रहनेवाली है, दूसरी शाश्वत। तुम्हारी प्रभा तुम्हारे 'उर्वशी-वियोग' में अमर रहेगी। मेरे प्रेमको अमर रखनेके लिए तुम्हें अमर अश्वघोषकी ओर ध्यान रखना होगा। और अब रात बहुत बीत गई, सरयूका तीर भी सोया मालूम होता है, हमें भी घर चलना चाहिए।"

"और मैंने अमर प्रभाका एक चित्र अपने मनपर अंकित किया है।"

"प्रियतम! बस, यही चाहती हूँ।"—कहकर अश्वघोषके कपोलों-पर अपने रेशम-जैसे कोमल केशोंको लगा वह नीरव खड़ी रही।

(७)

एक बड़ा आँगन है, जिसके चारों ओर बराम्दा और पीछे तितल्ले मकानकी कोठरियाँ हैं। बराम्दोंमें अरगनोंपर पीले वस्त्र सूख रहे हैं। आँगनके एक कोनेमें एक कुआँ तथा पास ही एक स्नान-कोष्ठक है। आँगनकी दूसरी जगहोंमें कितने ही वृक्ष हैं, जिनमें एक पीपलका है। पीपलके गिर्द वेदी है और फिर हटकर पत्थरका कटघरा, जिसपर हज़ारों दीपकोंके रखनेके लिए स्थान बने हुए हैं। प्रभाने घुटने टेक उस सुन्दर वृक्षकी वन्दना करके कहा—"प्रिय! इसी जातिका वह वृक्ष था, जिसके नीचे बैठकर सिद्धार्थ गौतमने अपने प्रयत्न, अपने चिन्तन द्वारा मनकी भ्रान्तियोंको हटा बोध प्राप्त किया, और तबसे वह बुद्धके नामसे प्रख्यात हुए। सिर्फ़ उसी मधुर स्मृतिके लिए हम इस जातिके वृक्षोंके सामने सिर झुकाते हैं।"

"अपने प्रयत्न, अपने चिन्तन द्वारा मनकी भ्रान्तियोंको हटा बोध प्राप्त करनेका प्रतीक! ऐसे प्रतीककी पूजा होनी चाहिए, प्रिये! ऐसे प्रतीककी पूजा अपने प्रयत्न—आत्म-विजय—की पूजा है।"

फिर दोनों भदन्त धर्मरक्षितके पास गए। वह उस वक्त आँगनके एक बकुल वृक्षके नीचे बैठे थे, जहाँ नवपुष्पित फूलोंकी मधुर सुगन्धि फैल रही थी। प्रभाने बौद्ध-उपासिकाकी भाँति पंच-प्रतिष्ठितसे (पैरके दानों पंजों-घुटनों, हाथकी दानों हथेलियों और ललाटको धरतीपर रखकर) वन्दना की। अश्वघोषने खड़े ही खड़े सम्मान प्रदर्शन किया। फिर दोनों ज़मीनपर पड़े चर्म-खंडोंको लेकर बैठ गए। भदन्तके शिष्य अश्वघोषकी बातचीत करनेके लिए आया समझ वहाँसे हट गए। साधारण शिष्टाचारको बातोंके बाद अश्वघोषने दर्शनकी बात छेड़ा। धर्मरक्षितने कहा—"ब्राह्मण-कुमार! दर्शनको भी बुद्धों—ज्ञानियों—के धर्ममें बन्धन और भारी बन्धन (दृष्टि-संयोजन) कहा गया है।"

"तो भदन्त ! क्या बुद्धके धर्ममें दर्शनका स्थान नहीं है ?"

"स्थान क्यों नहीं, बुद्धका धर्म दर्शनमय है; किन्तु बुद्ध उसे बेड़ेकी भाँति पार उतरनेके लिए बतलाते हैं, सिरपर उठाकर ढोनेके लिए नहीं।"

"क्या कहा, बेड़ेकी भाँति ?"

"हाँ, बिना नाववाली नदीमें लोग बेड़ा बाँधकर उससे पार उतर जाते हैं; किन्तु पार उतरकर बेड़ेकी उन लकड़ियोंको उपकारी समझ सिरपर ढोते नहीं फिरते।"

अपने धर्मके लिए भी जिस पुरुषको इतना कहनेकी हिम्मत थी, उसने ज़रूर सत्य और उसके बलको देखा होगा। भदन्त ! बुद्धके दर्शन-की कोई ऐसी बात बतलाएँ, जिसके जाननेसे हमें अपने मनसे भी बहुत-सा समझ जानेमें सुभीता हो।"

"अनात्मवाद है, कुमार ! ब्राह्मण आत्मको नित्य, ध्रुव, शाश्वत तत्त्व मानते हैं। बुद्ध-जगत्के भीतर बाहर किसी ऐसे नित्य, ध्रुव, शाश्वत तत्त्वको नहीं मानते, इसीलिए उनके दर्शनको अनात्मवाद—अनित्यता, क्षण-क्षण उत्पत्ति-विनाश—का दर्शन कहते हैं।"

"मेरे लिए यह एक बात ही काफ़ी है, भदन्त ! बेड़ेकी भाँति धर्म तथा अनात्मवादकी घोषणा करनेवाले बुद्धको अश्वघोष शतशः प्रणाम करता है। अश्वघोष जिसको ढूँढ़ता था, उसे उसने पा लिया। मैं अपने भीतर अनुभव कर रहा था कुछ ऐसी ही लहरोंको; किन्तु मैं उसे नाम नहीं दे पाता था। आज बुद्धकी शिक्षाको लोकने ठीकसे माना होता, तो दुनिया दूसरी ही होती।"

"ठीक कहा कुमार ! हमारे यवन देशमें भी महान् दार्शनिक पैदा हुए हैं, जिनमें पिथागोर, हेराक्लितु तो भगवान्के समय जीवित थे, सुक्रात, देमोक्रितु, अफ़लातूँ, अरस्तू उनसे थोड़ा बादमें हुए। इन यवन दार्शनिकोंने गम्भीर चिन्तन किया; किन्तु हेराक्लितुको छोड़ सभी शाश्वतवाद—नित्यवाद—से ऊपर नहीं उठ सके। वर्त्तमान्का उन्हें

हदसे ज्यादा मोह था। यही कारण था कि वह भविष्यको भी उससे बाँध रखना चाहते थे। हेराक्लितु अवश्य बुद्धकी भाँति जगत्को किसी दो क्षण भी वैसा ही नहीं मानता था; किन्तु इसमें उसका एक वैयक्तिक स्वार्थ था।"

"दर्शन-विचारमें वैयक्तिक स्वार्थ!"

"पेट सभीके पास होता है, कुमार! उस वक्त हमारे एथेन्स नगरमें गण—बिना राजाका राज्य—था। पहले हेराक्लितुके परिवारकी तरहके बड़े-बड़े सामन्त गण-शासनके सूत्रधार थे, पीछे उनको हटाकर व्यापारियों—सेठों—ने शासन-सूत्र अपने हाथमें लिया। इस अवस्थासे हेराक्लितु असन्तुष्ट था। वह परिवर्त्तन चाहता था; किन्तु आगे जानेके लिए नहीं, बल्कि पीछेकी ओर लौटनेके लिए।"

"हमें परिवर्त्तन चाहिए; किन्तु आगे बढ़नेके लिए पीछे लौटनेके लिए नहीं; मैं समझता हूँ, भदन्त! अतीत मुर्दा है।"

"बिल्कुल ठीक कहा, कुमार! बुद्ध परिवर्त्तन चाहते थे, और बेहतर जगत्को लानेके लिए। भिक्षु-संघको उन्होंने उसी भविष्यके जगत्के लिए एक नमूनेके तौरपर पेश किया।"

"जहाँ जात-पाँत नहीं, जहाँ ऊँच-नीच नहीं।"

"जहाँ सबके लिए भोग समान है, जहाँ सबके लिए सेवा करना समान है। तुमने हमारे महास्थविर धर्मसेनको बाहर झाड़ू लगाते देखा होगा?"

"वह काले-काले?"

"हाँ, वह हममें सबसे श्रेष्ठ हैं। हम रोज़ पंच-प्रतिष्ठितसे उनकी बन्दना करते हैं। सारे कोसल-देशके भिक्षु-संघके वह नायक हैं।"

"सुना है, वह चण्डाल-कुलके हैं?"

"भिक्षु-संघ कुल नहीं देखता कुमार! वह गुण देखता है। वह अपनी विद्या और अपने गुणोंसे हमारे नायक हैं, हमारे पिता हैं। उनके

भिक्षा-पात्रमें यदि पात्र चुपड़ने भरकी भी कोई चीज़ मिल जाती है, तो वह बिना साथियोंको दिए नहीं खाते। यही बुद्धकी शिक्षा है। पहननेके तीन कपड़ों, मिट्टीके भिक्षा-पात्र, सूई, जलछक्का, अस्तुरा और कमर-बन्दके सिवाय हमारी सारी चीज़ें संघकी हैं। यह घर, बाग़, मंच, पीठ आदि सब संघके हैं। हमारे किसी-किसी विहारमें खेत भी हैं, वह भी संघके हैं। संघ देख-सुनकर एक आदमीको भिक्षु बनाता है; किन्तु जो संघमें प्रविष्ट हो गया—भिक्षु बन गया—वह सबके समान है।"

"इस तरहका संघ यदि सारे देशके लिए बनता ?"

"वह कैसे हो सकता है, कुमार ? राजा और धनी कब दूसरोंको बराबर होने देंगे ? भिक्षुओंने एक दासको संघमें दाखिल कर लिया था। संघमें दाखिल होते ही वह अदास—सबके समान था; किन्तु जिसका वह दास था, उसने हल्ला मचाना शुरू किया। दूसरे दास-स्वामी भी उसके साथ शामिल हो गए। राजा स्वयं हज़ारों दासोंके स्वामी होते हैं। वह भी अपनी सम्पत्तिपर इस तरहका प्रहार कैसे सह सकते ? बुद्ध क्या करते, उन्होंने वचन दिया कि आगेसे संघ दासको अपने भीतर नहीं लेगा। हमारा संघ विषमतापूर्ण समुद्रमें एक छोटा-सा द्वीप है, इसीलिए वह सुरक्षित नहीं है, जब तक कि संसारमें इस तरहकी ग़रीबी, इस तरहकी दासता है।"

(८)

शरतकी पूनो थी। शामसे ही चन्द्रमाका थाल पूर्व क्षितिजपर उग आया था, और जैसे-जैसे क्षितिजपर फैली सूर्यकी अन्तिम लाल किरणें आकाश छोड़ रही थीं, वैसे ही वैसे चन्द्रमाकी शीतल श्वेत किरणें प्रसरित हो रही थीं। अश्वघोष अब अधिकतर प्रभाके घरपर रहा करता था। दोनों छतपर बैठे थे, उसी समय प्रभाने कहा—"प्रियतम ! मुझे सरयूकी लहरें बुला रही हैं—वह लहरें, जिन्होंने सबसे पहले तुम्हारा स्पर्श मेरे

पास पहुँचाया था, जिन्होंने हमें प्रेम-सूत्र में बाँधा था। तबसे दो वर्ष हो गए, किन्तु वह दिन आज ही बीता मालूम होता है। हमने कितनी चाँदनी रातें सरयूकी रेतपर बिताई। वह कितनी मधुर होती हैं! आज फिर मधु-चाँदनी है! प्रिय! चलो चलें सरयूके तीर।"

दोनों चल पड़े। धारा नगरसे दूर थी। चाँदनीमें चमकते सफ़ेद बालूपर वह दूर तक चलते गए। प्रभाने अपने चप्पलोंको हाथमें ले लिया था। उसे पैरोंके नीचे दबती सिकताका स्पर्श सुखद लगता था। उसने अश्वघोषकी कटिको अपने दोनों हाथोंसे लपेटकर कहा—"प्रिय! इस सरयूकी सिकताका स्पर्श कितना आह्लादक है?"

"पैरोंमें गुद्‌गुदी लगती है।"

"जिससे हर्षातिरेक हो रोमांच हो उठता है। प्यारी सरयू सरिता!"

"मैं कई बार सोचता था, प्रिये! कि हम दोनों भाग चलें। भाग चलें उस देशमें, जहाँ हमारे प्रेमकी कोई ईर्ष्या करनेवाला न हो। जहाँ तुम प्रेरणा दो, मैं गीत बनाऊँ और फिर वीणापर हम दोनों गावें। यहाँ सिकतापर इस रात्रिमें मैं अपनी वीणा नहीं ला सकता। लोग आ पहुँचेंगे। उनमेंसे कितनोंकी आँखें ईर्ष्या-कलुषित होंगी।"

"प्रिय! बुरा न मानना। मैं कभी-कभी सोचती हूँ, जब मैं न रही—"

अश्वघोषने बाहोंमें कसकर प्रभाको छातीसे लगा लिया और कहा—"नहीं प्रिये! कदापि नहीं। हम इसी तरह रहेंगे।"

"मैं दूसरे अभिप्रायसे कह रही हूँ, प्रिय! मान लो, तुम न रहे, मैं अकेली रह गई। दुनियामें ऐसा होता है कि नहीं?"

"होता है।"

"अपनी बार तुम नहीं तिलमिलाए, घोष! तुम्हारे न रहनेपर शोक का पहाड़ केवल मेरे ऊपर टूटेगा इसीलिए न?"

"तुम मेरे साथ कितनी निष्ठुरता दिखला रही हो, प्रभा !"

प्रभाने ओठोंको चूमकर अश्वघोषको हर्षोत्फुल्ल करते हुए कहा—"जीवनकी कई दिशाएँ होती हैं। सदा पूर्णिमा ही नहीं, अमावस्या भी आती है। मैं यही कह रही थी कि एकके अभावमें दूसरेको क्या करना चाहिए। तुम्हारे न रहनेपर, जानते हो, मैं क्या करूँगी ?"

मुँह गिराकर लम्बी साँस ले अश्वघोषने कहा—"कहो।"

"मैं अपने जीवनका हर्गिज़ अन्त न करूँगी। भगवान् बुद्धने आत्म-हत्याको मूर्खतापूर्ण निन्दनीय कर्म कहा है। तुमने देखा न, मैंने इधर वीणामें बहुत सफलता प्राप्त की है।"

"बहुत। प्रभा ! कितनी ही बार तुम्हें वीणा देकर मैं निश्चिन्त हो जाता हूँ।"

"हाँ, तो उस वक्त मेरा अशाश्वत अश्वघोष मुझसे छिन जायगा; किन्तु मैं शाश्वत अश्वघोष—युग-युगके कवि—की आराधना करूँगी। तुम्हारी वीणापर तुम्हारे गानोंको गाऊँगी, सारे जम्बूद्वीपमें और उससे बाहर भी; जीवन-भर, जब तक कि हमारा जीवन-प्रवाह किसी दूसरे देश-कालमें साकार हो फिर न सम्मिलित हो जायगा। और मेरे न रहनेपर तुम क्या करोगे, प्रियतम ?"

इन शब्दोंको सुनकर अश्वघोषका अन्तस्तमसे लेकर सारा शरीर कँप गया, जिसे प्रभाने अनुभव किया। अश्वघोष बोलनेका प्रयत्न कर रहा था किन्तु उसका कंठ सूख गया था और उसकी आँखें बरसना चाहती थीं। कुछ क्षणके प्रयत्नके बाद उसने क्षीण-स्वरमें कहा—"बड़ी निष्ठुर होगी वह घड़ी ! किन्तु प्रभा ! मैं भी आत्म-हत्या न करूँगा। तुम्हारे प्रेमकी प्रेरणा जो-जो गीत मेरे उरमें पैदा करेगी, उन्हें गाऊँगा, जीवनके अन्त तक। मैं तुम्हारे शाश्वत अश्वघोष—" अश्वघोषका कंठ रुद्ध हो गया।

"सरयूकी धार सो रही है, प्रिय ! चलो, हम भी चलें।"

(६)

ग्रीष्म ऋतु थी। माता सुवर्णाक्षी बीमार हो गई। अश्वघोष दिन-रात माँके पास रहता था। प्रभा भी दिन-भर वहीं रहती। चिकित्साका कोई असर न हुआ, और सुवर्णाक्षीकी अवस्था बिगड़ती ही गई। पूनो आई, दूधकी-सी चाँदनी छिटकी। सुवर्णाक्षीने आज चाँदनीमें ऊपर ले चलनेको कहा। छतपर उसकी चारपाई पहुँचाई गई। उसका शरीर सिर्फ़ हड्डियोंका कंकाल रह गया था। रह-रहकर अश्वघोषके हृदयमें टीस लगती। माँने धीमे स्वर, किन्तु स्पष्ट अक्षरोंमें कहा—"पुत्र! यह चाँदनी कितनी सुन्दर है!"

उसी वक्त अश्वघोषके कानोंमें प्रभाके शब्द गूँजने लगे—"मुझे सरयूकी लहरें बुला रही हैं।" उसका कलेजा सिहर उठा। माँने फिर कहा—"प्रभा कहाँ है, पुत्र!"

"पिता के घर गई, माँ! शाम तक तो यहीं थी।"

"प्रभा! मेरी बेटी! अच्छा पुत्र, उसे कभी न भूलना......"

शब्द समाप्त भी न होने पाए थे कि एक खाँसी आई, और दो हिचकियोंके बाद सुवर्णाक्षीका शरीर निश्चल हो गया।

सुवर्णाक्षी गई। सुवर्णाक्षी-पुत्रका हृदय फटने लगा। वह रात-भर रोता रहा।

दूसरे दिन मध्याह्न तक वह माँके दाह-कर्ममें लगा रहा। फिर उसे प्रभा याद आई। वह दत्तमित्र-भवन गया। माँ-बाप समझते थे, प्रभा अश्वघोषके पास होगी। अश्वघोषका हृदय रातके प्रहारसे जर्जर हो रहा था, अब और चिन्तित हो उठा। वह प्रभाके शयनकक्षमें गया। वहाँ सभी चीज़ें सँभालकर रखी हुई थीं। उसने पलंगपर फैलाई सफ़ेद चादरको हटाया। वहाँ उसने अपने चित्रको देखा। प्रभाने उसे एक आगन्तुक यवन चित्रकारसे तैयार करवाया था, और इसके लिए अनिच्छा-

वश अश्वघोषको कितने ही घंटों बैठना पड़ा था। चित्रपर एक म्लान जूहीकी माला पड़ी थी। चित्रके नीचे प्रभाकी मुद्रासे अंकित लपेटा तालपत्र-लेख था। अश्वघोषने उसे उठा लिया। रस्सीके बन्धनपर मुहर लगी काली मिट्टी अभी सूखी न थी। अश्वघोषने रस्सीको काटकर प्रभाकी मुहर लगी मिट्टीको रख लिया। लम्बे पत्तेको फैलानेपर प्रभाके सुन्दर अक्षरोंमें वहाँ पाँच पंक्तियाँ थीं—

"प्रियतम! प्रभा विदाई ले रही है। मुझे सरयूकी लहरोंने बुलाया है। मैं जा रही हूँ। तुमने मेरे प्रेमके लिए कोई वचन दिया है, याद है? मैं प्रभाके चिर-तारुण्य, उसके सदा एक-से रहनेवाले सौन्दर्यको दिए जा रही हूँ। अब तुम्हारी आँखोंको पके बालों, टूटे दाँतों, वलित कटिवाली प्रभा कभी नहीं देखनेको मिलेगी। मेरा प्रेम, मेरा यह शाश्वत यौवन तुम्हें प्रेरणा देगा। तुम उस प्रेरणाकी अवहेलना न करना। प्रियतम! यह न ख्याल करना कि मैं तुम्हारे कुटुम्बकी कलहका ख्यालकर आत्म-हत्या कर रही हूँ—सिर्फ़ तुम्हें काव्य-प्रेरणा देनेके लिए मैं अपने अक्षुण्ण यौवनको प्रदान कर रही हूँ। प्रियतम! प्रभा तुम्हारा अन्तिम मानस आलिंगन और चुम्बन कर रही है।"

कई बार आँखोंके आँसुओंको पोंछकर अश्वघोषने पत्रको समाप्त किया। उसके बाद पत्र उसके हाथसे गिर गया। वह खुद चारपाईपर बैठ गया। उसका हृदय सुन्न हो रहा था। हृदयकी गतिके रुकनेकी वह तन्मय हो प्रतीक्षा कर रहा था। वह मिट्टीकी मूर्त्तिकी भाँति शून्य आँखोंसे ताकता रहा। कितनी ही देर तक इन्तज़ार करनेके बाद प्रभाके पिता-माता आए। उसकी उस अवस्थाको देख वह बहुत शंकित हो गए। फिर पासमें पड़े पत्रको उन्होंने पढ़ा। माँके मुँहसे चीत्कार निकली और वह धरतीपर गिर पड़ी। दत्तमित्र नीरव अश्रुधारा बहाने लगे। अश्वघोष वैसे ही टकटकी लगाए देखता रहा। प्रभाके माँ-बाप देर तक उसकी वह अवस्था देख चुपचाप चले गए। शाम हुई, रात आई; किन्तु वह

वैसे ही बैठा रहा। उसके आँसू सूख गए और हृदयको काठ मार गया था। बड़ी रात गए वह वैसे ही बैठे-बैठे ऊँघकर लेट गया।

सबेरे जब प्रभाकी माँ आई, तो देखा कि अश्वघोष प्रकृतिस्थ हो किसी चिन्तामें बैठा है। माँने पूछा—"मन कैसा है?"

"माँ! अब मैं बिल्कुल ठीक हूँ। प्रभाने जो काम मुझे सौंपा है, अब मैं वही करूँगा। मैंने नहीं समझा था; किन्तु प्रभा जानती थी। वह मेरे कर्त्तव्यको बतला गई है। आत्म-हत्या नहीं, प्रभाने आत्म-दान दिया। हाँ, उस आत्म-दानको आत्म-हत्यामें बदलना मेरे हाथमें है; किन्तु मैं ऐसा कृतघ्न नहीं हो सकता।"

माँने अश्वघोषके भावको समझा। अश्वघोष उठ खड़ा हुआ। माँने देखकर पूछा—"कहाँ चले, बेटा?"

"भदन्त धर्मरक्षितसे मिलना चाहता हूँ और सरयूको देखना भी।"

"भदन्त धर्मरक्षित नीचे बैठे हैं, और सरयू देखने मैं भी चलूँगी।"—कहते-कहते उसका गला भर आया।

अश्वघोषने नीचे जा भदन्त धर्मरक्षितकी पंचप्रतिष्ठितसे वन्दना करके कहा—"भन्ते! मुझे अब संघमें शामिल कीजिए।"

"वत्स! तुम्हारा शोक दारुण है।"

"दारुण है; किन्तु मैं उसके कारण नहीं कह रहा हूँ। प्रभाने मुझको इसके लिए तैयार किया है। मैं जल्दी नहीं कर रहा हूँ।"

"तो भी तुम्हें कुछ दिन ठहरना होगा, संघ इतनी जल्दी नहीं करेगा।"

"मैं प्रतीक्षा करूँगा, भन्ते! किन्तु संघकी शरणमें रहकर।"

"पहले तुम्हें अपने पितासे आज्ञा लेनी होगी। माता-पिताकी आज्ञा के बिना संघ किसीको भिक्षु नहीं बनाता।"

"तो मैं आज्ञा लेकर आऊँगा।"

अश्वघोष घरसे निकला। माँ उसके स्वस्थ-मस्तिष्क-जैसे वचन सुनकर भी शंकित-हृदया थीं, इसलिए वह भी पीछे-पीछे चलीं। सरयूपर

नावकर दोनोंने दिन भर नीचेकी ओर धारको ढूँढ़ा; किन्तु कुछ पता नहीं मिला। अगले दिन और नीचे गए; किन्तु कहीं कुछ न था।

अश्वघोषने घर जा पितासे भिक्षु होनेके लिए आज्ञा माँगी; किन्तु इकलौते बेटेको वह क्यों आज्ञा देने लगा? फिर उसने कहा—"मैं माँ और प्रभाके शोकसे पीड़ित हो ऐसा नहीं कर रहा हूँ, तात! मैंने अपने जीवनके लिए जो कार्य चुना है, उसका यही रास्ता है। तुम देख रहे हो मेरे स्वर, मेरी चेष्टामें किसी प्रकारके चित्त-विकारकी छाप नहीं है। मुझे इतना ही कहना है—यदि मुझे जीवित रखना चाहते हो, तो आज्ञा दे दो, तात!"

"अच्छा तो कल शाम तक सोचनेका अवसर दो।"

"मैं सात दिन तक इन्तज़ार कर सकता हूँ, तात!"

दूसरे दिन शामको पिताने आँखोंमें आँसू भरकर भिक्षु बननेकी आज्ञा दे दी।

साकेतके आर्य सर्वास्तिवाद संघने अश्वघोषको भिक्षु बनाया। महास्थविर धर्मसेन उनके उपाध्याय और भदन्त धर्मरक्षित आचार्य बने। भदन्त धर्मरक्षित उसी समय नावसे पाटलिपुत्र (पटना) जानेवाले थे, उनके साथ ही अश्वघोषने भी साकेत छोड़ा।

(१०)

भिक्षु अश्वघोषको पाटलिपुत्रके अशोकाराम (मठ)में रहते दस साल हो गए थे। उन्होंने बौद्धधर्मके साथ बौद्ध-दर्शन तथा यवन-दर्शनका गम्भीर अध्ययन किया। मगधके महासंघके विद्वानोंमें अश्वघोषका बहुत ऊँचा स्थान था। इसी समय पश्चिमसे शक सम्राट् कनिष्क पूर्वकी विजय करते पाटलिपुत्र पहुँचा। पाटलिपुत्र और मगध इस वक्त बौद्ध-धर्मके प्रधान केन्द्र थे। कनिष्ककी बौद्धधर्ममें भारी श्रद्धा थी। उसने भिक्षुसंघसे गन्धार ले जानेके लिए एक योग्य विद्वान् माँगा। संघने अश्वघोषको प्रदान किया।

राजधानी पुरुषपुर (पेशावर)में जाकर अश्वघोषने अपनेको एक ऐसे स्थानमें पाया, जहाँ, शक, यवन, तरुष्क (तुर्क) पारसी तथा भारतीय संस्कृतियोंका समागम होता था। यवन-नाट्यकलाको अश्वघोष पहले ही भारतीय साहित्यमें स्थान दिला चुके थे। यवन-दर्शनके गम्भीर विवेचनके बाद उन्होंने उसकी कितनी ही विशेषताओं, विश्लेषण-शैली तथा अनुकूल तत्त्वोंको ले भारतीय दर्शन—विशेषकर बौद्ध-दर्शन—को यवन-दर्शनकी देनसे समृद्ध किया। अश्वघोषने बौद्धोंके लिए यवन-दर्शनसे लेनेका रास्ता खोल दिया। फिर तो दूसरे भारतीय विचारक भी मजबूर हुए, और वैशेषिक तथा न्याय इस रास्तेमें सबसे आगे बढ़े—परमाणु, सामान्य, द्रव्य, गुण, अवयवी आदि तत्त्व इन्होंने यवन-दर्शनसे लिए।

प्रभाने हृदयको विशाल कर दिया था, इसलिए भदन्त अश्वघोष-को निज-परका विचार नहीं था। प्रभाकी प्रेरणासे उन्होंने अनेक काव्य, नाटक कथानक लिखे, जिनमें कितने ही लुप्त हो गए। फिर भी प्रकृति उनसे विशेष प्रसन्न मालूम होती है, तभी तो मध्य-एसियाकी महाबालुका-राशि (गोबी ने सत्रह सौ वर्ष बाद उनके 'सारिपुत्र-प्रकरण' (नाटक) को प्रदान किया। उनके 'बुद्ध-चरित' और 'सौन्दरानन्द' अमर काव्य हैं। उन्होंने प्रभाके दिए वचनको अच्छी तरह निबाहा, और प्रभाके अम्लान सौन्दर्यने उनके काव्यको सुन्दरतम बनाया। जन्मभूमि साकेत और माता सुवर्णाक्षीको उन्होंने कभी विस्मृत नहीं होने दिया और अपनी कृतियोंमें सदा अपने लिए "साकेतक आर्यसुवर्णाक्षी-पुत्र अश्वघोष लिखा।

१२—सुपर्ण यौधेय

काल—४२० ई०

(१)

मेरा भी भाग्यचक्र कैसा है। कभी एक जगह पैर जम नहीं सका। संसारके थपेड़ोंने मुझे सदा चंचल और विह्वल रखा। जीवनमें मिठासके दिन भी आये, यद्यपि कटुताके दिनोंसे कम। और परिवर्त्तन तो जैसे वर्षान्तके बादलोंकी भाँति ज़रा दूरपर पानी, ज़रा दूरपर धूप। जान नहीं पड़ता यह परिवर्तन-चक्र क्यों घुमाया जा रहा है। पश्चिमी उत्तरा-पथ गन्धारमें अब भी मधुपर्कमें वत्समांस दिया जाता है, किन्तु मध्यदेश (युक्तप्रान्त-बिहार)में गोमांसका नाम लेना भी पाप है—वहाँ गोब्राह्मण रक्षा सर्वश्रेष्ठ धर्म है। मुझे समझमें नहीं आता, आखिर धर्ममें इतनी धूप-छाँह क्यों? क्या एक जगहका अधर्म दूसरी जगह धर्म होकर चलता रहेगा, अथवा एक जगह परिवर्त्तन पहिले आया है, दूसरी जगह उसी-का अनुकरण किया जायेगा।

मैं अवन्ती (मालवा)के एक गाँवमें क्षिप्राके तटपर पैदा हुआ। मेरे कुलवाले अपनेको मुसाफ़िरकी तरह समझते थे, यद्यपि वहाँ उनके अपने खेत थे, अपना घर था, जिन्हें वह अपने कन्धेपर उठाकर नहीं ले जा सकते थे। मेरे कुलवालोंके डीलडौल, रंग-रूपमें गाँवके और लोगोंसे कुछ अन्तर था—वह ज्यादा लम्बे-चौड़े, ज्यादा गौर, साथ ही दूसरोंकी शान न सहनेवाले थे। मेरी माँ गाँवकी सुन्दरतम स्त्री थी, उसके गौर मुखमंडलपर भूरे बाल बड़े सुन्दर लगते थे। हमारे परिवारके लोग अपनेको ब्राह्मण कहते थे, किन्तु मैं देखता था, गाँववालोंको इसपर सन्देह

था। सन्देहकी चीज़ भी थी। वहाँ के ब्राह्मणोंमें सुरा पीना महापाप था, किन्तु, मेरे घरमें वह बराबर बनती और पी जाती थी। और उच्च-कुलोंमें स्त्री-पुरुषका सम्मिलित नाच सुना भी नहीं जाता था, किन्तु मेरे कुलके सात परिवार जो कि एकसे ही बढ़े थे—शामसे ही अखाड़ेमें जुट जाते थे। अत्यन्त बचपनमें मैंने समझा सभी जगह ऐसा ही होता होगा, किन्तु, जब मैं गाँवके और लड़कोंके साथ खेलते उनके व्यंग्य वचनोंको समझने लगा, तो मालूम हुआ, कि वह हमें अद्भुत तरहके आदमी समझते हैं, और हमारी कुलीनताको मानते हुए भी हमारे ब्राह्मण होने-में सन्देह करते हैं। हमारा गाँव एक बड़ा गाँव था, जिसमें दूकानें और बनियोंके घर भी थे। वहाँ कुछ नागर परिवार थे, इन्हें लोग बनिया कहते, किन्तु वह स्वयं हमारी भाँति अपनेको ब्राह्मण कहते। कई नागर कन्यायें हमारे कुलमें आई थीं, यह भी एक कारण था, कि गाँववाले हमें ब्राह्मण माननेके लिए तैयार न थे। उनके ख्यालमें हम ब्राह्मणोंके खान-पान, शादी-ब्याहके नियमोंकी अवहेलना करके कैसे ब्राह्मण हो सकते हैं? मेरे साथी लड़के जब कभी नाराज़ हो जाते तो मुझे "जुझवा" कहकर चिढ़ाते। मैं माँसे बराबर पूछता, किन्तु वह टाल देती।"

अब मैं कुछ सयाना हो गया था, दस सालकी उम्र थी, और गाँवमें एक ब्राह्मण गुरुकी पाठशालामें पढ़ने जाता था। मेरे सहपाठी प्रायः सभी ब्राह्मण थे—लोगोंके कहनेके अनुसार सभी पक्के ब्राह्मण, और मैं तथा दो नागर विद्यार्थी थे, जिन्हें हमारे साथी कच्चे ब्राह्मण, कहते थे। मैं गुरुजीका तेज़ विद्यार्थी था और उनका मुझपर विशेष स्नेह रहता था। हमारे कुलवालोंका स्वभाव, मुझमें भी था, और किसीकी बातको न सहकर मैं झगड़ पड़ता था। उस दिन मेरे किसी साथीने ताना मारा—"ब्राह्मण बना है, जुझवा कहींका।" मेरे चचाके सरपुत (सालेके पुत्र)ने मेरा पक्ष लेना चाहा, उसे भी कहा—"यवन कहींका नगर ब्राह्मण बना है।" बचपनसे छोटे बच्चोंको भी ताना मारते सुनता

था; किन्तु उस वक्त वह न उतना चुभता था, न उसके भीतर इतनी कल्पना उठने लगती थी। पाठशालामें हम तीनोंको छोड़ बाक़ी तीस विद्यार्थी थे, चार कन्यायें भी थीं। जिनका रंग हम लोगों जैसा गोरा, शरीर हम जैसा लम्बा न था, तो भी हम देखते उनके सामने तीनों लोक झुकने के लिए तैयार थे।

उस दिन घर लौटते वक्त मेरा चेहरा बहुत उदास था। माँ ने मेरे सूखे ओठोंको देख मुँह चूमकर कहा—

"बेटा! आज इतना उदास क्यों है?"

मैंने पहिले टालना चाहा, किन्तु, बहुत आग्रह करनेपर कहा—

"माँ हमारे कुलके बारेमें कोई बात है, जिसके कारण लोग हमें ब्राह्मण नहीं मानना चाहते।"

"हम परदेशी ब्राह्मण हैं, बेटा! इसीलिए वह ऐसा ख्याल करते हैं।"

"ब्राह्मण ही नहीं, अब्राह्मण भी माँ! हमारे ब्राह्मण होनेपर सन्देह प्रकट करते हैं।"

"इन्हीं ब्राह्मणोंके कहनेपर।"

"हमारे यजमान भी नहीं हैं। दूसरे ब्राह्मण पुरोहिती करते हैं। ब्रह्मभोजमें जाते हैं, हमारे कुलमें वह भी नहीं देखा जाता। और तो और ब्राह्मण हमें एक पंक्तिमें खिलाते भी नहीं। माँ जानती हो तो बतलाओ।"

माँने बहुत समझाया, किन्तु मुझे सन्तोष नहीं हुआ।

मेरा चित्त जब इस प्रकार चंचल रहता, उस वक्त मेरे नागर सहपाठियों और सम्बन्धियोंकी सहानुभूति मेरे साथ रहती थी, अथवा हम सभी एक दूसरेके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित कर लिया करते थे।

(२)

समय और बीता, मैं तेरह वर्षका हो गया, और पाठशालाकी पढ़ाई समाप्त होनेवाली थी—मैंने अपने वेद, ऋग्वेद, ऐतरेय ब्राह्मण, व्याकरण, निरुक्त, तथा कुछ काव्य पढ़े। गुरुजीका स्नेह मुझपर बढ़ता ही गया

था। उनकी कन्या विद्या मुझसे चार वर्ष छोटी थी, पाठ याद करनेमें मैं उसकी सहायता करता था। और गुरुजी तथा गुरु-पत्नीके व्यवहार-को देखकर विद्या भी मुझे बहुत मानती, मुझे भैया सुपर्ण कहती। मुझे गुरु-परिवारसे कभी कोई शिकायत नहीं हो सकती थी, क्योंकि गुरु-पत्नीका स्नेह मेरे लिए माँके समान था।

इसी वक्त फिर किसी सहपाठीने मुझे "जुझवा'का ताना मारा; और अकारण, क्योंकि अब मैं हर तरहसे बचकर रहता था। कारण इसके सिवाय और कोई न था, कि पढ़ने-लिखनेमें बहुत तेज़ होनेसे मेरे सहपाठीको मुझसे ईर्ष्या रहती थी। अब मेरी प्रकृति गम्भीर होती जा रही थी। मन उत्तेजित न होता हो यह बात न थी, किन्तु मैंने धीरे-धीरे अपनेपर नियंत्रण करना सीखा था। मेरे दादाकी आयु सत्तर वर्षसे ज़्यादा थी, कितनी ही बार उनसे देश-विदेश, युद्ध-अशान्तिकी बातें सुनी थीं। मैं यह भी सुन चुका था, कि इस ग्राममें पहले वही अपने भाइयोंके साथ आये थे। मैंने आज दादासे अपने कुलके बारेमें असली बात जानने-का निश्चय कर लिया। गाँवसे पूरब ओर हमारा आमोंका एक बाग़ था। आम खूब फले हुए थे, यद्यपि उनके पकनेमें देर थी, किन्तु अभीसे सोना दासीने वहाँ अपनी झोंपड़ी लगा ली थी। मैंने सुन रखा था, कि जब मेरे दादा गाँवमें आये, उसी वक्त उन्होंने सोनाको चालीस रौप्य मुद्रा (रुपये) में किसी दक्खिनी व्यापारीसे खरीदा था—उस वक्त दक्खिनसे दास-दासियों-को बेचनेके लिए कितने ही व्यापारी आया करते थे। सोना उस वक्त युवती थी, नहीं, तो दासियाँ उतनी महँगी न थीं। काली-कलूटी सोनाके चमड़े अब झूल गये थे, उसके चेहरेपर चम्बल, बेतवाके टेढ़े-मेढ़े नाले खिंचे हुए थे, किन्तु कहा जाता है, जवानीमें वह सुन्दर थी। दादाके वह मुँहलगी रहती, खासकर जब वहीं दोनों रहते। घनिष्टताका लोग और और अर्थ भी लगाते थे—एक विधुर स्वस्थ प्रौढ़ व्यक्तिके ऊपर वैसा सन्देह स्वाभाविक था।

शामको दादा बाग़ जाया करते, एक दिन मैं भी उनके साथ हो लिया। दादा अपने मेधावी पोतेपर बहुत स्नेह रखते थे। और बातें करते-करते मैंने कहा—

"दादा! मैं अपने कुलके बारेमें तुमसे सच्ची बातें जानना चाहता हूँ। क्यों लोग हमें पक्का ब्राह्मण नहीं समझते, "जुझवा" कहकर चिढ़ाते हैं? माँसे मैंने कई बार पूछा, किन्तु वह मुझे ठीकसे बतलाना नहीं चाहती।"

"इसके पूछनेकी क्या ज़रूरत है, बच्चा!"

"बहुत ज़रूरत है दादा! यदि मैं असली बातको ठीकसे जानता रहूँगा, तो अपने कुलपर होनेवाले आक्षेपोंका प्रतीकार कर सकूँगा। मैं अब ब्राह्मणोंके बारेमें काफ़ी पढ़ चुका हूँ दादा! मुझमें इतना विद्या-बल है, कि मैं अपने कुलके सम्मानको क़ायम रख सकूँ।"

"सो तो मुझे विश्वास है, किन्तु बच्चा! तुम्हारी माँ बेचारी ख़ुद हमारे कुलके बारेमें नहीं जानती, इसलिये वह बतलाना नहीं चाहती है, यह बात न समझो। जहाँ लोकमें हमारे कुलकी स्थितिका सम्बन्ध है, वह तो अब नागरोंके सम्बन्धने तैकर दिया है। हमारी ब्याह-शादी उनके साथ होती है। अवन्ती और लाट (गुजरात)में उनकी संख्या भी बहुत है, इसलिए हमें तो उनके साथ डूबना-उतराना है, तुम्हारी पीढ़ी वस्तुतः यौधेयकी अपेक्षा नागर ज्यादा है।"

"यौधेय क्या दादा?"

"हमारे कुलका नाम है बच्चा! इसीको लेकर लोग हमें 'जुझवा' कहते हैं।"

"यौधेय ब्राह्मण थे दादा?"

"ब्राह्मणोंसे अधिक शुद्ध आर्य।"

"लेकिन ब्राह्मण नहीं।"

"इसका उत्तर 'हाँ' या 'नहीं'के एक शब्दोंमें कहनेकी जगह अच्छा होगा, कि मैं यौधेयोंका परिचय ही तुम्हें दे दूँ। यौधेय शतद्रु (सतलज)

और यमुनाके बीच हिमालयसे मरुभूमिके पास तकके निवासी और स्वामी थे, सारे यौधेय स्वामी थे।"

"सारे यौधेय!"

"हाँ, उनमें कोई एक राजा न था, उनके राज्यको गण-राज्य कहा जाता था। गण या पंचायत सारा राजकाज चलाती थी। वह एक आदमी—राजाके—राज्यके बड़े विरोधी थे।"

"ऐसा राज्य होना तो मैंने कभी नहीं सुना दादा!"

"लेकिन ऐसा होता था बच्चा! मेरे पास यौधेय गणके तीन रुपये हैं, मेरे पितासे वह मुझे मिले। देशसे भागते वक्त उनके पास जो रुपये थे, उन्हींमेंसे यह हैं।"

"तो दादा! तुम यौधेयोंके देशमें नहीं पैदा हुए?"

"मैं दस वर्षका था जब मेरे पिता-माताको देश छोड़ना पड़ा, मेरे दो बड़े भाई थे, जिनके वंशजोंको तुम यहाँ देखते हो।"

"देश क्यों छोड़ना पड़ा दादा?"

"पुरातन कालसे वह यौधेयोंकी अपनी भूमि थी। बड़े-बड़े प्रतापी राजा चक्रवर्ती—मौर्य, यवन, शक—भारतभूमिपर पैदा हुए, किन्तु किसीने थोड़ासा कर ले लेनेके सिवाय हमारे गणको नहीं छेड़ा। यही गुप्त, हाँ, इसी चन्द्रगुप्त—जो अपनेको विक्रमादित्य कहता है, और जिसका दर्बार कभी-कभी उज्जयिनीमें भी लगा करता है—का बंश चक्रवर्ती बना, तो उसने यौधेयोंका उच्छेद कर दिया। यौधेय सबल चक्रवर्तीको कुछ भेंट दे दिया करते थे, किन्तु गुप्त राजा इससे राज़ी नहीं हुआ। उसने कहा, हम यहाँ अपना उपरिक (गवर्नर) नियुक्त करेंगे, यहाँ हमारे कुमारामात्य (कमिश्नर) रहेंगे; जिस तरह हम अपने सारे राज्यका शासन करते हैं, वैसा ही यहाँ भी करेंगे। हमारे गणनायकोंने बहुत समझाया, कि यौधेय अनादिकालसे गण छोड़ दूसरे प्रकारके शासनको जानते नहीं हैं। किन्तु राज-मदमत्त वह इसे क्यों मानने लगा? आखिर

यौधेयोंने अपनी इष्ट गणदेवीके सामने शपथ ले तलवार उठाई। उन्होंने बहुत बार गुप्तोंकी सेनाको मार भगाया, और यदि वह चौगुनी पँचगुनी तक ही रहती तो वह उनके सामने न टिकती। किन्तु लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) से मरुभूमि तक फैले उसके महान् राज्यकी सारी सेनाके मुक़ाबिलेमें यौधेय कहाँ तक अपनेको बचा पाते। यौधेय जीतते-जीतते हार गये—जन-हानि इतनी अधिक हुई। गुप्तोंने हमारे नगर गाँव सभी बर्बाद कर दिये, नर-नारियोंका भीषण संहार किया। हमारे लोग तीस साल तक लड़ते रहे—वह अधिक कर देनेके लिए तैयार थे, किन्तु चाहते थे कि उनके देशकी गण-शासन-प्रणाली अक्षुण्ण रहे।"

"कैसा रहा होगा वह गण-शासन दादा?"

"उसमें हर एक यौधेय शिर ऊँचा करके चलता था, किसीके सामने दीनता दिखलाना वह जानता न था। युद्ध उसके लिए खेल था, इसीलिए उसके वंशका नाम यौधेय पड़ा था।"

"तो हमारी तरह और भी यौधेय होंगे न दादा?"

"होंगे, बच्चा! किन्तु, वह तो सूखे पत्तोंकी भाँति हवामें बिखेर दिए गए हैं।"

"और हमारी तरह किसी नागरवंशमें मिलकर आत्म-विस्मृत बन जानेवाले हैं?"

"हम अपनेको ब्राह्मण क्यों कहते हैं दादा?"

"यह और पुरानी कहानी है बच्चा! पहिले सारी सब जगह राजा नहीं, गण हीका राज्य था। उस वक़्त ब्राह्मण, क्षत्रियका फ़र्क़ नहीं था।"

"ब्रह्म-क्षत्र एक ही वर्ण था दादा?"

"हाँ, जब ज़रूरत होती तो आदमी पूजा-पाठ करता, जब ज़रूरत होती खड्ग उठाता। किन्तु, पीछे विश्वामित्र, वशिष्ठने आकर वर्ण बाँटना शुरू किया।"

"तभी तो एक पिताके दो पुत्रोंमें कोई रन्तिदेवकी भाँति क्षत्रिय

कोई गौरिवीतिकी भाँति ब्राह्मण ऋषि होने लगा।

"ऐसा लिखा है, बच्चा?"

"हाँ, दादा! वेद और इतिहासमें ऐसा मिलत। पंकृति ऋषिके ये दोनों पुत्र थे। यही नहीं, और भी कितनी ही विचि- इन पुराने ग्रंथोंमें मिलती हैं, जिन्हें आजकलके लोग विश्वास नहीं कर। चर्मण्वती (चम्बल)के किनारे दशपुरको देखा है दादा?"

"हाँ, बच्चा! कई बार अवन्ती (मालवा)में ही तो है। मैं कितनी ही बार बरात गया हूँ। वहाँ नागरोंके बहुतसे घर हैं, जिनमें कितने ही भारी व्यापारी सार्थवाह हैं।"

"यही दशपुर रन्तिदेवकी राजधानी थी। और चर्मण्वती नाम क्यों पड़ा, यह तो और अचरजकी बात है।"

"क्या बच्चा?"

"ब्राह्मण संकृतिके पुत्र किन्तु स्वतः क्षत्रिय राजा रन्तिदेव अपनी अतिथिसेवाके लिए बहुत प्रसिद्ध हैं, वह सतयुगके सोलह महान् राजाओंमें हैं। रन्तिदेवके भोजनालयमें प्रतिदिन दो हज़ार गायें मारी जाती थीं। उनका गीला चमड़ा रसोईमें रखा जाता था, उसीका टपका हुआ जल जो बहा, वही एक नदी बन गया। चर्मसे निकलनेके कारण उसका नाम चर्मण्वती पड़ा।"

"क्या सच ही यह पुराने ग्रन्थोंमें लिखा है बच्चा?"

"हाँ, दादा! महाभारत*में साफ़ लिखा है।"

---

*"राज्ञो महानसे पूर्वं रन्तिदेवस्य वै द्विज!
अहन्यहनि बध्येते द्वे सहस्रे गवां तथा।"
"समांसं ददतो ह्यन्नं रन्तिदेवस्य नित्यशः।
अतुला कीर्त्तिरभवन्नृपस्य द्विजसत्तम!"—वनपर्व २०८।८-१०
"महानदी चर्मराशेरुत्क्लेदात् संसृजे यतः।
ततश्चर्मण्वतीत्येवं विख्याता सा महानदी।"—शान्तिपर्व २९-२३

"महाभारतमें, पाँचवें वेदमें ! गोमांसभक्षण !"

"रन्तिदेवके यहाँ अतिथियोंके खानेके लिए इस गोमांसके पकानेवाले दो हज़ार रसोइये थे दादा ! और तिसपर भी ब्राह्मण अतिथि इतने बढ़ जाते कि रसोइयोंको मांसकी कमीके कारण सूप ज्यादा ग्रहण करनेकी प्रार्थना करनी पड़ती थी।

"ब्राह्मण गोमांस खाते थे, क्या कहते हो बच्चा ?"

"महाभारत* पाँचवाँ वेद झूठ कह सकता है, दादा ?"

"क्या दुनिया इतनी उलट-पुलट गई है ?"

"उलटती-पुलटती जाती है दादा ! तो भी अपनेको पक्का ब्राह्मण कहनेवाले यह दिवान्ध सबकी आँख मुँदवाना चाहते हैं। मुझे विश्वास हो गया कि हमारे पूर्वज यौधेय लोग ब्राह्मणोंके छलछन्द फैलनेसे पहिलेके रीतिरिवाज, धर्मकर्मपर चलते थे।"

"हाँ, और वह ब्राह्मणोंको कभी अपने से ऊँचा नहीं मानते थे।"

"यहाँ आकर दादा ! तुमने अपने लड़कों-भतीजोंकी शादी आवन्तक (मालवीय) ब्राह्मणोंको छोड़ नागरोंमें क्यों की ?"

"दो कारण थे, एक तो ये ब्राह्मण हमारे कुलके बारेमें सन्देह कर रहे थे, किन्तु उससे कुछ नहीं होता, चाहते तो हम खास ब्राह्मण कन्याओंसे व्याह कर लेते। हमने नागरोंसे व्याह-शादी इसीलिए करनी शुरू की, कि वह भी हमारी भाँति ज्यादा गौर होते हैं, और हमारी ही भाँति ब्राह्मणोंके

---

*"सांकृति रन्तिदेवं च मृतं सञ्जय ! शुश्रुम।
आसन् द्विशतसाहस्रा तस्य सूदा महात्मनः॥
गृहानभ्यागतान् विप्रान् अतिथीन् परिवेषकाः।—द्रोणपर्व ६७।१–२
"तत्र स्म सूदाः क्रोशन्ति सुमृष्टमणिकुण्डलाः॥
सूपं भूयिष्टमश्नीध्वं नाद्य मांसं यथा पुरा।"—द्रोणपर्व ६७।१७–१८
—शान्तिपर्व २७–२८

न माननेपर भी अपनेको ब्राह्मण कहते हैं।"

"नागर कौन हैं दादा!"

"ब्राह्मण, सिर्फ़ ब्राह्मण कहनेसे तो नहीं मानते, वह तो पूछते हैं कहाँके ब्राह्मण, कौन गोत्र। ये हमारे सम्बन्धी लोग नगरोंमें बसते थे, इसलिए इन्होंने अपनेको नागर ब्राह्मण कहना शुरू किया, जैसे कि हम अपनेको यौधेय ब्राह्मण कहते हैं।"

"लेकिन वह वस्तुतः हैं कौन दादा?"

"समुद्र तीरके यवन हैं, बच्चा। उनमें बहुतसे ब्राह्मण नहीं बौद्ध-धर्मको मानते हैं। उज्जयिनीमें जानेपर मालूम होगा। अभी तो ऐसे भी बहुतसे हैं, जो अपनेको साफ़ यवन कहते हैं। ब्राह्मण इन्हें क्षत्रिय माननेके लिए बहुत कह रहे हैं।"

"तो वर्ण और जातियाँ इस मानने-मनवानेपर चल रही हैं दादा?"

"देखनेमें तो ऐसा ही आ रहा है बच्चा!"

(२)

मैं अब बीस सालका बलिष्ठ सुन्दर तरुण था और अपने गाँवमें पढ़ना समाप्त कर उज्जयिनीके बड़े-बड़े विद्वानोंका विद्यार्थी था। मेरी माँके ननिहालके लोग उज्जयिनीके धनाढ्य नागरोंमेंसे थे, और उन्होंने आग्रह करके मुझे अपने पास रखा था। मेरे जैसे गाँवके विद्यार्थीके लिए उज्जयिनी विस्तृत संसारके देखनेके लिए गवाक्षसी थी।। कालिदासका नाम और उनकी कुछ कविताओंको मैं पहिले पढ़ चुका था, किन्तु यहाँ कुछ दिन उस महान् कविके पास पढ़नेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। कविका चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यके दर्बारमें बहुत मान था, इसलिए वह बहुत समय उज्ज-यिनीसे अनुपस्थित रहते थे। मुझे अपने कविगुरुका अभिमान था, किन्तु कालिदासकी राजाके सम्बन्धकी दास-मनोवृत्ति बहुत बुरी लगती थी। उस समय कवि "कुमारसम्भव"को लिख रहे थे, मुझे उन्होंने बतलाया

था, कि विक्रमादित्यके पुत्र कुमार गुप्तको ही मैं यहाँ शंकरपुत्र कुमार कार्तिकेयके नामसे अमरता प्रदान करना चाहता हूँ। मेरे निस्संकोच कटाक्षसे उसके कड़वा होते भी कवि नाराज़ न होते थे। मैंने एक दिन कहा—

"आचार्य! आपकी काव्य-प्रतिभाका राज्य अनन्तकालके लिए है, और चन्द्रगुप्त, कुमारगुप्तका राज्य सिर्फ़ उनके जीवन भरके लिए, फिर अपनेको क्यों राजाओंके सामने इतना अकिंचन बनाते हैं।"

"विक्रमादित्य वस्तुतः धर्मका संस्थापक है सुपर्ण! उसने देखो, हूणोंसे भारतभूमिको मुक्त किया।"

"किन्तु, उत्तरापथ (पंजाब) और कश्मीरमें अब भी हूण हैं, आचार्य!"

"बहुत भागसे उन्हें निकाला।"

"राजा इस तरह एक दूसरेको निकाला ही करते हैं, और दूसरेकी जगह अपने राज्यको स्थापित करते हैं।"

"किन्तु, गुप्तवंश गो-ब्राह्मण-रक्षक है।"

"आचार्य! मूढ़ोंको भरमानेवाली ऐसी बातोंके सुननेकी आशा मैं आपसे नहीं रखता। आप जानते हैं, हमारे पूर्वज ऋषि गोरक्षा करते थे, किन्तु गोभक्षणके लिए। 'मेघदूत'* में आप हीने चर्मण्वती (चम्बल) को गाय मारनेसे उत्पन्न रन्तिदेवकी कीर्ति लिखा है।"

"तुम धृष्ट हो सुपर्ण! मेरे प्रिय शिष्य।"

"यह मैं सुननेके लिए तैयार हूँ, लेकिन मैं यह सहनेके लिए तैयार नहीं हूँ, कि मेरा अनन्तकालका चक्रवर्ती इन धर्मध्वंसक गुप्त राजाओंके सामने घुटने टेके।"

"तुम उनको धर्मध्वंसक कहते हो सुपर्ण!"

"हाँ, ज़रूर। नन्दों, मौर्यों, यवनों, शकों और हूणोंने भी जो पाप

---

*"व्यालम्बेथाः सुरभितनयालम्भजां मानयिष्यन्,
स्रोतोमूर्त्या भुविपरिणतां रन्तिदेवस्य कीर्तिम्।"—मेघदूत १।४५

नहीं किया, वह इन गुप्तोंने किया। भारतमहीसे इन्होंने गण-राज्योंका नाम मिटा दिया।"

"गण-राज्य इस युगके अनुकूल न थे सुपर्ण! यदि समुद्रगुप्तने इन गणोंको क़ायम रखा होता, तो उन्होंने हूणों तथा दूसरे प्रबल शत्रुओंको परास्त करनेमें सफलता न पाई होती।"

"सफलता, अपना राज्य स्थापित करनेकी, दूसरे चन्द्रगुप्त मौर्य बननेकी! लेकिन चाणक्यकी अप्रतिभ बुद्धिकी सहायतासे स्थापित और व्यवस्थापित मौर्य साम्राज्य भी बहुत दिनों नहीं चला। विक्रमादित्य और कुमारगुप्तके वंशज भी यावच्चन्द्रदिवाकर शासन नहीं करेंगे; फिर इन्होंने प्रजाके शासनके चिह्नों तकको जो मिटा दिया, यह किस धर्म-कामके लिए? क्या अनादिकालसे चले आते गणोंमें प्रजाशासनका उच्छेद करना महान् अधर्म नहीं है?"

"लेकिन, राजा विष्णुका अंश है।"

"कुमारगुप्त भी अपने साथ मोरका चित्र खिंचवायेगा, और कलको कोई कवि उसे कुमारका अवतार कहेगा। यह धोखा, यह पाखंड किस-लिए? गन्धशालिका भात और मधुर मांस-सूपके लिए, राष्ट्रकी सारी सुन्दरियोंको रनिवासमें भरनेके लिए, कृषि और शिल्पके काममें मरने वाली जाकी गाढ़ी कमाईको मौज करनेमें पानीकी तरह बहानेके लिए! और इसके लिए आप गुप्तोंको धर्म-संस्थापक राजा कहते हैं। विष्णु! हाँ, गुप्त वैष्णव कहलानेका बड़ा ढोंग रच रहे हैं, ब्राह्मण उन्हें विष्णुका अंश बना रहे हैं, उनके सिक्कोंपर लक्ष्मीकी मूर्त्ति अंकित की जा रही है। विष्णुकी मूर्त्तियों और देवालयोंपर प्रजाको भूखा मारकर, लूटकर खूब रुपये खर्च किये जा रहे हैं; इस आशापर कि गुप्त-वंशका राज्य प्रलयकाल तक क़ायम रहे।"

"लेकिन, क्या कह रहे हो सुपर्ण! तुम राजा के विरुद्ध इतनी कड़ी बात कह रहे हो।"

"अभी आचार्य ! सिर्फ़ तुम्हारे सामने कह रहा हूँ, फिर किसी समय परमभट्टारक महाराजाधिराज कुमारगुप्तके सामने भी कहूँगा। मेरे लिए इस ढोंगको जीते जी बर्दाश्त करना मुश्किल है। किन्तु, वह आगे और शायद दूरकी बात है, मैं तो चाहता हूँ कि आप भी अश्वघोषके चरणों-पर चलते।"

"किन्तु प्रिय ! मैं सिर्फ़ कवि हूँ, अश्वघोष महापुरुष और कवि दोनों थे। उनके लिए संसारके भोग कोई मूल्य न रखते थे, मेरे लिए विक्रमादित्यके रनिवास जैसी सुन्दरियाँ चाहिएँ, उदुम्बरवर्णा (लाल) द्राक्षी सुरा चाहिए, प्रासाद और परिचारक चाहिए। मैं कैसे अश्वघोष बन सकता हूँ ? मैंने 'रघुवंश'के बहाने गुप्तोंके रघुवंशित्वकी प्रशंसा की, जिससे प्रसन्न हो विक्रमादित्यने यह प्रासाद दिया, कांचनमाला जैसी यवन-सुन्दरी प्रदान की, जो पन्द्रह सालसे मेरे पास रहनेपर भी अपने पिंगल-केशोंमें मुझे बाँधे फिरती है। मैंने यह 'कुमारसम्भव'की नींव रखी है, देखो यह अभी और क्या मेरे पास लाता है।"

"मैं नहीं समझता आचार्य ! यदि आप 'बुद्धचरित' और 'सौंदरा-नन्द' ही लिखते, तो भूखों मरते, या भोगसे सर्वथा वंचित होते, पर आपको भ्रम है, कि बिना राजाओंकी चापलूसीके आपका जीवन बिल्कुल नीरस होता। आपने आनेवाले कवियोंके लिए बुरा उदाहरण रखा, सभी कालिदासके अनुकरणके नामपर अपने दोषोंको छिपायेंगे।"

"मैं उस तरहके भी काव्य लिखूँगा।"

"किन्तु, ऐसा कुछ भी नहीं लिखेंगे जिसमें गुप्तोंके पापघटपर प्रहार होगा !"

"वह हमसे नहीं होगा सुपर्ण ! हम इतने सुकुमार हो गए हैं।"

"और राजाओंके हर पापके लिए धर्मकी दोहाई भी देंगे ?"

"उसकी तो ज़रूरत है, बिना उसके राजशक्ति दृढ़ नहीं हो सकती। वशिष्ठ, और विश्वामित्रने भी ऐसा करना ज़रूरी समझा।"

"वशिष्ठ और विश्वामित्र भी कवि कालिदास हीकी भाँति प्रासाद और सुन्दरीके लिए यह सब पाप करनेपर उतारू थे।"

"सुपर्ण! पुस्तककी विद्याके अतिरिक्त सुना है, तुम युद्ध-विद्या भी सीख रहे हो। यदि तुम्हारी सम्मति हो, तो परमभट्टारकसे कहूँ, तुम्हें कुमारामात्य या सेनानायकके पदपर देखकर मुझे बहुत खुशी होगी, महाराज भी पसन्द करेंगे।"

"मैं किसीको अपना शरीर न बेचूँगा, आचार्य!"

"अच्छा राज-पुरोहितोंमें स्थान कैसा रहेगा?"

"ब्राह्मणोंके स्वार्थीपनसे मुझे बहुत चिढ़ है।"

"तो क्या करोगे?"

"अभी विद्या और पढ़नेको है।"

(४)

उज्जयिनीमें रहते मैंने अपनी विद्याकी पिपासाको तृप्त करनेका ही मौक़ा नहीं पाया, बल्कि जैसा कि मैंने कहा, मुझे विस्तृत संसारको जाननेका भी मौक़ा मिला। वहाँ मैंने नज़दीकसे देखा, किस तरह ब्राह्मणोंने अपनेको राजाओंके हाथमें पूर्णतया बेच डाला है। कोई समय था, जब कि दूसरोंके न स्वीकार करनेपर भी मुझे ब्राह्मण होनेका भारी अभिमान था, गाँव छोड़नेसे पहले ही यह अभिमान जाता रहा था। गाँवसे नगरमें आनेपर मैंने असली यवनोंको देखा, जो कि भरुकच्छ (भड़ोंच)से अक्सर उज्जयिनी आते थे, और वहाँ उनकी कितनी ही बड़ी-बड़ी पण्यशालाएँ थीं; मैं कितने ही शक-आभीर परिवारोंमें गया, जिनके पूर्वज शताब्दी ही पहिले उज्जयिनी, लाट (गुजरात) और सौराष्ट्र (काठियावाड़)के शासक महाक्षत्रप थे। मैंने पक्व नारंग-स्पर्धी गालें-रोमहीन मुख-गोलगोल आँखोंवाले हूणोंको भी देखा। युद्धमें वह निपुण हो सकते थे, किन्तु वैसे उन्हें प्रतिभाका धनी नहीं पाया। इन तरह-तरहके पुरुषोंके देखनेके

सबसे अच्छे स्थान बौद्धोंके विहार (मठ) थे, जो एकसे अधिक संख्यामें उज्जयिनीके बाहर मौजूद थे। मेरे मातुल-कुलके लोग बौद्ध थे, और कितने ही नागर भिक्षु भी इन मठोंमें रहते थे, इसलिए मुझे अक्सर वहाँ जाना पड़ता था। मैं एक बार भरुकच्छ भी गया था।

पुस्तककी पढ़ाई समाप्तकर मैंने देशाटन द्वारा अपने ज्ञानको बढ़ाना चाहा, उसी वक्त मुझे पता लगा कि विदर्भमें अचिन्त्य (अजन्ता) बिहार नामका एक बहुत प्रसिद्ध बिहार है, जहाँ संसारके सभी देशोंके बौद्ध भिक्षु रहते हैं। मैं वहाँ गया।

अब तक मैं जहाँ भी गया था, पासमें काफ़ी संबल, तथा सहायक साथियोंके साथ गया था, अबकी बार यह पहला समय था, जब कि मैं निस्सहाय निस्संबल निकला था। रास्तेमें चोरोंका डर न था, गुप्तोंके इस प्रबन्धकी प्रशंसा करनी होगी। किन्तु, क्या गुप्त-शासनने देशके प्रत्येक परिवारको इतना समृद्ध कर दिया है, जिससे कि बटमारी-रहज़नी उठ गई? नहीं, गुप्त राजाओंने कर उगाहनेमें अपने पहिलेके सारे शासकों-को मात कर दिया, राज-प्रासादोंके बनानेपर कभी इतना धन नहीं खर्च किया गया होगा, और उनके सजानेमें तो और भी हद की गई। पहाड़ों, नदियों, पुष्करिणियों, समुद्रोंको सशरीर उठाकर उन्होंने अपने रम्य प्रासादों-के पास रखनेकी कोशिश की। उनके क्रीड़ा-वन वस्तुतः वनसे मालूम होते हैं, जिनमें पिंजड़ोंमें हिंस्र-पशु रहते, और बाहर मृग गवय घूमते। क्रीड़ापर्वतमें स्वाभाविक शैल-पार्वत्य वन, जल प्रपात बनाये जाते। सरोवरोंको पतली नहरोंसे मिला सेतु और नावें दिखलाई जातीं। प्रासादके भीतरके सामानमें हाथीदाँत, सोना, रूपा, नाना रत्न, चीनांशुक (रेशमी वस्त्र), महार्घ कालीन आदि प्रचुर परिमाणमें होते। प्रासादोंको सजानेमें चित्रकार अपनी तूलिकाका चमत्कार दिखलाते, मूर्त्तिकार पाषाण या धातुकी सुन्दर मूर्त्तियोंका यथास्थान विन्यास करते। विदेशी यात्रियों और राजदूतोंके मुखसे इन चित्रों और मूर्त्तियोंकी मैंने भूरि-भूरि प्रशंसा

सुनी है, जिससे मेरा शिर गर्वोन्नत ज़रूर हुआ; किन्तु जब मैं क्षुद्र गाँवोंके ग़रीब घरोंकी अवस्था देखता तो उज्जयिनीके उन प्रासादोंपर जल भुन जाता—मानों, पासके गढ़े-गड्ढियाँ जैसे गाँवमें उठी दीवारों और टीलोंके कारण होती हैं, उसी तरह यह दरिद्रता उन्हीं प्रासादोंके कारण है। नगरों, निगमों (क़स्बों) ही नहीं गाँवोंमें भी चतुर शिल्पी नाना भाँतिकी वस्तुएँ बनाते—कातनेवाली सूक्ष्म तन्तुओं, तन्तुवाय सूक्ष्म वस्त्रोंको तैयार करते, स्वर्णकार, लौहकार, चर्मकार अपनी-अपनी वस्तुओंके बनानेमें कौशल दिखलाते, राजप्रासादोंकी कलापूर्ण वस्तुओंके तैयार करनेवाले हाथ इन्हीं हाथोंके सगे सम्बन्धी हैं, किन्तु जब मैं उनके शरीरों, उनके घरोंको देखता, तो पता लगता कि उनके हाथके निर्मित सारे पदार्थ उनके लिए सिर्फ़ सपनेकी माया हैं। वह गाँवोंसे सिमिट-सिमिटकर नगरों, निगमोंके सौधों, प्रासादों, या पण्यागारोंमें चले जाते; फिर वहाँसे भी उनका बहुतसा भाग पश्चिमी समुद्रके भरुकच्छ आदि तीर्थोंसे पारस्य (ईरान) या मिश्रका रास्ता लेता, या पूर्वी समुद्रके ताम्रलिप्त (तमलुक)से यवद्वीप (जावा), सुवर्णद्वीप (सुमात्रा) पहुँच जाता। भारतका सामुद्रिक वाणिज्य इतना प्रबल कभी नहीं हुआ, और अपने पण्योंके लिए समुद्रपारकी लक्ष्मी कभी भारतमें इतनी मात्रामें नहीं आई होगी, किन्तु उससे लाभ किसको ? सबसे अधिक गुप्त राजाओंको, जो हर पण्यपर भारी कर लेते हैं; फिर सामान्तोंको जो बड़े-बड़े राजपदों या जागीरोंके स्वामी हैं, और शिल्पियों और बनियों दोनोंसे लाभ उठाते हैं। सार्थवाहों तथा बनियोंका नाम अन्तमें आनेपर भी वह इस लूटके छोटे हिस्सेदार नहीं हैं। इस सबके देखनेसे मुझे साफ़ हो गया कि गाँवके कृषक और शिल्पी क्यों इतने ग़रीब हैं; और मार्गों और राजपथोंको सुरक्षित रखनेके लिए गुप्तराजा क्यों इतने तत्पर मालूम होते हैं।

गाँवोंमें दरिद्रता है, किन्तु, एक दिल दहलानेवाला दृश्य वहाँ कम दिखलाई पड़ता। वहाँ, पशुओंकी भाँति बिकनेवाले दास-दासियोंका

हाट न लगता, न उनके नंगे शरीरोंपर कोड़े पड़नेके दृश्य दिखलाई देते। मेरे गुरु कालिदासने एक प्रसंगमें कहा था, दास-दासी पुरविले कर्मसे होते हैं। जिस दिन मैंने उनके मुँहसे यह बात सुनी, उसी दिन पुरविले जन्मसे मेरा विश्वास उठ गया। गुप्तोंने जिस तरह धर्मको सैकड़ों तरहसे अपनी सत्ता दृढ़ करनेके लिए इस्तेमाल करनेमें उतावलापन दिखलाया, उससे इस समय यह ख्याल हर समझदारके मनमें आना स्वाभाविक था। किन्तु, जब मैं साधारण प्रजाको देखता तो वह इस तरफ़से बिल्कुल उदास थी। क्यों? शायद वह अपनेको बेबस पाती थी। ग्रामवासी सिर्फ़ अपने गाँवभरकी दुनियाकी खोज-खबर लेते थे, गाँवकी अंगुलभर भूमिके लिए वह उस तरह लड़ सकते थे, जिस तरह कि शायद कुमारगुप्त भी अपनी किसी भुक्ति (प्रान्त, सूबा)के लिए भी न लड़ता। किन्तु गाँवकी सीमाके बाहर कुछ भी होता हो, उसकी उन्हें पर्वाह नहीं। मुझे एक गाँवकी घटना याद है, उस गाँवमें चालीसके क़रीब घर थे, सभी फूसकी छतों-वाले। गर्मीमें चूल्हेसे एक घरमें आग लग गई। सारे गाँवके लोग पानी ले-लेकर उस घरकी ओर दौड़ गए, किन्तु, एक घरके दम्पती घड़ोंमें पानी भर अपने घरके पास बैठे रहे। सौभाग्यसे उस गाँवमें ऐसा घर एक ही था। नहीं तो गाँवका एक घर भी न बचता। इस वक्त मुझे यौधेयोंका गण याद आया; जहाँ एक राष्ट्रके सभी घर अपने सारे राष्ट्रके लिए मरने-जीनेको तैयार थे। वैसे तो समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त, कुमारगुप्तकी दिग्विजयोंके लिए भी लाखोंने प्राण दिए, किन्तु, दासोंकी भाँति दूसरेके लाभके लिए, स्वतन्त्र मानवकी भाँति अपने और अपनोंके हितके लिए नहीं। मेरा रोआँ काँप उठता, जब कि प्रजापर सिर्फ़ एक सौ वर्षके इस गुप्त शासनके प्रभावको ख्याल करता। मैं सोचता यदि ऐसा शासन शताब्दियों तक चलता रहा, तो यह देश सिर्फ़ दासोंका देश रह जायेगा, जो सिर्फ़ अपने राजाओंके लिए लड़ना-मरना भर जानेंगे, उनके मनसे यह ख्याल ही दूर हो जायेगा, कि मानवके भी कुछ अधिकार हैं।

अचिन्त्य बिहार बड़ा ही रमणीय बिहार था। एक हरितवसना पर्वतस्थलीको एक अर्धचन्द्राकार प्रवाहवाली नदी काट रही थी, इसी क्षुद्र किन्तु, सदानीरा सरिताके बायें तटपर अवस्थित शैलको काटकर शिल्पियोंने कितने ही गुहामय सुन्दर प्रतिमा-गेह, निवास-स्थान, तथा सभा-भवन बनाये हैं। इन गुहाओंको भी प्रासादोंकी भाँति चित्रों, मूर्त्तियोंसे सजाया गया है, यद्यपि वह कई पीढ़ियोंमें और शायद सैकड़ों पीढ़ियोंके लिए। अचिन्त्य बिहारके भित्ति-चित्र सुन्दर हैं, पाषाण-शिल्प सुन्दर हैं; किन्तु, वह गुप्त राजप्रासादोंका मुक़ाबिला नहीं कर सकते, इसलिए वह मेरे लिए उतने आकर्षक नहीं थे। हाँ, मेरे लिए आकर्षक थी यहाँकी भिक्षु मंडली, जिनमें देशदेशान्तरोंके व्यक्ति बड़े प्रेमभावसे एक साथ एक परिवारकी तरह रहते। वहाँ मैंने सुदूर चीनके भिक्षुको देखा, पारसीक और यवन भिक्षुओंको देखा, सिंहल, यव, सुवर्ण द्वीपवाले भी वहाँ मौजूद थे; चम्पा-द्वीप कम्बोज-द्वीपके नाम और सजीव मूर्त्तियाँ वहीं सुनने और देखनेमें आईं। कपिशा, उद्यान, तुषार, कूचाके सर्वपिंगल पुरुष भिक्षुओंके कषायको पहिने वहीं मिले।

मुझे बाहरके देशोंके बारेमें जाननेकी बड़ी लालसा थी, और यदि यह विदेशी भिक्षु एक-एक करके मिले होते, तो मैं उनके पास एक-एक साल बिता देता, किन्तु यहाँ इकट्ठे इतनी संख्यामें मिल जानेके कारण दरिद्रकी निधिकी भाँति मैं अपनेको सँभालनेमें असमर्थ समझने लगा।

दिङ्नागका नाम मैंने अपने गुरुके मुखसे सुना था। कालिदास गुप्तराज, राजतन्त्र, तथा उसके परम-सहायक ब्राह्मण-धर्मके ज़बर्दस्त समर्थक थे; और किस अभिप्रायसे यह मैं पहिले बतला चुका हूँ। वह दिङ्नागको इस काममें ज़बर्दस्त बाधक समझते। वह कहते थे, इस द्रविड़ नास्तिकके सामने विष्णु क्या तैंतीस कोटि देवताओंका सिंहासन हिलता है। धर्मके नामपर राजा और ब्राह्मणोंके स्वार्थके लिए हम जो कुछ कूट मन्त्रणा कर रहे हैं, उसका रहस्य इससे छिपा नहीं है।

मुश्किल यह था, कि उसे बूढ़ा वसुबन्धु जैसा गुरु मिल गया था। वसु-बन्धुको कालिदास ज्ञानवारिधि कहते थे। भदन्त वसुबन्धु चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य द्वितीयकी राजधानी अयोध्यामें दर्बारीके तौरपर नहीं बल्कि स्वतन्त्र सम्मानित गुरुके तौरपर कई साल रहे, और पीछे गुप्तोंकी नीच भावनासे निराश हो अपनी जन्म-भूमि पुरुषपुर (पेशावर)को चले गए। दिङ्नागने लोहेके तीर या खड्गको नहीं, बल्कि उससे भी तीक्ष्ण ज्ञान और तर्कके शस्त्रको वितरण करनेका व्रत लिया है। उनसे आध घंटा बात कर लेने हीमें ब्राह्मणोंका सारा मायाजाल काईकी भाँति छँट जाता है। मैं छै मास अचिन्त्य विहारमें रहा, और प्रतिदिन दिङ्नागके मुखसे चारों ओर प्रकाशके फैलानेवाले उनके उपदेशोंको सुनता था, मुझे इस बातका अभिमान है, कि मुझे दिङ्नाग जैसा गुरु मिला। उनका ज्ञान अत्यन्त गम्भीर है, उनके वचन आगके दहकते अंगारोंकी भाँति थे। मेरी ही भाँति वह संसारके पाखंड मायाजालको देख क्रोधोन्मत्त हो जाते। एक दिन वह कह रहे थे—

"सुपर्ण! प्रजाके ही बलपर हम कुछ कर सकते थे, किन्तु प्रजा दूर तक बहक चुकी है। तथागत (बुद्ध)ने जाति वर्णके भेदको उठा डालनेके लिए भारी प्रयास किया था। उसमें कुछ अंशमें उन्हें सफलता भी हुई। देशके बाहरसे यवन, शक, गुर्जर, आभीर, जो लोग आए, उन्हें ब्राह्मण म्लेच्छ कहकर घृणा करते थे, किन्तु तथागतके संघने उन्हें मानवताके समान अधिकारको प्रदान किया। कुछ सदियों तक जान पड़ा कि भारतसे सारे भेद-भाव मिट जायेंगे, किन्तु भारतके दुर्भाग्यसे इसी वक्त ब्राह्मणोंके हाथमें गुप्त राजसत्ता आ गई। गुप्त स्वयं जब पहिले आये थे, तो ब्राह्मण उन्हें म्लेच्छ कहते थे, किन्तु कालिदासने उनके गौरवको बढ़ानेके लिए 'रघुवंश' और 'कुमार सम्भव' लिखा है। गुप्त अपने राजवंशको प्रलय तक क़ायम रखनेकी चिन्तामें पागल हैं, ब्राह्मण उन्हें इसका विश्वास दिला रहे हैं। हमारे भदन्त वसुबन्धु ऐसा विश्वास

नहीं दिला सकते थे, वह खुद लिच्छवियोंके गण-तन्त्रके आधारपर निर्मित भिक्षु-संघके सच्चे अनुयायी थे। बौद्धोंको ब्राह्मण ज़बर्दस्त प्रतिद्वन्द्वी समझते हैं, वह जानते हैं कि सारे देशोंके बौद्ध गोमांस खाते हैं, जिसे वह नहीं छोड़ेंगे, इसलिए इन्होंने भारतमें धर्मके नामपर गोमांस-वर्जन—गो-ब्राह्मण रक्षाका प्रचार शुरू किया है। बौद्ध जाति वर्ण-भेदको उठाना चाहते हैं। ब्राह्मणोंने अब वर्ण-वहिष्कृत यवन शक आदिको ऊँचे-ऊँचे वर्ण देने शुरू किये हैं। यह ज़बर्दस्त फन्दा है, जिसमें कितने ही बौद्ध गृहस्थ भी फँसते जा रहे हैं। इस फूटसे प्रजाकी शक्तिको छिन्न-भिन्न कर वह राजशक्ति और ब्राह्मण-शक्तिको दृढ़ करना चाहते हैं, किन्तु इसका परिणाम घातक होगा, सुपर्ण! देशके लिए, क्योंकि दासोंकी शक्तिके बलपर कोई राष्ट्र शक्तिशाली नहीं हो सकता।"

मैंने अपने यौधेयोंके आत्मोत्सर्गकी कहानी कही, तो आचार्यका हृदय पिघल गया। जब मैंने यौधेयगणके पुनरुज्जीवनकी अपनी लालसाको उनके सामने प्रकट किया, तो उन्होंने कहा—"मेरी सदिच्छा और आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। उद्योगी पुरुषसिंहको विघ्नबाधाओंसे नहीं डरना चाहिए।"

उनके आशीर्वादको लेकर मैं जा रहा हूँ यौधेयोंकी भूमिकी ओर, चाहे तो उस मृत भूमिका फिरसे उत्थान करूँगा, या रेतके पदचिह्नकी भाँति मिट जाऊँगा।

१३—दुर्मुख

काल—६३० ई०

(१)

मेरा नाम हर्षवर्धन है। शीलादित्य या सदाचारका सूर्य मेरी उपाधि है। चन्द्रगुप्त द्वितीयने अपने लिए विक्रमादित्य (पराक्रमका सूर्य) उपाधि पसन्द की और मैंने यह कोमल उपाधि स्वीकार की। विक्रममें दूसरेको दबाने, दूसरेको सतानेकी भावना होती है; किन्तु शील (सदाचार)में किसीको दबाने-तपानेकी भावना नहीं है। गुप्तोंने अपने लिए परम वैष्णव कहा। मेरे ज्येष्ठ भ्राता राज्यवर्धन—जिनको गौड़ शशांकने विश्वास-घातसे तरुणाईमें ही मार डाला और जिसका स्मरण करके आज भी मेरा दिल अधीर हो जाता है—परम सौगत (परम बौद्ध) थे; सुगत (बुद्ध)की भाँति वह क्षमा-मूर्ति थे। अपनेको सदा उनका चरण-सेवी मानते हुए मैंने अपने लिए परम माहेश्वर (परम शैव) होना पसन्द किया; किन्तु शैव होनेपर भी मेरे हृदयमें बुद्धकी भक्ति कितनी है, इसे भारत ही नहीं, भारतके बाहरकी दुनिया भी जानती है। मैंने अपने राज्यके सारे धर्मोंका सम्मान किया है—प्रजा-रंजनके ही लिए नहीं, बल्कि अपने शील (सदाचार)के संरक्षणके लिए भी। हर पाँचवें साल राज-कोषके बचे धनको प्रयागमें त्रिवेणीके तीर ब्राह्मणों और श्रमणों (बौद्ध भिक्षुओं)में बाँटता था। इससे भी सिद्ध होगा, कि मैं सभी धर्मोंकी समान अभिवृद्धि चाहता रहा। हाँ, मैंने समुद्रगुप्तकी भाँति दिग्विजयके लिए यात्रा की थी; लेकिन वह शीलादित्य नाम धारण करनेसे पहले। यह आप न ख्याल करें कि यदि दक्षिणापथके राजा पुलकेशीके सम्मुख असफल न हुआ होता, तो विक्रमादित्यकी तरह ही कोई पदवी मैं भी धारण करता। मैं सारे भारतका

चक्रवर्ती होकर भी चन्द्रगुप्त नहीं, अशोकके कलिंगविजयकी भाँति पश्चात्ताप कर शील द्वारा मनुष्योंकी विजय करता—मेरा स्वभाव ऐसा ही कोमल है।

राज्य स्वीकार करनेसे मैं इन्कार करता रहा, क्योंकि स्थाण्वीश्वर-पति महाराज प्रभाकरवर्धनका पुत्र, कान्यकुब्जाधिपति परमभट्टारक महाराजाधिराज राज्यवर्धनका अनुज हो, मैंने राज्य-भोगोंको देखकर नहीं, भोगकर असार-सा समझ लिया था। भ्राताके मारे जानेके बाद कितने ही समय तक मैं राजसिंहासनपर बैठनेसे इन्कार करता रहा। यदि भाईके हत्यारेके प्रतिशोधका क्षत्रियोचित विचार मनमें न उठ आया होता, तो शायद मैं कान्यकुब्जके सिंहासनपर बैठता ही नहीं, और वह मेरी बहन राज्यश्रीके पति-कुल—मौखरि-कुल—में चला जाता; जो कि वस्तुतः हमारे भाईसे पहले वहाँसे गुप्तोंके चले जानेपर राज्यका शासन करता था। यह सब मैं इसलिए कहता हूँ; कि मेरे बाद आनेवाले समझें कि हर्षने स्वार्थकी दृष्टिसे अपने सिरपर राजमुकुट नहीं रखा। मुझे अफ़सोस है, मेरे दरबारी चापलूसोंने—राजा चापलूसोंसे पिंड छुड़ा नहीं सकते, यही बड़ी मुश्किल है—मुझे भी समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यके रंगमें रँगना चाहा; किन्तु उनकी यह बातें मेरे साथ न्याय नहीं, अन्यायके लिए हैं।

मैंने राज्य स्वीकार किया, सिर्फ़ शील (सदाचार), धर्म पालनके लिए, सारे प्राणियोंके हितके लिए। मैंने विद्यादानको भारी दान समझा, इसीलिए गुप्तोंके वक़्तसे बढ़ती चली आती नालन्दाकी समृद्धिको और भी बढ़ाया, जिसमें कि वहाँ दस सहस्र देशी-विदेशी विद्वानों और विद्यार्थियोंको आरामके साथ विद्याध्ययन करनेका सुभीता हो। विद्वानोंका सम्मान करना मेरे लिए सबसे खुशीकी बात थी, इसीलिए मैंने चीनके विद्वान् भिक्षु वेन्-चिङ्गका दिल खोलकर सम्मान किया। बाणकी अद्भुत काव्य-प्रतिभाको देखकर मैंने उसे भुजंगता (लम्पटता)से हटाकर अच्छे रास्तेपर लगाना चाहा—यद्यपि वह बहुत ऊपर नहीं उठ सका

और कालिदासके क़दमोंपर चल सिर्फ़ ख़ुशामदी कवि ही बना रहा। किन्तु मगधके एक छोटे-से गाँवसे निकालकर उसे विश्वके सामने रखनेका प्रयास मेरे विद्या-प्रेमका ही द्योतक था।

मैं चाहता था, सभी अपने-अपने धर्मका पालन करें। अपने धर्मपर चलना ही ठीक है। इसीसे संसारमें शान्ति और समृद्धि रहती है, और परलोक बनता है। सभी वर्णवाले अपने वर्ण-धर्मका पालन करें, सभी आश्रमवाले अपने आश्रमका पालन करें, सभी धर्म-मत अपने श्रद्धा-विश्वासके अनुसार पूजा-पाठ करें—इसके लिए मैं सदा प्रयत्नशील रहा।

कामरूप (आसाम)से सौराष्ट्र (काठियावाड़) और विन्ध्यसे हिमालय तकके अपने विस्तृत राज्यमें न्यायका राज्य स्थापित किया। मेरे अधिकारी (अफ़सर) ज़ुल्म न करने पायें, इसके लिए समय-समयपर मैं स्वयं दौरा करता था। मैं इसी तरहके एक दौरेपर था, जब कि ब्राह्मण बाण मेरे बुलानेपर मेरे पास आया था। अपने जाने उसने मेरी कीर्त्ति बढ़ानी चाही; किन्तु, मैं समझता हूँ, यात्रामें भी जिस तरहके मेरे राजसी ठाट-बाटका वर्णन उसने किया है, वह मेरा नहीं, किसी विक्रमादित्यके दरबार-का हो सकता है। मेरी जीवनी (हर्ष-चरित) वह चुपके-चुपके लिख रहा था। मुझे एक दिन पता लगा, तो मैंने पूछा। उसने लिखित अंश मुझे दिखाया। मैंने उसे बहुत नापसन्द किया और डाँटा भी, जिसका एक परिणाम तो ज़रूर हुआ कि वह उतने उत्साहसे आगे न लिख सका। उसकी 'कादम्बरी'को मैंने अधिक पसन्द किया—यद्यपि उसमें राजदरबार, रनिवास, परिचारक-परिचारिका, प्रासाद, आराम आदिका ऐसा वर्णन किया गया है, जिससे लोगोंको खामखाह भ्रम होगा कि यह सारा वर्णन मेरे ही राज-दरबारका है। मुझे अपनी पारसीक रानीसे बहुत प्रेम रहा है। वह नौशेरवाँकी पोती ही नहीं है, बल्कि अपने गुणों और रूपसे किसी भी पुरुषको मोह सकती है। बाणने उसीका महाश्वेताके नामसे वर्णन किया। मेरी सौराष्ट्री रानी कुछ उमर ढलनेपर आई थी।

उसके दिलको सन्तुष्ट करने, उसके निवासको सजानेके लिए मैंने कुछ विशेष आयोजन किया था। बाणने उसे ही कादम्बरी और उसके निवासके रूपमें अंकित कर दिया है। बाणकी रचनामें इन दो बातोंको छोड़ बाकी किसी वर्णनको मेरा नहीं समझना चाहिए, या बहुत अति-शयोक्तिपूर्ण समझना चाहिए।

मैं अपने अन्तिम दिनोंमें अनुभव कर रहा हूँ, कि बाण मेरा हितैषी साबित नहीं होगा। बाणके 'हर्ष-चरित' हीमें नहीं, 'कादम्बरी'में भी जो कुछ राजा और उसके ऐश्वर्यके बारेमें वर्णन किया गया है, उसे लोग मेरा ही वर्णन कहेंगे। और फिर 'नागानन्द', 'रत्नावलि' और 'प्रिय-दर्शिका' नाटकोंको उसने मेरे नामसे लिखकर तो और भी अनर्थ किया है। लोग कहेंगे, कीर्त्तिका भूखा होकर हर्षने पैसे दे दूसरेके ग्रन्थोंको अपने नामपर मोल खरीदा। मैं सच कहता हूँ, मुझे इस बातका पता बहुत पीछे लगा, जब कि हज़ारों विद्यार्थी मेरे नामसे इन ग्रन्थोंको पढ़ चुके थे और कितनी ही बार वे खेले भी जा चुके थे।

मैं अपनी प्रजाको सुखी देखना चाहता था। मैंने उसे देखा। मैं अपने राज्यको शान्त और निरापद देखना चाहता था। अन्तमें यह साध भी पूरी होकर रही और लोग उसमें सोना उछालते हुए एक जगहसे दूसरी जगह जा सकते थे।

मेरे कुलके बारेमें अभी ही पीठ-पीछे लोग कहने लगे हैं कि वह बनियोंका कुल है। यह बिल्कुल ग़लत है। हम वैश्य क्षत्रिय हैं, वैश्य बनिये नहीं। किसी समय हमारे शातवाहन-कुलमें सारे भारतका राज्य था। शात-वाहन राज्यके ध्वंसके बाद हमारे पूर्वज गोदावरी-तीरके प्रतिष्ठानपुर (पैठन)-को छोड़ स्थाण्वीश्वर (थानेसर) चले आये। शातवाहन (शालिवाहन) वंश कभी बनिया नहीं था, यह सारी दुनियाँ जानती है; यद्यपि उसका शक क्षत्रियोंके साथ शादी-ब्याह होता था, जो राजाओंके लिए उचित ही है। मेरी भी प्रिया महाश्वेता पारसीक राजवंशकी है।

(२)

वाण मेरा नाम है। मैंने कितने ही काव्य-नाटक लिखे हैं, जिनकी कसौटीपर ही लोग मुझे कसना चाहेंगे, इसीलिए मुझे यह लेख लिख-कर छोड़ना पड़ रहा है। मुझे निश्चय है कि वर्त्तमान् राजवंशके समय तक यह लेख नहीं प्रकट होगा। मैंने इसके रखनेका इन्तज़ाम किया है। आने वाले लोग मेरे बारेमें ग़लत धारणा रखनेसे बच जायँगे, यदि मेरी प्रसिद्ध पुस्तकोंको पढ़नेके पहले इस लेखको पढ़ लेंगे।

राजा हर्षने भरी सभामें मुझे भुजंग (लम्पट) कहा था, जिससे लोगों-को भ्रम हो सकता है। मैं धनी पिताका लाड़ला पुत्र था। भास कालि-दासकी कृतियोंको पढ़-पढ़कर मेरी तबीयत रंगीन हो गई थी, इसमें सन्देह नहीं। मेरे पास रूप और यौवन था। मुझे देशाटनका शौक़ था। मैंने यौवनका आनन्द लेना चाहा, और चाहता तो अपने पिताकी भाँति घर-पर ही वह ले सकता था; किन्तु मुझे वह भारी पाखंड जँचा—भीतरसे काम स्वेच्छाचारी होते हुए भी बाहरसे अपनेको जितेन्द्रिय, संयमी, पुजारी, महात्मा प्रकट करना मुझे बहुत बुरा लगता था। मैंने जीवन-भर इसे पसन्द नहीं किया। जो कुछ किया, प्रत्यक्ष किया। पिताने अपने असवर्ण पुत्रको स्वीकारकर सिर्फ़ एक ही बार हिम्मत दिखलाई थी; किन्तु, वह तरुणाईका 'पाप' गिना जा सकता था। मैंने देखा, जवानीके जिस आनन्दको मैं लेना चाहता हूँ, उसे अपनी जन्मभूमिमें नहीं ले सकता। वहाँ सारे जाति-कुलवाले बिगड़ जायेंगे, फिर धन-वित्तसे भी हाथ धोना पड़ेगा। मुझे एक अच्छा ढंग याद आया। मैंने अपनी एक नाटक-मंडली बनाई—हाँ, मगधसे बाहर जाकर। फिर मेरे तरुण मित्र वही थे, जो गुणी और कला-कुशल थे। धूर्त्त, खुशामदी, मूर्ख बनानेवाले मित्रोंको मैं कभी पसन्द नहीं करता था। मैंने अपनी मंडलीमें कितनी ही सुन्दर तरुणियोंको भी शामिल किया, जिनमें सभी वारवनिताएँ (वेश्याएँ) नहीं थीं। इसी यात्रामें मैंने अभिनय करनेके लिए 'रत्नावलि', 'प्रियदर्शिका'

आदि नाटक-नाटिकाएँ लिखीं। मैंने तरुणाईके आनन्दके साथ कलाको भी मिला दिया, और इसमें कलाकी जो सेवा हुई, उसे देखते हुए सहृदय पुरुष मेरी प्रशंसा ही करेंगे। मैंने जीवनका आनन्द लिया, साथ ही आपको 'रत्नावलि', 'प्रियदर्शिका' आदि प्रदान कीं। दूसरे भोगी हैं, जो सिर्फ़ अपने आनन्द-भरको ही सब-कुछ समझते हैं। लोग कहेंगे, मैंने राजा हर्षको प्रसन्न करनेके लिए अपने नाटकोंको उसके नामसे प्रकट कर दिया। उन्हें यह मालूम नहीं कि जिस वक़् प्रवासमें ये नाटक लिखे गए थे, उस वक़् मैं हर्षका सिर्फ़ नाम-भर जानता था। उस वक़् मुझे यह भी पता न था कि कभी हर्ष मुझे बुलाकर अपना दरबारी कवि बनायेंगे। मैंने इन नाटकोंका कर्त्ता हर्ष को सिर्फ़ अपनेको छिपानेके लिए प्रकट किया। इन नाटकोंके पढ़नेवाले उनके मूल्यको जानते हैं। वह बिल्कुल नए थे। मेरे दर्शकोंमें गुणीजनोंकी संख्या भी होती थी। पंडित, राजा, कलाविद् ख़ास तौरसे उन्हें देखने आते थे। यदि उनको पता लग जाता, तो मैं नाटक-मंडलीका सूत्रधार न रह पाता। लोग महाकवि बाणके पीछे पड़ जाते। मैंने हर्षको छोड़ कामरूप (आसाम)से सिन्धु और हिमालयसे सिंहलके अनुराधपुर तकके राज-दरबारोंको अपने नाटक दिखलाये थे। ख़्याल कीजिये, यदि कामरूपेश्वर, सिंहलेश्वर तथा कुन्तलेश्वरको पता लग जाता कि नाटकोंका महाकवि यही बाणभट्ट है, तो फिर मेरे पर्यटन, मेरे आनन्दानुभावका क्या होता! मैं दरबारी कवि नहीं बनना चाहता था। यदि हर्षके राज्यमें बसता न होता, तो उसका भी दरबारी कवि न बनता। मेरे पास पिताकी काफ़ी सम्पत्ति थी।

आपको ख़्याल हो सकता है, हर्षके कहनेके अनुसार मैं निरा भुजंग—वेश्या-लम्पट—था। मेरी मंडलीमें वार-वनिताएँ बहुत कम आईं। जो आईं, उन्हें मैंने नृत्य-संगीत-अभिनय-कलाके ख़्यालसे लिया। मेरे नाट्य-गगनकी तारिकाएँ दूसरी ही तरह आती थीं। आगे क्या होगा, नहीं जानता; किन्तु, इस वक़् देशकी सारी तरुणियाँ राजाओं और उनके

सामन्तोंकी सम्पत्ति समझी जाती हैं—चाहे वे ब्राह्मणकी कन्याएँ हों या क्षत्रियकी। मेरी बुआको मगधके एक मौखरि सामन्तने ज़बरदस्ती रख लिया था। वह मर गया, और बुआकी आयु भी गिर गई, तो वह हमारे घर रहा करती थीं। मेरे ऊपर उनका परम स्नेह था। मैंने उनके उस सामन्त-सम्बन्धकी ओर कभी खयाल नहीं किया। आखिर उस अबला-का दोष क्या था? सुन्दर तरुणियाँ कम होती हैं; किन्तु, जब उनके प्रथम अधिकारी कुछ थोड़े-से सामन्त हों, तो एक एक सामन्तपर उनकी कितनी संख्या पड़ेगी, इसे आप ख़ुद समझ सकते हैं। सामन्तों और राजाओंने इन तरुणियोंके स्वीकारके कई तरीक़े निकाले थे। कोई कोई पतिके पास जानेसे पहली रातको उन्हें अपनी समझते थे। इसे लोग धर्म-मर्यादा समझने लगे थे और अपनी बेटियों बहुओं तथा बहनोंको डोलियोंपर बैठाकर अन्तःपुरमें एक रातके लिए पहुँचाते थे। डोला न भेजनेका मतलब था सर्वनाश। पसन्द आनेपर वह रनिवासमें रख ली जाती थीं—रानीके तौरपर नहीं, परिचारिकाके तौरपर। रानी बननेका सौभाग्य तो सिर्फ़ राजकुमारियों और सामन्त-कुमारियोंको ही हो सकता था। अन्तःपुर (रनिवास)की इन हज़ारों-हज़ार तरुणियोंमें अधिकांश ऐसी थीं, जिन्हें एक दिनसे अधिक राजा या सामन्तका समागम नहीं प्राप्त हुआ। बतलाइए, उनकी तरुणाई उनसे क्या माँगती होगी? मेरी अभिनेत्रियाँ अधिकतर इन्हीं रनिवासोंसे आती थीं, और चोरीसे भाग-कर नहीं। इसे बुरा समझिये या भला, मैं राजाओं और सामन्तोंको बातकी बातमें अपनी ओर खींचनेमें सिद्धहस्त था—राजनीतिमें नहीं, उससे मेरा कोई मतलब न था। इसकी साक्ष्य दे रहे थे वे सैकड़ों पत्र, जो राजाओं और राज-सामन्तोंकी ओरसे मेरी प्रशंसामें मिले थे। जब वह कलाकी तारीफ़ करते, तो मैं कलाविद्का रोना, रोना शुरू करता—'क्या करें देव, कलाकार तरुणियाँ होनेपर भी मिलती ही नहीं।'

'होनेपर भी नहीं मिलतीं?'

'एक दिनके चुम्बन, एक दिनके आलिंगन या एक दिनकी सहशय्या-के बाद जहाँ लाखों तरुणियाँ अन्तःपुरोंमें बन्द करके रख दी जायँ, वहाँ कलाकार स्त्रियाँ कहाँ से मिलें ?'

'ठीक कहते हो, आचार्य ! मैं इसे अनुभव करता हूँ; किन्तु, एक बार अन्त:पुरमें ले लेनेपर हम उन्हें निकालें कैसे ?'

इसपर मैं उन्हें ढंग बतलाता। गाना-नाचना आज हमारी राज-कन्याओं, सामन्त-कन्याओं और राजान्तःपुरिकाओंके लिए अनिवार्य है। यह मानो उनके लिए जल और आहारके तौरपर है। मैं अपनी चतुर नारियोंको भेजता। राजा अपनी उन अन्तःपुरिकाओंको कला सीखनेके लिए उनके पास जानेको कहता। जिसे हमें लेना होता, उसे अन्तःपुरके कष्ट और कलाविद्के जीवनका आनन्द बतलाते; साथ ही यह भी कि जैसे यहाँ राजाने हमारी मंडलीकी एक निपुण नटीको रनिवासमें ऊँचा स्थान दिया है, वैसे ही हो सकता है, तुम्हें भी आगे मौक़ा मिले। इतना कहनेपर अनेक तरुणियोंका राज़ी होना स्वाभाविक था—यद्यपि हम उनमेंसे योग्यतमको ही लेते। राजा लोगोंने जीवनमें एक बारके समागमके लिए जहाँ हज़ारों तरुणियोंका अवरोध कर रखा हो, वहाँ अन्तःपुरमें पुरुषप्रवेशके कड़े निषेधसे भी कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। बूढ़े कंचुकी ब्राह्मण उनको तरुणाईके आनन्दसे रोक नहीं सकते।

मैंने जब विधवाके सती होनेका विरोध किया, तो पाखंडियोंने—ब्राह्मणों और राजाओंसे बढ़कर दुनियामें कोई पाखंडी नहीं हो सकता—बड़ा ही हल्ला मचाया। कहने लगे, वह गर्भ-हत्या और विधवा-विवाह फैलाना चाहता है। गर्भ-हत्या मैं बिल्कुल नहीं चाहता, किन्तु, यहाँपर यह स्वीकार करनेमें कोई उज्र नहीं, कि मैं विधवा-विवाह पसन्द करता हूँ। गुप्तोंके शासनसे हमारा पुराना धर्म कुछ-से-कुछ हो गया। जहाँ हमारे श्रोत्रिय बिना वत्सतरी मांसके किसी आतिथ्यको स्वीकार करनेके लिए तैयार नहीं थे, वहाँ अब गोमांस-भक्षणको धर्म-विरुद्ध समझा

जाता है। जहाँ हमारे ऋषि विधवाओंके लिए देवर—दूसरा वर—बिल्कुल उचित समझते थे और कोई तरुण विधवा ब्राह्मणी, क्षत्रिया छः महीने-बरस दिनसे ज्यादा पति-विधुरा नहीं रह सकती थी, वहाँ अब उसे धर्म-विरुद्ध समझा जाने लगा। स्वयं इन सारी खुराफ़ातों—इस नये (हिन्दू) धर्म—की जड़ गुप्त राजवंशमें ही रामगुप्तकी विधवा नहीं, सधवा स्त्रीको चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यने अपनी पटरानी बनाया था। तरुण स्त्रीको विधवा रखनेमें ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर भी नहीं रोक सकते, और किस मुँहसे रोकेंगे, जब कि अपनी-अपनी पत्नियोंके रहते वह ख़ुद पराई स्त्रियोंके पीछे दौड़नेसे बाज़ नहीं आए। तरुण विधवा रखनेका आवश्यक परिणाम है गर्भपात, क्योंकि बच्चा उत्पन्नकर पालन करनेका मतलब है विधवा-विवाह स्वीकार करना, जिससे कि वह बचना चाहते हैं। इसी डरसे अब ब्राह्मणों और सामन्तोंने कुलीनता सिद्ध करनेका नया ढंग निकाला है। वह है विधवाओंको ज़िन्दा जलाना। स्त्रीको इस तरह ज़िन्दा जलानेको वे लोग महापाप नहीं, महापुण्य समझते हैं। हर साल लाखों-लाख तरुणियोंको बलात् अग्निशात् करते देख जिन देवताओंका हृदय नहीं पसीजता, वह या तो वस्तुतः ही पत्थरके हैं अथवा हैं ही नहीं। कहते हैं, स्त्री सती अपने मनसे होती है! धूर्त्त! पाखंडी! नराधम! इतना झूठ क्यों बोलते हो? इन राजाओंके अन्तःपुरोंकी एक बारकी स्पृष्ट सैकड़ों स्त्रियोंमें— जिन्हें तुम आगमें भूनकर सती बना रहे हो—कितनी हैं, जिनका उस नर-पशुके साथ ज़रा भी प्रेम है; जिसने उन्हें जीवन-भरके लिए वन्दिनी बनाया। उसके लिए प्रेम! और वियोगमें पागल हो आगमें कूदनेका जो एकाध दृष्टान्त मिलता है, उसके पागलपनको भी दो-चार दिनोंमें ठंडा किया जा सकता है। आत्म-हत्या धर्म! सत्यानाश हो तुम पाखंडी पुरोहितों और राजाओंका। प्रयागके उस बरगद—अक्षयवट—से जमुनामें कूदकर मरनेको इन्होंने धर्म बतलाया, जिसके कारण हर साल हज़ारों पागल मरकर 'स्वर्ग'

पहुँच रहे हैं! केदार-खंडके सत्पथमें जा बर्फ़में गलनेको इन्होंने धर्म कहा, जिसके कारण हर साल सैकड़ों सत्पथके रास्ते स्वर्ग सिधारते हैं। मैं सारी आत्म-हत्याओंके खिलाफ़ आवाज़ नहीं उठा सकता था, क्योंकि मुझे ब्राह्मणोंमें राजाके आश्रित रहना था।

राजाके आश्रित रह रहा हूँ; किन्तु यह आश्रय लेना जान-बूझकर न था। मेरी अपनी सम्पत्ति इतनी थी कि मैं एक संयत भोगपूर्ण जीवन बिता सकता था। अपने समयके धर्मध्वजी राजाओं और ब्राह्मणोंसे मैं बहुत अधिक संयम रख सकता था। हर्ष और दूसरे राजर्षियोंकी भाँति मैं लाखचुम्बी (लाख सुन्दरियोंको भोगनेवाला) बननेकी होड़ रखनेवाला न था। ज्यादा-से-ज्यादा सौ सुन्दरियाँ होंगी, जिनके साथ मेरा किसी-न-किसी समय प्रेम रहा होगा। किन्तु मेरा घर, सम्पत्ति, सब कुछ हर्षके राज्यमें था। जब उसका दूतपर दूत आ रहा हो, फिर मैं कैसे राज-दरबारमें जानेसे इन्कार करता? हाँ, यदि मैं भी अश्वघोष होता, घर-द्वारकी फ़िक्र न होती, तो हर्षकी परवाह न करता।

हर्षके बारेमें यदि आप मेरी गुप्त सम्मति पूछेंगे, तो मैं कहूँगा कि अपने समयका वह बुरा मनुष्य या बुरा राजा न था। अपने भाई राज्य-वर्धनके साथ उसका बहुत प्रेम था, और यदि भाईके लिए सती होनेका भी हमारे धर्मनायकोंने विधान किया होता, या संकेत भी कर रखा होता, तो वह उसे कर बैठता। लेकिन साथ ही उसमें दोष भी थे, और सबसे बड़ा दोष था दिखावा—प्रशंसाकी इच्छा रखते हुए भी अपनेको निस्पृह दिखलाना; सुन्दरियोंकी कामना रहते हुए अपनेको कामना-रहित जत-लाना; कीर्त्तिकी वांछा रखते हुए कीर्त्तिसे कोसों दूर बतलानेकी चेष्टा दर्शाना। मैंने हर्षको बिना पूछे अपने नाटकोंको 'हर्ष निपुण कवि'के नामसे क्यों प्रसिद्ध किया, इसके बारेमें कह चुका हूँ। किन्तु परिचय तथा रात-दिनकी संगति होनेके बाद उसने कभी नहीं कहा—'बाण, अब इन नाटकोंको अपने नामसे प्रसिद्ध होने दो।' यह बिल्कुल आसान था।

सिर्फ़ एक बार उसके अधीन सामन्त-दरबारोंमें 'श्री हर्षो निपुणः कविः' की जगह 'श्री बाणो निपुणः कविः'के साथ नाटकके अभिनय करा देने-भरकी ज़रूरत थी।

मुझे जगत् जैसा है, उसे वैसा ही चित्रित करनेकी बड़ी लालसा थी। यदि मैंने पर्यटनमें अपने बारह वर्ष न बिताए होते, तो शायद यह लालसा न उत्पन्न होती, अथवा उत्पन्न भी होती, तो मैं उसका निर्वाह नहीं कर सकता। मैंने जहाँ आच्छोदसरोवरका वर्णन किया, वहाँ हिमालयकी तराईकी एक सुन्दर भूमि मेरे सामने थी। कादम्बरी-भवनके वर्णन करनेमें हिमालयका कोई दृश्य था। विन्ध्याटवीमें अपनी एक देखी जगहमें जरद् (बूढ़े) द्रविड़ धार्मिकको मैंने बैठाया। लेकिन इतने ही चित्रणसे मैं अपनी तूलिकाको विश्राम नहीं देना चाहता था। मैंने हर्ष तथा दूसरे अपने सुपरिचित राजाओंके प्रासादों, अतःपुरों और उनकी लक्ष्मीका चित्रण अपने ग्रन्थों में किया; किन्तु मैं उन कुटियों और उनके वदनापूर्ण जीवनको नहीं चित्रित कर सका, जिनकी वह अवस्था इन्हीं प्रासादों और रनिवासोंके कारण है। यदि चित्रित करता तो इन सारे राज-प्रासादों तथा राज-भोगोंपर इतनी ज़बरदस्त कालिमा पुतती कि हर पाँचवें साल प्रयागमें राजकोष—ग़लत है, अतिरिक्त कोष—उड़ाने-वाला हर्ष फिर मुझे भुजंगकी पदवी देकर ही सन्तुष्ट न होता।

(३)

मुझे लोग दुर्मुख कहते हैं, क्योंकि कटु सत्य बोलनेकी मुझे आदत है। हमारे समयमें और भी कटु सत्य बोलनेवाले जब-तब मिलते हैं; किन्तु वह पागलोंके बहाने वैसा करते हैं, जिसके कारण कितने ही उन्हें सचमुच पागल समझते हैं और कितने ही श्रीपर्वतसे आया कोई अद्भुत सिद्ध। मैं भी इस श्रीपर्वतके युगमें एक अच्छा खासा सिद्ध बन सकता था; किन्तु उस वक्त मेरा नाम दुर्मुख नहीं होता। किन्तु यह लोक-वंचना मुझे पसन्द नहीं। लोक-वंचनाके ही ख्यालसे मैंने नालन्दा छोड़ा,

नहीं तो मैं भी वहाँके पंडितों, महापंडितोंमें होता। वहाँ मैंने एक आदमीको अन्धकार-राशिमें अंगार फेंकते देखा था; किन्तु यह भी देखा कि किस तरह अपने-पराए उसके पीछे पड़े हैं। आपको जिज्ञासा होगी उस आदमीके बारेमें। वह था तार्किकश्रेष्ठ, हज़ारों पुरुष-भेड़ोंमें एक ही पुरुष-सिंह धर्मकीर्त्ति। नालन्दामें बैठे हुए उसने डंकेकी चोटसे कहा— बुद्धिके भी ऊपर पोथीको रखना, संसारके कर्त्ता ईश्वरको मानना, स्नान करनेके धर्म होनेकी इच्छा, जन्म-जातिका अभिमान, पाप नाश करनेके लिए शरीरको सन्तप्त करना—अक्ल मारे हुओंकी जड़ताके ये पाँच लक्षण हैं।'*

मैंने धर्मकीर्त्तिसे कहा—"आचार्य, तुम्हारा हथियार तीक्ष्ण है; किन्तु इतना सूक्ष्म हो गया है कि यह लोगोंको नज़र ही नहीं पड़ेगा।"

धर्मकीर्त्तिने कहा—"मैं भी अपने हथियार की कमज़ोरीको समझता हूँ। जिसका मैं ध्वंस करना चाहता हूँ, उसके लिए मुझे कवचहीन हो सबको दिखलाई देनेवाले प्रचण्ड हथियारोंको हाथमें लेना चाहिए। नालन्दाके स्थविर-महास्थविर (सन्त-महन्त) अभीसे मुझसे नाराज़ हैं। क्या तुम समझते हो, मैं एक भी विद्यार्थी पा सकूँगा, यदि मैं कहना शुरू करूँ— 'नालन्दा एक तमाशा है, जिसमें ऐसे विद्यार्थी आते हैं, जो कभी विस्तृत लोकको आलोकित नहीं कर सकते, वह अपने ज्ञान-तेजसे अज्ञोंअल्पज्ञोंकी आँखोंमें चकाचौंध-भर पैदा कर सकते हैं।' जिनको शीलादित्यके दिए गाँवोंसे सुगन्धित चावल, तेमन, घी, खजूर आदि मिलते हैं, वह शीलादित्यके भोगका शिकार बनी प्रजाको कैसे विद्रोही बननेका सन्देश दे सकता है?'

"तो आचार्य! आपको इस अन्धरात्रिसे निकलनेका कोई रास्ता भी सूझता है?"

"रास्ता? हरएक रोगकी दवा होती है, हरएक विपत्से निकलनेका

---

*वेदप्रामाण्यं कस्यचित्कर्तृवादः स्नाने धर्मेच्छा जातिवादावलेपः।
सन्तापारम्भः पापहानाय चेति ध्वस्तप्रज्ञानां पंच लिंगानि जाड्ये॥

—प्रमाणवार्त्तिक

कोई मार्ग होता है; किन्तु इस अन्धरात्रिसे निकलनेका रास्ता या इस वैतरणीका सेतु एक पीढ़ीमें नहीं बन सकता मित्र! क्योंकि इसके बनानेवाले हाथ इतने कम हैं और उधर अन्धकारका बल ज़बरदस्त है।"

"तो हताश हो बैठ जाना चाहिए?"

"बैठ जाना लोक-वंचनासे कहीं अच्छा है। देखते नहीं, जिन्हें मार्ग-दर्शक होना चाहिए, वह कितने लोक-वंचक हैं? और यह अवस्था सिर्फ़ एक देशकी नहीं, सारे विश्वकी मालूम हो रही है। सिंहल, सुवर्णद्वीप, यवद्वीप, कम्बोजद्वीप, चम्पाद्वीप, चीन, तुषार, पारस्य—कहाँके विद्वान् विद्यार्थी हमारे नालन्दामें नहीं हैं। उनसे बात करनेसे मालूम होता है कि लोक अन्धा बना दिया गया है—'धिग् व्यापकं तमः।"

धर्मकीर्त्तिने सहस्राब्दियों तक जलते रहनेवाले शब्दाङ्गारोंको फेंक इस निशान्धकारको दूर करनेकी कोशिश की; किन्तु तत्काल तो उसका मुझे कोई असर होता नहीं दिखलाई देता। मैंने तै किया, बलती हुई दीपयष्टियों (मशालों)को फेंकनेका। इसका एक फल तो यह हुआ कि मैं दुर्मुख बन गया। यहाँ यह साफ़ कर देना चाहता हूँ कि अपनी जीभको इस्तेमाल करनेमें मुझे भी राजसत्तापर सीधे प्रहार न करनेका ख्याल रखना पड़ता है, नहीं तो दुर्मुखका मुख दस दिनोंमें बन्द कर दिया जाय। फिर भी आँख बचाकर कभी-कभी मैं दूर तक चला जाता हूँ।

आखिर इसका क्या अर्थ है, तुम मरनेके बाद मुक्ति और निर्वाण दिलानेकी बात करते हो, और यहाँ जो लाखों दास पशुओंकी भाँति बँधे बिक रहे हैं, उन्हें मुक्त करनेकी कोशिश क्यों नहीं करते? मैंने एक बार प्रयागके मेलेपर राजा शीलादित्यसे यही सवाल किया था—"महाराज! तुम जो बड़े-बड़े धनी बिहारों और ब्राह्मणोंमें पाँचवें साल इतना धन बाँट रहे हो, इसे दास-दासियोंको मुक्त करानेमें लगाते, तो क्या वह कम पुण्यका काम होता?"

शीलादित्यने दूसरे समय बात करनेकी बात कहकर टालना चाहा;

किन्तु मैंने दूसरा समय भी निकाल लिया, और निकालनेका मौक़ा राजाकी बहन भिक्षुणी राज्यश्रीने ज़बर्दस्ती दिलाया। मैंने राज्यश्रीके सामने दास-दासियोंकी नरक-यातनाका चित्र खींचा। उसका दिल पिघल गया। फिर जब मैंने कहा कि धन देकर इन सनातन—पीढ़ी-दर-पीढ़ीके—बन्दी मानवोंको मुक्ति प्रदान करना सबसे पुण्यकी बात है, तो यह उसके मनमें बैठ गया। बेचारी सरल-हृदया स्त्री दासताके भीतर छिपे बड़े-बड़े स्वार्थों-की बात क्या जाने? उसे क्या मालूम था कि जिस दिन भूमिको स्वर्गमें परिणत कर दिया जायगा उसी दिन आकाशका स्वर्ग ढह पड़ेगा। आकाश-पातालके स्वर्ग-नरकको क़ायम रखनेके लिए, उनके नामपर बाज़ार चलानेके लिए, ज़रूरत है, भूमिके स्वर्ग-नरककी, राजा-रंककी, दास-स्वामीकी।

राजाने अकेलेमें बात की। उसने पहले तो कहा—"मैं एक बार बहुत-सा कोष खर्चकर मुक्त तो कर सकता हूँ; किन्तु फिर ग़रीबीके कारण वह बिक जायँगे।"

"आगेके लिए मनुष्यका क्रय-विक्रय दण्डनीय कर दें।"

फिर वह चुपचाप सोचने लगा। मैंने उसके सामने 'नागानन्द'के नागका दृष्टान्त दिया, जिसने दूसरेके प्राणको बचानेके लिए अपना प्राण देना चाहा। 'नागानन्द' हर्ष राजाका बनाया नाटक कहा जाता है, क्या जवाब देता! आखिरमें यही पता लगा कि दास-दासियोंको मुक्त करनेमें उसको उतनी कीर्त्ति मिलनेकी आशा नहीं, जितनी कि श्रमण-ब्राह्मणोंकी झोली भरने या बड़े-बड़े मठ-मन्दिरोंके बनानेमें। मुझे उसी दिन पता लग गया कि वह शीलादित्य नहीं, शीलान्धकार है।

बेचारे शीलादित्यको ही मैं क्यों दोष दूँ? आजकल कुलीन, नागरिक होनेका यह लक्षण है कि सब एक दूसरेकी वंचना करें। पुराने बौद्ध-ग्रन्थोंमें बुद्धकालीन रीति-रवाजको पढ़कर मैं जानता हूँ कि पहले मद्य पीना वैसा ही था, जैसा कि पानी पीना। न पीनेको उस वक्त उपवास-व्रत मानते थे। आजकल ब्राह्मण मद्य-पानको निषिद्ध मानते हैं, और खुलकर पीना

आफ़त मोल लेना है। किन्तुइसका परिणाम क्या है ? देवताके नामपर, सिद्धि-साधनाके नामपर छिपकर भैरवीचक्र चल रहे हैं। ब्रह्मचर्यका भारी हल्ला मचा हुआ है; किन्तु परिणाम ? भैरवीचक्रमें अपनी-पराई सभी स्त्रियाँ जायज़ हैं। यही नहीं, देवताके वरदानके नामपर वहाँ माँ, बहन, बेटी तकको जायज़ कर दिया गया है। और परिव्राजकों, भिक्षुओं-के अखाड़े तो अप्राकृतिक व्यभिचारके अड्डे बन गए हैं। यदि सचमुच इस दुनियाका देखने-सुननेवाला कोई होता, तो इस वंचना, इस अन्धेरको वह एक क्षणके लिए भी बर्दाश्त न करता।

एक बार मैं कामरूप गया था। वहाँके राजा नालन्दाके प्रेमी और महायानपर भारी श्रद्धा रखते थे। मैंने कहा—"महायानी बोधिसत्त्वके व्रतको मानते हैं, जिस व्रतमें कहा गया है कि जब तक एक भी प्राणी बन्धनम है, तब तक मुझे निर्वाण नहीं चाहिए। आपके राज्यमें महाराज ! इतने चण्डाल हैं, जो नगरमें आते हैं, तो हाथसे डंडा पटकते आते हैं, जिसमें लोग सजग हो जायँ और उनको छूकर अपवित्र न बनें। वह अपने हाथोंमें बर्तन लेकर चलते हैं, जिसमें उनका अपवित्र थूक नगरकी पवित्र धरतीमें न पड़ जाय। कुत्तेके छूनेसे आदमी अपवित्र नहीं होता और न उसकी विष्ठा ही नगरको चिर-दूषित करती है; फिर क्या चण्डाल कुत्तेसे भी बदतर हैं ?"

"कुत्तेसे बदतर नहीं हैं। उसमें भी वह अंकुर, जीवन-प्रवाह मौजूद है, जो कभी विकसित हो बुद्ध बन सकता है।"

"फिर क्यों नहीं राज्यमें डुग्गी पिटवा देते कि आजसे किसी चण्डाल-को नगरमें डंडा या थूकका बर्तन लानेकी ज़रूरत नहीं।"

"यह मेरी शक्तिसे बाहरकी चीज़ है।"

"शक्तिसे बाहर !"

"हाँ, धर्म-व्यवस्था ऐसी ही बँधी हुई है।"

"बोधिसत्त्वोंके धर्मकी—महायानकी यही व्यवस्था है ?"

"लेकिन यहाँकी सारी प्रजा महायानपर तो नहीं चलती।"

"मैं गाँव, पुर सर्वत्र त्रिरत्नकी जयदुन्दुभी बजते देखता हूँ।"

"हाँ, कहनेके लिए। जिस दिन मैं यह घोषित करूँगा, उसी दिन मेरे प्रतिद्वन्द्वी भड़काकर तूफ़ान खड़ा करेंगे कि यह तो सनातनसे चल आए सेतुको तोड़ रहा है।"

"क्या बोधिसत्त्व-जीवनकी महिमाके बारेमें अहर्निश जो उपदेश हो रहे हैं, उनका किसीपर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ रहा है? मैं समझता हूँ महाराज! कुछपर असर ज़रूर पड़ा है, और यदि बोधिसत्त्वकी भाँति आप अपना सब कुछ अर्पण करनेके लिए तैयार हो जायँ, तो आपके पीछे चलनेवाले बहुत-से मिल जायँगे।"

"राज्यके भीतरका सवाल ही नहीं, हमारे परमभट्टारक देव भी नाराज़ हो जायँगे।"

"शीलादित्य हर्ष! जिन्होंने 'नागानन्द' नाटकमें बोधिसत्त्व जीवनका भव्य चित्र चित्रित किया है?"

"हाँ, चला आया सेतु तोड़ना किसीके बसकी बात नहीं है।"

"यही बात यदि तथागत समझते? यही बात यदि आर्य अश्वघोष समझते? यही बात यदि आर्य नागार्जुन समझते?"

"उनको साहस था, तो भी सेतु तोड़नेमें वह भी दूर तक नहीं जा सके।"

"दूर तक नहीं, नज़दीक तक ही बढ़िए, महाराज! कुछ आप बढ़ेंगे, कुछ आगे आनेवाले बढ़ेंगे।"

"क्या मुझे आप अपने मुँहसे कायर कहलाकर ही छोड़ेंगे?"

"कायर नहीं, किन्तु यह ज़रूर कि धर्म हमारे लिए ढोंग है।"

"मेरे दिलसे पूछिए तो मैं 'हाँ' कहूँगा; किन्तु यदि जीभसे पूछिए, तो वह या तो साफ़ 'नहीं' कहेगी, अथवा गूँगी बन जायगी।"

ब्राह्मणोंके धर्मसे मुझे नफ़रत है। वस्तुतः कामरूप-नृपति जैसे कितने ही दिलके भले लोगोंको कायर बनानेका दोष इसी ब्राह्मण-धर्मको है जिस दिन यह धर्म इस देशसे उठ जायगा, उस दिन पृथिवीका एक भारी

कलंक उठ जायगा। नालन्दामें आए विदेशी भिक्षुओंसे सुना कि उनके देशमें ब्राह्मण जैसी कोई सर्वशक्तिमान् धर्म-नायक जाति नहीं है। उनके इस कहनेसे मुझे यह भी समझमें आ गया कि क्यों उन देशोंमें डंडे और पुरवे लेकर चलनेवाले चण्डालोंका पता नहीं। ब्राह्मणोंने हमारे देशके मनुष्योंको छोटी-बड़ी जातियोंमें इस तरह बाँट दिया है कि कोई अपनेसे नीचेवालेको अपनेसे मिलने देनेके लिए तैयार नहीं। इनका धर्म और ज्ञान साफ़ राहु-केतकी छाया है।

नालन्दामें देश-देशान्तरोंकी विचित्र खबरें बहुत मिला करती थीं, इसीलिए मैं एक-दो वर्ष पर्यटनकर फिर छै महीनेके लिए नालन्दा चला जाता हूँ। एक बार एक पारसीक भिक्षुने बतलाया कि उनके देशमें मज़्दक नामका एक विद्वान् कुछ ही समय पहले हुआ था, जिसने एक प्रकारके संघवादका प्रचार किया था। बुद्धने भी भिक्षु-भिक्षुणियोंके लिए एक तरहके संघवादका—जहाँ तक सम्पत्तिका सवाल है—उपदेश किया; किन्तु वह संघवाद अब सिर्फ़ विनयपिटकमें पढ़नेके लिए है। आज तो बड़ी-बड़ी वैयक्तिक (पौद्गलिक) सम्पत्ति रखनेवाले भिक्षु हैं। आचार्य मज़्दक ब्रह्मचर्य और भिक्षुवादको नहीं मानता था। वह मानवके प्रकृत जीवन—प्रेमी प्रेमिका, पुत्र-पौत्रके जीवन—को ही मानता था; किन्तु कहता था कि सारी बुराइयोंकी जड़ 'मैं' और 'मेरापन' है। उसने कहा—'सम्पत्ति अलग नहीं होनी चाहिए; सब मिलकर कमायँ, सब मिल कर खायँ। पति-पत्नी अलग नहीं होने चाहिएँ, प्रेम स्वेच्छापर रहे और सन्तान सबकी सम्मिलित मानी जाय।' वह प्राणी-दया और संयमकी भी शिक्षा देता था। मुझे उसके विचार सुन्दर मालूम हुए। जब मैंने सुना कि मज़्दक और उसके लाखों अनुयायियोंको मारकर एक पारसीक राजा—नौशेरवाँ—ने न्यायमूर्त्तिकी उपाधि धारण की है, तो मुझे मालूम हो गया कि जब तक राजा रहेंगे, तब तक धर्म और उसके दान-पुण्यसे जीनेवाले श्रमण-ब्राह्मण रहेंगे, तब तक पृथिवी स्वर्ग नहीं बन पायेगी।

१४—चक्रपाणि

काल—१२०० ई०

उस वक्त कनौज भारतका सबसे बड़ा और समृद्ध नगर था। उसके हाट-बाट, चौरस्ते बहुत ही रौनक़ थे। मिठाइयाँ, सुगन्धि, तेल, पान, आभूषण और कितनी हो दूसरी चीज़ोंके लिए वह सारे भारतमें मशहूर था। छै सौ सालोंसे मौखरि, बैस, प्रतिहार, गहडवार-जैसे भारतके अपने समयके सबसे बड़े राजवंशोंकी राजधानी होनेके कारण उसके प्रति एक दूसरी ही तरहकी श्रद्धा लोगोंमें हो आई थी। यही नहीं, जातियोंने उसके नामपर अपनी शाखाओंके नामकरण कर डाले थे। इसीलिए आज ब्राह्मण, अहीर, काँदू आदि बहुत-सी जातियोंमें कान्यकुब्ज ब्राह्मण, कान्यकुब्ज अहीर आदि हैं। कान्यकुब्ज (कनौज)के नामपर लोगोंको उसी तरहका ख्याल पैदा हो जाता था, जैसा कि हिन्दूधर्मके नामपर। हर्षवर्द्धनके समयसे अब तक दुनियामें बहुत परिवर्त्तन हो गया था; किन्तु तबसे अब भारतीय दिमाग़में भारी कूपमंडूकता आ गई थी।

हर्षवर्द्धनके कालमें अरबमें एक नया धर्म—इस्लाम—पैदा हुआ था, जिसको उस समय देखकर कौन कह सकता था कि उसके संस्थापककी मृत्यु (६२२ ई०)के सौ सालके भीतर ही वह सिन्धसे स्पेन तक फैल जायगा। जातियों और राजाओंके नामपर देश-विजय ही अब तक सुननेमें आती थी, अब धर्मके नामपर देशोंकी विजय-यात्रा पहले-पहल सुननेमें आई। उसने अपने शिकारोंको सजग होनेका मौक़ा नहीं दिया, और उन्हें एकाएक धर दबाया। सासानियों (ईरानियों)का ज़बर्दस्त साम्राज्य देखते-देखते अरबोंके स्पर्शके साथ काग़ज़की नावकी भाँति गल गया,

और इस्लाम संस्थापकको मृत्युके बाद दो शताब्दियाँ बीतते-बीतते इस्लामी राज्यकी ध्वजा पामीरके ऊपर फहराने लगी।

इस्लामने पहले सारी दुनियाको अपने अरबी कबीलोंका विस्तृत रूप देना चाहा और उसीके साथ कबीलोंकी सादगी, समानता और भ्रातृ-भावको अपने अनुयायियोंके भीतर भरना चाहा। इस अवस्थासे वैदिक आर्योंके पूर्वज तबसे तीन हज़ार वर्ष पहले ही गुज़र चुके थे। गुज़रा युग फिर लौटना असम्भव है। इसलिए जैसे ही इस्लाम कबीलोंसे आगेकी सीढ़ीपर रहनेवाले सामन्तशाही मुल्कोंके सम्पर्कमें आया, वैसे ही उसकी तलवारके सामने इनकी राजनीतिक स्वतन्त्रता विलीन हो गई, उसी तरह उनके सम्पर्कमें आते ही इस्लामी समाजके कबीलेपनका स्वरूप खत्म हो गया। इस्लामका प्रधान शासक कितने ही समय तक केवल उसके संस्थापकका खलीफ़ा—उत्तराधिकारी—कहा जाता था, चाहे वह वस्तुता सुल्तान—निरंकुश राजा—होता। किन्तु अब तो नामसे भी सुल्तान कहलानेवाले अनेक आ मौजूद हुए, जिन्हें इस्लामके पवित्र कबीले, उसकी सादगी, समानता, भ्रातृभावसे कोई मतलब न था। लेकिन नए मुल्कोंके जीतनेमें तलवार चलानेवाले सिपाहियोंकी ज़रूरत थी, और यह तलवार अब अरबी नहीं ग़ैर-अरबी थी। इन सिपाहियोंको सुल्तानके नामपर लड़नेके लिए उतना उत्साहित नहीं किया जा सकता था, इसीलिए स्वर्गकी न्यामतोंके प्रलोभनके साथ पृथिवीकी न्यामतोंमें उन्हें हिस्सेदार बनाया गया। लूटके माल तथा बन्दियोंमें उनका हक़ था, नई जीती भूमि-पर बसनेका उनका स्वत्व था, अपने पुराने पीड़कों और स्वामियोंसे मुक्त होने तथा उनका अस्तित्व तक मिटा देनेका उनका हक़ था। पराजितोंमेंसे विजेताओंके झंडोंको अपना बनाकर आगे बढ़नेवाले इतने सैनिक कभी किसीको नहीं मिले थे। ऐसी सेनासे—जो हमारे भीतरसे ही अपने लिए लड़नेवाली सेना तैयार कर सके—मुक़ाबिला करना आसान काम न था।

हर्षको मरे सौ वर्ष भी नहीं गुज़रे थे कि सिन्ध इस्लामके शासनमें

चला गया। बनारस और सोमनाथ (गुजरात) तकके भारतको इस्लामी तलवारका तजुर्बा हो चुका था। इस नए खतरेसे बचनेके लिए नए तरीक़ेकी ज़रूरत थी; किन्तु हिन्दू अपने पुराने ढर्रेको छोड़नेके लिए तैयार न थे। सारे देशके लड़नेके लिए तैयार होनेकी जगह वही मुट्ठीभर राजपूत (पुराने क्षत्रिय तथा शादी-ब्याह करके उनमें शामिल हो जाने-वाले शक, यवन, गुर्जर आदि) भारतके सैनिक थे, जिन्हें भीतरी दुश्मनोंसे ही फ़ुर्सत न थी, और राजवंशोंकी नई-पुरानी शत्रुताओंके कारण आख़िर तक भी वह आपसमें मिलनेके लिए तैयार न थे।

(१)

"महाराज, चिन्ता न करें। सिद्ध गुरुने ऐसी साधना शुरू की है, जिससे कि तुर्क-सेना हवामें सूखे पत्तोंकी भाँति उड़ जायगी।"

"गुरु-मित्रपाद (जगन्मित्रानन्द)की मुझपर कितनी कृपा है! जब-जब मुझपर, मेरे परिवारपर, कोई संकट आया, गुरु महाराजने अपने दिव्य-बलसे बचाया।"

"महाराज! सिद्ध गुरुने हिमालयके उस पार भोट देशसे कान्यकुब्जके संकटको देखा। उन्होंने इसीलिए मुझे आपके पास भेजा है।"

"कितनी कृपा है!"

"कहा है, तारिणी (तारादेवी) महाराजकी सहायता करेंगी। तुर्कोंकी चिन्ता न करें।"

"तारामाईपर मुझे पूरा भरोसा है। तारिणी! आपच्छरण्ये! माँ, म्लेच्छोंसे रक्षा कर।"

वृद्ध महाराज जयचन्द्र अपने इन्द्र-भवनके समान राज-प्रासादमें एक कर्पूरश्वेत कोमल गद्दे पर बैठे हुए थे। उनकी बग़लमें चार अति सुन्दरी तरुणी रानियाँ बैठी थीं, जिनके गौर मुखपर भ्रमर-से काले केश पीछेकी ओर द्वितीय सिर बनाते हुए जूड़ेके रूपमें बँधे थे। चूड़ामणि,

कर्णफूल, अंगद, कंकण, हार, चन्द्रहार, मुक्ताहार, कटिकिंकिणी, नूपुर आदि नाना स्वर्ण-रत्नमय आभूषण उनके शरीरसे भी भारी थे। उनके शरीरपर सूक्ष्म साड़ी और कंचुकी थी; किन्तु जान पड़ता था, वे शरीरके गोपनके लिए नहीं, बल्कि सुप्रकाशनके लिए थीं। कंचुकी स्तनोंके उभार और अरुणिमाको सुन्दर रीतिसे दिखलाती थी। उससे नीचे सारा उदर नाभि तक अनाच्छादित था। सारी उरु और पेंडुलीकी आकृति और वर्णको झलकाती थी। उनके केशोंके सुगन्धित तैल और नवपुष्पित यूथिका (जूही)-स्रज्के कारण सारी शाला गम-गम कर रही थी। रानियोंके अतिरिक्त पचाससे अधिक तरुणी परिचारिकाएँ थीं, जिनमें कोई चँवर, मोर्छल या व्यजन (पंखे) झल रही थी; कोई पानदान लिए, कोई दर्पण और कंघी लिए, कोई सुगन्धित जल की झारी लिए, कोई काँचके सुराभाँड़ और कनक-चषक लिए, कोई साँपके केंचुलीकी तरह शुभ्र निर्मल अंग-पोंछन लिए खड़ी थी। कितने ही मृदंग, मुरज, वीणा, वेणु आदि नाना वाद्योंको लए बैठी थीं और कुछ जहाँ-तहाँ स्वर्ण-दण्ड लिए खड़ी या टहल रही थीं। सिवाय आगन्तुक मित्रपादके शिष्य शुभाकर भिक्षु और राजा जयचन्द्रके वहाँ सभी रानियाँ थीं, सभी तरुण-वयस्क सुन्दरियाँ थीं।

भिक्षुने महाराजसे विदाई ली। रानियों और राजाने खड़े होकर अभिवादन किया। अब यहाँ नारीमय जगत् था। जयचन्द्र वृद्ध थे; किन्तु उनके अर्द्ध-श्वेत लम्बे-लम्बे केश बीचमें माँग निकाल पीछेकी ओर जिस प्रकार बाँधे हुए (द्विफालबद्ध) थे, बड़ी-बड़ी मूँछें जिस प्रकार सँवारी हुई थीं, उनके शरीरके आभूषणों और वस्त्रोंकी जिस प्रकार सजा थी, उससे पता चलता था कि वह यौवनको अनवक्षित (असमाप्त) समझते थे। उनके इशारेपर चषकको एक परिचारिकाने झुककर महाराजके सामने किया और रानीने ले, भरे प्यालेको महाराजके सामने पहुँचाया। उन्होंने उसे रानीके ओठसे लगाकर कहा—"राजल (राजलक्ष्मी), मेरी तारा, तुम्हारे उच्छिष्ट किए बिना मैं कैसे इसे पान कर सकता हूँ!"

रानीने ओठों और जीभकी नोकको भिगो लिया। राजाने उस प्रसादको पान किया। फिर उनकी एक-एक ताराओंने उन्हें प्रसाद प्रदान किया। आँखोंमें लाली आई। तुरुक (तुर्क)-चिन्ता चेहरेसे दूर हो मुस्कराहट आने लगी। राजाका स्थूल शरीर मसनदके सहारे ओठँग गया, और उसने किसी रानीको एक बग़लमें किसीको दूसरी बग़लमें दबाया, किसीकी गोदमें सिरको रखा और किसीके वक्षस्थलपर भुजाओंको। सुराके प्याले बीच-बीचमें चल रहे थे। रानियोंके साथ कामोत्तेजक परिहास हो रहे थे। राजाने इसी समय नाचनेकी आज्ञा दी। घाघरा पहने, घुँघरू बाँधे, बिल्वस्तनी, अनुदरा, विकट-नितम्बा सुन्दरियाँ नाचनेके लिए खड़ी हुईं। वीणा और मृदंग ध्वनित होने लगे। काकली गानके साथ नृत्य शुरू हुआ। एक गानके बाद राजाको वह फीका लगने लगा। उसने सुन्दरियोंको नग्न हो नाचनेकी आज्ञा दी। नर्त्तकियोंने सारे वस्त्र और सारे आभूषण उतार दिए, सिर्फ़ पादकिंकिणी भर रखी। पार्श्वमें बैठी रानियों और तरुणी परिचारिकाओंके साथ आलिंगन-चुम्बन और परिहास चलता रहा। बीच-बीचमें नग्न-नर्त्तन होता रहा। जिसका नग्न-शरीर महाराजको आकर्षित करता, वह उनके पास आ जाती और फिर दूसरी नग्न हो उसका स्थान ग्रहण करती। महाराजकी आँखें और लाल हो गई थीं। उनके कंठ और स्वरपर भी सुराने प्रभाव डाला था—'ध्-धत्-त्-ते-रे तु-तुर्-र्-कों- ों-की-ी। म्-मे-रे इ-इन्-न्द्र-पु-र्-र्में कौ-ौ-न सा-ा-ला-ा आ-ा-न्त्-ता-ा है। स्-सब्- न्-नंगी ना-ा-चें।'

शालाकी सारी रानियोंने अपने-अपने कपड़ों और आभूषणोंको उतार दिया। उनके तरुण सुन्दर गौर शरीरपर घनस्थूल कबरी (जूड़ा)से भारी हुआ सिर राजाको पसन्द नहीं आया। उसने कबरीको खोल देनेको कहा, और सभी सिरोंसे काली नागिनोंकी भाँति दीर्घ वेणियाँ नितम्बोंपर लटकाने लगीं। महाराजको स्वयं कंचुक उतारते देख तरुणियोंने उनके वस्त्रों और आभूषणोंको भी उतारा। उनके मांस लटके चिबुक, अतिफुल्ल

कपोल, गंगाजमुनी मूँछें, प्रसूताकी तरहके लम्बित स्तनों, महाकुम्भ-सा उदर, पृथुल कोमल मांस-मेदपूर्ण उरु तथा पेंडुली, रोमश स्थूल बाहुओंको देखकर साधारण तरुणी भी अवज्ञा किये बिना नहीं रहती; किन्तु, यहाँ उनका शरीर-प्राण इस बूढ़ेके हाथ था। कोई उनके दन्त-रहित ओठोंमें अपने ओठोंको दे रही थी, कोई उनके पार्श्वोंसे अपने स्तनोंको पीड़ित कर रही थी, कोई उनकी रोमश भुजाओंको अपने कन्धों और कपोलोंसे लगा रही थी। कामोत्तेजक गीतके साथ नृत्य शुरू हुआ। रानियों और परिचारिकाओंके बीच अपनी उछलती तोंद लिए महाराज भी नाचने लगे।

(२)

"आइए कवि चक्रवर्त्ती !" कह राजाने एक अधेड़ पुरुषके लिए आसनकी ओर संकेत किया, और बैठ जानेपर पानके दो बीड़े बड़े सम्मानके साथ प्रदान किये। कवि चक्रवर्त्तीकी आयु पचाससे ऊपर थी। उनके गौर भव्य चेहरेपर अब भी उजड़े वसन्तकी छाप थी। उनकी मूँछें अब भी काली थीं। उनके शरीरपर सफ़ेद धोती और सफ़ेद चादरके अतिरिक्त रुद्राक्ष-की एक सुन्दर माला तथा सिरपर भस्मका चन्द्राकार त्रिपुण्ड था।

कविने सुवासित सुवर्णपत्रवेष्टित पान मुँहमें रखते हुए कहा—"देव ! यात्रा क्षेमसे तो हुई ? शरीर स्वस्थ तो था ? रातें सुखकी नींद तो लाती हैं न ?"

"अब पौरुष थकता जा रहा है, कवि-पुंगव !"

"महाराज ! आप अपने कवि श्रीहर्षका खूब उपहास करते हैं।"

"पुंगव उपहास नहीं, प्रशंसा का शब्द है।"

"पुंगव बैलको कहते हैं, देव !"

"जानता हूँ, साथ ही श्रेष्ठको भी कहते हैं।"

"मैं तो इसे बैलके अर्थमें ही लेता हूँ।"

"और मैं श्रेष्ठके अर्थमें। फिर कवि-मित्र ! तुम्हारे जैसे नर्म सचिव (लँगो-

टिया यार)से उपहास-परिहास नहीं किया जाय, तो किससे किया जाय ?"

"दरबारमें तो नहीं, महाराज !" श्रीहर्षने धीरेसे कहा ।

जयचन्द्र कविका हाथ पकड़ आस्थानशाला (दरबारहाल)से निकल क्रीड़ोद्यानकी ओर चल पड़े। ग्रीष्मका प्रारम्भ था। हरे-हरे वृक्षोंको धीरे-धीरे कम्पित करनेवाला समीर बड़ा सुहावना मालूम हो रहा था। राजाने दीर्घिका (पुष्करिणी)के सोपानके ऊपर रखे शुभ्र मर्मरशिलासनपर बैठ बग़लके आसनपर कविको बैठनेके लिए कहा और फिर बात शुरू की—"तुम रातकी क्या पूछते हो, कवि ! अब तो मैं अनुभव करने लगा हूँ कि मैं दरअसल बूढ़ा हूँ ।"

"कैसे ?"

"नग्न सुन्दरियाँ भी मेरे कामको नहीं जगा सकतीं ।"

"तब तो महाराज ! आप पूरे योगी हैं ।"

"इस योगीके पासकी यह सोलह हज़ार सुन्दरियाँ क्या करेंगी ?"

"बाँट दें, महाराज ! बहुतसे लेनेवाले मिल जायँगे, या ब्राह्मणोंको गंगा-तटपर जलकुश ले दान कर दें, "सर्वेषामेव दानानां भार्यादानं विशिष्यते ।"

"वही करना पड़ेगा । वैद्यराज चक्रपाणिका बाजीकरण-रस तो निष्फल ही गया । अब सिर्फ़ तुम्हारे काव्यरसकी एकमात्र आशा है ।"

"नग्न सौन्दर्य-रस जहाँ कुंठित हो, वहाँ काव्य-रस क्या करेगा ! और अब फिर महाराज ! आप साठ सालसे ऊपरके हो गए हैं ।"

"साठा तो पाठा होता है, कवि !"

"कौन ? क्या सोलह सहस्र कलोरियोंका चिरविहारी वृषभ ?"

"तुम काशी (बनारस) में दिखलाई नहीं दिए, मुझे कन्नौजसे आए दो मास बीत गए ।"

"महाराज ! मैं चैत्र नवरात्रमें भगवती विन्ध्यवासिनीके चरणोंमें गया था ।"

"मेरी नाव विन्ध्यवासिनीके धामसे ही गुज़री। जानता, तो बुलालेता ।"

"या वहीं उतरकर कुमारी-पूजामें व्यस्त हो जाते।"

"तो कवि ! कुमारी-पूजाके ही लिए तो तुम वहाँ नहीं गए थे ?"

"हम भगवतीके उपासक शाक्त हैं, महाराज !"

"लेकिन तुम राम-सीताकी वन्दना करते हो, तो मालूम होता है कि पक्के वैष्णव हो ?"

"अन्तः शाक्ता बहिश्शैवाः सभामध्ये च वैष्णवाः।"

"सभामध्ये वैष्णव हो ?"

"होना ही पड़ता है, महाराज ! हम आपकी तरह दूसरेकी जीभ थोड़े ही खिंचवा सकते हैं ?"

"धन्य हो नाना रूपधर !"

"महाराज ! इतना ही नहीं, मैंने सुगत (बुद्ध)को भी अपनी आराधनामें शामिल कर लिया है।"

"सुगत, भगवान् तथागतको भी ?"

"भगवान् !"

"हाँ, छीः नाम आनेपर इस स्थानमें मेरी आँखोंमें भी ज़रा लज्जा आने लगती है।"

"वज्रयानने महाराज ! हम शाक्तोंके लिए सुगतकी पूजा सरल कर दी है।"

"ठीक कहा मित्र ! इसीलिए तो उसे सहजयान कहते हैं।"

"इन सहजयानी सिद्धोंके दोहों और गीतोंमें मुझे कोई कवित्व तो नहीं दिखलाई पड़ता; किन्तु पंच मकार(मद्य, मांस, मीन, मुद्रा, मैथुन)का प्रचारकर जितना लोक-कल्याण इन्होंने किया है, उसके लिए मैं बहुत कृतज्ञ हूँ।"

"किन्तु, अब मेरे लिए, जान पड़ता है, अखंड पंचमकारकी उपासना दुष्कर होगी।"

"वज्रयानके साथ नागार्जुनका माध्यमिक दर्शन क्या सोनेमें सुगन्धि है !"

"तुम्हारे काव्यका रस तो मैं चख लेता हूँ, यद्यपि कहीं-कहीं उसमें भी माथा चकराता है; किन्तु यह दर्शन तो पत्थरकी तरह मेरे सिरपर बोझा बन जाता है।"

"तो भी महाराज! नागार्जुनका दर्शन बड़े कामका है। वह बहुतसी मिथ्या धारणाओंको दूर कर देता है।"

"लेकिन तुम तो वेदान्ती प्रसिद्ध हो, कवि!"

"मैंने अपने ग्रन्थको वेदान्त कहकर ही प्रसिद्ध किया है, महाराज! किन्तु, 'खंडन-खंड-खाद्य' में नागार्जुनकी चरण-धूलिको ही सर्वत्र वितरित किया है।"

"याद तो रहनेका नहीं, फिर भी बतलाओ, नागार्जुनमें क्या खास बात है?"

"सिद्धराज मित्रपाद नागार्जुनके ही दर्शनको मानते हैं।"

"मेरे दीक्षा-गुरु?"

"हाँ, नागार्जुन कहते हैं - पाप-पुण्य, आचार-दुराचार सभी कल्पनाएँ हैं। जगत्‌की सत्ता-असत्ता कुछ भी सिद्ध नहीं की जा सकती, स्वर्ग-नरक और बन्धन-मोक्ष बालकोंके भ्रम हैं। पूजा उपासना पामरोंकी वंचनाके लिए हैं। देव-देवीकी लोकोत्तर कल्पना मिथ्या है।"

"जीवन तो मैंने भी इसी दर्शनमें बिताया है, कवि!"

"सभी बिताते हैं, महाराज! नक़द छोड़ उधारके पीछे मूर्ख दौड़ते हैं।"

"लेकिन अब तो नक़दको सामने रखकर टुकुर-टुकुर ताकना है मित्र! पर तुम तो अभी घिसते नहीं मालूम होते।"

"मैं आठ वर्ष छोटा भी तो हूँ, महाराज! फिर मैंने एक ब्राह्मणी से ज्यादा ब्याह नहीं, किया।"

"ब्याह करनेसे क्या होता है? इतने ब्या ही आदमी थककर मर जाय।"

"मेरे घरमें एक ही ब्राह्मणी है, महाराज!"

"और दुनिया विश्वास कर लेगी कि कवि श्रीहर्ष उसी दँतटुट्टी बुढ़ियापर सती हो रहा है !"

"विश्वास करेगी, और कर ही रही है, महाराज ! मैंने अपने ग्रंथोंमें अपनी समाधि लगा ब्रह्म-साक्षात्कारकी बात भी लिख दी है।"

"तुम्हारे माध्यमिक दर्शनमें ब्रह्म और उसके साक्षात्कारकी भी गुंजायश है, कवि !"

"महाराज, वहाँ क्या-क्या गुंजाइश नहीं है।"

"प्रजाकी अन्धी आँखें मौजूद रहनी चाहिएँ, उन्हें सबका साक्षात्कार कराया जा सकता है।"

"तो महाराज, आपका धर्मपरसे विश्वास उठ गया है।"

"इसे मैं नहीं जानता, कवि ! मुझे मालूम ही नहीं पड़ता, किस वक़्त विश्वास आता है और किस वक़्त चला जाता है। तुम्हारे धर्मात्मा ब्राह्मणोंके उपदेशों-आचरणोंको सुन-देखकर मेरे लिए कुछ तै करना मुश्किल है। मैं तो यही जानता हूँ कि दान-पुण्य, देवालय-सुगतालयका निर्माण आदि जो कुछ धर्म कहता हो, करो; किन्तु नक़द जीवनको हाथसे न जाने दो।"

प्रेम और धर्मसे चलकर उनकी बात राज-काजपर आई ! श्रीहर्षने कहा—"क्या सचमुच महाराजने पृथिवीराजका साथ देनेसे इन्कार कर दिया है ?"

"मुझे क्या ज़रूरत है उसका साथ देनेकी ? उसने खुद तूफ़ानसे झगड़ा मोल लिया, खुद भुगतेगा।"

"मेरी भी सम्मति यही है, महाराज ! यह चक्रपाणि झूठमूठ परेशान करता है।"

"उसका काम चिकित्सा करना है, सो उसमें तो कुछ नहीं बन पड़ता। तीन बार वाजीकरण-चिकित्सा की; किन्तु सब निष्फल ! और अब चला है राज-काजमें सलाह देने।"

"नहीं महाराज ! वह मूर्ख है । व्यर्थ ही युवराजने उसे सिरपर चढ़ा रखा है ।"

(३)

"ठीक कहा वैद्यराज ! श्रीहर्ष गहड़वारोंकी जड़में घुन बनकर लगा है । इसने पिताजीको कामुक अन्धा बना रखा है ।"

"कुमार ! मैं बीस वर्षसे कान्यकुब्जेश्वरका राजवैद्य हूँ । मेरी औषधियोंका कुछ गुण है ।"

"गुण सारी दुनिया जानती है, वैद्यराज !"

"किन्तु महाराज वाजीकरणके सम्बन्धमें नाराज़ हैं । अतिकामुक पुरुषकी तरुणाईको कितनी देर तक बढ़ाया जा सकता है, कुमार ! इसीलिए आहार-विहारमें संयम करनेके लिए लिखा गया है । मैं तो कहता हूँ, मुझे मल्लग्राम (मलाँव) में बैठ जाने दीजिए ! लेकिन उसको भी वे नहीं मानते ।"

"किन्तु, पिताके दोषके कारण हमें न छोड़ जाइए, वैद्यराज ! गहडवारोंको अब बस आपसे ही आशा है ।"

"मुझसे नहीं, कुमार हरिश्चन्द्रसे । कितना अच्छा हुआ होता, यदि गहड़वार-वंश में जयचन्दकी जगह हरिश्चन्द्र होते ! चन्द्रदेवके सिंहासनको हरिश्चन्द्रकी ज़रूरत थी ।"

"या श्रीहर्षकी जगह वैद्यराज चक्रपाणि जयचन्दके नर्म सचिव होते । किन्तु वैद्यराज ! आपको गहडवार-सूर्यके अस्त होते समय तक हमारे साथ रहना चाहिए ।"

"अस्तके साथ अस्त होनेके लिए भी मैं तैयार हूँ, कुमार ! पर गहडवारोंका सूर्यास्त नहीं होगा, बल्कि हिन्दुओंका सूर्यास्त होगा । हम मल्लग्रामी ब्राह्मण सिर्फ़ सुवा और स्रोक्षणीके ही धनी नहीं, बल्कि तलवारके भी धनी हैं । इसीलिए हम भी तुर्कोंसे युद्ध करना चाहते हैं, कुमार !"

"और मेरे पिता खुद अपने जामाताको सहायता देनेके लिए तैयार नहीं। पृथ्वीराज मेरा अपना बहनोई है, वैद्यराज! संयुक्ताका उससे प्रेम था, वह उसके साथ अपनी खुशीसे गई। इसमें पिताको नाराज़ होनेकी क्या ज़रूरत?"

"पृथ्वीराज वीर है, कुमार!"

"इसमें कोई सन्देह नहीं, वैद्यराज! वीरताके ही कारण वह तुर्क सुल्तानसे लोहा ले रहा है, नहीं तो हमारे कान्यकुब्ज राज्यके सामने उसका राज्य है ही कितना? वह सुल्तानको यदि रास्ता भर दे देता, तो सुल्तान उसे पुरस्कृत करता। सुल्तानकी आँख दिल्लीपर नहीं, कान्यकुब्जपर है। छै सौ सालसे कन्नौज भारतके सबसे बड़े राज्यपर शासन कर रहा है। किन्तु उन्हें समझावे कौन? पिता समझनेकी ताक़त खो बैठे हैं।"

"यदि इस वक्त वह शासन-भार युवराजके ही हाथोंमें दे देते।"

"मुझे एक बार ख्याल आया था, वैद्यराज! कि पिताको सिंहासनसे हटा दूँ; किन्तु आपकी शिक्षा याद आ गई। बीस वर्षोंमें आपकी प्रत्येक शिक्षाको मैंने हितकर पाया, इसलिए मैं उसके विरुद्ध नहीं जा सकता था।"

"कान्यकुब्जका सिंहासन जर्जर हो गया है, कुमार! ज़रा-सा भी ग़लत क़दम रखनेपर सारी इमारत ढह पड़ेगी। यह समय पिता-पुत्रके कलहका नहीं है।"

"क्या किया जाय वैद्यराज! हमारे सारे सेनापति तथा सेनानायक कायर और अयोग्य हैं। तरुण सेनानायकोंमें कुछ योग्य और बहादुर हैं; किन्तु उनके रास्तोंको बूढ़े रोके हुए हैं। यही हालत मन्त्रियोंकी है, जो चापलूसी करना भर अपना कर्त्तव्य समझते हैं।"

"रनिवासमें अपनी बहन-बेटी भेजकर जो पद पाते हैं, उनकी यही हालत होती है। लेकिन बीतेकी नहीं हमें आगेकी चिन्ता करनी चाहिए।"

"आज मेरे हाथमें होता, तो सारे हिन्दू तरुणोंको खड्गधारी बना देता।"

"किन्तु यह पीढ़ियोंका दोष है, कुमार, जिसने सिर्फ़ राजपुत्रोंको ही

युद्धकी ज़िम्मेदारी दे रखी है। द्रोण और कृप-जैसे ब्राह्मण महाभारतमें लड़े थे; किन्तु पीछे सिर्फ़ एक जातिको....।"

"मैं समझता हूँ; यह जात-पाँत भी हमारे रास्तेमें एक बहुत बड़ी रुकावट है।"

"रुकावट, कुमार! यह सबसे बड़ी रुकावट है। पूर्वजोंके अच्छे कार्योंका अभिमान दूसरी चीज़ है; किन्तु हिन्दुओंको हज़ारों टुकड़ोंमें सदाके लिए बाँट देना महापाप है।"

"आज इसका फल भोगना पड़ रहा है। काबुल अब हिन्दुओंका न रहा, लाहौर गया और अब दिल्लीकी बारी है।"

"आज भी यदि हम पिथौराके साथ मिलकर लड़ सकते!"

"ओह, कितनी कुफ्त है, वैद्यराज!"

"एक कुफ्त है? हमारी नाव कुफ्तोंके बोझसे डूबी जा रही है; किन्तु हम मोहके मारे एक चीज़को भी फेंककर नावको हल्की करना नहीं चाहते।"

"धर्मका अजीर्ण है, वैद्यराज!"

"धर्मका क्षयरोग! हमने कितना अत्याचार किया है? हर साल करोड़ों विधवाओंको आगमें जलाया है, स्त्री-पुरुषोंकी पशुओंकी भाँति खरीद-बेच की है, देवालयों और विहारोंमें सोना-चाँदी तथा हीरा-मोतीके ढेर लगाकर म्लेच्छ लुटेरोंको निमन्त्रण दिया है और शत्रुसे मिलकर मुक़ाबिलेके समय फूटमें पड़े हैं। अपनी इन्द्रिय-लम्पटताके लिए प्रजाकी पसीनेकी कमाईको बेदर्दीसे बरबाद करते हैं।"

"लम्पटता नहीं, पागलपन, वैद्य राज! अपनी इच्छाकी एक सहृदया स्त्री भी काम-सुखके लिए पर्याप्त है और इन्द्रियके पागलपनके लिए पचास हज़ार भी कुछ नहीं। वहाँ प्रेम हर्गिज़ नहीं हो सकता। मेरे पिताने जब पिछली संक्रान्तिके दिन अपने रनिवासकी स्त्रियोंमेंसे बहुतोंको ब्राह्मणोंको दान दिया, तो वे रोती नहीं थीं, भीतरसे बहुत खुश थीं। मेरी मामा यह कह रही थी।"

"दान लेनेवाले ब्राह्मणके घर ज्यादासे ज्यादा एक या दो सौतिनें होंगी, कुमार ! वहाँ सोलह सहस्रकी भीड़ तो न होगी। और मैं तो इसे भी दासता समझता हूँ। स्त्री क्या सम्पत्ति है कि उसका दान दिया जाय ?"

"हमें भी कोशिश करनी चाहिए कि हम मिलकर तुर्कोंका मुक़ाबिला करें।"

"यह तो महाराजके हाथमें है। पाखंडी श्रीहर्ष उनके कानमें लगा हुआ है।"

(४)

अष्टमीकी रात थी। चाँद अभी-अभी पूरबके क्षितिजपर उगने लगा था। अभी सारी भूमिको प्रकाशित होनेमें देर थी। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था, जिसमें बहुत दूर कहीं उल्लूकी डरावनी आवाज़ सुनाई दे रही थी। इस नीरवतामें दो आदमी ऊपरसे आकर यमुनाकी अँगनाईमें तेज़ीसे उतर गए। उन्होंने अँगुलियोंको मुँहमें डाल तीन बार सीटी बजाई। यमुनाकी परली ओरसे एक नाव आती दिखलाई पड़ी। नीरव चलती नदीमें धीरे-धीरे थापी चलाती एक मझोली नाव किनारेपर आ लगी। दोनों आदमी धीरेसे नावपर कूद गए। भीतरसे किसीने पूछा—"सेनानायक माधव ?"

"हाँ आचार्य! और आल्हण भी मेरे साथ आया है। कुमार कैसे हैं ?"

"हाँ, अभी तक तो होश नहीं आया है; किन्तु इसके लिए मैंने थोड़ी-सी दवा भी दे दी है। कहीं कुमार रणक्षेत्रकी ओर लौट पड़ते तो ?"

"लेकिन आचार्य ! वह आपकी आज्ञाका कभी उल्लंघन नहीं कर सकते।"

"सो तो मुझे विश्वास है; किन्तु फिर भी यह अच्छा ही है। इससे घावका दर्द भी कम हो जायगा।"

"घाव खतरनाक तो नहीं है, आचार्य !"

"नहीं सेनानायक ! घावको मैंने सी दिया और रक्तस्राव भी बन्द हो गया है। निर्बलता ज़रूर है; किन्तु और कोई डर नहीं। अच्छा

बताओ, तुम क्या कर आए? महाराजके शवको रनिवासमें भेज दिया?"

"हाँ।"

"तो अब राजान्तःपुरकी स्त्रियाँ महाराजको लेकर सती होंगी?"

"जिनको होना होगा, होंगी।"

"और सेनापति?"

"बूढ़ा सेनापति तो आखिरमें मरते वक्त जाग उठा था। कितने ही सेनानायक पाँसा पलटते देख भाग चले थे; किन्तु उनमें भागनेका भी कौशल न था। मुझे आशा नहीं कि उनमेंसे कोई बचा हो।"

"यही बात यदि तीन वर्ष पहले हुई होती और हरिश्चन्द्र हमारे महाराज तथा माधव तुम कान्यकुब्जके सेनापति हुए होते!"

लम्बी साँस लेकर माधवने कहा—"आचार्य! आपकी एक-एक बात आईनेकी भाँति झलकती थी। आपने महाराजको बहुत समझाया कि राय पिथौरासे मिलकर तुर्कोंसे मुक़ाबिला किया जाय; किन्तु सब अरण्य-रोदन ही साबित हुआ।"

"अब अफ़सोस करनेसे कोई फ़ायदा न होगा। बतलाओ, और क्या व्यवस्था की?"

"पाँच सौ नावें पचास-पचासके गिरोहमें सैनिकों से भरी अभी आ रही हैं। गागा, मोगे, सलखूके नायकत्वमें मैंने सेनाओंको बाँटकर आदेश दिया है कि चन्दावर (टावा)से पूरब हटकर तुर्कोंसे लड़ें—सीधे कम, छापा मारकर ज्यादा—और परिस्थितिको प्रतिकूल होते देख पूरबकी ओर हटते जायँ।"

"कन्नौजके राज-प्रासाद..........?"

"मैंने वहाँसे जितनी चीज़ें हटाई जा सकती थीं, हटा दी हैं। गंगा-में ही बहुत-सी नावें दो दिन पहले ही निकल चुकीं।"

मैंने इसीलिए, माधव! तुम्हें सेनापतिकी छायासे बचाया था। उसने अपनेसे पहले ही तुम्हें मरवा दिया होता। तुमको और कुमारको बचा देखकर मुझे सन्तोष है। अभी हिन्दुओंके लिए कुछ आशा है।

कुछ भी हो, अन्तिम समय तक हमें अपनी शक्तिमेंसे एक-एक रत्ती को सोच-समझकर व्यय करना होगा।"

"दूसरी नावें आती मालूम होती हैं, आचार्य !"

"सेनानायक आल्हण ! उनके आते ही सब नावोंको यहाँसे चलने-का आदेश कर देना।"

"बहुत अच्छा, आचार्य !"—आल्हणने नम्र स्वरमें कहा।

"अच्छा चलो माधव ! नीचे कोठरीमें चलो। किन्तु वहाँ अँधेरा है ? मैंने जान-बूझकर वहाँसे दीपक बुझा दिए।" कुछ आगे बढ़कर— "ज़रा ठहरो। राधे !"

"बाबा !"—एक तरुण स्त्री-कंठसे आवाज़ आई।

"चकमकसे दीपक जलाओ, लोहा यत्नसे रखा है न ?"

"अच्छा।"

फिर माधवकी ओर फिरकर वे बोले—"भाई ! कोई वैद्यराज कहे, कोई आचार्य ! कोई बाबा ! यह सब याद रखना मेरे लिए मुश्किल होगा।" ......तुम सब मेरे बचपनके नाम 'चक्कू'से मुझे पुकारा करो।"

"नहीं, स्त्रियोंकी आदत बदलनी मुश्किल है, इसलिए हम सब आपको बाबा चक्रपाणि पांडेयकी जगह बाबा कहेंगे।"

"अच्छा, चलो। दीपक जल गया।"

दोनों सीढ़ियोंसे नीचे उतरे। नावका दो-तिहाई भाग पटा हुआ था, जिसके नीचे एकसे पीछे एक दो छोटी कोठरियाँ थी। एक ओर नावमें खाली जगह थी। दोनों एक कोठरीके भीतर घुसे। वहाँ दीपककी पीली रोशनीमें एक चारपाई दिखलाई पड़ती थी, जिसके ऊपर कंठ तक सफ़ेद दुशालेसे ढँका कोई सो रहा था। चारपाईकी बग़लमें रखी एक मचियासे कोई तन्वी उठी। चक्रपाणिने कहा—"भामा ! कुमार हिले-डुले तो नहीं।"

"नहीं बाबा ! उनका श्वास वैसे ही एक-सा चल रहा है।"

"घबरा तो नहीं रही हो, बेटी ?"

"चक्रपाणिकी छत्रछायामें घबराना? कहीं गहडवारवंशने पहले पहचाना होता अपने गुरु द्रोणको!"

"यह हमारे सेनापति परम सहायक महाराजाधिराज हरिश्चन्द्रके सेनापति माधव आ गए।"

"महादेवी भामा, आपका सेवक माधव सेवामें उपस्थित है।"—कह, माधवने अभिवादन किया।

"मैं अपने माधवसे अपरिचित नहीं हूँ। कुमारके साथ पाँसु-क्रीड़ा करनेवाले क्या कभी मुझे भूल सकते हैं?"

"और जिसकी भुजाएँ, भामा! गहडवार-वंशकी धूलि-लुंठित लक्ष्मी-को फिरसे उठा लानेके लिए शक्ति रखती हैं।"

"बाबा! तुम्हारे मुँहसे भामा कहलाना कितना प्रिय लगता है!"

"पिता याद आते होंगे, पुत्री!"

"नहीं बाबा! हमें राजकुलमें दूसरी ही हवा बहानी होगी। ओह, कितनी बनावट, कितना ढोंग है यहाँ? हमें मनुष्यमें सीधा-सादा सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए। पुराने राजकुलको पिता (श्वसुर) भट्टारकके साथ जाने देना चाहिए।"

"गया पुत्री! वह तो बहुत देरसे गया। क्या तुमने कुमारके अन्तः-पुरको देखा है?"

आँखोंसे आँसुओंको पोंछते हुए भामा ने कहा—"बाबा! आपने हमें फिर मनुष्य बना दिया।"

"नहीं पुत्री! यदि कुमार हरिश्चन्द्रकी जगह कोई दूसरा होता, तो मैं सिर्फ़ पानी पीटता रहता। यह सब कुछ कुमार हरिश्चन्द्र......।"

"बाबा!"

सबने कुमारकी अधखुली आँखोंको देखा। भामा उनके पास दौड़ गई और बोली—"मेरे चन्द्र! राहुके मुँहसे निकले चन्द्र!"

"हाँ, मेरी भामा! लेकिन, मैं तो अभी बाबाकी आवाज़ सुन रहा था।"

"बाबा !"

"वह बाबा नहीं, जिसने गहडवारोंके सूर्यको डुबाया; इस बाबाको, जिसे तुम बाबा कहती हो और जिसे मैं भी बाबा कहूँगा ।"

चक्रपाणिने दीपकसे कुमारके पीले तरुण चेहरेको देख ललाटपर हाथ फेरते हुए कहा—"कुमार ! तबीयत कैसी है ?"

"तबीयत ऐसी है, मालूम होता है, जैसे मैं युद्ध-क्षेत्रसे घायल होकर नहीं लौटा हूँ ।"

"घाव बुरा था, कुमार !"

"होगा, किन्तु मेरा पीयूषपाणि बाबा जो पास था ।"

"थोड़ा कम बोलो, कुमार !"

"हरिश्चन्द्रके लिए बाबा चक्रपाणिके मुँहसे निकला एक-एक अक्षर ब्रह्मवाक्य है ।"

"लेकिन ऐसा हरिश्चन्द्र चक्रपाणिके किसी कामका न होगा ।"

"बाबा ! यह हरिश्चन्द्रकी श्रद्धाकी बात है; और जहाँ मेधाकी बात है, वहाँ हरिश्चन्द्र ब्रह्माके वाक्य को भी बिना कसौटीपर कसे नहीं मान सकता ।"

"कुमार ! तुम्हें पाकर गहडवार-वंश नहीं, हिन्दू-देश धन्य है ।"

"बाबा चक्रपाणिको पाकर—ज़रा पानी ।"

भामाने तुरन्त गिलासमें पानी भरकर दिया । बाबाने नावको चलते जानकर कहा—"हम बनारस चल रहे हैं, कुमार !—द्वितीय राजधानीको । सेनापति माधवने सेनाके लिए आदेश दे दिया है । सेना इधर तुर्कोंको रोकेगी, उधर हम बनारसमें गहडवार-राजलक्ष्मीके सैनिक तैयार करेंगे ।"

"नहीं बाबा ! जैसा आप दूसरे समय कहा करते थे, उसी हिन्दू-राजलक्ष्मीको लौटानेकी तैयारी करें । अब यह लौटी राजलक्ष्मी हिन्दू-राजलक्ष्मी होगी । इसे हिन्दू-भुज-बलसे जीतकर लौटाना होगा ।"

"चण्डाल और ब्राह्मणका भेद मिटाकर ।"

"हाँ, मेरे गुरुद्रोण !"

१५—बाबा नूरदीन

काल—१३०० ई०

"वह समय खतम हो गया, जब हम हिन्दको दुधार गायसे बढ़कर नहीं समझते थे और किसानों, कारीगरों, बनियों और राजाओंसे ज्यादा-से ज्यादा धन जमाकर ग़ोर भेजते या खुद मौज उड़ाते। अब हम ग़ोरके ग़ुलाम नहीं, हिन्दके स्वतन्त्र खल्जी शासक हैं।" एक छरहरे जवानने अपनी काली दाढ़ीके ऊपरी मूँछकी पतली स्याहीपर अँगुलियाँ चलाते हुए कहा, उसके सामने एक सफ़ेद लम्बी दाढ़ी, बड़ा आमामा (पगड़ी), सफ़ेद अचकन पहने कोई शान्त, संभ्रान्त चेहरेका आदमी घुटने टेके बैठा था।

बूढ़ेने कहा—"लेकिन जहाँपनाह! यदि पटेलों, मुखियों, इलाके-दारोंको छेड़ा जायगा, तो वह बिगड़ जायेंगे और सल्तनतके गाँव-गाँवमें हम अपनी पल्टनें मालगुज़ारी वसूल करनेके लिए नहीं भेज सकते।"

"पहिले इस बातको आप तै कर डालिए, कि आप हिन्दी बनकर हिन्दके शासक रहना चाहते हैं, या हीरा-मोतीसे ऊँटों और खच्चरोंको भरकर ले जानेवाले ग़ज़नी-ग़ोरके लुटेरे?"

"अब हमें हिन्दमें रहना है जहाँपनाह!"

"हाँ, ग़ुलामोंकी तरह हमारी जड़ ग़ोरमें नहीं, दिल्लीमें है। यदि कोई विद्रोह, कोई अशान्ति होगी तो न हमें अरब, अफ़ग़ानिस्तानसे सेना मिलनेवाली है और नहीं भागकर वहाँ टिकनेका ठौर है।"

"यह मानता हूँ जहाँपनाह!"

"तो अब हमें इस घरमें रहना है, इसीलिए इसे ठीक करना होगा, जिसमें यहाँके लोग सुखी और शान्त रहें। यहाँकी प्रजामें कितने

मुसलमान हैं ? सौ वर्षमें दिल्लीके आस-पासको भी हम मुसलमान नहीं बना सके। कहिए मुल्ला अबू-मुहम्मद ! आप कितने दिनोंमें आशा करते हैं, सारी दिल्ली और इस दयारको मुसलमान बना देखनेकी ?"

सामने बैठे तीसरे वृद्धने दाँतोंके बिना भीतर घुसे ओठोंके नीचे नाभी तक लटकती सफ़ेद दाढ़ीके बालोंको ठीक करते कहा—"मैं निराश नहीं हूँ, सुल्ताने-ज़माना ! किन्तु इस अस्सी वर्षके बूढ़ेका तजरबा है कि यदि हम ज़बर्दस्ती मुसलमान बनाना चाहेंगे, तो मुझे कभी उम्मीद नहीं कि हम उसमें पूरीतौर पर सफल होंगे।"

"इसलिए, हम हिन्दमें बस जानेवाले मुसलमान उस दिन तकके लिए इन्तिज़ार नहीं कर सकते, जब सारा हिन्द मुसलमान हो जायगा। हमने एक सदी यों ही गँवा दी और अपनी प्रजाका कुछ भी ख्याल न कर सिर्फ़ अपने भूमिकर, चुंगी, महसूलको ज्यादासे ज्यादा वसूल करना चाहा। परिणाम देखा ? शाही खज़ानेमें एक रुपया आता है, तो पाँच चले जाते हैं तहसील करनेवालोंके पेटमें। दुनियाके किसी मुल्कमें देखा है कि गाँवके मुखिया, पटेल घोड़ोंपर सवार हो निकलें, रेशमी लिबास पहिनें, ईरानकी बनी कमानसे तीर चलाएँ। नहीं, वज़ीरुल्मुल्क ! मेरी सल्तनतमें अब इस तरहकी लूट बन्द करनी होगी।"

"लेकिन हुज़ूरवाला ! कितने ही हिन्दू इस लालचसे भी मुसलमान होते थे। अब यह भी रास्ता बन्द हो जायेगा।"—मुल्लाने कहा।

"इस्लाम इस तरहकी लूट और रिश्वत अगर क़बूल करता है, तो सर्कारी खज़ाने और सर्कारी मालकी भी खैरियत नहीं; और, जिस हुकूमत-के ऐसे खिदमतगार हों, उसके लिए क्या उम्मीद की जा सकती है ?"

"ऐसोंसे सल्तनतके पाये मज़बूत नहीं हो सकते, जहाँपनाह ! यह मानना पड़ेगा। मुझे ख्याल था सिर्फ़ बद्-अमनीका।"—वज़ीरने कहा।

"गाँवके अमले चाहेंगे वैसा करना, यदि उनका बस चलेगा। किन्तु गाँवोंमें अमले ज्यादा होते हैं या किसान ?"

"किसान ! सौपर एक कोई अमला पड़ता होगा ।"

"उन्हीं सौ किसानोंका खून चूसकर वह घोड़ेपर सवार हो सकता है, रेशमी लिबास पहिन सकता है, और ईरानी कमानसे तीर चला सकता है । इस तरहकी खून-चुसाई बन्द करा हम किसानोंकी हालत बेहतर बनाएँगे । उन्हें हुकूमतका वफ़ादार बनायेंगे । क्या एकके नाराज़ करनेसे सौको खुश करना और खुशहाल देखना अच्छा नहीं है ।"

"ज़रूर है हुज़ूरवाला ! मुझे भी अब शक नहीं रहा । यद्यपि हिन्दुस्तानके मुसलमान सुल्तानोंमें आप एक नई बात करने जा रहे हैं; किन्तु कामयाबी होगी । इससे सिर्फ़ गाँवोंके ऊपरी श्रेणीके कुछ लोगोंको हम नाराज़ कर लेंगे ।'

"गाँवों और शहरोंके ऊँची श्रेणीके कुछ लोगोंके नाराज़ होनेकी पर्वाह नहीं । अब थोड़े दिनोंके लिए बनी झोपड़ीकी जगह हमें शासन-की मज़बूत इमारतकी बुनियाद रखनी होगी ।"

मुल्ला कुछ सोच रहा था । उसने दाढ़ीपर हाथ फेरते हुए फिर कहा—"हुज़ूर-वाला ! अब मैं भी समझता हूँ, कि गाँवके आमिलोंकी जगह गाँवोंके सारे किसानोंकी बेहतरीका ख्याल करना हुकूमतके लिए ज्यादा लाभदायक साबित होगा । हमने गाँवों-क़स्बोंके कपड़ेके कारीगरोंकी ओर थोड़ी निगाह की; उनकी पंचायतोंको मज़बूत करनेमें सहायता दी, जिससे वे बनिये महाजनोंकी लूटसे बचें । बेगारमें हरएक अमला उनसे कपड़े बनवाता, रूई धुनवाता था, इसे रोका; और आज इसका यह परिणाम देख रहे हैं कि रूई-धुननेवाले, कपड़ा बुनने-सीनेवाले मुश्किलसे कोई होंगे, जो इस्लामकी सायामें न आ गये हों ।"

"अब आपने देखा मुल्ला साहिब ! जो बात सल्तनतके लिए भली है, वह इस्लामके लिए भी भली है ।"

"लेकिन एक बातकी अर्ज़ है जहाँपनाह ! आप अमीरुल्मोमिनीन (मुसलमानोंके नायक) हैं—"

"साथ ही मैं हिन्दुओंका सुल्तान हूँ। हिन्दमें मुसलमानोंकी संख्या बहुत कम है, शायद हज़ारमें एक।"

"हिन्दू इस्लामकी तौहीन करते फिरते हैं। आगे उनका हौसिला और बढ़ सकता है। तौहीन बन्द होनी चाहिए।"

"तौहीन ? क्या क़ुरान-पाकको पैरों तले रौंदते हैं ?"

"इतनी हिम्मत कहाँ हो सकती है ?"

"क्या मस्जिदोंको नापाक करते हैं ?"

"यह भी नहीं हो सकता।"

"क्या रसूल-खुदाको सरे-बाज़ार गालियाँ सुनाते हैं ?"

"नहीं जहाँपनाह ! बल्कि, जो हमारे सूफ़ियोंके संसर्गमें आये हैं वे तो रसूल-खुदाको भी ऋषि मानते हैं। लेकिन, वे हमारे सामने कुफ़्रकी रस्में अदा करते हैं।"

"जब उन्हें आप काफ़िर मानते हैं, तो कुफ़्रकी रस्मके लिए शिकायत क्यों ? मेरे चचा सुल्तान जलालुद्दीनने मेरी तरह तै नहीं कर पाया था, कि उन्हें अपनेको स्थायी हिन्दी शासक समझना चाहिए या जब तक सारा हिन्द मुसलमान न हो जाय, तब तकके लिए अस्थायी। किन्तु उन्होंने एक बार आपकी तरहके प्रश्नकर्त्ताको क्या जवाब दिया था, मालूम है ?"

"नहीं हुज़ूर-वाला !"

"कहा था—'बेवक़ूफ़ तू देखता नहीं कि हिन्दू रोज़ाना मेरे महलके सामनेसे शंख बजाते और ढोल पीटते हुए यमुना किनारे अपनी मूर्त्तियोंको पूजने जाते हैं। वे मेरी आँखोंके सामने अपनी कुफ़्रकी रस्में मनाते हैं। मेरी और मेरे शाही रोबकी हतक करते हैं। मेरे दीनके दुश्मन (हिन्दू) हैं, जो मेरी राजधानीमें मेरी आँखोंके सामने ऐशो-इशरत और शानो-शौकतसे ज़िन्दगी बसर कर रहे हैं, और दौलत और खुशहालीके कारण मुसलमानोंके साथ अपनी शान और घमंडको ज़ाहिर करते हैं। शर्म है

मेरे लिए मैं उनको उनकी ऐशो-इशरत और फ़ख़्-व-ग़रूरमें छोड़े हुए हूँ और इन थोड़ेसे तिनकोंपर सब्र किये हूँ जो कि वे खैरातके तौरपर मुझे दे देते हैं।' मैं समझता हूँ, इससे बेहतर जवाब मैं भी नहीं दे सकता।"

"लेकिन मुल्लाने जमाँ! सुल्तानका इस्लामी फ़र्ज़ भी है।"

"जिसने ऐसा क़सूर किया है, जिसकी सज़ा मौत है, उसे इस्लामकी शरणमें आनेपर मैं जीनेकी इजाज़त दे सकता हूँ। जो ग़ुलाम हैं और इस्लाम लाता है, उसे ग़ुलामीसे मुक्त होनेका हुक्म दे सकता हूँ; लेकिन खरीदकी क़ीमत शाही ख़ज़ानेसे देकर; नहीं तो इस मुल्कमें करोड़ों-करोड़ रुपये ग़ुलामोंपर लगे हैं। और सभी ग़ुलामोंकी आज़ादीके लिए तो आप कह भी नहीं सकते?"

"नहीं जहाँपनाह! ग़ुलाम रखना तो अल्लाहतालाने भी जायज़ फ़र्माया है।"

"नहीं, यदि आप कहें तो तख़्तको ख़तरेमें डाल मैं मुस्लिम, ग़ैर-मुस्लिम सभी दास-दासियोंको आज़ाद करनेका फ़र्मान निकाल देता हूँ।"

"नहीं! यह शरीअतके ख़िलाफ़ होगा।"

"शरीअतके खिलाफ़ होनेकी बातको छोड़ें मुल्लासाहब! इस वक़्त आपका ध्यान होगा किसी अमीना दासीपर। सबसे ज़्यादा ग़ुलाम तो हैं मुसलमानोंके घरोंमें।"

"और अल्लाहतालाने मोमिनोंके लिए उन्हें जायज़ ठहराया है।"

"लेकिन यदि दास-दासियाँ भी मोमिन हैं? फिर तो हुआ न कि आप उन्हें इस दुनियाँकी आज़ाद हवामें साँस लेने देना नहीं चाहते और सिर्फ़ बहिश्तकी उम्मीदपर रखना चाहते हैं!"

"मुझे और कहना नहीं है। इस्लामी सल्तनतमें इस्लामी शरीअत-का शासन होना चाहिए, बस मैं इतना ही कहना चाहता हूँ।"

"लेकिन यह चाहना थोड़ा नहीं है। इसके लिए इस्लामी सल्तनतकी अधिकांश प्रजाको मुसलमान होना चाहिए। आप लोगोंके सामने—

वज़ीर साहब ! आप भी सुनें—मैं अपने विचारोंको साफ़ रख देना चाहता हूँ। सुल्तान महमूद जैसा एक विदेशी सुल्तान अपनी ज़बर्दस्त विदेशी सेनाके साथ शान्ति-पूर्ण शहरोंको लूट, लूटके मालको ऊँटों, खच्चरोंपर लाद भले ही ले जा सकता था; लेकिन वही बात बाल-बच्चोंके साथ दिल्लीमें बस जानेवाले मेरे जैसे आदमीके बूतेकी नहीं है। हमारी हुकूमत क़ायम है हिन्दू-प्रजाकी लगानपर, हिन्दू सिपाहियों और सेना-नायकोंपर— मेरा सेनापति मलिक हिन्दू है, चित्तौड़का राजा मेरे लिए पाँच हज़ार सेनाका सेनानायक है।"

"लेकिन जहाँपनाह ! गुलाम सुल्तान भी तो दिल्ली हीमें रहते थे।"

"आप हिचकिचाएँ मत, मुझे चंचल और ग़ुस्सैल कहा जाता है, किन्तु यह सब विरोधी विचारोंको सुननेसे मुझे रोक नहीं सकते। गुलामों-की हुकूमत चिड़िया-रैन बसेरा थी। मंगोलोंके तूफ़ानसे हिन्दुस्तानकी इस्लामिक सल्तनत बाल-बाल बची है, हिन्दुओंको पता न था, कि मंगोलों जैसा दुश्मन मुसलमानोंने कभी देखा नहीं; नहीं तो ज़रा भी उन्होंने मंगोलोंको शह दी होती, तो हिन्दकी सरज़मीनमें नया लगा इस्लामका पौधा ठहर नहीं सकता था। जानते हैं न चंगेज़का ख़ानदान दुनियाकी सबसे बड़ी सल्तनत चीनपर हुकूमत कर रहा है !"

"जानता हूँ, हुज़ूर-वाला !" मुल्लाने कहा।

"और वह ख़ानदान समनिया मज़हबको मानता है।"

"समनिया ! उनके बहुतसे मठों-मन्दिरोंके जला देने, बर्बाद कर देनेपर भी, अभी वह मज़हब, कुफ़्रका साकार स्वरूप हिन्दकी सरज़मीनसे उठा नहीं।"

"कुफ़्रका साकार स्वरूप वही क्यों ?"

"जहाँपनाह ! हिन्दुओं—ब्राह्मणों—के मज़हबमें, तो सिरजनहार अल्लाहका ख्याल भी है, किन्तु समनिया तो उससे बिल्कुल इन्कार करते हैं।"

"चंगेज़का खानदान आज नहीं उसके पोते कुबलेखानके ज़मानेसे ही अपनेको समनोंका मुरीद मानता है। यही नहीं खुद चंगेज़की फ़ौजके मंगोलोंमें बहुतसे समनी सिपहसालार तथा सैनिक थे। बुखारा, समरकंद, बलख आदि इस्लामी दुनियाके शहरोंको मुसलमानोंकी सभ्यताके समस्त केन्द्रोंको उन्होंने चुन-चुनकर तबाह कर डाला। उन्होंने हमारी औरतोंको बिना ऊँचे-नीचे घरानेका खयाल किए आम तौरसे दासी बनाया। बच्चोंको बेदर्दीसे क़त्ल किया। इन सब ज़ुल्मोंके प्रोत्साहन देनेवाले वही समनी मंगोल थे। वह कहते थे, अरबोंने हमारे विहारोंको बर्बाद किया, हमारे नगरोंको जलाया, हमारे बच्चोंको मारा; हमें उसका बदला लेना है। ख्याल कीजिए, यदि मंगोल कहीं हिन्दी समनियों (बौद्धों)से मिलकर हिन्दुओंको अपनी ओर खींचनेमें सफल होते, तो इस्लामकी क्या हालत हुई होती?"

"बर्बादी होती, जहाँपनाह!"

"इसलिए हमें बालूकी रेतपर अपने राज्यकी नींव नहीं रखनी है, हम ग़ुलामोंकी नक़ल नहीं कर सकते।"

वज़ीर अब तक चुप था, अब उसने मुँह खोला—"लेकिन सर्कार-आली! गाँवके अमलोंकी ताक़त कमज़ोर होनेपर सल्तनत कैसे वहाँ तक पहुँचेगी।"

"जब रेशम पहिननेवाले, घोड़ोंपर चलनेवाले अमले नहीं थे, तब कैसे काम चलता था—आपको मालूम है।"

"मैंने इसकी खोज नहीं की।"

"मैंने खोज की है। जब शासकोंने अपनेको लुटेरों जैसा समझा, तब उन्होंने लूटनेवाले अमले नियुक्त किए। ऐसा सब समय सब जगह होता है। उससे पहिले हर गाँवमें पंचायत होती थी, जो गाँवकी सिंचाई, लड़ाई-झगड़ेसे लेकर सर्कारको लगान देने तकका सारा प्रबन्ध स्वयं करती थी। राजाको गाँवके किसी एक व्यक्तिसे कोई काम न था। वह सिर्फ़

पंचायतसे वास्ता रखता था, वह समझता था कि लगान देनेवाले किसान और उसके बीच सम्बन्ध स्थापित करनेके लिए यही पंचायतें हैं।"

"तो जहाँपनाह! सौ बरससे मरी इन पंचायतोंको फिरसे हमें जिलाना होगा।"

"और दूसरा चारा नहीं। यदि इस्लामी सल्तनतको इस देशमें मज़बूत करना चाहते हैं, तो प्रजाको सुखी और सन्तुष्ट रखनेकी हर प्रकारसे कोशिश करनी होगी! उसके लिए हमें अपनी हिन्दू-प्रजाके रीति-रवाज, क़ानून-क़ायदेका ख्याल रखना होगा, दिल्लीकी सल्तनतमें इस्लामी शरीअत (क़ानून) नहीं, सुल्तानी शरीअत बर्ती जायगी। इस्लामका प्रचार मुल्लोंका काम है, उन्हें हम वज़ीफ़े दे सकते हैं। सूफ़ियोंका काम है और वह बहुत अच्छी तरह कर रहे हैं, उनकी खानकाहों (मठों)को हम नक़द या सर्कारी लगान (माफ़ी) दे सकते हैं।"

(२)

वर्षा बीत चुकी थी; किन्तु अभी भी ताल-तलैयोंमें पानी भरा हुआ था। बड़ी-बड़ी मेंड़ोंसे घिरे धानके खेतोंमें पानी भरा हुआ था, जिसमें धानके हरे-हरे पूँजें लहरा रहे थे। चारों ओर दूर तक फैली मगधकी हरी-हरी क्यारियोंके बीच हिल्सा (पटना)का बड़ा गाँव था; जिसमें कुछ व्यापारियोंके ईंटेके पक्के मकान थे, बाक़ी किसानों और कारीगरोंके फूस या खपड़ैलके। इनके अतिरिक्त कुछ ब्राह्मणोंके घर थे, जो उनसे कुछ बेहतर अवस्थामें थे। हिल्साके मन्दिरोंको सौ वर्ष पहिले (मुहम्मद बिन-) बख़्तियार ख़िलजीकी सेनाने ही ध्वस्त कर डाला था, और उसके बाद उनके खंडहरोंमें ही हिन्दू जहाँ-तहाँ पूजा कर लेते थे। गाँवके पश्चिमी छोरपर बौद्धोंका मठ था; जिसका प्रतिमागृह तो टूट-फूट गया था, किन्तु घर अब भी आबाद थे। मठके भीतर घुसकर उसके निवासियोंको देखकर कोई नहीं कह सकता था, कि बौद्ध-भिक्षु उसे छोड़कर चले गये हैं।

उस दिन शामके वक़् मठके बाहरके पत्थरके छोटे चबूतरेपर एक अधेड़ पुरुष बैठा था। उसके शरीरपर पीला काषाय था। उसका सिर और भौहें घुटी हुई थीं। मूँछ-दाढ़ी बहुत छोटी हफ्ते भरकी बनी हुई थी। उसके हाथमें काठकी माला थी। आश्विनकी पूर्णिमाका दिन था, गाँवके नरनारी खाना, कपड़ा तथा दूसरी चीज़ें लाकर काषायधारी पुरुषके सामने रख (चढ़ा)कर हाथ जोड़ रहे थे। पुरुष हाथ उठा स्मित मुखसे उन्हें आशीर्वाद दे रहा था।

यह क्या है ? हिल्साका पुराना बौद्ध मठ तो नष्ट हो गया ! हाँ, किन्तु श्रद्धा मठोंसे बाहर भक्तोंके दिलोंमें हुआ करती है। आज हिल्साके काषायधारी बाबाको देख क्या बौद्ध-भिक्षु छोड़ और कुछ कह सकते हैं ? वह अविवाहित है, यही नहीं उसके चार पहिलेके गुरु भी अविवाहित काषायधारी थे। हिन्दू—या बौद्ध—से मुसलमान बने दस पाँच कारीगर-घरोंमें इसे खानकाह कहकर पुकारा जाता है, ब्राह्मण और कुछ बनिये भी इसे मठ नहीं कहते; किन्तु बाक़ी गाँवके लिए यह अब भी वह विचार—मठ—है। उनके बाबाकी पहिले भी जात-पाँत न होती थी और इन नये बाबोंकी भी जात नहीं है। उन्हींकी भाँति यह भी काषाय पहनते, अविवाहित रहते हैं; और बीमार होनेपर यही लोगोंके भूतोंको झाड़ते हैं; मरण और शोकके समय यही अलख-निरंजन-निर्वाणका उपदेश दे सान्त्वना प्रदान करते हैं। इसीलिए आज शरत्पूनोकी प्रावारणाके दिन लोग पहिलेकी भाँति इन मुस्लिम भिक्षुओंको भी पूजा चढ़ा रहे हैं। और कारीगर मुसलमान जैसे पहिले उन बौद्ध भिक्षुओंको अपना पूज्य गुरु मानते थे, उसी तरह अब अपने बाबा और उनके काषायधारी चेलोंको मानते हैं।

खानकाहके पुराने महन्तों (पीरों)की समाधियों (कब्रों)की वन्दना-कर गाँववाले धीरे-धीरे चले गये। रातके बीतनेके साथ दूधसी चाँदनी चारों ओर छिटक गई। उसी वक़् कारीगर घरोंकी ओरसे दो आदमियोंके साथ कोई आँगनकी ओर आता दिखाई पड़ा। नज़दीक आनेपर बाबाने

मौलवी अबुल्-अलाईको पहिचाना। उनके सिरपर सफ़ेद अमामा, शरीरपर लम्बा चोग़ा, पैरोंमें जूतोंसे ऊपर पायजामा था। उनकी काली दाढ़ी हवाके हलके झोंकेसे हिल रही थी। बाबाने खड़े हो दोनों हाथों-को बढ़ाते हुए मधुर स्वरमें कहा—

"आइये, मौलाना अबुल्-अलाई। अस्सलाम-अलैक।"

बाबा मौलानाके सिकुड़ते हाथोंको अपने हाथोंमें ले उनसे बग़लगीर हुए। मौलानाने भी बेमनसे 'वालेकुम-स्सलाम' किया।

बाबाने नंगे चबूतरेके पास ले जाकर कहा—

"हमारा तख़्त यही नंगा पत्थर है, तशरीफ़ रखिये।"

मौलानाके बैठ जानेपर बाबा भी बैठ गये। बात पहले मौलानाने ही शुरू की !

"शाह साहेब ! जब यहाँ काफ़िरोंकी भीड़ लगी थी, तो मैंने ठहर कर देखा था; इस तमाशेको।"

"तमाशा भले ही कहें मौलाना ! "किन्तु काफ़िर न कहें, नूरूके कलेजेमें इससे तीर लगता है।"

"यह हिन्दू काफ़िर नहीं तो और कौन हैं ?"

"सभीमें वही नूर समाया हुआ है, नूर और कुफ़्र, रोशनी और अँधेरेकी तरह एक जगह नहीं रह सकते।"

"तुम्हारा यह सारा तसव्वुफ़ (वेदान्त) इस्लाम नहीं गुमराहियत है।"

"हम आपके ख्यालोंको गुमराहियत नहीं कहते, हम 'नदिया एक घाट बहुतेरे'के माननेवाले हैं। अच्छा आप सभी इन्सानोंको ख़ुदाके बच्चे मानते हैं या नहीं ?"

"हाँ मानता हूँ।"

"और यह भी कि वह मालिक सर्व-शक्तिमान् है।"

"हाँ।"

"मौलाना ! मेरे उस सर्व-शक्तिमान् मालिकके हुक्मके बिना

जब पत्ता भी नहीं हिल सकता, तो हम और आप अल्लाहके इन सारे बच्चोंको काफ़िर कहनेवाले कौन ? अल्लाह चाहता तो सबको एक रास्तेपर चलाता। नहीं चाहता है, इसका मतलब है, सभी रास्ते उसे पसन्द हैं।"

"शाह साहब ! मुझे न सुनाइये तसव्वुफ़की झूठोंको।"

"लेकिन मौलाना ! यह तो मैंने इस्लामके ही दृष्टिकोणसे कहा। हम सूफ़ी तो अल्लाह और बन्देमें फ़र्क नहीं मानते। हमारा कल्मा (महा-मन्त्र) तो है 'अन-ल्-हक़्' (मैं सत्यदेव हूँ), 'हम-ओ-स्त' (सब वही ब्रह्म हैं)।"

"यह कुफ़्र है।"

"आप ऐसा ख्याल करते हैं, पहिले भी कितने ही लोगोंने ऐसा ख्याल किया था; किन्तु सूफ़ियोंने अपनी शहादत—खून—से इस सत्य-पर मुहर लगाई और आगे भी ज़रूरत पड़नेपर हम मुहर लगायेंगे।"

"आप लोगोंकी वजहसे इस्लाम यहाँ फैलने नहीं पाता।"

"हमने तुम्हारी आग और तलवारको दिलसे बुरा ज़रूर समझा; किन्तु, हाथसे नहीं रोका, फिर आपने कितनी सफलता पाई ?"

"आप लोग उनके धर्मको सत्य बतलाते हैं।"

"हाँ, क्योंकि महान् सत्यको कुल्हियामें बन्द करनेकी ताक़त हम अपनेमें नहीं पाते। यदि इस्लाम अपने शहीदोंके कारण सच्चा है, यदि तसव्वुफ़ अपने शम्सों-मंसूरोंकी शहादतसे सच्चा है, तो हिन्दुओंने भी तुम्हारी तलवारोंके नीचे हँसते-हँसते गर्दन रख हिन्दू-मार्गको सच्चा साबित किया है।"

"हिन्दू-मार्ग और सच्चा ! हिन्दूका मार्ग पूरबका, हमारा पच्छिमका, बिल्कुल उलटा।"

"इतना उलटा होता तो क्यों आज शामको गाँवके इन किसानोंने मुसलमान मठकी पूजा की ? क्या आप मुसलमानोंमें हिन्दूपनकी गन्ध मात्र नहीं देखना चाहते मौलाना ?"

"हाँ, नहीं रखना होगा।"

"तो हमारी सधवा मुसलमानिनोंका सिन्दूर तो जाकर धुलवाइये।"

"धुलवायेंगे।"

बाबाने हँसकर कहा—"सिन्दूर धुलवायेंगे जीतेजी। जुम्मन! बताओ बेटा! क्या तुम्हारी सलीमा मान लेगी इसे।"

"नहीं बाबा! मौलवी साहेबको मालूम नहीं है। सिन्दूर विधवाका धोया जाता है।" पास ही खड़े जुम्मनने कहा।

बाबाने अपनी बातको जारी रखते हुए कहा—"क्षमा करना मौलवी अबुल्-अलाई! हम सूफ़ी न किसी सुल्तानके टुकड़ोंपर यहाँ आकर बसे, न किसी अमीरके दानपर। हम कफ़नी और लँगोटी पहनकर आये। किसी हिन्दूने हमारे ऊपर तलवार नहीं उठाई। इसी खानकाहको ले लीजिये, यह पहले समनियोंका विहार था। मेरे पाँचवें दादा गुरु समनी (बौद्ध) फ़क़ीरोंके चेले थे। बनावटी नहीं, वह बुखारासे आये थे और उनके तसव्वुफ़से खिंचकर चेला बने थे। तसव्वुफ़ सब जगह एक है, बाहरी चोलेसे उसका झगड़ा नहीं, वह चोला समनीका भी हो सकता है, हिन्दूका भी, मुसलमानका भी। हमारे उन गुरुके बाद यह खानकाह मुसलमान नाम रखनेवाले फ़क़ीरोंकी है। हमने चोला बदलनेपर ज़ोर नहीं दिया, हमने प्रेम सिखलाया, जिसका फल देख रहे हैं, गाँव-गाँवमें हमसे घृणा रखनेवालोंकी कमी। पंडितोंने जड़ता दिखाई, वह प्रेमके पन्थको नहीं पहिचान सके, जैसे आप लोग नहीं पहिचान सके, उसीसे जुम्मनके बाप-दादोंको हिन्दू नहीं, मुसलमान नाम रखना पड़ा, और अब उनके यहाँ आपकी भी खातिर होती है।"

(३)

चैतका मास बीत चुका था। जिन वृक्षोंमें नये-नये पत्ते लगनेवाले थे, लग चुके थे। आम अबकी साल अच्छा आया था; इसलिए उसके

पुराने ही पत्ते रह गये थे। उनके नीचे खलिहान लगे हुए थे, जहाँ दोपहरकी गर्मी और हवामें भी किसान दँवरी कर रहे थे। उसी वक्त कोई मुसाफ़िर थका और धूपसे पसीने-पसीने उन्हीं खलिहानोंमें एक वृक्षके नीचे आ बैठा। मंगल चौधरीने उसकी शकल-सूरतसे परदेशी मुसाफ़िर समझ, पास आकर कहा—"राम-राम भाई! इस धूपमें चलना बड़ी हिम्मतका काम है।"

"राम-राम भाई! लेकिन, जिसको चलना होता है, उसे धूप-ठंढा थोड़े ही देखना पड़ता है।"

"पानी पियो भाई! मुँह सूखा मालूम होता है। घड़ेमें ठंढा पानी रखा है।"

"कौन बिरादरी हो?"

"अहीर, मंगल चौधरी मेरा नाम है।"

"चौधरी! लोटा-डोरी मेरे पास है। मैं ब्राह्मण हूँ। कुआँ बता दो।"

"कहो तो अपने लौंडेसे मँगवा दूँ, पंडतजी।"

"थका हुआ हूँ, मँगवा दो चौधरी।"

"बेटा घीसा! इधर अइयो तो।" बुला, मंगल चौधरीने दँवरी रुकवा बेटेको गुड़की डलीके साथ कुएँसे ताज़ा पानी भर लानेके लिए कहा।

मुसाफ़िरने पूछकर मालूम किया—दिल्ली अभी बीस कोस है; इसलिए आज नहीं पहुँच सकता।

मंगल चौधरी हँसने-हँसानेवाले जीव थे। चुप रहना उनके लिए सबसे मुश्किल काम था।

चौधरीने कहा—"हमारे यहाँ इस साल तो भगवान्की कृपासे फ़सल बहुत अच्छी हुई। बैसाखमें खलियान उठना मुश्किल होगा। पंडतजी! तुम्हारे यहाँ फ़सलका कैसा डौल है?"

"फ़सल बुरी नहीं है चौधरी!"

"राजा अच्छा होता है, तो देवता भी खुश होते हैं, पंडतजी!

जबसे नया सुल्तान तखतपर बैठा है तबसे प्रजा बड़ी ख़ुशहाल है।"

"क्या, ऐसी बात देखते हो, चौधरी?"

"अरे! एक तो यही खलियानके गंज देख रहे हो। दो वर्ष पहले आते तो देखते इनके चौथाई भी नहीं होते।"

"सुतर गया है, चौधरी!"

"सुतर गया है; किन्तु सुल्तानकी नियतकी बरकत है, पंडतजी। पहले हम किसान नंगे-भूखे डोलते थे और धीके...रेशम तानजेब पहन घोड़ेपर चलते थे। गेहूँ बित्ते भरका भी नहीं होने पाता था कि उनके घोड़े हमारे खेतोंमें आ जमते थे। कौन बोलता? हमारे गामडोंके तो ये ही सुल्तान थे।"

इसी समय मंगल चौधरीकी भाँति ही घुटनों तककी धोती, बदनपर एक मैली चौबन्दी, सिरपर चिपकी सफ़ेद टोपी पहने दूसरा चौधरी आ गया और बीच हीमें बोल उठा—"और चौधरी! अब देखते नहीं सारी शान कहाँ चली गई? अब बेटे दानों-दानोंके मुहताज फिर रहे हैं। मुझसे कह रहा था वह बाभनका—क्या, नाम है, चौधरी?"

"सिब्बा।"

"अब न सिब्बा कहते हो, उस वक़्त तो पंडत शिवराम था। कह रहा था—चौधरी छेदाराम! दो मन गेहूँ देना पैसा हाथमें आते ही दाम दे दूँगा। मुँहपर नहीं करना तो मुश्किल है; लेकिन मुझे याद है, जब वह बाभनका सीधी बात भी नहीं करता था। 'अबे छिद्दे' छोड़, कोई दूसरी बात उसके मुखसे नहीं सुनी।"

"और अब तुम हो चौधरी छेदाराम और मैं चौधरी मंगलराम। मंगे और छिद्दे से ढाई वर्षोंमें हम कहाँ से कहाँ पहुँच गये।"

"मैं कहूँगा चौधरी! यह सब सुल्तानकी दया है, नहीं तो हम सब छिद्दे और मंगे ही बने रहते।"

"यही तो मैं कह रहा था, इन पंडतजीसे।"

"न हमारी यह पंचायत लौटकर मिली होती न हमारे दिन लौटते।"

"चौधरी मंगलराम ! तुम हाथसे क़लम नहीं पकड़ सकते; किन्तु तुम गाँवके सरपंच हो, कैसे सब काम चला लेते हो ? अमला तो अमला, ये बनिये एक रुपयेमें दो रुपयेका नाज उठा ले जाते थे। जेठ भी नहीं बीतता था और घरोंमें चूहे डंड पेलने लगते थे।"

"हम तो यही कहते हैं, हमारा सुल्तान लाख बरस जीता रह।"

यात्री ब्राह्मण इन उजड्ड अहीरोंकी तारीफ़ सुन-सुनकर कुढ़ रहा था और कुछ बोलनेका मौक़ा ढूँढ़ रहा था। गुड़ खा, पानी पी लेनेके बाद वह और उतावला हो गया था। वह चौधरियोंकी बात न खतम होते देख बीच हीमें बोल उठा—"सुल्तान अलाउद्दीनने पंचायत आप लोगोंको दी—"

"हाँ पंडत ! तेरे मुँहमें घी-शक्कर; लेकिन पंडत ! न जाने किसने हमारे सुल्तानका नाम अलाभदीन रख दिया। हम तो अपने गाँवमें अब उसे लाभदीन कहते हैं।"

"चौधरी ! तुम कोई नाम रक्खो। लेकिन, जानते हो, सुल्तानने हिन्दुओंपर कितना ज़ुल्म ढाया है ?"

"हमारी अहीरियाँ तो चादर भी नहीं लेतीं, ऐसे ही छाती उतानकर खेत-हारमें रात-दिन घूमती फिरती हैं। उन्हें तो कोई उठा नहीं ले जाता ?"

"इज्ज़तवाले घरोंकी इज्ज़त बिगाड़ते हैं।"

"तो पंडत ! हम बे-इज्ज़तवाले हैं, और कौन है सौरा इज्ज़तवाला ?"

"तुम तो गाली देते हो चौधरी मंगलराम !"

"लेकिन पंडत ! तुम्हें मालूम होना चाहिए कि जबसे हमारी पंचायत लौटी, तबसे हमारी इज्ज़त भी लौट आई। अब हम जानते हैं, आमिल-अमले कैसे इज्ज़तदार बने थे। हिन्दू-हिन्दू, मुसलमान-मुसलमान कहते हैं। जो भी आमिल-अमले हुए, सब एक ही रंगमें रँगे थे, और फिर वह होते थे ज्यादातर हिन्दू।"

चौधरी छेदारामने कोई बात छुटती देखकर कहा—"और हम-लोगोंसे कहते हैं, हिन्दू-मुसलमान—दोनों दो। देखा नहीं चौधरी! अपनेको हिन्दू ब्राह्मण कहनेवाले यह अपनी स्त्रियोंको सात पर्देकी बेगमें बनाते जा रहे हैं।"

"हाँ, चौधरी! मेरे दादा कहते थे, उन्होंने कन्नौज और दिल्लीकी रानियोंको नंगे मुँह घोड़ेपर चढ़े देखा था।"

ब्राह्मणने कहा—"लेकिन चौधरी! उस वक्त कोई मुसलमान हमारी इज़्ज़त लूटनेवाला न था।"

"आज भी हमारी इज़्ज़त हार-खेतमें डोलती फिरती है, कोई उसे नहीं लूटता।"

"और छुटती भी यदि थी, तो चौधरी मंगलराम! जब इस ब्राह्मण-का—सिब्बेकी चली थी।"

"मुफ्तकी खानेवाले एक दूसरेकी इज़्ज़त लूटना छोड़ और क्या करेंगे? यह हिन्दू-मुसलमानोंका सवाल नहीं पंडत! यह मुफ्तखोरोंका काम है। पक्के हिन्दू हम हैं, पंडत! हमारी औरतें कभी सात पर्देमें नहीं रहेंगी।"

ब्राह्मणने फिर एक बार साहस करके कहा—"अरे चौधरी! तुम्हें पता तो नहीं, सुल्तानके सेनापति मलिक काफ़ूरने दक्खिनमें जा हमारे मन्दर तोड़, देव-मूर्त्तियोंको पाँवों तले रौंदा।"

"हमने बहुत सुना है, पंडत! एक बार नहीं, हज़ार बार—मुसलमानी राजमें हिन्दूका धर्म नहीं। लेकिन, हम दिल्लीके बहुत नज़दीक रहते हैं, पंडत! नहीं तो हम भी विश्वास कर लेते। हमारे बीस कोसमें न तो कोई मन्दर तोड़ा गया, न देवताओंको पाँवके नीचे दबाया गया।"

"चौधरी मंगलराम! यह बिल्कुल झूठ है, तुम तो मुझसे भी ज्यादा दिल्ली जाते-आते रहते हो। मैं कितनी ही बार दशहरा देखने दिल्ली गया हूँ। कितना भारी मेला होता है—आधीसे ज्यादा औरतें होती हैं। हिन्दूका मेला, मेलेवाले भी ज्यादातर हिन्दू। देवताओंको सजाकर

सुल्तानके झरोखेके नीचेसे ले जाते हैं, सब शंख, नगाड़ा, नरसिंगा बजाते हैं।"

"हाँ, झूठ है चौधरी छेदाराम! सेठ निक्कामल महलके सौ गज़ पर ही एक बड़ा मन्दर बना रहे हैं। न जाने कितने लाख लगेंगे, मैंने पिछली बार पत्थर गिरा देखा, अबकी बार देखा तो दीवार कमर भर उठ आई है। यदि सुल्तानको तोड़ना होता, तो अपनी आँखोंके सामने क्यों मन्दर खड़ा होने देता?"

"हाँ चौधरी! राजाओं-राजाओंमें लड़ाई होती है। लड़ाईमें कौन किसको पूछता है। कुछ हो गया होगा उसीको लेकर हल्ला करते हैं। सौ वर्ष पहिले हमारे और-पासमें ऐसी बातें हुई थीं; लेकिन अब कहीं कुछ सुननेमें आता है?"

"याद है, हम कई गाँवोंके आदमी जब हाकमके पड़ावपर गये थे, उसने कहा था—पहलेके सुल्तान चिड़िया-रैन-बसेरावाले थे, हमारा सुल्तान लाभदीन हमारे घरमें, दुःख-सुखमें साथ रहनेवाला सुल्तान है; इसलिए वह प्रजाको लूटता नहीं, खुशहाल देखना चाहता है।"

"और अब चाहनेकी बात नहीं, लोग-बाग चारों ओर खुशहाल दीखते हैं।"

(४)

दिल्लीके बाहर सुनसान क़ब्रुस्तान था, जिसके पास कुछ नीम और इमलीके दरख़्त थे। अगहनकी रातें सर्द थीं। लकड़ीकी आगके पास दो फ़क़ीर बैठे थे, जिनमें एक हमारे परिचित बाबा नूरदीन थे। दूसरे फ़क़ीरने अपनी सफ़ेद दाढ़ी और मूँछोंपर दोनों हाथोंको फेरते हुए कहा—"बाबा! पाँच बरसमें फिर हरियानेमें दूधकी नदियाँ बहने लगी हैं।"

"ठीक कहा बाबा ज्ञानदीन! अब किसानोंके चेहरे हरे-भरे दिखलाई पड़ते हैं।"

"बाबा! जब खेत हरे होते हैं तभी चेहरे भी हरे होते हैं।"

"आमिल-अमले तो गये, ये बनिया-महाजन और मर जाते तो चैन-की बंशी बजती।"

"बहुत लूटते हैं। और, इनके ये बड़े-बड़े मठ, बड़े-बड़े मन्दर-सदाव्रत तो इसी लूटसे चल रहे हैं।"

"कहते हैं, धनी नहीं रहनेसे धर्म नहीं चलेगा। मैं कहता हूँ जब तक धनी रहेंगे तब तक अधर्मका पलड़ा भारी रहेगा।"

"ज्ञानी-ध्यानी, पीर-पैग़म्बर, ऋषि-मुनिसे बढ़कर धर्मपर चलनेवाला कौन होगा? लेकिन, उनके पास एक कमली, एक क़फ़नीसे बेशी क्या था?"

"इन्सान भाई-भाई नहीं बन सकते जब तक गरीबोंकी कमाईसे पलनेवाले अमीर हैं। और सुल्तान भी मित्र ज्ञानदीन! आदमी-आदमी-में फूट डालनेवाले यही इकट्ठा सिमटी माया है; किन्तु, उसकी शान-शौकत भी तो नहीं चले, अगर कमेरोंकी कमाई न नोचें?"

"उन दिनोंकी उम्मीद रखें, मित्र! जब सभी गोरखधन्धे मिट जायेंगे और पृथ्वीपर प्रेमका राज्य क़ायम होगा।"

१६—सुरैया

काल—१६०० ई०

(१)

वर्षाके मटमैले पानीकी धार चारों ओर फैली दिखलाई पड़ रही थी। पानी समतल भूमिपर धीरे-धीरे फैलता, ढालुआँ ज़मीनपर दौड़ता, और नालों-नदियोंमें खेलती पहाड़ी नदियोंके विस्तृत जलका रूप धारण कर रहा था। वृक्षोंने मानो वर्षाको अब भी रोक रक्खा था, उनसे बड़ी बड़ी बूँदें अब भी टपाटप गिर रही थीं। वैसे वर्षा अब फुहारोंकी शकलमें परिणत हो गई थी।

अकेले छेंकुरे (शमी) के दरख्तसे कुछ हटकर एक श्वेतवसना तरुणी खड़ी थी। उसके शिरकी सफ़ेद चादर खिसक गई थी, जिससे भ्रमरसे काले द्विधा-विभक्त केशोंके बीच हिमालयकी अरण्यानीमें बहती गंगाकी रुपहली धार खिंची हुई थी। उसके कानोंके पास काले कुंचित काकुलोंसे अब भी एकाध बूँद गिर पड़ती थी। उसके हिम-श्वेत गम्भीर मुखपर बड़ी-बड़ी काली आँखें किसी दूरकी चीज़का मानस प्रत्यक्ष कर रही थीं। उसके घुटनों तक लटकता रेशमी कुर्त्ता भीगकर वक्षस्थलसे सट गया था, जिसके नीचे लाल अँगियामें बँधे उसके नारंगीसे दोनों स्तनोंका उभार बहुत सुन्दर मालूम होता था। कुर्तेके घिरावेमें भूली कमरके नीचे पायजामा था, जिसके पतले सटे निम्न भागमें तरुणीकी पेंडुलीकी चढ़ाव-उतार-आकृति साफ़ मालूम पड़ रही थी। मिट्टीसे रंगे सफ़ेद मोज़ेके ऊपर लाल जूतियाँ थीं, जो भीगकर और नरम, और शायद चलनेके अयोग्य हो गई थीं।

तरुणीके पास एक तरुण आता दिखाई पड़ा। उसकी छज्जेदार पगड़ी, अचकन, पायजामा—जो सभी सफ़ेद थे भी भीगे हुए थे।

नज़दीक आ जानेपर भी उसने देखा, तरुणी उसकी ओर देख नहीं रही है। पैरोंकी आहटको रोककर वह तरुणीकी बग़लमें दो हाथपर जा खड़ा हो गया। तरुणी एकटक थोड़ी दूरपर बहते नालेके मटमैले पानीको देख रही थी। तरुण सोच रहा था, उसकी सहचरी अब उसकी ओर देखेगी, किन्तु युगोंके बराबरके कितने ही मिनट बीत गये, तरुणीके अंग—नेत्र अब भी निश्चल थे, फुहारोंसे झरते जलकणको भी भौहोंसे पोंछनेका उसे ख्याल न था। तरुणने और प्रतीक्षा करनेमें अपनेको असमर्थ देख तरुणीके कन्धेपर धीरेसे हाथ रख दिया, तरुणीने मुँह फेरा। उसकी दूर गई दृष्टि लौट आई, और उन बड़ी-बड़ी काली आँखोंसे किरणें फूट निकलीं। उसके प्रकृत लाल ओठोंपर मुस्कान थी, और भीतरसे दिखलाती पतली दन्त-रेखा चमक रही थी। उसने तरुणके हाथको अपने हाथमें लेकर कहा—

"कमल ! तुम देरसे खड़े थे ?"

"जान पड़ता है युगोंसे, तबसे जब कि स्रष्टाने अभी अभी पानीसे पृथिवीको बनाना शुरू किया था, अभी वह गीली थी, और इतनी दृढ़ न थी कि पर्वत, वृक्षों और प्राणियोंके भारको सहन कर सकती।"

"जाने दो कमल ! तुम तो हमेशा कविता करते हो !"

"काश, सुरैया ! तुम्हारी बात सच्च निकलती, लेकिन जान पड़ता है, कविता मेरे भाग्यमें नहीं बदी है।"

"सुरैया किसी दूसरी नारीको अपने साथ रखना पसन्द नहीं करेगी।"

"यह हृदय भी यही कहता है। किन्तु, ध्यान-मग्न हो तुम क्या सोच रही थीं, मेरी सुरैया।"

"सोच रही थी, बहुत दूर,—बहुत दूर—समुद्र कितना दूर है कमल !"

"सबसे नज़दीक है सूरतमें, और वह एक मासके रास्तेपर है।"

"और यह जल कहाँ जाता है ?"

"बंगालकी ओर वह तो और दूर है, शायद दो महीनेके रास्तेपर।"

"इस बेचारे मटमैले जलको इतना बड़ा सफ़र करना पड़ेगा। तुमने समुद्रको देखा है कमल !"

"पिताजीके साथ उड़ीसा गया था प्यारी ! उसी वक्त देखा था।"

"कैसा होता है ?"

"सामने आकाश तक छाई काली तरंगित घटा।"

"इस जलके भाग्यमें वह समुद्र है। क्या वहाँ इसका मटमैला रंग रहेगा ?"

"नहीं प्यारी ! वहाँ सिर्फ़ एक रंग है घननील या काला।"

"किसी वक्त मैं भी समुद्र देखूँगी, यदि तुम दिखाना चाहोगे।"

"इस जलके साथ चलनेको तैयार हूँ प्यारी सुरैया ! तुम्हारी आज्ञा चाहिए।"

सुरैयाने कमलके गलेमें हाथ डाल दोनों भीगे कपोलोंको मिला दिया, फिर कमलके उत्फुल्ल नेत्रोंकी ओर देखते हुए कहा—

"हमें समुद्रमें चलना होगा, किन्तु इस जलके साथ नहीं।"

"मटमैले जलके साथ नहीं, प्यारी ?"

"मटमैला न कहो कमल ! मटमैला यह नहीं है। जब यह आकाश-से गिरा, तब क्या मटमैला था ?"

"नहीं, उस वक्त इसकी निर्मलता सूरज और चाँदसे भी बढ़कर थी। देखो, इन तुम्हारी सुन्दर अलकोंको इसने कितना चमका दिया ! तुम्हारे चन्द्रश्वेत कपोलोंको इसने कितना मनोरम बना दिया ! आकाश-से सीधे जहाँ-जहाँ पड़ा वहाँ-वहाँ इसने तुम्हारे सौन्दर्यको निखार दिया।"

"हाँ तो इसका मटमैलापन अपना नहीं है, यह इसे उनके संघर्षसे बनना पड़ा है, जो कि इसे सागर-संगमसे रोकते हैं। क्या सागरमें सीधी गिरती बूँदें ऐसी मटमैली होती हैं, कमल ?"

"नहीं, प्यारी !"

"इसीलिए मैं इसके मटमैलेपनको दूषण नहीं भूषण समझती हूँ। तुम्हारी राय क्या है कमल ?"

"सुरैया! तुम्हारे ओठ मेरे ही हृदयके अक्षरोंको प्रकट कर रहे हैं।"

(२)

आसमानकी नीलिमाकी छाया, अतल पुष्करिणीके जलको और नील बना रही है। उस नीलिमाके गिर्द अमल श्वेत संगमर्मरके घाट और भी श्वेत मालूम होते हैं। पुष्करिणीकी ओर हरी दूबके फ़र्शके बीच शिखरदार हरित सरो देखनेमें बड़े सुन्दर मालूम होते हैं, खासकर इस वसन्तके मध्याह्न समयमें। दूर-दूर तक वृक्षोंकी पाँती, लता-मंडप तथा चलते फ़ौवारोंसे उद्यान सजाया हुआ है। आज शाही बाग़ तरुण-तरुणियोंके वसन्तोत्सवके लिए खुला हुआ है और इस उन्मुक्त ससारमें स्वर्गीय प्राणियोंकी भाँति वह घूम रहे हैं।

बाग़के किनारे किन्तु, पुष्करिणीसे दूर एक लाल पत्थरकी बारादरी के बाहर चार आदमी खड़े हैं। सभीके सिरपर एक-सी आगेकी ओर ज़रासी निकली पगड़ी, एकसे घुट्टी तक लटकते चुने घिरावेदार बग़लबंदी जामे, एकसे सफ़ेद कमरबन्द हैं। सभीके मुखपर एकसी मूछें हैं; जिनके अधिकांश बाल सफ़ेद हो गए हैं। वह कुछ देरसे बाग़की ओर देख रहे थे, फिर जाकर चारों ओरसे खुली बारादरीमें बिछे गद्दे पर बैठ गए। चारों ओर नीरवता थी, इन वृद्धोंके सिवा वहाँ और कोई न था। नीरवताको भंग करते हुए किसीने कहा—

"बादशाह सलामत !—"

"क्या फ़ज़ल ! इस वक्त भी हम दर्बारमें बैठे हुए हैं ? क्या मनुष्य कहीं भी मनुष्यके तौरपर रहने लायक़ नहीं है ?"

"भूल जाता हूँ—"

"ज़लाल कहो या अकबर कहो—अथवा दोस्त कहो।"

"कितनी मुश्किल है, मित्र जलाल! हम लोगोंको दोहरी ज़िन्दगी रखनी पड़ती है।"

"दोहरी नहीं चौहरी भाई फ़ज़लू!"

"भाई बीरू! मैं तो तेरी तारीफ़ करूँगा, तू तो मालूम होता है, हर बातके लिए हर वक्त तैयार रहता है, हम तो एक दुनियासे जब दूसरी दुनियामें आते हैं, तो कितनी देर स्मृति ठीक करनेमें लग जाती है। क्यों टोंडू भाई! ठीक कह रहा हूँ न?"

"हाँ, मुझे भी तअज्जुब होता है फ़ज़लू! यह बीरू क्या करता है। इसका कितना बड़ा दिमाग़ है—"

"बीरबल हीको न सब लोग हिन्दुस्तानके एक एक खेतपर लग्गी चलानेवाला मानते हैं?"

"लेकिन टोडरमलने भी तो बीरू भाई! हर जगह लग्गी नहीं घुमाई।"

बीरबल—"घुमाई हो या न घुमाई हो, दुनिया यही जानती है। और इस दिमाग़की दादको हमारा जल्लू भी देगा।"

अकबर—"ज़रूर, और यह उन क़िस्सोंमें नहीं है, जो बादशाह जलालुद्दीन अकबरके भेस बदलकर गाँव-गाँवमें घूमनेके बारेमें मशहूर हैं।"

बीरबल—"यह अच्छी याद दिलाई जलुआ भाईने। और मैं भी इसके साथ मारा जा रहा हूँ। बीरबल और अकबरके नामसे कोई भी क़िस्सा गढ़कर कह डालना आम बात हो गई है। मैंने ऐसे बहुतसे क़िस्से जमा किये हैं। एक क़िस्सेके लिए एक अशर्फ़ी मुक़र्रर कर रखी है।"

अकबर—"कहीं, ऐसा न हो कि तुम्हारी अशर्फ़ीके लिए क़िस्से दिमाग़से सीधे तुम्हारे पास पहुँचते हों।"

बीरबल—"हो सकता है, किन्तु, इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता, तब भी तो यह पता लगेगा कि क्या-क्या खुराफातें हम दोनोंके नामसे रची जा रही हैं।"

बीरबल—"अबे फ़ज़्ला ! जाने दे, मैं सेठ छदामीमलकी तरहका मक्खीचूस नहीं हूँ ।"

अबुल् फ़ज़्ल—"नहीं, बीरू ! मुझपर नाहक़ नाराज़ न हो । और भाई ! तेरे क़िस्सोंसे मैं बहुत डरता हूँ ।"

बीरबल—"हाँ, मैंने ही न आईने-अकबरी जैसा पोथा लिखकर रख दिया है ।"

अबुल् फ़ज़्ल—"आईने-अकबरीके पढ़नेवाले कितने मिलेंगे, भई टोडू ! तू ही ईमान धरमसे कह; और कितने होंगे बीरबलके क़िस्सोंको दुहरानेवाले ?"

टोडरमल—"यह बीरू भी जानता है ।"

अबुल् फ़ज़्ल—"अच्छा, बीरू ! अपने अशर्फ़ीवाले किसी क़िस्से-को भी तो सुना ।"

बीरबल—"लेकिन, तुम सबने तो पहिले ही तै कर लिया है, कि यह क़िस्सा मेरी अशर्फ़ीका नहीं बल्कि मेरे दिमाग़का होगा ।"

अकबर—"लेकिन, बिना बतलाये भी हम परख सकते हैं, कौन असली सिक्का है, कौन खोटा ।"

बीरबल—"गोया मेरे हर क़िस्सेपर ठप्पा लगा रहता है । अच्छा भाई ! तुम्हारी मौज, क़िस्सा तो सुना ही देता हूँ, किन्तु, संक्षेपमें सिर्फ़ मतलबकी बात । अकबरको एक बार बहुत शौक़ हुआ हिन्दू बननेका । उसने बीरबलसे कहा । बीरबल बड़े संकटमें पड़ा । बादशाहसे नहीं भी नहीं कर सकता था, और हिन्दू बनानेका उसे क्या अधिकार था ! कई दिन ग़ायब रहा । एक दिन शामको बादशाहके महलकी खिड़कीके पास 'हिछ—छो—ो' 'हिछ—छो—ो'की आवाज़ ज़ोर-ज़ोरसे सुनाई दी । बादशाहको यहाँ और इस वक्त कभी कपड़ा धोनेकी आवाज़ नहीं सुनाई पड़ी थी । उसका कौतूहल बढ़ा । वह एक मज़दूरका कपड़ा पहिन जमुनाके किनारे गया । कितना ही रूप क्यों न बदला हो, बादशाह बीरूको

पहिचाननेमें ग़लती नहीं कर सकता। और वहाँ कपड़ा पाटेपर नहीं पटका जाता था, बल्कि एक मोटे-ताज़े गदहेको रेह और रीठेसे मल-मलकर धोया जा रहा था। बादशाहने अपनी मुस्कुराहटको दबा, स्वर बदलकर पूछा—

'क्या कर रहे हो चौधरी !'

'अपना काम कर भाई ! तुझे क्या पड़ी है !'

'बड़े बेवक्त जाड़े-पालेमें ठर रहे हो चौधरी !'

'मरना ही होगा, कल ही इसे घोड़ा बना बादशाहको देना है।'

'गदहेको घोड़ा बना !'

'क्या करना है, बादशाहका यही हुकम है।'

'बादशाहने हँसकर अपनी आवाज़में कहा—चलो, बीरबल ! मैं समझ गया मुसलमानका हिन्दू होना गदहेसे घोड़ा होनेके बराबर है।'

"भाई फ़ज़ल ! इस कहानीको सुनकर जान पड़ा, शरीरमें साँप डँस गया।"

अकबर—"और यह कहानी हमें अपने जीवनकी संध्यामें सुननेको मिल रही है ! क्या हमारे सारे जीवनके प्रयत्नका यही परिणाम होगा।"

अबुल्-फ़ज़ल—"जलाल ! हम अपनी एक ही पीढ़ीका ज़िम्मा ले सकते हैं। हमारे प्रयत्नको सफल-असफल बनाना बाग़में वसन्तोत्सव मनाती इन सूरतोंके हाथोंमें है।"

टोडरमल—"लेकिन, भाई ! हमने मुसलमानको हिन्दू या हिन्दूको मुसलमान बनाना नहीं चाहा !"

अबुल्-फ़ज़ल—"हमने तो दोनोंको एक देखना चाहा, एक जात, एक बिरादरी बनाना चाहा।"

बीरबल—"लेकिन, मुल्ले और पंडित हमारी तरह नहीं सोचते। हम चाहते हैं, हिन्दुस्तानको मज़बूत देखना। हिन्दुस्तानकी तलवारमें ताक़त है, हिन्दुस्तानके मस्तिष्कमें प्रतिभा है, हिन्दुस्तानके जवानोंमें हिम्मत है। किन्तु, हिन्दुस्तानका दोष, कमज़ोरी है, उसका बिखराव, टुकड़े-

टुकड़े बँटा होना। काश यदि हिन्दुस्तानकी तलवारें इकट्ठा हो जातीं ?"

अकबर—"बस मेरी एक मात्र यही इच्छा थी मेरे प्यारे साथियो ! हमने इसके लिए इतने समय तक संघर्ष किया। जिस वक्त हमने काम शुरू किया था, उस वक्त चारों ओर अँधेरा था, किन्तु, अब वही बात नहीं कह सकते। एक पीढ़ी जितना कर सकती थी, उतना हमने किया, किन्तु यह गदहे-घोड़ेकी बात मेरे दिलपर पत्थरकी तरह बैठ रही है।"

अबुल्-फ़ज़ल—"भाई जलाल ! हमें निराश नहीं होना चाहिए। मिलाओ, इसे खानखानाके समयसे। उस वक्त क्या जोधाबाई तुम्हारी स्त्री बनकर महलसरामें विष्णुकी मूर्त्ति पूज सकतीं ?"

अकबर—"फ़र्क़ है फ़ज़ल ! किन्तु हमें मंज़िल कितनी दूर चलनी है ? मैंने फिरंगी पादरियोंसे एक बार सुना, कि उनके मुल्कमें बड़ेसे बड़ा बादशाह भी एकसे अधिक औरतसे ब्याह नहीं कर सकता ! मुझे यह रवाज कितना पसन्द आया, इसे टोडर ! तुमने उस वक्त मेरी बातोंमें सुना होगा। यदि यह कहीं मैं कर सकता ! किन्तु, बादशाह बुराइयोंके करनेकी जितनी स्वतन्त्रता रखते हैं, उतनी भलाइयोंकी नहीं, यह कैसी विडम्बना है। यदि हो सकता तो मैं रनिवासमें सलीमकी माँको छोड़ किसीको न रखता। आज यदि सलीमके लिए भी ऐसा कर पाया होता !"

बीरबल—"प्रेम तो जलाल ! सिर्फ़ एकसे ही हो सकता है। जब मैं हंसोंके मनोहर जोड़ोंको देखता हूँ, तो मुझे मालूम होता है, कि उनका जीवन कितना सुन्दर है। वह जिस तरह आनन्दके साथी होते हैं, उसी तरह बिपताके भी साथी।"

अकबर—"मेरी आँखोंमें एक बार आँसू निकल आये थे भाई बीरू ! मैं शेरके शिकारमें गया था, गुजरातमें। हाथीपर चढ़कर तुफ़ंग (पलीते-वाली बन्दूक)से शेरको मारना कोई बहादुरी नहीं है, इसे मैं मानता हूँ। तुम्हारे पास शेर जैसे पंजे और जबड़े नहीं हैं, तुम भी ढाल तलवार लेकर उसके बराबर हो सकते हो, किन्तु इससे ज्यादा रखना वीरताके खिलाफ़

है। मैंने शेरको तुफ़ंगसे मारा। गोली उसके शिरमें लगी। शेर कूदकर वहीं गिर गया। उसी वक्त मैंने देखा झाड़ीमेंसे छलांग मारती शेरनीने एक बार मेरी ओर घृणाकी दृष्टिसे देखा, फिर मेरी तरफ़ पीठकर वह शेरके गालोंको चाटने लगी। मैंने तुरन्त शिकारियोंको गोली रोकनेका हुक्म दिया और हाथी वहाँसे लौटा लाया। उस वक्त मेरे मनपर ऐसी चोट लगी थी, कि यदि शेरनी मुझपर हमला भी करती, तो मैं हाथ न छोड़ता। मैं कितने ही दिनों तक ग़मगीन रहा। उस वक्त मैंने समझा, यदि शेरकी भी हज़ार पाँचसौ शेरनियाँ होतीं, तो क्या वह उस वक्त शेरके गालको इस प्रकार चाटतीं।"

अबुल्-फ़ज़ल—"हमारे देशको कहाँ तक चलना है, और हमारी गति कितनी मन्द रही है! फिर हमें यह भी मालूम नहीं कि जब चलनेके लिए हमारे पैर नहीं रहेंगे, तो कोई हमारे भारको वहन करनेवाला होगा भी।"

अकबर—"मैंने चाहा, तलवार चलानेवाली दोनों हिन्दू-मुसलिम जातियोंके खूनका समागम हो; इसी समागमकी ओर ध्यानकर मैंने प्रयागकी त्रिवेणीपर क़िला बनाया। गंगा-यमुनाकी धाराओंका वह संगम जिसने मेरे दिलमें एक विराट् संगमका विचार पैदा किया। लेकिन देखता हूँ, कि मैं उसमें कितना कम कामयाब रहा। वस्तुतः जो बात पीढ़ियोंके प्रयत्नसे हो सकती है, उसे एक पीढ़ी नहीं कर सकती। किन्तु मुझे इसका सदा अभिमान रहेगा, कि जैसे साथी मुझे मिले, वैसे साथी बहुत कमके भाग्यमें बदे होंगे। मैं देखना चाहता था घर-घरमें अकबर और जोधा-बाई मेहरुन्निसा और कौन जिसे मैं पा नहीं सका।"

टोडरमल—"हिन्दू इसमें ज्यादा नालायक़ साबित हुए।"

बीरबल—"और अब गदहेको धोकर घोड़ा बनानेकी कथा गढ़ रहे हैं। लेकिन, यदि हिन्दू मुसलमानोंमें इतना फ़र्क़ है, तो घोड़ा गदहा कैसे हो जाता है? क्या हज़ारों हिन्दू मुसलमान हुए नहीं देखे जाते?"

अकबर—"मेरी आँखें तरसती ही रह गईं, कि हिन्दू तरुण भी मुसल-

मान तरुणियोंसे ब्याह करें, बिना अपने नाम और धर्मको छोड़े।"

अबुल्-फ़ज़ल—"यहाँ मैं एक खुशखबरी सुनाऊँ भाई जलाल! मेरी सुरैयाने वह काम किया जो हम नहीं कर सके।"

सब उत्सुक हो अबुल्-फ़ज़लकी ओर देखने लगे।

"तुम लोग उत्सुक हो आगे सुननेको। ज़रासा मुझे बाहर हो आने दो—" कह अबुल्-फ़ज़लने बाहर कठघरेके किनारे खड़ा हो देखा, फिर आकर कहा—

"सुनाना, नहीं दिखाना अच्छा होगा, मेरे साथ चलो।"

सब उसी कठघरेके पास पहुँचे। अबुल्-फ़ज़लने हरे अशोकके नीचे पत्थरकी चौकीपर बैठी दो तरुण मूर्त्तियोंकी ओर अँगुली करके कहा—"वह देखो, मेरी सुरैया।"

टोडरमल—"और मेरा कमल! दुनिया हमारे लिए अँधेरी नहीं है, भाई फ़ज़्लू!" कह टोडरमलने अबुल्-फ़ज़लको दोनों हाथोंमें बाँध, गले लगा लिया।

दोनों मिलकर जब अलग हुए तो देखा चारोंकी आँखें गीली हैं। अकबरने मौनको भंग करते हुए कहा—

"मैंने तरुणोंका यह वसन्तोत्सव कितने वर्षोंसे कराया, किन्तु असली वसन्तोत्सव आज इतने दिनोंके बाद हुआ। मेरा दिल करता है, बुलाकर उन दोनोंकी पेशानीको चूमूँ। कितना अच्छा होता, यदि वह जानते कि हम उनके इस गंगा-यमुना-संगमको हृदयसे पसन्द करते हैं।"

अबुल् फ़ज़्ल—'सुरैयाको यह मालूम नहीं है कि उसके माँ बाप इस प्रणयको कितनी खुशीकी बात समझते हैं।'

टोडरमल—"कमलको भी नहीं मालूम; मगर तुम बड़े खुशक़िस्मत हो फ़ज़्लू! जो कि सुरैयाकी माँ भी तुम्हारे साथ है। कमलकी माँ और सुरैयाकी माँ दोनों पक्की सखियाँ हैं, तो भी कमलकी माँ कुछ पुराने ढर्रेकी है। कोई हर्ज नहीं, मैं कमल और सुरैयाको आशीर्वाद दूँगा।"

अकबर—"सबसे पहिले आशीर्वाद देनेका हक़ मुझे मिलना चाहिए।"

बीरबल—"और मुझे जल्लू! अपने साथ नहीं रखोगे?"

अकबर—"ज़रूर ऐसा धोबी कहाँ मिलेगा।"

बीरबल—"और ऐसा घोड़ा बननेवाला गदहा भी कहाँ?"

अकबर—"और आजकी हमारी गोष्ठी कितनी आनन्दकी रही। कहीं इस तरहका आनन्द महीनेमें एक दिनके लिए भी मिला करता!"

(३)

छतपर चारों ओर किवाड़ लगा एक सजा हुआ कमरा है, जिसकी छतसे लाल, हरे, सफ़ेद झाड़ टँगे हुए हैं। दरवाज़ोंपर दुहरे पर्दे हैं, जिनमें भीतरी पर्दे बूटेदार गुलाबी रेशमके हैं। फ़र्शपर सुन्दर ईरानी क़ालीन बिछा हुआ है। कमरेके बीचमें सफ़ेद गद्दीपर कितने ही गाव-तकिये लगे हुए हैं। गद्दीपर तरुणियाँ बैठी शतरंज खेल रही हैं, जिनमें एक वही हमारी परिचिता सुरैया है, और दूसरी लाल घाँघरे, हरी चोली तथा पीली ओढ़नीवाली फूलमती—बीरबलकी १२ वर्षकी लड़की। वह दोनों चाल सोचनेमें इतनी तल्लीन थीं, कि उन्हें गद्दीपर बढ़ते पैरोंकी आहट नहीं मालूम हुई। "सुरैया!" की आवाज़पर दोनोंने नज़र ऊपर उठाई और फिर खड़ी हो गईं। सुरैयाने "चाची!" कहा, और कमलकी माँ ने गलेसे लगा उसके गालोंको चूम लिया। सुरैयाकी माँ ने कहा—

"बेटी! जा, कमल तेरे लिए लाल मछलियाँ लाया है, हौज़में डालनेके लिए; तब तक मैं मुन्नीसे शतरंज खेलती हूँ।"

"मुन्नी बड़ी होशियार है अम्मा! मुझे दो बार मातकर चुकी है, इसे छोटी छोकरी न समझना"—कह सुरैया चादरको ठीक करती जल्दी-से कमरेसे बाहर निकल गई।

महलके पिछले बाग़में हौज़के पास कमल खड़ा था, उसके पास एक नई मिट्टीकी हँडिया पड़ी हुई थी। सुरैयाने पास जाकर कमलके हाथको अपने हाथोंमें लेकर कहा—

"लाल-पीली मछलियाँ लाये हो, कमल भाई !"

"हाँ, और सुनहरी भी।"

"देखें तो"—कह सुरैया झुककर हँडियामें झाँकने लगी।

"मैं इन्हें हौज़में डालता हूँ, उसमें देखनेमें ज्यादा सुन्दर मालूम होंगी, बिल्लौरी हौज़की चमकती तहमें उन्हें देखो, सुरैया।"

सुरैया ओठों और आँखोंमें हँसीको विकसित करते हुए हौज़के पास खड़ी हो गई। कमलने हँडियाकी मछलियोंको हौज़में उँडेल दिया। सचमुच बिल्लौरी हौज़में उनका लाल-गुलाबी-सुनहरा रंग बहुत सुन्दर मालूम होता था। कमलने गम्भीरतासे समझाते हुए कहा—

"अभी छोटी हैं सुरैया! लेकिन बढ़नेपर भी छै अंगुलसे छोटी ही रहेंगी!"

"अभी भी सुन्दर हैं कमल!"

"यह देखो, सुरैया! इसका कैसा रंग है?"

"गुलाबी।"

"जैसे तुम्हारे गाल, सुरैया!"

"बचपनमें भी तुम ऐसे ही कहा करते थे कमल भाई!"

"बचपनमें भी ऐसे ही थे सुरैया!"

"बचपनमें भी तुम मीठे लगते थे कमल।"

"और अब?"

"अब बहुत मीठे।"

"बहुत और कम क्यों?"

"न जाने क्यों, जबसे तुम्हारा स्वर बदला, जबसे तुम्हारे ओठोंपर हल्की कालीसी रोमोंकी पाँती उठने लगी, तभीसे, जान पड़ता है, प्रेम और भीतर तक प्रविष्ट कर गया।"

"और तभीसे, कमलको तुमने दूर-दूर रखना शुरू किया।"

"दूर-दूर रखना!"

"क्यों नहीं? पहिले कैसे उछलकर मेरे कन्धेसे लटकती हाथोंको तोड़ती—"

"सारी शिकायतोंका खसरा मत पेश करो कमल! कहो, कोई नई खबर।"

"नई खबर है सुरैया! हमारा प्रेम प्रकट हो गया।"

"कहाँ?"

"हमारे दोनों घरोंमें और आला हज़रत बादशाह सलामत तक!"

"बादशाह सलामत तक!"

"क्यों डर तो नहीं गई सुरैया!"

"नहीं, प्रेम कभी न कभी प्रकट होने ही वाला था। लेकिन, अभी कैसे हुआ?"

"इतना विवरण तो मैं भी नहीं जानता, किन्तु पता लगा कि चाचा-चाचीने ही पहिले इसका स्वागत किया, फिर पिता और बादशाह सलामतने, और सबसे पीछे माँने।"

"माँने?"

"माँसे लोगोंको डर था, जानती हो वह बड़े पुराने विचारोंकी स्त्री हैं।"

"लेकिन, अभी मेरे गालोंसे चाचीके चुम्बनके दाग़ मिटे न होंगे।"

"हाँ, ख्याल ग़लत निकला, जब उनसे पिताजीने कहा तो वह बहुत ख़ुश हुई।"

"तो हमारे प्रेमका स्वागत हुआ है?"

"जो हमारे हैं, उन सभी घरोंमें। किन्तु बाहरी दुनिया इसके लिए तैयार नहीं है।"

"इस बाहरी दुनियाकी तुम पर्वाह करते हो कमल?"

"बिल्कुल नहीं सुरैया! हाँ हम पर्वाह करते हैं आनेवाली दुनियाकी, जिसके लिए हम यह पथप्रदर्शन करने जा रहे हैं।"

"भाभी साहिबाको भी मालूम है, कमल ! मुझे अब साफ़ जान पड़ रहा है। रातमें उनके घर गई थी, उन्होंने मज़ाकमें कहा—'ननद ! मैं, नन्दोईके लिए तरस रही थी, किन्तु सुरैया मेरी ननद ! अब मेरी साध पूरी होने जा रही है।' उन्होंने तुम्हारा नाम नहीं लिया।"

"इसका मतलब है भाई साहबने भाभीको बतलाया, और दोनोंको हमारा प्रेम पसन्द है।"

"तो तुम्हारी सारी ससुराल तुम्हारे क़दमोंमें है कमल !"

"और तुमने माँको अपने पक्षमें करके कमाल किया !"

"चाचीकी पूजा-पाठका तुम लोग ख्याल करते हो कमल ! यदि तुम्हें पता होता कि वह मुझे कितना प्यार करती हैं, तो शायद उनपर सन्देह भी न होता।"

"इसीलिए उनपर चलानेके लिए पिताजीने अन्तिम हथियार तुम्हींको रखा था किन्तु, उस हथियारके पहिले ही क़िला फ़तेह हो गया। अब हम लोगोंका ब्याह होने जा रहा है।"

"कहाँ ?"

"न पंडितके पास न मुल्लाके पास।"

"हमारे अपने पैग़म्बरके पास, जो हिन्दमें नई त्रिवेणीका नया दुर्ग निर्माण कर रहा है।"

"जो गढ़े-गढ़हियों, नदी-नालोंको निर्मल समुद्र बनाना चाहता है।"

"परसों ऐतवारको, सुरैया !"

"परसों !"—कहते-कहते सुरैयाकी आँखोंमें नर्गिस्में शबनमकी तरह आँसू भर आये। कमलने उसका अनुकरणकर उसकी आँखोंको चूम लिया। दोनोंको नहीं पता था, कि कहीं छिपी चार आँखें भी उन्हींकी भाँति आनन्दाश्रु बहा रही हैं।

(४)

वसन्तकी गुलाबी सर्दी, सन्ध्याकी बेला, डूबते सूर्यकी गिरती लाल किरणोंसे आग लगा सागर—देखनेमें कितना सुन्दर दृश्य था। समुद्रके बालूपर बैठे दो तरुण-हृदय इसका आनन्द ले रहे थे। ललाईके चरम-सीमापर पहुँच जानेपर एकने कहा—

"सागर! हमारा इष्टदेव, कितना सुन्दर है!!"

"हम सागरकी सन्तानें हैं, अब इसमें कुछ सन्देह रहा प्रिये?"

"नहीं, मेरे कमल जैसे कमल! हमने क्या कभी ख्याल भी किया था, सागरने अपने गर्भमें ऐसे स्वर्गलोकको छिपा रखा है।"

"पूर्ण न हो, किन्तु वेनिस्को आदमियोंने स्वर्ग बनाया है प्रिये! इसमें सन्देह नहीं।"

"मैं साधुनीपर विश्वास नहीं करती थी, जब वह कहती थी, हमारे देशमें कुल-वधुएँ, कुल-कन्यायें ऐसे ही स्वच्छन्द, अवगुंठन-रहित घूमती हैं, जैसे पुरुष। और आज इस स्वर्गमें रहते हमें दो साल हो गये। मिलाओ, प्रिय! वेनिस्को दिल्लीसे।"

"क्या हम कभी विश्वास करते, सुरैया! यदि कोई कहता, कि बिना राजाके भी फलोरेन्स जैसा समृद्ध राज्य चल सकता है।"

"और वेनिस् जैसी नगरोंकी रानी हो सकती है?"

"क्या सुरैया! दिल्लीमें हम इस तरह स्वच्छन्द विहर सकते हैं?"

"बुर्क़ेके बिना! पालकीके भीतर मूँद-माँदकर जाना पड़ता, प्रिय कमल! और यहाँ हमें हाथमें हाथ मिलाये चलते देखकर कोई नज़र भी उठाकर नहीं देखता।"

"किन्तु गुजरातमें हमने देखा था अनावृतमुखी कुलांगनाओंको, सुना था, दक्षिणमें भी पर्दा नहीं होता।"

"इससे जान पड़ता है, किसी समय हिन्दकी ललनाएँ भी पर्देसे मुक्त थीं। क्या कभी हमारा देश फिर वैसा हो सकेगा कमल?"

"हमारे पिताओंने तो अपने जीवन-भर कोशिश की। यह छोटा-सा फ्लोरेन्स देश जिसे तीन दिनमें आर-पार किया जा सकता है, ज़रा देखो, इसकी ओर सुरैया! यहाँके लोग कितने अभिमानके साथ शिर उन्नत किये चलते हैं। यह किसीके सामने सिज्दा, कोर्निश करना जानते ही नहीं। राजाका नाम सुनकर थूकते हैं, इनके लिए राजा शैतान या आग उगलनेवाला नाग है।"

"लेकिन, कमल! क्या इसमें कुछ सत्यता नहीं है? फ्लोरेन्सके किसानोंसे तुलना करो हिन्दके किसानोंकी। क्या यहाँ वह नंगे-सूखे हाड़ कहीं दिखलाई पड़ते हैं?"

"नहीं, प्रिये! और इसीलिए कि यहाँ शाही शान-शौकतपर करोड़ों खर्च नहीं करना पड़ता।"

"वेनिस्में धनकुबेर हैं, और कितने ही हमारे जगत्-सेठोंको मात करते हैं।"

"हमारे जगत्-सेठ लाखपर लाल झंडियाँ गाड़नेवाले। मैं तो सोचा करता था, यह चहबच्चेके रुपये और अशर्फ़ियाँ अँधेरेमें पड़ी-पड़ी क्या करती हैं? इन्हें हवा खाना चाहिए, एक हाथसे दूसरे हाथमें जाना चाहिए। इनके बिना मिठाई अपनी जगह पड़ी-पड़ी सूखती है, फल अपनी जगह सड़ते हैं, कपड़ोंको गोदामोंमें कीड़े खाते हैं। और इन्हें गाड़कर हमारे सेठ लाल झंडियाँ गाड़ते हैं। लोग देखकर कहते हैं, सौ झंडियाँ हैं, सेठ करोड़ीमल हैं।"

सूर्यकी लाली कबकी ख़तम हो गई थी, अब चारों ओर अँधेरा छाया हुआ था। समुद्रकी लहरोंके किनारेके पत्थरोंपरसे टकरानेकी आवाज़ लगातार आ रही थी। तरुण-तरुणी अभी भी बालूपरसे उठना नहीं चाहते थे। वह सागरको सचमुच अपना प्रिय सम्बन्धी समझते थे। यद्यपि उन्हें स्वयं स्थलके रास्ते सफ़र करना पड़ा था, किन्तु, उन्हें मालूम था कि उनके सामनेके समुद्रका एक छोर हिन्दसे लगा हुआ है, इसीलिए उनके मनमें कभी-कभी ख्याल आता था, क्या इस पारसे उस पारको मिलाया नहीं जा सकता।

कितनी ही रात गये दोनों लौट रहे थे। उस अँधियारी रात और अपने हृदयकी अवस्था देखकर सुरैयाने कहा—

"हमारे बादशाहने अपने राज्यमें शान्ति स्थापित करनेके लिए भारी प्रयत्न किया, और उसमें उन्हें बहुत कुछ सफलता भी प्राप्त हुई; किन्तु क्या वहाँ अँधेरी रातमें हम इस प्रकार निःशंक घूम सकते। यह क्यों?"

"यहाँ सब खुशहाल हैं। किसानोंके खेत अंगूर, सेब, गेहूँ पैदा करते हैं?"

"हमारे भी खेत सोना बरसाते हैं?"

"तो सोनेके लूटनेवाले हमारे यहाँ ज्यादा हैं, सुरैया!"

"और कमल! देखते हो, यहाँ किसीके घरमें जानेपर कैसी बेतकल्लुफ़ीसे गिलास और बोतल मेज़पर आ जाती हैं।"

"हिन्दमें पिताजी इसीलिए बदनाम थे, कि वह बादशाहके साथ पानी पी लेते थे।"

"और मुझे मेरी दाइयाँ सिखलाया करती थीं कि राजपूतनियाँ बड़ी नज्स (गन्दी) होती हैं, उनके घरमें सूअर पकता है। काश कि, वहाँके अन्धे यहाँ आकर देखते। इस दुनियामें छोटी-बड़ी जात नहीं।"

"इस दुनियामें खाने-पीनेकी छूत-छात नहीं।"

"फ्लोरेन्स एक है, कभी हिन्द भी इसी तरह एक होगा, कमल!"

"यह तभी होगा, जब हम सागरकी शरण लेंगे, सागर विजय प्राप्त करेंगे।"

"सागर-विजय!"

"वेनिस् सागर-विजयिनी नगरी है सुरैया! वेनिस्की यह नहरोंकी सड़कें, ये ऊँचे-ऊँचे प्रासाद उसी सागर-विजयके प्रसाद हैं। आज वेनिस् सागरविजयमें अकेली नहीं है, उसके कितने ही और भी प्रतिद्वन्द्वी हैं, किन्तु मुझे यह साफ़ मालूम होता है, अब सागर-विजयियोंका ही संसारपर शासन होगा। मैं अपनेको सौभाग्यवान् समझता हूँ, जो मेरे हृदयमें इसकी ओर प्रेरणा हुई।"

"तुम क्या-क्या किताबें लिए रात-रात पड़े रहते हो प्रिय! और पुस्तकें यहाँ कितनी सुलभ हैं!"

"हमारे यहाँ भी सीसा है प्रिये! हमारे यहाँ भी काग़ज़ है, हमारे यहाँ भी कुशल लोहार-मिस्त्री हैं; किन्तु हम अभी तक पुस्तकें छापना नहीं जानते। यदि छापाखाना हमारे यहाँ खुल जाये, तो ज्ञान कितना सुलभ हो जाये। और यह ज़ो पुस्तकें मैं पढ़ रहा हूँ, हफ्तों मल्लाहोंके साथ ग़ायब रहता हूँ, इसने मुझे निश्चय करा दिया, कि सागर-विजयी देश विश्व-विजयी होकर रहेगा। इन फिरंगियोंको हमारे देशवाले नहाने-धोनेकी बेपर्वाहीके कारण गन्दे जंगली कहते हैं; किन्तु, इनकी जिज्ञासाको देखकर मन प्रशंसा किये बिना नहीं रहता। इन्होंने भूगोलके किस्से नहीं गढ़े बल्कि जाकर हर जगहकी जानकारी प्राप्त की। इनके नक़शे मैंने तुम्हें दिखाये थे, सुरैया!"

"सागर मुझे कितना अच्छा लगता, कमल!"

"अच्छा ही नहीं सुरैया! सागर हीके हाथोंमें देशोंका जीवन होगा।"

"तुमने देखा, इन लकड़ीके जहाज़ोंपर लगी, तोपोंको। ये चलते-फिरते किले हैं। मंगोलोंको उनके घोड़ोंने जिताया था और बारूदने भी। अब दुनियामें जिसके पास वे युद्धपोत होंगे, वही जीतेगा। इसीलिए मैंने इस विद्याको सीखना तै किया, सुरैया।"

कमल और सुरैयाकी इच्छा पूरी नहीं हुई। वह भारतके लिए रवाना हुए किन्तु वह समुद्री डाकुओंका युग था। सूरत पहुँचनेसे दो दिन पहले उनके जहाज़पर समुद्री डाकुओंने हमला किया। अपने दूसरे साथियोंके साथ मिलकर कमलने भी अपनी तोपों और बन्दूक़ोंको डाकुओंके ऊपर भिड़ा दिया। किन्तु डाकू संख्यामें अधिक थे। कमलका जहाज़ तोपके गोलेसे जर्जर हो जल-निमग्न होने लगा। सुरैया उसके पास थी, और उसके मुस्कुराते ओठोंपर अन्तिम शब्द थे—"सागर-विजय।"

१७—रेखा भगत

काल—१८०० ई०

(१)

कार्तिककी पूर्णिमा है। गंडक (नारायणी)-स्नान और हरिहरनाथके दर्शनकी भीड़ है। दूर-दूरसे ग्रामीण नर-नारी बड़े यत्नसे बचाये पैसे और सत्तू-चावल लेकर हरिहर क्षेत्र पहुँचे हैं। बग़ीचेमें उस वक्त कुछ बैल-घोड़ों, हाथियोंको बँधा देखकर किसे उम्मीद हो सकती थी, कि यही आगे बढ़कर संसारका सबसे बड़ा मेला बन जायेगा।

गाढ़ेके अँगोछेमें नमकीन सत्तूको हरी मिर्चों और मूलीके साथ बड़े स्वादके साथ खाकर रेखा भगत और उनके चार साथी एक आमके नीचे कम्बलपर बैठे हुए हैं। रेखाकी भैंस बिक गई है, और अब भी वह अपनी टेंटमें उन बीस रुपयोंको जब-तब देख लिया करता था। मेलेके लिए मशहूर था, कि जादूसे रुपये निकाल लेनेवाले चोर आजकल बहुत आये हुए हैं। रेखाका हाथ फिर एक बार टेंटपर गया, और इत्मीनानके साथ उसने बात शुरू की—

"हमारी तो भैंस बिक गई। तीन महीनेसे, मौलू भाई! खूब खिला-पिलाकर तैयार किया था। बीस रुपये वैसी भैंसके लिए कम दाम नहीं हैं। किन्तु आजकल लछिमी आँखसे देखते-देखते उड़ जाती हैं।"

मौला—"उड़ जाती हैं, और रुपये-पैसेका चारों ओर निठाला है रेखा भाई! इस कम्पनीके राजमें कोई चीज़में बरक्कत नहीं। हम मिट्टी खोदते-खोदते मर जाते हैं, और एक शाम भी बाल-बच्चोंको पेट-भर खानेको नहीं मिलता।"

रेखा—"अभी तक तो हम हाकिमकी नज़र-बेगार, अमला-फैलाकी घूँस-रिश्वतमें ही तबाह थे, किन्तु कमसे कम खेत तो हमारा था।"

मौला—"सात पुश्तसे जंगल काटकर हमने खेत आबाद किया था।"

सोबरन—"मौलू भाई! बघियाका खेत है न? वहाँ भारी जंगल था। हमारे मूरिस घिनावन बाबाको वहीं बाघ उठा ले गया, तभीसे उस जगहका नाम बघिया पड़ा। जान दे देकर हमने खेत आबाद किया था।"

इसी बीच पतली छींटकी सफ़ेद पगड़ीको नंगे काले बदनपर सँभालते भोला पंडितकी ओर देखकर रेखाने कहा—

"भोला पंडित! तुम तो सतयुग तककी बात जानते हो, ऐसा तो गाढ़ प्रजापर कभी नहीं पड़ा होगा?"

मौला—"खेत हमने बनाया, जोतते-बोते हम हैं पंडित! और अब हमारे गाँवके मालिक हैं रामपुरके मुंशीजी।"

भोला पंडित—"अधर्म है अधर्म रेखा भगत! कम्पनीने तो रावण और कंसके जुलुमको मात कर दिया। पुराने धर्मशास्त्रमें लिखा है, राजा किसानसे दशांश कर ले।"

मौला—"और पंडित! मुझे तो अचरज है, यह रामपुरके मुंशी-को हमारा मालिक-ज़मींदार क्यों बना दिया?"

भोला पंडित—"सब उलटा है मौलू! पहिले प्रजाके ऊपर एक राजा था। किसान बस एक राजाको जानता था। वह दूर अपनी राज-धानीमें रहता था, उसे सिर्फ़ दशांशसे मतलब था, सो भी जब फ़सल हुई तब। किन्तु, अब फ़सल हो चाहे न हो, ज़मींदारको अपना हाड़-चाम बेचकर, बेटी-बहिन बेचकर मालगुज़ारी चुकानी होगी।"

रेखा—"और मालगुज़ारीका भी पता नहीं पंडित! साले साल बढ़ती जाती है। कोई नहीं पूछनेवाला है, कि क्यों ऐसा अन्धेरखाता है।"

मुंशी सदासुखलाल पटवारी आए थे हरिहर क्षेत्र स्नान करने, और सस्ता होनेपर एक गाय ख़रीदने, किन्तु, अबके सालकी मँहगाईको देखकर

उनकी टाँग थहरा गई। उनके बदनपर एक मैली-कुचैली मिर्जई, और सिरपर टोपी थी; कानोंपर सरकंडेकी कलम अब भी टँगी थी, जान पड़ता था, यहाँ भी उन्हें सियाहा लिखना है। मसरखके ज़मींदारके पटवारी होनेसे वह सोच रहे थे, कि इस बातचीतमें भाग लें या न लें; किन्तु, जब गाँवकी राजनीति छिड़ गई हो, उस वक्त कान-मुँह रखनेवाले आदमीके लिए चुप रहना मुश्किल हो जाता है। दूसरे दयालपुर, उनके मालिकका गाँव भी न था, इसलिए भी दयालपुरके किसानोंकी बातचीत-में हिस्सा लेनेमें उन्हें कोई हर्ज नहीं मालूम हुआ। मुंशीजीने कलमको अँगुलीमें दबाकर घुमाते हुए कहा—

"पंडित! किसी पूछनेवालेकी बात करते हो? कौन पूछेगा? यहाँ तो अपनी-अपनी लूट है—'पर सम्पतिकी लूट है, लूट सकै सो लूट'। कोई राजा नहीं है। नाज़िम साहेबके दर्बारमें मेरी मौसेरी बहिनका दामाद रहता है। उसको बहुत भेद मालूम है। कोई राजा नहीं। सौ-दो-सौ फिरंगी डाकुओंने जमात बाँध ली है, इसी जमातको कम्पनी कहते हैं।"

रेखा—"मंसी जी! ठीक कहते हो, 'कम्पनी बहादुर' 'कम्पनी बहादुर' सुनते-सुनते हम समझते थे, कम्पनी कोई राजा होगा, लेकिन असिल बात आज मालूम हुई।"

मौला—"तभी तो, जिधर देखो उधर लूट मची है, कोई न्याय-अन्यायकी खबर लेनेवाला है? क्या रामपुरके मंसीजीकी सात पीढ़ीका भी दयालपुरसे कोई वास्ता था?"

सोबरन—"मुझे तो समझ हीमें नहीं आता मौलू भाई! यह राम-पुरका मुंसी कैसे हमारे गाँवका मालिक बन गया। दिल्लीके बादशाहसे कम्पनीने लोहा लिया—"

मुंशी—"दिल्ली नहीं सोबरन राउत! मक़सूदाबाद (मुर्शिदाबादके) नवाबसे लोहा लिया। दिल्लीके तख़तसे मक़सूदाबादने हमारे मुलुकको छीन लिया था, सोबरन राउत!"

सोबरन—"हम लोगोंको इतना याद नहीं रहता मंसीजी! हम तो दिल्ली ही जानते थे। अच्छा मकसूदाबादके हाथमें भी जब राज आया, तब भी तो एक ही राजा न था? हमसे जो जुटता-बनता, मालगुज़ारी चुकाते थे। लेकिन अब इसको दो-दो राजा कहेंगे कि क्या कहेंगे?"

रेखा—"सोबरन भाई! दो-दो राज हुए ही कि? एक कम्पनीका राज दूसरे रामपुरके मंसीजीका राज। चक्कीके एक पाटमें पिसनेमें कुछ बचनेकी भी आशा रहती है, भोला पंडित! लेकिन दो-दो पाटमें पड़-कर बचना नहीं हो सकता। और इसे हम आँखोंसे देख रहे हैं। मंसी-जी! तुम्हीं बतलाओ, हम लोग तो गँवार, मूरख, अनाड़ी हैं, तुम्हीं हमारेमें सज्ञान हो—या भोला पंडित।"

मुंशी—"रेखा भगत! कहते तुम ठीक हो। ज़मींदार चक्कीका दूसरा पाट है। और वह राजासे किस बातमें कम है?"

रेखा—"कम काहेको बढ़कर है, मंसीजी! गाँवकी पंचायतको अब कोई पूछता है? रवाज है, हम लोग पाँच पंच चुनकर रख देते हैं, लेकिन वह किसी काममें हाथ लगाने पाते हैं? सब ज़मींदार और उसके अमला-फैला करते हैं। झगड़ा हो तो मुद्दई-मुद्दालेह दोनों ओरसे डाँड़ (जुर्माना) लेते हैं। पन्द्रह वर्ष भी तो नहीं बीता सोबरन राउत! कभी मर्द-औरतके झगड़ेमें भैंस नीलाम होते देखा था?"

सोबरन—"अरे, उस वक्त तो सब कुछ पंचायतके हाथमें था। गाँवके पंच किसी घरको उजड़ने देते, वह खून तकमें सुलह-सराफ्त करा देते थे, रेखा भगत! और बाँध-खाँड़ नहीं देख रहे हो? मालूम होता है, उनका कोई गर-गुसैयाँ नहीं है। जो पंचायत चलती रहती, तो क्या कभी ऐसा होता?"

रेखा—"नहीं होता सोबरन राउत! अपने बाल-बच्चेके मुँहमें आग कौन लगाता? पानी बेशी बरसे तो अब खाँड साफ़ करके नहीं रखी है कि बेशी पानी निकल जाये, पानी कम बरसे तो बाँध नहीं है कि

पानी रोककर रखे, जिसमें फ़सल सूखने न पाये।"

मुंशी—"पंचायतमें आग लगाकर कम्पनीने यह काम ज़मींदारको सौंप दिया।"

रेखा—"और ज़मींदार क्या करता है, हम उसे देख रहे हैं।"

मुंशी—"मैं भी ज़मींदारका नमक खाता हूँ, रेखा भगत! जानते हो मसरखके ज़मींदारका पटवारी हूँ। लेकिन यह अन्यायका धन है, अन्यायका जो खाता है, गल जाता है। मुझको देखो, सात बेटे थे, साँड़से होकर सब उफर पड़े", मुंशीजीकी आँखोंमें आँसू देखकर सबका दिल पसीज गया "उफर पड़े रेखा भगत! अब घरमें एक बाधी भी नहीं है पानी देनेके लिए, और मालिककी जानते ही हो, छपराकी रंडीके पीछे क्या-क्या गति हुई! इन्द्रिय कटकर गिर गई है, रेखा भगत! गिर गई है यह जो दोनों बबुआको देख रहे हो, यह खवासके हैं।"

रेखा—"मालिकोंमें अब यह बहुत चने लगा है, मंसीजी!"

सोबरन—"खेत गया, गाँव गया, सात समुन्दर पारके डाकुओंने हमारे ऊपर घरके डकैतोंको ला बैठाया। पंचायत गई, जो चार अच्छत उपजाते, वह भी आगम गया; और जो कभी ठीकसे बरसा-बुंदी हुई, चारदाना घर आया, तो मालिक ज़मींदार, गोराइत—चौकीदार, पटवारी-गुमाश्ता कितनेकी चोंथसे बचे।"

मुंशी—"पटवारीकी लूटको मैं मानता हूँ, सोबरन राउत! किन्तु, यह भी जानते हो न, पटवारीको ज़मींदार आठ आना महीना देता है। आठ आना महीनेमें बताओ, हमारे कायथोंकी जीभ भी नहीं भीग सकती, क्या ज़मींदार यह बात जानते नहीं?"

रेखा—"जानते हैं मंसीजी! सब देखते हैं, ज़मींदार अन्धे नहीं हैं। राजा कम्पनी बहादुर डकैत है ही, उसने ज़मींदारको हमारे ऊपर नया बैठाया सो डकैत, और ज़मींदारने और छोटे-छोटे एक टोकरी डकैत हमारे शिरपर बैठा दिये। इसपर भी हम कैसे जी रहे हैं?"

सोबरन—"जीते हैं क्या रेखा ! अब पेटभर अन्न, तनपर कपड़ा रखनेवाला दयालपुरमें कोई दिखाई पड़ता है ?"

मुंशी—"कम्पनीको क्या फ़िकर है सोबरन राउत ! उसने मालगुज़ारी बाँध दी है, क़िस्तके दिन छपरा जा ज़मींदार तोड़ा डाल आते हैं। कम्पनीका दाम-दाम चुकता हो जाता है, दयालपुरके किसान मरें चाहे जियें, ज़मींदार मार मारकर धुर्रे उड़ा देगा, यदि उसकी मालगुज़ारी न बेबाक़ करो—पाँच रुपया तुमसे लेता है एक रुपया कम्पनीको देता है, और चार रुपये अपने पेटमें डालता है, सोबरन राउत !"

रेखा—"हे भगवान् ! तुम सो गये या उफर पड़े। तुम काहे नहीं नियाव करते ? हम तो हार गये।"

सोबरन राउत—"हाँ, हार गये रेखा ! सुना न है, बरई पर्गनावालोंने एका करके ज़मींदारको मालिक माननेसे इन्कार कर दिया था। उन्होंने छपरा जा कम्पनीके साहेबसे कहा—'हमारी पंचायत मालगुज़ारी चुकावेगी, हम ज़मींदारको नहीं मानेंगे।' तो साहेबने जानते हो क्या जवाब दिया—'सूखा-बाढ़की मालगुज़ारी भी, दोगे ?' सूखा बाढ़में अपने ही बाल-बच्चोंका प्राण जिलाना मुश्किल है, उस फिरंगीको यह कहते देवराजाका भी डर नहीं मालूम हुआ। और वह भी उसने ऊपरी मनसे कहा था। रेखा ! उसने पीछे कहा—'तुम लोग कँगले हो, जब तुम मालगुज़ारी नहीं दोगे, तो कम्पनी बहादुर तुम्हारा क्या लेगा ? हम पैसेवाले इज़्ज़तदार आदमीको ज़मींदार बनाते हैं, जिसमें हमारी मालगुज़ारी बक़ाया रखनेमें उसे घरबार नीलाम होने, इज़्ज़त जानेका डर हो।"

रेखा—"तभी तो चरक (कोढ़) फूटा रहता है, सारे देहमें इन फिरंगियोंके, ये बड़े निर्दयी होते हैं।"

सोबरन—"बरईवालोंको कोई चारा नहीं रहा, तो वह जानपर खेले। कम्पनी बहादुर होता, तो बहादुरकी तरह लड़ता, लड़नेवालेसे लड़ता। बरईवालोंके पास पत्थरकला (बन्दूक) था, कम्पनीवालोंके पास

तोप थी। और कहाँ-कहाँसे गोरी-काली पल्टन उतर आई थी। गाँवके गाँवको जला दिया, स्त्री-बच्चोंको भी नहीं छोड़ा। बरईवाले क्या करते?"

मौला—"खेतीबारी तो इस तरह तबाह हुई, और जुलाहोंके मुँहमें भी जाब लगने लगा है, सोबरन राउत! अब कम्पनी बहादुर अपना कपड़ा बिलाइतसे लाकर बेच रहा है।"

मुंशी—"हाँ, कलपरका कता-बुना। देखो यह मेरी मिर्जई उसीकी है, सोबरन राउत! इतना सस्ता चर्खे-कर्घेका कपड़ा नहीं मिलता, इसीलिए इज़्ज़तके लिए लेना पड़ता है। इज़्ज़तका ख्याल है, रेखा भगत! मुस्कुराते क्यों हो, सर्कार-दर्बारमें जाकर जाज़िमपर बैठना हो, तब न मालूम हो।"

रेखा—"तुम्हारी इज़्ज़तके लिए नहीं हँस रहा था, मंसीजी! हँस रहा था, कम्पनी बहादुर राज भी करता है, और व्योपार भी। ऐसा भी राज!"

भोला पंडित—"सतयुग, त्रेता, द्वापर बीते और कलयुगके भी पाँच हज़ार वर्ष बीत गये। इतने कालमें ऐसा राज तो नहीं सुना था।"

मुंशी—"नाज़िमके दर्बारके एक मुंशीने कम्पनीको फिरंगी डकैत बतलाया था, भोला पंडित! और दूसरेने कहा था कि कम्पनी फिरंगी सौदागरोंकी जमात है, अपने देशसे वह सिर्फ़ व्यापारके लिए आई है। पहिले यहाँका माल वहाँ बेंचती थी, अब उसने बिलाइतमें बड़े-बड़े कारखाने खोल दिये हैं, जिसमें खुद माल तैयार कराती है, और खुद ही बेंचती है।"

मौला—"तो मालूम हुआ, अब कारीगरोंकी भी खैरियत नहीं।"

(२)

जाड़ोंकी गंगा हरी होती है, और उसकी स्वाभाविक गम्भीर गति और गम्भीर हो जाती है। इस वक़्त नावोंके मारे जानेका बहुत कम डर रहता है, इसलिए व्यापारी इसे व्यापारके लिए सुन्दर मौसिम मानते

हैं। इस समय गंगाके किनारे चार घंटे बैठ जानेसे सैकड़ों बड़ी-बड़ी नावें वहाँसे पार होती देखी जायेंगी, इनमेंसे अधिकांशपर कम्पनीका माल है, जिनमेंसे कितना ही विलायतसे आकर ऊपरकी ओर जा रहा है। और पटना, गाजीपुर, मिर्ज़ापुर जैसे तिजारती शहरोंके घाटोंपर देखते, तो गंगाकी सारी धार बड़ी-बड़ी नावोंसे ढँकी दिखाई पड़ती।

पटनासे एक बजरा (बड़ी नाव) नीचेकी ओर जा रहा था, जो शोरा, कालीन आदि कितनी ही चीज़ें विलायत ले जा रहा था। पटनासे कलकत्ता पहुँचनेमें हफ्तेसे ज्यादा लगता है, इसलिए तिनकौड़ी दे और कोलमैनमें धीरे-धीरे घनिष्टता बढ़ गई। यद्यपि शुरूमें एक दूसरेसे मिलनेमें वह हिचकिचाते थे। तिनकौड़ी देके लिए नकली जुल्फी-चोटी (ह्विग्), पाँवमें सटे सुत्थन, घुंडीके फीतोंमें टँके बटन काले कोटके साथ चरका (सफ़ेद) मुँह बड़े रोब और भयकी चीज़ थी; किन्तु, बातका प्रारम्भ कोलमैन होने किया, इसलिए धीरे-धीरे तिनकौड़ीकी हिम्मत बढ़ चली। वार्त्तालापमें तिनकौड़ीको मालूम हुआ, कि कोलमैन कम्पनीके साहिबोंसे जला-भुना है, और गवर्नरसे लेकर कम्पनीके छोटे-बड़े एजंट तकपर भी प्रहार करनेमें उसको कोई हिचकिचाहट नहीं है। तिनकौड़ी भी कम्पनीके नौकरोंसे खार खाए हुआ था। बीस साल तक उसने कम्पनीके बड़े बड़े दफ़्तरोंमें किरानी (क्लर्क)का काम किया। वह ग़रीब घरमें पैदा हुआ था; किन्तु, उन आदमियोंमें था जिनका लोभ परिमित और आत्मसम्मानके अधीन होता है। तिनकौड़ीने ज़िन्दगी भरके खानेके लिए कमा लिया था, किसी पुराने एजंटकी कृपासे लूटके वक्त उसे चौबीस पर्गना ज़िलामें चार गाँवोंकी ज़मींदारी मिल गई थी, जिसकी आमदनीके देखनेसे मालगुज़ारी बहुत कम थी। यह साहेबकी मेहरबानी थी, किन्तु, उस मेहरबानीके प्राप्त करनेके लिए तिनकौड़ीने ऐसा काम किया था, जिसका पाप, तिनकौड़ी समझता था, जन्मजन्मान्तरमें भी नहीं छूटेगा। उसने साहेबको खुश करनेके लिए गाँवकी एक सुन्दर तरुण ब्राह्मणीको उसके पास पहुँचाया

था। साहेब लोग उस वक्त बहुत कम अपनी मेमोंको लाते थे, क्योंकि छै महीनेके ख़तरोंसे भरी समुद्र-यात्रा करना आसान न था। तिनकौड़ीकी उम्र पैंतालीस वर्षकी थी, उसका काला गठीला बदन बहुत स्वस्थ था, किन्तु वह रोज़ सबेरे उठकर दर्पणमें मुख देखता, और हाथकी अंगुलियोंको निहारता। वह किसी दिन भी कोढ़ फूटनेकी प्रतीक्षा कर रहा था, ब्राह्मणीके सतीत्व भंगका दंड, उसके विचारमें, यही होनेवाला था। साहेबोंकी झिड़कियों, गालियों, ठोकरोंको सहते-सहते वह तंग आ गया था, इसलिए अभी नौकरी करनेकी उम्र होनेपर भी घरभरके मर जानेसे नौकरीसे इस्तीफ़ा दे गाँवको लौट रहा था। बीस वर्षतक चुपचाप बर्दाश्त किये अपमानकी आग उसके दिलमें भभक रही थी। जब उसने कोलमैनको अपनेसे भी ज्यादा कम्पनी और उसके कर्मचारियोंका शत्रु देखा; तो धीरे-धीरे दोनों खुलकर बातें करने लगे। कोलमैन एक दिन कह रहा था—

"ईस्ट इंडिया कम्पनी व्यापारके लिए बनाई गई थी, किन्तु पीछे इसने लोगोंको लूटना शुरू किया। देखते नहीं, जितने साहेब यहाँ आते हैं, जल्दीसे जल्दी लखपती बनकर देश लौट जाना चाहते हैं। छोटे-बड़ेकी यही हालत है! क्लाइवने ऐसा ही किया, लेकिन उसको किसीने नहीं पकड़ा। वारेन हेस्टिंग्सको अपने लोभमें चेतसिंहकी रानियोंके भूखे मरने तकका भी ख्याल नहीं आया, अवधकी बेगमोंको उसने कंगाल बनाया; किन्तु, उसको हमारे देशवालोंने नहीं छोड़ा। सज़ासे तो बच गया, किन्तु कई वर्षोंके मुक़दमेमें जो कुछ कमाया था, चला गया।"

"किसने मुक़दमा चलाया, साहेब?"

"पार्लमेंटने। हमारे यहाँ राजा मनमाना नहीं कर सकता, मनमानी करनेके लिए एक राजाकी गर्दनको हम कुल्हाड़ेसे काट चुके हैं, और वह कुल्हाड़ा अब भी रखा हुआ है। पार्लमेंट पंचायत है दे! जिसके अधिकांश लोगोंको देशके धनीमानी लोग चुनते हैं, और कुछ बड़े-बड़े ज़मींदार खान्दानके कारण उसमें लिए जाते हैं।"

"ज़मींदार कितने दिनोंसे होते आये हैं साहेब ?"

"हमारे यहाँकी देखादेखी हिन्दुस्तानमें ज़मींदारी क़ायम हुई है दे ! हमारे यहाँ वह कई सौ सालसे चली आती है, किन्तु उसके लिए वहाँ भी ज़बर्दस्ती खेतसे किसानोंकी मिल्कियत छीनी गई थी। ज़मींदारी क़ायम करनेवाले गवर्नरका नाम जानते हो ?"

"हाँ, कार्नवालिस्।"

"हाँ, विलायतमें वह एक नम्बरका कसाई ज़मींदार है। उसने; यहाँ आकर देखा, जब तक किसान खेतोंके मालिक रहेंगे, तक तक सूखा-बाढ़के कारण, अथवा ज्यादा झड़ी होनेके कारण मालगुज़ारी ठीकसे वसूल नहीं हो सकेगी। उसने यह भी सोचा कि सात समुन्दर पारके अंग्रेज़ोंको बेगाने मुल्कमें दोस्त भी पैदा करना चाहिए और ऐसा दोस्त, जिसका स्वार्थ अंग्रेज़ोंके स्वार्थसे बँधा हो। ज़मींदार अंग्रेज़ोंकी सृष्टि हैं। किसानके विद्रोहसे अंग्रेज़ोंके राज्यका जिस तरहका खतरा है, उसी तरह ज़मींदारोंको अपनी ज़मींदारी, अपनी सम्पत्ति और अपनी इज्ज़त जानेका खतरा है। इसलिए यदि छोटे-छोटे किसानोंको मालिक न मानकर बड़े-बड़े पचीस-पचास गाँवोंका एक मालिक—ज़मींदार—बना दिया जाये, तो वह हमारी विपत्-सम्पत् दोनोंमें काम आयेंगे। इस तरह विलायतके इस कसाई ज़मींदारने हिन्दके किसानोंकी गर्दनको रेत दिया।"

"रेत दिया इसमें शक नहीं"—तिनकौड़ीको अपनी ज़मींदारीके किसान याद आ रहे थे।

"जागीरदारोंके ज़ुल्मके मारे सारी दुनियाके लोग तबाह हैं, लेकिन इनके दिन भी इने-गिने हैं दे।"

"कैसे, साहेब ?"

"फ्रांसके राजा-रानीको कुछ ही वर्ष पहिले प्रजाने जानसे मार डाला, और उस क्रोधाग्निमें कितने ही जागीरदार—ज़मींदार भी जलकर खाक हो गये। ज़मींदारी प्रथा उठा दी गई। लोगोंने मनुष्य मात्रके लिए

स्वतन्त्रता, समानता, भ्रातृभावका सिद्धान्त घोषित किया। मैं फ़्रांसमें था, उस वक्त दे! और फ़्रांसके राजाके महलोंपर फ़्रांसीसी प्रजा-तन्त्रका तिरंगा झंडा फहराते मैंने खुद देखा है। इंग्लैंडके राजा, ज़मींदार—जागीरदार आजकल थरथर काँप रहे हैं। और इंग्लैंडमें भी फ़्रांसवाली बात हुई होती, किन्तु एक और बातने उन्हें बचा दिया, मुझे इसका अफ़सोस है, दे!"

"किस बातने, साहेब?"

"देखते नहीं हो, विलायती कारख़ानोंका कितना माल हिन्दुस्तानकी बाज़ारोंमें पट रहा है? तुम्हारे यहाँके जुलाहे, सुतकत्तिनें बेकार हो रही हैं, और हमारे यहाँके सेठोंने अपने कारख़ाने खोलकर उनमें ज़मींदारोंके अत्याचारसे भूखों मरते लोगोंको काम दिया, उन्हींका बनाया माल यहाँ पहुँच रहा है। अभी तक हमारे यहाँ कल हाथसे चलती थी, किन्तु अब भापसे इंजन बन रहे हैं, जिनसे चलनेवाले कर्घोंके कपड़े और सस्ते होते हैं। अपने यहाँके कारीगरोंक चौपट समझो चौपट। हमारे यहाँके कारीगर भी चौपट हो गये हैं, किन्तु अब उन्हें इन कारख़ानोंमें मजूरी करके पेट पालने भरको कुछ मिल जाता है। यदि यह कारख़ाने न खुले होते, तो फ़्रांसकी दशा ही हमारे यहाँ भी हुई होती। आदमीको आदमीकी तरह रहना चाहिए दे! दूसरे आदमीको जो पशु मानता है, उसे स्वयं और उसके बाल-बच्चोंको भी पशु बनना पड़ता है।"

"यह ठीक कहा साहेब! मैं अपने दास, और नौकरको आदमी नहीं समझता रहा, किन्तु, जब वैसा ही बर्ताव साहेब लोग मुझसे करते, तो मुझे पता लगता कि आदमीके लिए अपमान कितनी कड़वी चीज़ है।"

"दासताके रवाजको उठानेके लिए विलायतमें बड़ा ज़ोर दिया जा रहा है।"

"विलायतमें भी दासता मानी जाती है?"

"सारी दुनियामें अभागे नर-नारियोंकी ख़रीद-बेंच चल रही है, किन्तु, मुझे आशा है, विलायतमें जल्दी ही उनके ख़िलाफ़ क़ानून बन जायेगा।"

"फिर दासोंके मालिक धनी लोग क्या करेंगे ?"

"धनी लोग तो नहीं चाहते, और हमारी पार्लामेंटपर धनिकोंका ही प्रभुत्व है, किन्तु अब उनमें भी कुछ इसे बुरा मानते हैं, आखिर आदमीकी खरीद-बेंच कितनी बुरी चीज़ है दे ! तुम खुद ही समझ सकते हो। किन्तु, कितने ही आदमी पाप-पुण्यके खयालसे दासता उठानेके पक्षपाती नहीं हैं, बल्कि आजकल कारखानोंमें लोहेकी कलें काम करती हैं, उनका दाम ज़्यादा होता है, दास उनकी पर्वाह नहीं करेंगे। देखते न हो, बारीक काम दासोंको नहीं दिया जाता। जिसकी ज़िन्दगी-मौतसे तुम रातदिन खेल किया करते हो, वह तो मौक़ा मिलते ही तुम्हारा भारी नुक़सान करके बदला लेना चाहेगा।"

"माँ और बछियाको अलग कर बेंचनेकी तरह जब मैं किसी दासीको अपने बच्चोंसे अलगकर बिकते देखता हूँ, तो मुझे यह बहुत असह्य मालूम होता है।"

"जिसे असह्य न मालूम हो वह आदमी नहीं है दे !"

"मैं सोच रहा था, फ्रांसमें बिना राजाका राज, क्या कहते हैं उसे साहेब ?"

"प्रजातन्त्र।"

"प्रजातन्त्र क्या राजतन्त्रसे अच्छा होता है ?"

"प्रजातन्त्र सबसे अच्छा राज्य है, दे ! शाहों, शाहज़ादों, बेगमों और शाहज़ादियोंके ऊपर देशकी कमाईका भारी भाग खर्च हो जाता है। पंचायती राज्यको राजासे ज़्यादा न्याय, ज़्यादा पक्षपातहीनता, और सहानुभूति रहेगी।"

"हाँ, मैंने पहिले अपने गाँवके पंचायती कारोबारको देखा था, उसमें सचमुच ज़्यादा न्याय होता था, और खर्चमें आदमी उजड़ भी नहीं जाता था; किन्तु जबसे कार्नवालिसके जमींदारोंने आकर पंचायतको दबा दिया, तबसे लोग तबाह हैं।"

"यह ठीक है दे ! किन्तु फ्रांसकी जनताका उद्देश्य प्रजातन्त्रसे भी ऊपर था, वह मनुष्यमात्रकी समानता, स्वतन्त्रता, भ्रातृभावका राज्य स्थापित करना चाहती थी।"

"हमारे देशके लिए भी !"

"तुम मनुष्य हो कि नहीं ?"

"साहबोंकी नज़रमें तो हम मनुष्य नहीं जँचते।"

"जब तक समानता, स्वतन्त्रता, भ्रातृभावका शासन सारी पृथिवीपर, गोरे-काले सारे मनुष्योंमें नहीं क़ायम होता, तब तक मनुष्य मनुष्य नहीं हो सकता दे ! कसाई कार्नवालिस् अपने गोरे किसानोंको मनुष्य नहीं मानता। फ्रांसमें राजा, ज़मींदार तो गये, किन्तु, फिर बनियोंने—ईस्ट-इंडिया कम्पनीके भाई बन्दोंने—राज्य सँभाल लिया, जिससे समानता, स्वतन्त्रता, भ्रातृभावका असली तिरंगा झंडा वहाँ नहीं फहरा सका।"

"तो फ्रांसमें राजा-बाबुओंकी जगह सेठोंका राज्य हो गया ?"

"हाँ, और इंग्लैंडके सेठ भी हल्ला कर रहे हैं, कि जब हम सात समुन्दर पार हिंदुस्तानका राज्य चला सकते हैं तो इंग्लैंडमें क्यों नहीं कर सकते ? इसलिए वह राज्य-शक्तिको अपने हाथमें लेना चाहते हैं, यद्यपि राजाको हटाकर नहीं।"

"राजाके हाथमें, आपने कहा, इंग्लैंडमें शासनकी बागडोर है ही नहीं।"

"हाँ, और मैंने इन गोरे बनियोंकी करतूतें यहाँ देखीं। मुझे देश देखनेकी इच्छा थी, सुभीता देख मैंने कम्पनीकी नौकरी कर ली, नौकरी न करता, तो बनिये मुझपर सन्देह करते, और फिर मेरा पर्यटन मुश्किल हो जाता, इसीलिए दो साल तक मैं कम्पनीकी नौकरीरूपी नर्कमें रहा।"

"भलेमानुषके लिए नर्क है साहेब ! यहाँ वही निर्वाह कर सकते हैं, जो सब पाप कमा, सारा अपमान सह धन जमा करनेके लिए तुले हुए हैं। कार्नवालिस्के किसी अनुचरकी कृपासे पापकी कमाई मुझे चार गाँवोंकी ज़मींदारी मिली है, किन्तु, मुझे फल मिल चुका, बीबी-बच्चे

सब हैज़ेमें मर गये। उस ज़मींदारीके नामसे दिल काँपता है। मैं भी आपकी रायसे सहमत हूँ, समानता-स्वतन्त्रता-भ्रातृभावके राज्यसे ही पृथिवी स्वर्ग हो सकती है, मनुष्य अपमानसे बच सकता है।"

"लेकिन यह सहमत होने या चाहनेसे नहीं होगा दे! इसके लिए फ्रांसकी भाँति हज़ारोंको बलिदान होना होगा, और चुपचाप बलिदान होनेसे भी काम नहीं चलेगा। बलिदान तो हिन्दुस्तानी सिपाही लाखोंकी संख्यामें अंग्रेज़ोंके लिए भी होते रहे हैं; अब बलिदान अपने लिए होना होगा, और जानते-सुनते।"

"जानते-सुनते!"

"जानते-सुनतेका मतलब है, हिन्दुस्तानियोंको दुनियाका ज्ञान होना चाहिए! साइंस मनुष्यके हाथमें भारी शक्ति दे रहा है। इसी साइंसके ज्ञानसे आदमीने बारूद और बन्दूक़ बना, अपनेको सबल किया। यही साइंस तुम्हारे नगरोंको बर्बादकर इंग्लैंडमें नये कल-कारख़ानों और नये शहरोंको आबाद कर रहा है। उसी साइंसकी शरणमें तुम्हें भी जाना होगा।"

"और?"

"और हिन्दुस्तानकी छूआछूत, जात-पाँत, हिन्दू-मुस्लिमका अन्तर मिटाना होगा। देखते हो, हम किसीके हाथका खानेमें छूतछातका ख्याल रखते हैं?"

"नहीं।"

"अंग्रेज़के भीतर धनी ग़रीबके सिवा और छोटी-बड़ी जात-पाँतका कुछ ख्याल है?"

"नहीं, और?"

"सती बन्द करना होगा, लाखों औरतोंको हर साल आगमें जलाना, इसे क्या तुम समझते हो भगवान् क्षमा कर देंगे?"

कोलमैन और तिनकौड़ी दे जब कलकत्तामें अलग होने लगे, तो

उन्हें एक दूसरेसे बिछुड़नेका अफ़सोस हो रहा था। कोलमैनने आखिर-में कहा था—

"मित्र! हम उन्नीसवीं सदीमें दाखिल हो गये हैं। दुनियामें उथल-पुथल हो रही है। हमें उस उथल-पुथलमें भाग लेना चाहिए, और इसके लिए पहिला काम है, छापाखाना और समाचारपत्र क़ायमकर जनताको विस्तृत दुनियाके हलचलका ज्ञान कराना।"

(३)

अबकी साल वर्षा नहीं हुई। जेठके सूखे ताल वैसे ही सूखे रह गये। भदई, धान, रबी एक छटाँक भी नहीं हुई। घरके घर मर गये, या उजड़कर भाग गये। धुरदेहका लम्बा झील जब सूखा, तो पचीसों कोसके लोग उसके सूखे पेटमें पड़े दिखाई पड़ते थे। वह लोग कमल-की जड़—भसींड-खोदनेके लिए आये थे, और कितनी ही बार उसके लिए आपसमें झगड़ा हो जाता था।

दूसरे साल जब वर्षा हुई, और मँडुआ (रागी)की पहिली फ़सलमें रेखा हसुआ लगा रहा था, तो मँगरीको पास देखकर उसको अचरज होता था। इस साल भरके भीतर धरती उलट-पुलट गई मालूम होती थी। घर-घरमें अधिकांश लोग मर गये थे, घर-घरके लोग तितर-बितर हो गये थे। रेखाको अचरज इसलिए हो रहा था, कि कैसे वे दोनों प्राणी प्राण-शरीरको इकट्ठा रखते, अपने भी इकट्ठा रहे। रेखा इसके लिए धुरदेहका बहुत कृतज्ञ था।

और भी कभी वर्षाके अभावके कारण अकाल पड़ा होगा। किन्तु, इतना कष्ट शायद कभी रेखाके पहिलेके किसानोंको भुगतना न पड़ा होगा। उस वक्त एक सरकार थी, जिसको भी लगान कम देना पड़ता था, अब कम्पनी सरकारके नीचे ज़मींदारोंकी ज़बर्दस्त सरकार थी, जिसके गोराइत-प्यादोंके मारे छानपर लौका भी नहीं बचने पाता था।

हर फ़सलकी कमाई डेढ़ महीने भी खानेके लिए नहीं बचती थी, फिर अकालके लिए किसान क्या बचा रखते ?

अगहनमें जब मँगरीने एक बेटा जना, तो रेखाको और आश्चर्य हुआ। अपने पचास सालपर नहीं क्योंकि मँगरी तीस ही सालकी थी, और कई मरे बच्चोंकी माँ रह चुकी थी; बल्कि अकालमें जब पहिलेके हाड़-चामको बचाये रखना मुश्किल था, तब मँगरीने एक जीवको कैसे जिलाया। सूखा (अकाल)में पैदा होनेके कारण रेखाने लड़केका नाम सुखारी रखा।

माघके महीनेमें रामपुरके मालिक अपने हाथी-घोड़े, सिपाही-प्यादे-के साथ दयालपुर आये। रेखाने सुना था, कि मालिकके घर एक भी बबुआ-बबुई नहीं छीजे, अकालमें भी उनके यहाँ सात वर्षका पुराना चावल चल रहा था। दयालपुरमें मालिककी कचहरी गाँवके एक छोरपर थी। उसके सामने पचीस एकड़का आमोंका एक बाग़ लगाया जाता था, जिसके सींचने-खोदनेका काम दयालपुरवालोंको बेगारमें करना पड़ता था। मालिकने पचास-पचास अमोला एक-एक घरके ज़िम्मे लगा दिया था, अमोला सूखनेपर सवा रुपया डंड देना पड़ता। रेखाके आगे आने-वाली पीढ़ी ज़मींदारी शानको सनातन चीज़ मानने जा रही थी, उसके लिए सोबरन राउत और रेखा भगतका बतलाया ज़मीदारीके पहिलेका ज़माना तथा गाँवमें पंचायतोंका राज, कहानी होता जा रहा था। मालिकके प्यादे अकालके बाद और शोख हो गये थे। वह समझते थे, अकाल किसानों-के मनको तोड़ने तथा मालिकके दबदबेको बढ़ानेके लिए आया था। अगहनमें रेखाकी छानपर जब लौकीकी बेलमें बतिया लग रही थी, तभीसे मालिकके प्यादे मँडराने लगे थे। लोग कह रहे थे, अकालके बाद रेखा चिड़चिड़ा गया है, किन्तु, रेखाको ऐसी कोई बात नई मालूम होती थी। पर बात सच भी थी; वस्तुतः अकालके बाद गाँवके दूसरे लोग जितने परिमाणमें नीचे उतर गये थे, रेखा उनकी तुलनामें बहुत ऊपर था, इसी-लिए उसका व्यवहार चिड़चिड़ा जान पड़ता था। रेखा गोराइत-प्यादोंको

छानके गिर्द मँडराते देख बहुत कुढ़ता था, यद्यपि उसने उसे वचनसे नहीं प्रकट किया। एक दिन गोराइत दीवानजी (पटवारी)के लिए लौका तोड़नेके लिए छतपर चढ़ गया। उस वक्त रेखा घरके भीतर सुखारीको गोदमें ले पुचकार रहा था। छानके दबने और चरचरानेकी आवाज़ सुनाई देते ही रेखा सुखारीको चटाईपर रख बाहर चला आया। देखा, गोराइत छतपर चढ़ा लौका तोड़ रहा है। तीन तोड़ चुका है, चौथेपर हाथ डालने जा रहा है। रेखाके शरीरमें आग लग गई। उसने आधे गाँव तक सुनाई देती आवाज़में डाँटकर कहा—

"कौन है, हो!"

"दीवानजीके लिए लौका तोड़ रहे हैं, देख नहीं रहे हो।"—गोराइतने बिना शिर उठाये कहा।

रेखाने डपटकर कहा—"हाथ-गोड़ बचाये चुपकेसे उतर आओ, सुनते हो कि नहीं?"

"मालिकके गोराइत (गाँवके चपरासी)का ख्याल है न?"

"ख़ूब ख्याल है। भलमनसी इसीमें है, कि लौकाको वहीं छोड़कर उतर आओ।"

गोराइत चुपकेसे उतर आया। दीवानजी सब सुन ख़ूनकी घूँट उस वक्त पी गये। उन्होंने माघ महीनेमें मालिकके आनेके वक्तके लिए इसे छोड़ रखा।

मालिकके आनेपर वही गोराइत शामको रेखा भगतके घरपर आकर बोला—"कलसे सबेरे ही मालिकके लिए दो सेर दूध पहुँचाना होगा।"

"हमारे पास भैंस-गाय नहीं है, दूध कहाँसे पहुँचायेंगे?

"जहाँसे हो, मालिकका हुक्म है।"

दीवान तो जानता ही था, कि रेखाके पास गाय-भैंस नहीं है, किन्तु, उसे तो अब रेखाको ठीक करना था। शामको ही मालिकके सामने उसने रेखाकी सरकशीका ख़सरा खोल दिया, और यह भी कहा कि सारा

गाँव बिगड़ता जा रहा है। मालिकने रात हीको तै कर लिया।

सबेरे रेखाका दूध नहीं आया। प्यादाके जानेपर रेखाने गाय-भैंसके न होनेकी बात कही। मालिकने पाँच मुसंडे प्यादोंको हुक्म दिया—

"जाओ, हरामजादेकी औरतका दूध दुहकर लाओ।"

गाँवके कई आदमी वहाँ मौजूद थे, किन्तु उन्होंने यही समझा, कि प्यादा रेखाको पकड़कर लायेंगे। रेखाको बिना कुछ कहने-सुननेका मौका दिये प्यादोंने पकड़कर मुश्क बाँध ली। फिर दो घरमें घुस मँगरीको पकड़ लाये। बेबस रेखा खूनभरी आँखोंसे देख रहा था, जब कि उन्होंने चिल्लाती हुई मँगरीके स्तनको पकड़कर गिलासमें सचमुच कई धार दूधकी मारी। प्यादे रेखाको वैसे ही बँधा छोड़ चले गये।

मँगरी शरमके मारे वहीं मुँह छिपाये बैठी रही। रेखाने भूली हुई जबानको कुछ देरमें पाकर कहा—

"मँगरी मत लजा। आज हमारे गाँवकी पंचायत ज़िन्दा रही होती, तो बादशाह भी ऐसा नहीं कर सकता था। किन्तु इस बेइज्जतीका मजा चखाऊँगा। यदि असल अहीरके बूँदका हुआ, तो दीवान और रामपुरके मुंशीके कुलमें कोई रोनेवाला भी नहीं रहेगा। इस अपमानका न्याय यही मेरे हाथ करेंगे, मँगरी! आ मेरे हाथोंको छुड़ा।"

मँगरीने सावन-भादों बनी आँखोंके साथ ही रेखाकी मुश्कोंको खोल दिया। उसने भीतर जा सुखारीको गोदमें लेकर उसके मुँहको चूमा, फिर मँगरीसे कहा—

"इस घरसे जो निकालना हो निकालकर तुरन्त नैहर चली जा, मैं इस घरमें आग लगा रहा हूँ।"

मँगरी रेखाकी आवाज़ पहिचानती थी। उसने बच्चे और दो-तीन कपड़ोंको लिया, फिर रेखाके पैरोंपर पड़ गई। रेखाने स्वरको अत्यन्त कोमल करके कहा—

"तेरी इज्ज़त नहीं, गाँवभरकी इज्ज़तका बदला लेना होगा। जा,

और सुखारीको बतलाना कि उसका बाप कैसा था। देर न कर, मैं चला बोरसीसे आग निकालने।"

मँगरी दूर जा तब तक घरको देखती रही, जब तक कि उसकी छानसे ज्वाला नहीं निकलने लगी। लोग गाँवके छोरपर अवस्थित रेखाके घरकी ओर दौड़े और रेखा नंगी तलवार लिये जमींदारकी कचहरीकी ओर। कालको देख प्यादे गोराइत भाग चले। रेखाने मालिक और दीवानको मारते वक्त कहा—"तुम्हारे पीछे रोनेवाला नहीं छोड़ूँगा पापियो।"

रेखाने अपने वचनको सच किया; और प्रतिज्ञासे और भी बड़े पैमानेपर।

कसाई कार्नवालिस्ने कितने ही रेखा पैदा किये?

१८—मंगल सिंह

काल—१८५७ ई०

(१)

यह दोनों आज टावर देखने गये थे। वहाँ उन्होंने उन कोठरियोंको देखा, जिनमें राजाके विरोधी जिन्दगी भर सड़ा करते थे। उन सिकंजों, कुल्हाड़ों तथा दूसरे हथियारोंको देखा, जिनसे राजा साबित करते थे, कि जीवन-मरण उसके हाथमें है, और सही मानेमें वह पृथिवीपर ईश्वरके युवराज या यमराज हैं। लेकिन सबसे ज्यादा जिस चीज़ने उन्हें आकर्षित किया, वह था वह स्थान, जहाँ इंग्लैंडके राजा-रानियोंके शिर कटकर भूमिपर लुण्ठित हुए थे।

एनी रसलने आज भी उसके हाथमें अपने कोमल हाथोंको दे रखा था, किन्तु आज उनकी कोमलताका कुछ दूसरा ही असर उसके ऊपर पड़ रहा था। जान पड़ता था, फाराडेकी बिजली—जिसे ग्यारह साल ही पहिले (१८४५ ई०) उस वैज्ञानिकने आविष्कृत किया था—की भाँति एक शक्ति निकलकर एनीके हाथसे उसके शरीरमें दौड़ रही है। मंगलसिंहने कहा—

"एनी! तुम बिजली-उद्गम (बैटरी) हो, क्या?"

"ऐसा क्यों कहा मंगी?"

"मैं ऐसा ही अनुभव करता हूँ। सोलह साल पहिले जब इंग्लैंडकी भूमिपर मैंने कदम रखा, तो जान पड़ा अँधेरेसे उजालेमें चला आया, मुझे यहाँ एक विशाल दुनिया—लम्बाई-चौड़ाईमें नहीं, बल्कि भविष्यके गर्भमें दूर तक बढ़ती दुनिया—दिखाई पड़ी। चुकन्दरकी चीनी (१८०८

ई०), भापका जहाज स्टीमर (१८१६ ई०), रेलवे (१८२५ ई०), तार (१८३३ ई० , दियासलाई (१८३८ ई०), फोटो (१८३६ ई०) बिजलीकी रोशनी (१८४४ ई०), जरूर देखनेके लिए नई, और आश्चर्य-जनक चीज़ें ही थीं, किन्तु, जब केम्ब्रिजमें मुझे उनके बारेमें पढ़ने तथा रसायनशालामें प्रयोगकर देखनेका मौक़ा मिला, तो मुझे समझमें आने लगा कि दुनियाके भविष्यमें क्या लिखा है।"

"सचमुच, तुम्हें इंग्लैंडमें आना अँधेरेसे उजालेमें आनासा मालूम हुआ!"

"उन्हीं अर्थोंमें, जिन्हें अभी मैंने बतलाया, नहीं तो भारत छोड़ते वक्त मेरे मनमें सिर्फ़ दो ख्याल थे—एक तो अपने प्रिय इष्ट देवता प्रभु मसीहके भक्तोंके देशको देखूँगा, दूसरे अपने कुलकी खोई राज-लक्ष्मीको लौटानेकी कोशिश करूँगा।"

"कितनी ही बार मैंने चाहा, तुमसे तुम्हारे बारेमें पूछूँ लेकिन बातें ऐसे ही भूल गई. आज मंगी! उसे कहो।"

"जिसने मेरे जीवनकी दिशा बदल दी, उससे कहनेमें मुझे क्या उज्र होगा? चलो प्यारी एनी! टेम्सके इस शान्त स्रोतपर। टेम्स उतनी बड़ी, उतनी सुन्दर नहीं है, जितनी हमारी गंगा; तो भी कितनी ही बार जब मैं टेम्सको देखता हूँ, तो गंगाकी मधुर स्मृति आ जाती है। एनी! तुम जानती हो, ईसाई ईश्वर ईसामसीहको छोड़ बाकी सारी पूजाओंको कुफ़ समझते हैं, और घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं; किन्तु टेम्सने ईसाईसे एक बार फिर मुझे काफिर बनाया। मैंने अपनी हिन्दू काफिर माँको बड़ी भक्तिसे फूल चढ़ा गंगाको प्रणाम करते देखा।"

अब दोनों टेम्सके किनारे पहुँचे गये थे। उन्होंने पत्थरके एक चबू-तरेपर आसीन हो टेम्सकी ओर मुँह कर लिया। कनटोप जैसी सफ़ेद टोपीसे निकलकर गालोंपर लटकती एनीकी सुनहली जुल्फें हवाके झोंकेसे लहरा उठीं। मंगलने उन्हें चूम लिया, फिर अपनी बात प्रारम्भ की—

"इस टेम्सके किनारेसे कितनी ही बार मैंने मानस फूल अपनी गंगा-को अर्पित किये।"

"गंगाको फूल चढ़ाती थी तुम्हारी माँ?"

"बड़े भक्तिभावसे, जैसे ईसाई प्रभुमसीहके प्रति श्रद्धा प्रदर्शित करते हैं। मैं उस वक्त पहिले-पहिल ईसाई हुआ था, मुझे यह घृणित प्रथा मालूम होती थी, किन्तु अब न जाने कितनी बार मैं गंगाके प्रति अपने मानस अपमानके लिए पश्चात्ताप कर चुका हूँ।"

"ईसाइयतने जिस भावनाको नष्ट करना चाहा, हमारे कवियोंने उसे फिरसे उज्जीवित किया। जानते हो न हम लोग इसे पिता टेम्स कहते हैं।"

"और हम गंगा माई।"

"तुम्हारी कल्पना और मधुर है मंगी! अच्छा सुनाओ अपने बारेमें।"

"बनारस और रामनगर गंगाके इस पार उस पार थोड़ी दूरपर बसे हैं। मैंने सोलह वर्ष तक गंगाको देखा। मेरा मकान बनारसमें गंगा-के बिल्कुल किनारे था, उसके नीचे साठ पौड़ियोंकी सीढ़ी गंगा-धार तक चली गई थी। शायद जब मैंने आँखें खोलीं, तभी माँने गोदमें ले गंगा-को मुझे दिखलाया। क्या जाने क्यों, जान पड़ता है, गंगा मेरे खूनमें है। रामनगरमें मेरे दादाका किला है, किन्तु उसे मैंने एक-दो बार ही गंगापर नावसे चलते वक्त देखा है। भीतर जाकर या अधिक बार देखने-की इच्छा नहीं होती थी। माँ, तो और भी उधर नहीं जाना चाहती थीं। और जानती हो, एनी! जो कभी उस किलेकी युवराज्ञी बनती, और आज अंग्रेजोंके डरके मारे बनारसके एक घरमें नाम बदलकर जिन्दगी काट रही हो, वह कैसे उस किलेको आँख खोलकर देखनेका साहस करती। मेरे दादा महाराज चेतसिंहको लुटेरे वारन् हेस्टिंग्जने नाहक पामाल किया—हेस्टिंग्ज्को इंग्लैंडमें अपने कियेका कुछ फल मिला, किन्तु मेरे दादाके साथ कभी न्याय नहीं किया गया। छीने राजको लौटाना सस्ता न्याय नहीं था, एनी!"

"तुम्हारी माँ अब भी ज़िन्दा हैं ?"

"हमारे पादरीकी चिट्ठी बनारससे जब तब आती रहती है, और उनके जरिये मैं भी माँको पत्र लिखा करता हूँ। पाँच महीने पहिले तक तो वह जीवित थीं एनी !"

"तो तुम पहिले ईसाई न थे ?"

"नहीं मेरी माँ अब भी हिन्दू हैं। मैंने पहिले चाहा था, उसे भी ईसाई बनाना, किन्तु अब—"

"अब तो तुम भी माँ के साथ गंगामाईको फूल चढ़ा प्रणाम करोगे ?"

"और पादरी साहब कहेंगे, इसने ईसाई धर्मको छोड़ दिया।"

"तुम ईसाई कैसे हुए ?"

"कोई खास अन्तःप्रेरणाका सवाल न था, बनारसमें भी अंग्रेज पादरी और पादरिनें ईसाई धर्मका प्रचार करती हैं, किन्तु बनारस स्वयं हिन्दुओंका रोम है, इसलिए उन्हें उतनी सफलता नहीं होती। एक बार एक डाक्टर पादरीने मेरी माँका इलाज किया था, जिसके बाद उनकी स्त्री मेरे घरमें आने-जाने लगीं। मेरी माँ और उनमें परिचय ज्यादा बढ़ गया। मैं छोटा था, और मुझे वह अक्सर गोद लिया करतीं—"

"तुम लड़कपनमें भी बड़े सुन्दर रहे होगे, मंगी ! कौन तुम्हें गोदमें लेना न चाहता ?"

"फिर उसी पादरिनने माँको समझाया, कि बच्चेको अंग्रेजी पढ़ाओ। पाँच-छै ही वर्षसे पादरीने मुझे अंग्रेजी पढ़ाना शुरू किया। माँ अपने परिवारके अतीतके वैभवके बारेमें सोच रही थीं, और वह मन ही मन आशा रखती थीं, कि शायद अंग्रेजी पढ़कर मेरा बेटा वंशकी लक्ष्मी लौटानेके लिए कुछ कर सके। मैं तीन वर्षका था, तभी मेरे पिता मर गये थे, इसलिए माता हीको सब कुछ करना था। हमारी सम्पत्ति तो राज्यके साथ चली गई थी, किन्तु माँके पास अपनी सासके दिये काफी जेवर थे, और मेरे मामा भी अपनी बहिनका ख्याल रखते थे। आठ वर्षका होनेके

बाद मैं ज्यादा पादरी और पादरिनके घरपर रहता। मुझे हिन्दू धर्मके बारेमें बहुत कम सुननेका मौका मिला, यदि कुछ मिला, तो पादरिनके मुखसे। वह कहा करती थीं, कि तुम्हारा ही भाग्य है बेटा! जो तुम्हारी माँ बच गई, नहीं तो तुम्हारे बापके मरनेके बाद उन्हें लोग जिन्दा जलाकर सती कर डालना चाहते थे। मेरी माँका जिन्दा जलाया जाना—सती—और हिन्दू धर्मको एक समझकर तुम्हीं समझ सकती हो एनी! ऐसे धर्मके लिये अपार घृणाके सिवा मेरे दिलमें और क्या हो सकती थी? उस वक़्त सती प्रथा बन्द होने (१८२६ ई०)में दो सालकी देर थी। मेरी भलाईका ख्याल कर माँने पादरिनकी बात मान ली, और मुझे पढ़नेके लिए कलकत्ता भेज दिया। कलकत्तामें जब मैं पढ़ रहा था, तब माँको सन्देह हुआ कि पादरिनने मुझे ईसाई बनानेके लिए, यह सब कुछ किया है। अच्छा हुआ, जो माँको पहिले न मालूम हुआ, नहीं तो मुझे अपनी आँखें खोलनेका मौका न मिला होता।"

"बच्चोंकी पढ़ाईका क्या भारतमें ख्याल नहीं किया जाता?"

"मुझे पढ़ाया जाता, किन्तु तेरह सौ वर्ष पहिलेके लिए जो विद्या लाभदायक होती, वही।"

"फिर इंग्लैंड आनेके लिए माँकी आज्ञा कैसे मिली?"

"आज्ञा मिलती? मैं बिना पूछे चला आया। पादरीने मदद की। केम्ब्रिजमें पढ़नेका इन्तिजाम कर दिया। यहाँसे मैंने जब कुशल-आनन्दका समाचार माँको लिखा, तो उन्होंने आशीर्वाद भेजा। वह पचपनसे ऊपर हो गई हैं, हर चिट्ठीमें चले आनेके लिए लिखती हैं।"

"और तुम क्या जवाब देते हो?"

"जवाब क्या बहाना। वह समझती हैं, मैं राजधानीमें हूँ, इंग्लैंडकी रानीसे मेरी मुलाकात है, और किसी वक़्त मैं चेतसिंहकी गद्दीका मालिक होकर लौटूँगा।"

"उस बेचारी गंगाकी पुजारिनको क्या मालूम कि तुम्हारी मुलाकात

रानी विक्टोरियासे नहीं बल्कि सारी दुनियाके मुकुटधारी शिरोंके भयंकर शत्रुओं कार्ल मार्क्स और फ्रेड्रिख् एन्जेल्ससे है।"

"अभी जब भारत पूँजीवादी दुनिया, और उसकी शक्तिका ही ज्ञान नहीं रखता, तो वह मार्क्सके साम्यवादको कैसे समझ पायेगा?"

"मार्क्ससे कभी भारतके बारेमें भी तुमसे बात-चीत हुई?"

"कितने ही बार और मुझे आश्चर्य होता है, यहाँ बैठे-बैठे कैसे उसको भारतके जीवन-प्रवाहका इतना ज्ञान है! लेकिन यह कोई जादूका चत्मकार नहीं है। पिछले तीन सौ वर्षोंमें भिन्न-भिन्न अंग्रेजोंने भारतके बारेमें जितना ज्ञान अर्जनकर लिपवद्ध किया, वह सब यहीं लन्दनमें मौजूद है। मार्क्सने उन गर्द-पड़ी पोथियोंको बड़े ध्यानसे उलटा है, और जो कोई भी भारतीय यहाँ मिल जाता है, उससे पूछ-पूछकर वह अपने निर्णयकी परीक्षा करता है।"

"मार्क्सके भारतके भविष्यके बारेमें क्या विचार हैं?"

"वह भारतके योद्धाओंकी वीरताकी बड़ी प्रशंसा करता है, वह हमारे दिमागकी दाद देता है; किन्तु हमारी पुराणपंथिताको भारतका सबसे बड़ा शत्रु समझता है, हमारे गाँव स्वयंधारी छोटे-छोटे प्रजातन्त्र हैं।"

"प्रजातन्त्र?"

"सारा देश नहीं, उसका एक जिला क्या दो गाँव मिलकर भी नहीं, सिर्फ एक अकेला गाँव। किन्तु, सभी जगह नहीं, जहाँ लार्ड कार्नवालिस्ने अंग्रेजी नकलपर जमींदारी कायम कर दी, वहाँका ग्रामप्रजातन्त्र पहिले खतम हो गया। इस ग्रामप्रजातन्त्रका संचालन जन-सम्मत पाँच या उससे अधिक पंच करते हैं। पुलीस, न्याय, आबपाशी, शिक्षा, धर्म आदि सभी विभागोंका वह संचालन करते हैं, और बहुत ईमानदारी, बुद्धिमत्ता, न्याय और निर्भयताके साथ गाँवकी एक-एक अँगुली जमीन या छोटेसे छोटे आदमीकी इज्जतकी रक्षाके लिए अपनी पंचायतके हुक्मपर गाँवका बड़ा या बच्चा हर वक्त जान देनेके लिए तैयार रहता है। मुसलमान शासकों-

ने पहिले-पहिल—जब कि उनका राज दिल्लीके आस-पास थोड़ी दूर ही तक था, और वह अपनेको मुसाफिर समझते थे,—पंचायतोंको नुकसान पहुँचाना चाहा था, किन्तु पीछे उन्होंने पंचायतोंके स्वायत्त-शासनको मंजूर किया। यह अंग्रेज शासक, और उसमें भी खासकर इंग्लैंडका जमींदार कार्नवालिस् ही था, जिसने ग्राम-प्रजातन्त्रको बर्बाद करनेका बीड़ा उठाया, और कितने ही अंश तक सफलता पाई, किन्तु उतनेसे शायद वह जल्दी न टूटती। ग्रामके प्रजातन्त्र और उसकी आर्थिक स्वतन्त्रतापर सबसे घातक प्रहार पड़ा है, मानचेस्टर लंकाशायरके कपड़े, शेफील्डकी लोहेकी चीज़ों, तथा इसी तरहके और कितने ही यहाँसे जानेवाले मालका! १० जुलाई १८२२ को कलकत्तामें पहिला भापसे चलनेवाला जहाज (स्टीमर) पानीपर उतारा गया। उसने साथ ही गाँवोंके आर्थिक प्रजातन्त्रकी रही-सही नींवको भी खतम कर दिया। हिन्दुस्तानके बारीक मलमलकी खान ढाका अब दो तिहाई वीरान है एनी! और गाँवोंके जुलाहोंकी हालत मत पूछो। जो भारतीय गाँव अपने लोहार, कुम्हार, जुलाहे, कत्तिनोंके कारण अपनेको स्वतन्त्र समझता था, अब उसके ये कारीगर हाथपर हाथ धरे बैठे भूखे मर रहे हैं, और उनके लिए लंकाशायर मानचेस्टर, बर्मिंघम, शेफील्ड माल भेज रहे हैं। सिर्फ़ कपड़ेको ले लो, १८१४ ई०में ब्रिटेनमें भारतसे १८,६६,६०८ थान कपड़ा आया था, और १८३५ ई०में ३,७६,०८६ थान। इन्हीं दोनों सालोंमें हमारे यहाँ ८,१८,२०८५,१७,७१,२७७ गज विलायती कपड़ेका जाना बढ़ गया। अब ढाकाके मलमलको तैयार करनेवाला भारत अपनी रुईको विलायत भेज कपड़ा बनवा रहा है। और कितना?—हाल हीका आँकड़ा ले लो ई० १८४६में १०,७५,३०९ पौंडकी रुई यहाँ आई।

"कितनी क्रूरता, कितना अत्याचार!"

"किन्तु, मेरे गुरु कहते हैं, हमारा दिल रोता है, विदेशियोंके इस अत्याचारके लिए; किन्तु हमारी बुद्धि खुश होती है, इसपुराणपंथीगढ़के पतनसे।"

"तब दोनोंका दो रास्ता होगा ?"

"दोनोंका दो रास्ता होता ही है एनी ! माँ कितनी पीड़ा अनुभव करती है, प्रसवके वक्त, किन्तु साथ ही वह सन्तानकी प्राप्तिका आनन्द भी अनुभव करती है—बिना ध्वंसके रचना नहीं हो सकती। इन छोटे-छोटे प्रजातन्त्रोंको तोड़े बिना एक शक्तिशाली बड़े प्रजातन्त्रकी नींव नहीं रखी जा सकती। जब तक भारतीयोंकी भक्ति केवल उनके ग्राम-प्रजातन्त्र तक सीमित है, तब तक बड़ी देश-भक्ति—सारे भारतके लिए आत्म-त्याग—को वह नहीं प्राप्त कर सकते। अभी अंग्रेज सिर्फ़ जहाज, रेल, तार जैसे अपने व्यापारके सुभीतेवाले यन्त्रोंको ही भारतमें फैला रहे हैं; किन्तु मार्क्सका कहना ठीक है—जब रेलोंके बनाने और मरम्मतके लिए अंग्रेज पूँजीपति भारतीय कोयले लोहेका इस्तेमाल करनेके लिए मजबूर हैं, तो कितने दिनों तक वहीं सस्तेमें इन सामानोंको तैयार करनेसे वह परहेज करेंगे ? भारतीय दिमाग़ भी साइंसके इन चमत्कारोंको अपने सामने देखते हुए कब तक सोया रहेगा ?"

"अर्थात्—भारतमें भी उद्योगधन्दा और पूँजीवादका फैलना लाजिमी है।"

"जरूर। अब इंग्लैंडमें सामन्तवादी जमींदारोंकी प्रभुता नहीं है, एनी !"

"हाँ।"

"सुधार-कानून (१८३२)ने इंग्लैंडके शासनकी बागडोर पूँजीपतियोंके हाथमें दे दी है ?"

"या पूँजीपतियोंके शासनारूढ़ होनेकी सूचना है, वह कानून।"

"तुम्हीं ठीक कह रही हो। चार्टिस्टोंकी सभाओं और पत्रोंने तुमपर असर किया, एनी ?"

"सभाओंके वक्त तो मुझे उतना होश न था, कुछ धूमिलसी स्मृति है। हाँ, चाचा रसल—जानते हो मन्त्रिमंडलमें वह चार्टिस्टोंके जबर्दस्त

दुश्मन थे—के मुँहसे मैंने कितनी ही बार इस खतरनाक आन्दोलनकी बात सुनी है ।"

"एनी ! क्या यह बात करते वक्त् चचा वैसे ही बहादुर वक्ताके रूपमें दिखलाई पड़ते थे, जितना कि वह बारह-बारह लाख जनताके हस्ताक्षरोंसे पेश की गई कमकरोंकी साधारण माँगोंको पार्लामेंटमें ठुकराते वक्त् मालूम पड़ते थे ?"

"नहीं, प्रिय ! वह अब भी डरते हैं, यद्यपि प्रभुमसीहके इस १८५६वें सालमें चार्टरवाद सुनाई नहीं दे रहा ।"

"क्यों नहीं डरेंगे, एनी ! सामन्तोंके राज्यको पूँजीपति बनियोंने जैसे ही खतमकर अपना शासन शुरू किया, वैसे ही मजदूर भी इस थैलीका राज्य-खत्म करके ही छोड़ेंगे, और मानवताका राज्य क़ायम करेंगे, जिसमें धनी-गरीब, बड़े-छोटे, काले-गोरेका भेदभाव उठ जायगा—"

"और स्त्री-पुरुषका भी मंगी ?"

"हाँ, स्त्रियाँ भी पुरुषोंने जुल्मोंकी मारी हैं। हमारे यहाँका सामन्तवाद तो अभी हाल तक सतीके नामपर लाखों औरतोंको हर साल जलाता रहा है, और अब भी जिस तरह पर्देमें जकड़बन्द जायदादके अधिकारसे वंचित हो वह पुरुषोंके जुल्मको सह रही हैं, वह मानवताके लिए कलंक है ।"

"हमारे यहाँकी स्त्रियोंको तुम स्वतन्त्र समझते होंगे, क्योंकि हमें पर्देमें बन्द नहीं किया जाता ?—"

"स्वतन्त्र नहीं कहता एनी ! सिर्फ़ यही कहता हूँ, कि तुम अपनी भारतीय बहिनोंसे बेहतर अवस्थामें हो ।"

"गुलामीमें बेहतर और बदतर क्या होता है मंगी ! हमारे लिए पार्लामेंटमें वोटका भी अधिकार नहीं। बड़े-बड़े शिक्षणालयोंकी देहली-के भीतर हम पैर नहीं रख सकतीं । हम कमरको कसकर मुट्ठी भरकी बना साठ गजके घाँघरेको जमीनमें सोहराते सिर्फ़ पुरुषोंके वास्ते तितली

बननेके लिए हैं। अच्छा, तो मार्क्सने यह आशा दिलाई कि भारतमें उद्योग-धन्धे और पूँजीवादका प्रसार होगा जिसके कारण एक ओर लोगोंमें साहसका अधिकाधिक प्रचार और प्रयोग होगा, दूसरी ओर वहाँ भी गाँवोंमें बिखरे, बेकार किसानों और कारीगरोंको कारखानेमें इकट्ठा किया जायेगा। फिर वह अपनी मजदूर सभाएँ कायमकर लड़ना सीखेंगे, और फिर साम्यवादका झंडा ले इंग्लैंडके मजदूरोंके साथ कन्धेसे कन्धा मिला मानवस्वतन्त्रताकी अपनी लड़ाई लड़ेंगे, और दुनियाको पूँजीपतियों-की गुलामीसे मुक्तकर समानता, स्वतन्त्रता, और भ्रातृभावका राज्य स्थापित करेंगे। किन्तु यह तो सैकड़ों सालकी बात है मंगो।"

"साथ ही मार्क्सका कहना है, कि यद्यपि अंग्रेजोंने साइंसकी देन—कल-कारखानोंसे भारतको वंचित रखा है, किन्तु साथ ही साइंसकी दूसरी देन युद्धके हथियारोंसे भारतीय सैनिकोंको हथियारबन्द किया है। यही भारतीय सैनिक भारतकी स्वतन्त्रताको लौटानेमें भारी सहायक साबित होंगे।"

"क्या यह नज़दीकका समय हो सकता है?"

"नज़दीक नहीं एनी। वह समय आ गया है। अखबारोंमें पढ़ा न, सात फर्वरी (१८५६ ई०)को अवध अंग्रेजी राज्यमें मिला लिया गया।"

"हाँ, और बेईमानीसे।"

"बेईमानी और ईमानदारीपर हमें बहस नहीं करनी है। अंग्रेज व्यापारियोंने सब कुछ अपने स्वार्थके लिए किया, किन्तु अनजाने भी उन्होंने हमारी भलाईके कितने ही ठोस काम किये हैं। उन्होंने ग्राम-प्रजा-तन्त्रोंको तोड़ विस्तृत देशको हमारे सामने रखा, उन्होंने अपने रेलों, तारों, जहाजोंसे हमारी कूपमंडूकताको तोड़ विशाल जगत्‌के साथ हमारा नाता स्थापित किया। अवधका दखल करना कुछ रंग लायेगा, और मैं इसीकी प्रतीक्षा करता था, एनी!"

"मार्क्सके शिष्यसे और क्या आशा की जा सकती है!"

(२)

गंगाका प्रशान्त तट फिर अशान्त होना चाहता है। बिठूरके विशाल महलमें पेशवाका उत्तराधिकारी तख्त ही नहीं पेंशनसे वंचित नाना (छोटा) अवधके अंग्रेजोंके ताजा शिकार होनेके वक्तसे ही ज्यादा सक्रिय हो गया है। उसके आदमी अपने जैसे दूसरे पदच्युत सामन्तोंके पास रात-दिन दौड़ लगा रहे हैं। उनके सौभाग्यसे अंग्रेज एक और ग़लती कर बैठे और वह ग़लती नहीं बल्कि नित नये होनेवाले जगत्‌में जीनेका काम था—उन्होंने पहिलेकी टोपी गोलीवाली बन्दूकोंकी जगह उनसे ज्यादा जोरदार कार्तूसी बन्दूकोंको अपनी फौजोंमें बाँटा। इन कार्तूसोंको भरते वक्त दाँतसे काटना पड़ता। अंग्रेजोंके दूरदर्शी दुश्मनोंने इससे फ़ायदा उठाया। उन्होंने हल्ला किया कि कार्तूसोंमें गाय-सूअरकी चर्बी है, जान-बूझकर अंग्रेज इन कार्तूसोंको सिपाहियोंको दाँतसे काटनेके लिए दे रहे हैं, जिसमें कि हिन्दुस्तानसे हिन्दू मुसलमानका धर्म उठ जाये, और सब कृस्तान बन जायें।

काशिराज चेतसिंहके पौत्र मंगलसिंहका नाम बिजलीकी भाँति सैनिकोंमें काम करता, यह मंगलसिंह जानता था; किन्तु उसने कभी इस रहस्यको खुलने नहीं दिया। नाना और दूसरे विद्रोही नेता उसके बारेमें इतना ही जानते थे, कि वह अंग्रेजी शासनका जबर्दस्त दुश्मन है, उसने विलायतमें जाकर अंग्रेजोंकी विद्या खूब पढ़ी है, उनकी राजनीतिका अच्छा जानकार है। विलायतमें रहनेके कारण उसका धर्म चला गया है, यद्यपि वह कृस्तानी धर्मको नहीं मानता।

मंगलसिंहको विद्रोही नेताओंके हार्दिक भावोंको समझनेमें देर नहीं हुई। उसने देखा कि पदच्युत सामन्त अपने-अपने अधिकारको फिरसे प्राप्त करना चाहते हैं, और इसके लिए सबके अकेले शत्रु अंग्रेजोंको एक होकर देशसे निकाल बाहर करना चाहते हैं। उनके लिए जान

देनेवाले सिपाही उनकी नजरमें शतरंजके मुहरोंसे बढ़कर कोई हैसियत नहीं रखते थे। सिपाही धर्म जानेके डरसे उत्तेजित हुए, और शायद कार्तूसकी चर्बीको मुँहसे काटनेसे बचा दिये गये होते, तो कम्पनी बहादुरकी जयजयकार वह अनन्तकाल तक मनाते, उसके लिए अपनी गर्दनोंको कटाते रहते। और हिन्दू-मुसलमानके बीचकी खाई? वह तो बिल्कुल नहीं कम हुई, बल्कि, यदि विद्रोह सफल होता, तो धर्मके नामपर उभाड़े निरक्षर सिपाही अल्लाह और भगवान्के कृपापात्र बननेके लिए अपनेको और भी ज्यादा कट्टर धार्मिक साबित करनेकी कोशिश करते। इसके अतिरिक्त यदि दूसरा कोई ख्याल उनके दिलोंमें काम कर रहा था, तो वह था, गाँवों नगरोंको लूटना। यद्यपि इस दोषके भागी सिपाहियोंकी थोड़ी संख्या थी, और शायद कम ही जगहोंमें उन्होंने इसे किया भी; किन्तु हल्ला इतना हो गया था, कि ग्रामीण जनताके ऊपर उनका डाकुओं जैसा आतंक छाया हुआ था। देशकी मुक्तिदात्री सेनाके प्रति यह ख्याल अच्छा नहीं था। पहिले इन बातोंको जानकर मंगलसिंहको निराशा हुई। वह चेतसिंहके सिंहासनको पानेके लिए नहीं लड़ने आया था, वह आया था समानता, स्वतन्त्रता और भ्रातृभावके शासनको स्थापित करने, जिसमें जात-पाँत, हिन्दू-मुसलमानका भेदभाव भी वैसा ही अवांछनीय था, जैसा कि अंग्रेज पूँजीपतियोंका शासन। वह कूपमंडूकताकी रक्षाके लिए नहीं आया था, बल्कि आया था, भारतकी सदियोंकी दीवारोंको तोड़कर उसे विश्वका अभिन्न अंग बनाने। वह आया था, अंग्रेज़ पूँजीपतियोंके शोषण और शासनको उठा, भारतकी जनताको स्वतन्त्र हो दुनियाके दूसरे देशोंकी जनताके साथ भ्रातृभाव स्थापितकर एक बेहतर दुनियाके निर्माणमें नियुक्त कराने। वह कारतूसकी चर्बीके झूठे प्रचारको कभी पसन्द नहीं कर सकता था, और न यही कि उसके द्वारा भारतमें मज़हब अपनी जड़ोंको फिर मज़बूत करें। नाना और दूसरे विद्रोही नेता स्वयं बढ़ियासे बढ़िया विलायती शराबें उड़ाते थे, और मौका मिलनेपर मद्य और शूकर-मांस

भक्षण करके आई गौरांग सुन्दरियोंके जूठे ओठोंको चूसनेके लिए तैयार थे, किन्तु इस वक्त वह धर्मरक्षाके लिए सिपाहियोंका नेतृत्व करना चाहते थे।

किन्तु, इन सब दोषोंके साथ जब एक बातपर मंगलसिंहने ख्याल किया, तो उसे अपने कर्त्तव्यके निश्चयमें देर न लगी—भारत अंग्रेज़ पूँजीपति शासकों तथा हिन्दुस्तानी सामन्तोंकी दुहरी गुलामीमें पिस रहा है, जिनमें सबसे मज़बूत और सबसे चतुर है, अंग्रेज़ोंका शासन। उसके हटा देनेपर सिर्फ़ स्वदेशी सामन्तोंसे भुगतना पड़ेगा जो कि भारतीय जनताके लिए अधिक आसान होगा।

जनवरीका महीना था। रातको काफ़ी सर्दी पड़ती थी, यद्यपि वह लन्दनके मुक़ाबिलेमें कुछ न थी। विठूरमें चारों ओर सुनसान था, किन्तु पेशवाके महलके दरबान अपनी-अपनी जगहोंपर मुस्तैद थे। उन्होंने अपने स्वामीके एक विश्वसनीय आदमीके साथ किसी अजनबीको महलके भीतर घुसते देखा, किन्तु, वह आजकल ऐसे अजनबियोंको हर रात महलके भीतर घुसते देखा करते थे।

मंगलसिंहकी नानासे यह पहिली मुलाक़ात न थी, इसलिए वह एक दूसरेको भली प्रकार जानते थे। मंगलसिंहने वहाँ अपने अतिरिक्त दिल्लीके पेंशनखोर बादशाह, अवधके नवाब, जगदीशपुरके कुँअरसिंह तथा दूसरे भी कितने ही सामन्तोंके दूतोंको उपस्थित पाया। लोगोंने बतलाया, कि बजबज (कलकत्ता), दानापुर, कानपुर, लखनऊ, आगरा, मेरठ, आदि छावनियोंके सिपाहियोंमें विद्रोहकी भावना कहाँ तक फैल चुकी है। यह आश्चर्यकी बात थी, कि इतनी बड़ी शक्तिके मुक़ाबिलेके लिये अपनी कुछ भी फ़ौज न रखते हुए वह सामन्त सिर्फ़ बाग़ी पल्टनोंपर सारी आशा लगाये हुए थे। और जहाँ तक सैनिक विद्याका सम्बन्ध था, प्रायः सारे ही नेता उससे कोरे थे; तो भी वह जेनरलका पद स्वयं लेनेके लिए तैयार थे। नानाने बहुत आशाजनक स्वरमें कहा—

"भारतमें अंग्रेज़ोंका राज्य निर्भर है हिन्दुस्तानी पलटनोंपर, और आज वह हमारे पास आ रही हैं।"

"लेकिन सभी हिन्दुस्तानी पल्टनें हमारे पास नहीं आ रही हैं नाना साहेब! पंजाबी सिक्खोंके बिगड़नेकी अभी तक कोई खबर नहीं है, बल्कि हिन्दुस्तानकी बाक़ी पल्टनोंने अंग्रेज़ोंकी ओरसे लड़कर जिस तरह उनके पंजाबको पराजित किया, उसे स्मरण रखते हुए पंजाबी बदला लेना चाहेंगे। अंग्रेज़ बड़े होशियार हैं नाना साहब! नहीं तो पेशवा और नवाब अवधकी भाँति यदि उन्होंने दलीपसिंहको भी भारतमें कहीं नज़रबन्द कर रखा होता, तो आज हमें सारी सिख पल्टनको अपनी ओर मिलानेमें बड़ी आसानी होती। खैर, हमें याद रखना चाहिए कि सिख, नेपाल और रियासतोंकी पल्टनें हमारे साथ नहीं हैं, और जो देशके युद्धमें हमारे साथ नहीं हैं, उन्हें हमें अपने विरुद्ध समझना चाहिए।"

"आपका कहना ठीक है। ठाकुर साहब!" नानाने कहा "लेकिन यदि आरंभिक अवस्थामें हमने सफलता प्राप्त की तो फिर किसी देश-द्रोहीको हमारे खिलाफ़ आनेकी हिम्मत न होगी।"

"एक बातका हमें और इन्तिज़ाम करना चाहिए। यह काम युद्ध छिड़नेपर करना होगा, किन्तु उसके लिए आदमियोंको अभीसे तैयार करना होगा। लोगोंको समझाना है, कि हम देशको स्वतन्त्र करनेवाले सैनिक हैं।"

पूरबके प्रतिनिधिने कहा—"क्या इसके लिए हमारा अंग्रेज़ोंसे लोहा लेना काफ़ी नहीं है?"

मंगलसिंह—"हर जगह चौबीसों घंटे लोहा नहीं बजता रहेगा। हमारे देशमें बहुतसे डरपोक या स्वार्थी लोग हैं, जिनको अंग्रेज़ोंकी अजेयता-पर विश्वास है। वह तरह-तरहकी खबरें फैलायेंगे। मैं तो समझता हूँ पूरब, पच्छिम और मध्य तीन भागोंमें बाँटकर हमें हिन्दी, उर्दूमें तीन अखबार छापने चाहिए।"

नाना साहब—"आपको अंग्रेज़ोंका ढंग ज्यादा पसन्द है ठाकुर साहब ! किन्तु आपने देखा न कि बिना अखबारके हमने कार्तूसकी बातको फैलाकर कितना लोगोंको तैयार कर लिया।"

मंगलसिंह—"लेकिन लड़ाईके बीचमें हमारे खिलाफ़ अंग्रेज़ोंके नौकर-चाकर जो बातें फैलायेंगे, उसके लिए कुछ करना होगा नाना साहब ! यह सम्भव नहीं है कि हम अंग्रेज़ोंके सारे शासन-यन्त्रको एक ही दिन अपने अधिकारमें कर लें। मान लीजिए उन्होंने अफ़वाह फैलाई कि बाग़ी फ़ौज—स्मरण रखिये हमें इसी नामसे याद किया जायगा—गाँव-शहरको लूटती, बाल-बच्चोंको काटती चली आ रही है।"

नाना साहब—"तो क्या लोग विश्वास कर लेंगे ?"

मंगलसिंह—"जो बात बार-बार कही जायगी, और जिसके ख़िलाफ़ दूसरी आवाज़ नहीं निकलेगी, उसपर लोग विश्वास करने लगेंगे।"

नाना साहब—"मैं समझता हूँ, हमने कार्तूसको ले धर्म-द्रोही कहकर अंग्रेज़ोंको इतना बदनाम कर दिया है, कि उनकी कोई बात नहीं चलेगी।"

मंगलसिंह—"मैं तो इसे सदाके लिए काफ़ी नहीं समझता, खैर। एक बात और। हमारी इस लड़ाईको अंग्रेज़ सिर्फ़ बग़ावत कहकर दुनियामें प्रचार करेंगे, किन्तु दुनियामें हमारे दोस्त और अंग्रेज़ोंके बहुतसे दुश्मन भी हैं, जो हमारी स्वतन्त्रताकी कामना करेंगे—खासकर यूरोपियन जातियोंमें ऐसे कितने ही हैं। इसलिए हमें अपने युद्धको सारे यूरोपियन लोगोंके खिलाफ़ जहाद नहीं बनाना चाहिए, और न लड़ने-वाले अंग्रेज़ बाल-वृद्ध-स्त्रियोंके ऊपर हाथ छोड़ना चाहिए। इससे युद्धमें हमें कोई लाभ न होगा, उलटे खामखाहके लिए हिन्दुस्तानी दुनियामें बदनाम हो जायेंगे।"

नाना साहब—"यह तो सेनापतियोंके ख्याल करनेकी बात है, और मैं समझता हूँ, किस वक़्त क्या करना चाहिए, इसे वह खुद निश्चय कर सकते हैं।"

मंगलसिंह—"आखिरी बात यह कहनी है कि जिस युद्धके लड़नेमें सिपाही अपने प्राणोंकी बाजी लगा रहे हैं, और हम साधारण जनतासे भी सहायताकी आशा रखते हैं, उसे सिर्फ़ चर्बीवाले कार्तूसोंके झगड़ेपर आधारित नहीं होना चाहिए। हमें बतलाना चाहिए कि अंग्रेज़ोंको निकालकर हम किस तरहका राज्य चलाना चाहते हैं, उस राज्यमें लड़नेवाले सिपाहियों, और जिन किसानोंमेंसे वह आये हैं, उन्हें क्या लाभ होगा।"

नाना साहब—"क्या धर्म-द्रोहियोंके शासनको उठा देना उनके सन्तोषके लिए पर्याप्त न होगा?"

"यह प्रश्न आपसे ही यदि पूछा जाये तो आप क्या जवाब देंगे? क्या आपके दिलमें पेशवाकी राजधानी पूनामें लौटनेकी इच्छा नहीं है? क्या नवाबजादाके दिलमें लखनऊके तख्तका आकर्षण नहीं है? जब आप लोग कार्तूस और अंग्रेज़ोंके राज्यके निकालनेसे अधिककी इच्छा रखते हैं, जिसके लिए आप जानकी बाजी लगाने जा रहे हैं, तो मैं समझता हूँ, बेहतर होगा हम भी साधारण जनताके सामने उसके लाभकी भी कुछ बातें रखें।"

"जैसे?"

"हम गाँव-गाँवमें पंचायतोंको कायम करेंगे, जिसमें कम खर्चमें लोगोंको न्याय प्राप्त हो। हम सारे मुल्ककी एक पंचायत बनायेंगे जिसको गाँव-गाँवकी प्रजा चुनेगी, और जिसका हुक्म बादशाहपर भी चलेगा। हम ज़मींदारी-प्रथाको उठा देंगे, और किसान और सर्कारके बीच कोई दूसरा मालिक न रहेगा—जागीर जिसको मिलेगी, उसे सिर्फ़ सर्कारको मिलनेवाली मालगुजारीके पानेका हक होगा। हम कल-कारखानोंको बढ़ाकर अपने यहाँके सभी कारीगरोंको काम देंगे, और कोई बेकार नहीं रहने पायेगा। हम सिंचाईके लिए नहरें, तालाब और बाँध बनायेंगे, जिससे करोड़ों मजदूरोंको काम मिलेगा, देशमें कई गुना बेशी अनाज पैदा होगा और किसानोंके लिए बहुतसे नये खेत मिलेंगे।"

मंगलसिंहकी बातोंपर किसीने गम्भीरतापूर्वक विचार नहीं करना चाहा। सबने यह कहकर टाल दिया कि यह तख्तके हाथमें आनेके बादकी बात है।

चारपाईपर लेटनेपर बड़ी देर तक मंगलसिंहको नींद नहीं आई। वह सोच रहा था—यह साइंसका युग है। रेल, तार, स्टीमरके जादूको यह खुद देख रहे हैं। दियासलाई, फोटाग्राफी और बिजलीके प्रकाशके युगमें हम घुस रहे हैं; किन्तु यह लोग पुराने युगके सपने देख रहे हैं। तो भी इस घोर अन्धकारमें एक बात उसे स्पष्ट मालूम होती थी। इस लड़ाईको सिर्फ़ जनताके बलपर ही जीता जायेगा, जिसके कारण जनता अपने बलको समझेगी। विलायती पूँजीपतियोंने जिस तरह विलायतके मज़दूरोंकी शक्तिसे मदद ले अपने प्रतिद्वन्द्वियोंको हटा उन्हें अँगूठा दिखा दिया, उसी तरह ये भारतीय सामन्त भी भारतीय जनता—सिपाहियों, किसानों—के साथ काम निकल जानेपर भले ही गद्दारी करें; किन्तु वह जनतासे उनके आत्मविश्वासको नहीं छीन सकते, और न बाहरी शत्रुओंसे बचनेके लिए साइंसके नये-नये आविष्कारोंको अपनानेसे इन्कार कर सकते। रेलोंकी पटरियाँ, तारके खम्भे, कलकत्तामें बनते भापके स्टीमर अब भारतसे विदा नहीं हो सकते। मंगलसिंहका विश्वास इन दकियानूसी सामन्तोंपर नहीं, बल्कि पृथिवीपर मानवकी परिवर्तन-कारिणी शक्ति, जनतापर था।

(३)

१० मई (१८५७ ई०)को मंगलसिंह मेरठके पास थे, जब सिपाहियोंने वहाँ विद्रोहका झंडा उठाया। बहादुरशाहके प्रतिनिधिके तौरपर उन्हें सिपाहियोंकी एक टुकड़ीको अपने प्रभावमें लानेका मौक़ा मिला। सामन्त नेता मंगलसिंहकी योग्यताके कायल थे, किन्तु साथ ही यह भी समझते थे कि उसका उद्देश्य उनसे बिलकुल दूसरा है, इसीलिए मंगलसिंह

को दिल्लीकी ओर न भेजकर उन्होंने पूरबकी ओर रवाना किया। कौन कह सकता है, मेरठसे पूरब और पश्चिमकी ओर फूटनेवाले इन रास्तोंने भारतके उस स्वातन्त्र्य-युद्धके भाग्यमें पूरब-पश्चिमका अन्तर नहीं डाल दिया। दिल्लीकी ओर जानेवाली सेनाको मंगलसिंह जैसा नेता चाहिए था, जो कि दिल्लीकी प्रतिष्ठाको पूरी तौरसे विजयके लिए इस्तेमाल कर सकता।

मंगलसिंहकी टुकड़ीमें एक हज़ार सिपाही थे, जो विद्रोहके दिनसे ही समझने लगे कि हम सभी जेनरल हैं। मंगलसिंहको एक हफ्ता लग गया इसे समझानेमें कि सिर्फ़ जेनरलोंकी फ़ौज कभी जीत नहीं सकती। सेनामें मंगलसिंहको छोड़ उच्च सैनिक विद्याका जानकार दूसरा आदमी न था और यही बात सभी विद्रोही सेनाओंके बारेमें थी। मंगलसिंहको एक जगह ठहरकर शिक्षा देनेका मौक़ा न था, उस वक्त ज़रूरत थी, अधिकसे अधिक ज़िलोंमें अंग्रेज़ोंकी शक्तिको तुरंत ख़तम करनेकी।

गंगापार हो रुहेलखंडमें दाखिल होते ही हर रातको मंगलसिंहने सिपाहियोंको नियमसे अपने राजनीतिक ध्येयको बतलाना शुरू किया। सिपाहियोंको समझनेमें कुछ देर लगी, उनके मनमें कितने ही सन्देह उठते थे, मंगलसिंहने उनका समाधान किया। फिर मंगलसिंहने फ्रांसकी दो क्रान्तियों (१७९२, १८४८) के इतिहासको सुनाया; यह भी बतलाया कि कैसे वेल्सके अंग्रेज़ मजदूरोंने हिन्दुस्तानमें शासन करनेवाले इन्हीं अंग्रेज़ बनियोंके खिलाफ़ तलवार उठाई, और बड़ी बहादुरीसे लड़े; उन्हें अपने संख्याबलसे बनिये दबा सके, किन्तु उनके जीते अधिकारोंको बनिये छीन नहीं सके।

समझकर लड़नेवाले इन सिपाहियोंका बर्ताव ही बिल्कुल बदल गया था। उनमेंसे हर एक आज़ादीकी लड़ाईका मिश्नरी था, जो गाँवों, क़स्बों, शहरोंके लोगोंमें अपनी बात, अपने व्यवहारसे लोगोंके दिलोंमें विश्वास और सम्मान पैदा करता था। अंग्रेज़ी खज़ानोंके एक-एक पैसेको

ठीक से खर्च करना, ज़रूरत होनेपर लोगोंसे कर उगाहना—किन्तु स्थानीय पंचायत क़ायमकर उसे तथा लोगोंको समझा उनकी मर्ज़ी और क्षमताके अनुसार—, किसी भी चीज़को बिना दामके न लेना, और मंगलसिंहका हर जगह हज़ारोंकी भीड़में लोगोंका समझाना—यह ऐसी बातें थीं, जिनका प्रभाव बहुत जल्द मालूम होने लगा। झुंडके झुंड तरुण आज़ादीकी सेनामें भरती होनेके लिए आने लगे। मंगलसिंहने सैनिक क़वायदपरेड ही नहीं गुप्तचर, रसदप्रबन्ध आदिकी शिक्षाका प्रबन्ध किया। हकीमों और वैद्योंकी टुकड़ी अपने साथ शामिल की। सामन्तशाही लूट रिश्वतकी गन्दगीको दूर करनेके लिए शिक्षितोंमें देशभक्तिके भारी डोज़की ज़रूरत थी, और इस वक़्त उसका देना आसान न था, तो भी जो दो दिन भी मंगलसिंहके साथ रह गया, वह प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका। सिपाहियोंके बीच उनसे हँसकर बातचीत करते मंगलसिंहको देखकर कोई कह नहीं सकता था कि वह इतनी बड़ी पल्टन—आख़िरी वक़्त उसकी सेना दो हज़ार तक पहुँची थी—का जेनरल होगा। साथ ही उसके इशारेपर जान देनेके लिए पल्टनका एक-एक जवान तैयार था। मंगलसिंहने सदा सिपाहियोंके चौकेकी रोटी खाई, वह सदा उन्हींकी तरह कम्बलपर सोया, और ख़तरेके मुक़ामपर सबसे आगे रहा। उसने बन्दी अंग्रेज़ स्त्री-पुरुषोंको बहुत आरामसे रखा। उन्हें भी सेनापतिकी भद्रताको देखकर आश्चर्य होता था, क्योंकि उस समयके युरोपमें भी क़ैदियोंके साथ इस तरहका बर्ताव नहीं देखा जाता था। मंगलसिंह रुहेलखंडके चार ज़िलोंमें गया, और उसने चारोंका बहुत सुन्दर प्रबन्ध किया।

नाना साहेबने ५ जून (१८५७ ई०)को अंग्रेज़ोंके ख़िलाफ़ तलवार उठाई, और डेढ़ महीना भी नहीं बीतने पाया कि १८ जुलाईको उसे अंग्रेज़ों-के सामने हार खानी पड़ी। हवाका रुख़ मालूम होते, मंगलसिंहको देर न हुई, तो भी उसने आज़ादीके झंडेको जीतेजी गिरने नहीं दिया। अंग्रेज़ी पल्टनोंने अवधकी निहत्थी जनताका क़त्लेआम शुरू किया, औरतोंके

प्राण और इज्जतको पैरों तले रौंदा, यह सब सुनकर भी मंगलसिंह और उसके साथियोंने किसी बन्दी अंग्रेजपर हाथ नहीं उठाया।

वर्षाके समाप्त होते-होते सभी जगह विद्रोहियोंकी तलवार हाथसे छूट गई थी, किन्तु रुहेलखंड और पश्चिमी अवधमें मंगलसिंह डटा हुआ था। चारों ओरसे अंग्रेज, गोर्खा और सिख फौजें उसपर आक्रमण कर रही थीं। स्वतन्त्रताके सैनिकोंकी संख्या दिनपर दिन कम होती जा रही थी। मंगलसिंहने भविष्यको समझाकर बहुतोंको घर भेज दिया, किन्तु मेरठसे उसके साथ निकले, उन हजार सिपाहियोंमें एक भी उसका साथ छोड़नेके लिए राजी न हुआ, और आखिरमें उसने वह नज़ारा देखा, जिसने मृत्युको मंगलसिंहके लिए आनन्दकी चीज बना दिया—मरनेके लिए उसकी इस छोटी टुकड़ीमें ब्राह्मण-राजपूत, जाट-गूजर, हिन्दू-मुसलमानका भेद जाता रहा। सब एक साथ रोटी पकाते, एक साथ खाते, इस प्रकार उसने हिन्दुस्तानकी एक जातीयताका नमूना उपस्थित किया।

बिन्दासिंह, देवराम, सदाफल पांडे, रहीमखाँ, गुलामहुसैन, मेरठके यह पाँच सिपाही मंगलसिंहके साथ रह गये थे, जब कि आखिरी बार गंगामें नावपर दोनों ओरसे वह घिर गये। बन्दी अंग्रेज नरनारियोंकी प्रार्थनापर अंग्रेज जेनरलने माफ़ीकी घोषणा करके बहुत चाहा, कि मंगलसिंह आत्मसमर्पण कर दे; किन्तु, मंगलसिंहने इसे कभी नहीं माना। आज भी उससे कहा गया, किन्तु उसने गोलियोंसे इसका जवाब दिया। आखिरमें गंगामें छै लाशोंको लेकर नाव जब बह चली, तो उसे पकड़ा गया। अंग्रेजोंने उस समय भारतकी वीरताकी पूजा की।

१९—सफ़दर

काल—सन् १९२२ ई०

एक छोटा, किन्तु सुन्दर बँगला है, जिसके बड़े हातेमें एक ओर गुलाबोंकी क्यारीमें बड़े-बड़े लाल-लाल और गुलाबी गुलाब फूले हुए हैं। एक ओर बेडमिण्टन खेलनेका छोटा-सा क्षेत्र है, जिसकी हरी घासोंपर घूमना भी स्वयं आनन्दकी चीज़ है। तीसरी ओर एक लता-मण्डप है। चौथी ओर बँगलेके पीछे एक खुला चबूतरा है, जिसपर शामके वक्त अक्सर बैरिस्टर सफ़दर जंग बैठा करते थे।

बँगलेकी बाहरी दीवारोंपर हरी लता चिपकी है। सफ़दर साहबने आक्सफ़र्डमें ऐसी लता-चढ़े मकान देखे थे, और उन्होंने खास तौरपर इसको लगवाया था। बँगलेके हातेमें दो मोटरोंके लिए 'गैरज' था। सफ़दर जंगकी रहन-सहन, उनके बँगलेकी आबोहवा—सभीमें अँगरेज़ियत कूट-कूटकर भरी हुई थी। उनके आधे दर्जन नौकर बिलकुल उसी अदब-क़ायदेसे रहते, जैसे कि किसी अंग्रेज़ अफ़सरके। उनकी कमरमें लाल पटका, उनकी पक्की बँधी हुई पगड़ीमें अपने साहबका नाम-चिह्न (मोनोग्राम) रहता था। सफ़दर साहबको विलायती खाना सबसे ज्यादा पसन्द था और इसके लिए तीन खानसामे रखे हुए थे।

सफ़दर तो साहब थे ही, वैसे ही सकीनाको सभी नौकर मेमसाहब कहकर पुकारते थे। सकीनाकी कमानीदार भौंहोंके अतिरिक्त रोमोंको निकालकर उन्हें पतला और रंगसे रँगकर अधिक काला बनाया गया था। हर पन्द्रह मिनटपर ओठोंपर अधर-राग लगानेकी उसे आदत थी। किन्तु सकीनाने विलायती स्त्रियोंकी पोशाक पहिननी कभी पसन्द न की।

पिछले साल (सन् १९२० ई०में) जब सफ़दर साहब अपनी बीबी-को लेकर पहले-पहल विलायत गये, तो उन्होंने चाहा कि सकीना 'स्कर्ट' 'पेटी-कोट' पहिने; किन्तु वह इसके लिए राज़ी न हुई, और विलायतमें उनके मिलनेवाले अंग्रेज नर-नारियोंने सकीनाके सौन्दर्यके साथ उसकी साड़ीकी जैसी तारीफ़ की, उससे सफ़दरको सकीनाके इनकारपर अफ़सोस नहीं हुआ। वैसे दोनों दम्पतीका रंग इतना साफ़ था कि उन्हें योरुपमें सभी इटालियन कहते।

सन् १९२१के जाड़ोंका मौसम था। उत्तरी भारतके और शहरोंकी भाँति लखनऊके लिए भी जाड़ा सबसे सुन्दर मौसम है। सफ़दर साहब कचहरीसे आते ही आज बँगलेके पीछेके चबूतरेपर बेंतकी कुरसीपर बैठे थे। आज उनका चेहरा ज्यादा गम्भीर था। उनके सामने एक छोटीसी मेज़ थी, जिसपर नोटबुक और दो-तीन किताबें थीं। पासमें तीन और खाली कुरसियाँ पड़ी थीं। उनके शरीरपर कलफ़ किया प्रथम श्रेणीका अँगरेज़ी सूट था। उनके मूँछ-दाढ़ी-शून्य चेहरेकी उस वक़्की अवस्था-को देखने हीसे पता लग सकता था, आज साहब किसी भारी चिन्तामें हैं। ऐसे वक़् साहबके नौकर-चाकर मालिकके पास बहुत कम जाया करते थे। यद्यपि सफ़दरको गुस्सा शायद ही कभी आता हो, किन्तु नौकरोंको उन्होंने समझा रक्खा था कि ऐसे समय वह अकेला रहना ज्यादा पसन्द करते हैं।

शाम होनेको आई, किन्तु सफ़दर उसी आसनसे बैठे हुए हैं। नौकरने तार जोड़कर टेबिल-लैम्प लाकर रख दिया। सफ़दरने बँगलेकी ओरसे आती किसीकी आवाजको सुन लिया था। उनके पूछनेपर नौकर-ने बतलाया, मास्टर शंकरसिंह लौटे जा रहे हैं। सफ़दरने तुरन्त नौकर को दौड़ाकर मास्टरजीको बुलवाया।

मास्टर शंकरसिंहकी उम्र तीस-बत्तीस ही सालकी होगी, किन्तु अभी-से उनके चेहरेपर बुढ़ापा झलकता है। बन्द गलेका काला कोट, वैसा ही पायजामा, सिरपर गोल फेल्ट टोपी, ओठोंपर नीचेकी ओर लटकी हुई

घनी काली मूँछें, वहाँ तरुणाईके बसन्तका कहीं पता न था; यद्यपि उनकी आँखोंको देखनेपर उनसे फूट निकलती किरणें बतलाती थीं कि उनके भीतर प्रतिभा है।

मास्टरजीके पहुँचते ही सफ़दरने उठकर हाथ मिलाया और उन्हें कुरसीपर बैठते देख कहा—"शंकर! आज तुम मुझसे बिना मिले ही लौटे जा रहे थे?"

"भाई साहब! क्षमा करें, मैंने सोचा कि आप अकेले किसी काममें मशगूल हैं।"

"मुक़दमेकी फ़ाइलोंमें लगे रहते हुए भी मेरे पास तुम्हारे लिए दो मिनट रहते ही हैं। और आज तो मेरे सामने फ़ाइलें भी नहीं हैं।"

शंकरसिंहपर सफ़दरका सबसे ज्यादा स्नेह था। वह उनसे बढ़कर अपना दोस्त किसीको नहीं समझते थे। सैदपुरके स्कूलमें चौथी श्रेणीसे भरती होनेसे लखनऊमें बी० ए० पास होने तक दोनों एक साथ पढ़े। दोनों मेधावी छात्र थे। परीक्षामें कभी कोई दो-चार नम्बर ज्यादा पा जाता, कभी कोई कम। किन्तु योग्यताकी इस समकक्षताके कारण उनमें कभी झगड़ा या मनमुटाव नहीं हुआ। दोनोंकी दोस्तीमें एक ख्यालने और मदद की थी। दोनों ही गौतम राजपूत थे। यद्यपि आज एकका घर हिन्दू था, दूसरेका मुसलमान; किन्तु दस पीढ़ीके पहले दोनोंही हिन्दू ही नहीं, बल्कि दोनोंके वंश एक पूर्वजमें जाकर मिल जाते थे। खास-खास मौक़ोंपर बिरादरीकी सभाओंमें अब भी उनके घरवाले मिला करते थे।

सफ़दर अपने बापके अकेले पुत्र थे। किसी भाईके अभावका वह अनुभव करते थे, जिसे दूर करनेमें शंकरने मदद की थी। शंकर सफ़दरसे छै महीने छोटे थे। ये तो बाहिरी बातें थीं; किन्तु उनके अतिरिक्त शंकरमें कई ऐसे गुण थे, जिनके कारण पक्के साहब सफ़दर सीधे-सादे शंकरपर इतना स्नेह और सम्मान-भाव रखते थे। शंकर नम्र थे, किन्तु

खुशामद करना वह जानते ही नहीं थे। इसीका फल है कि प्रथम श्रेणीमें एम० ए० पास करनेपर भी आज वह एक सरकारी स्कूलके सहायक शिक्षक ही बने हुए हैं। उन्होंने यदि ज़रा-सा संकेत भी किया होता, तो दूसरे उनकी सिफ़ारिश कर देते और आज वह किसी हाईस्कूलके हेड-मास्टर होते। किन्तु जान पड़ता है, वह ज़िन्दगी भर सहायक शिक्षक ही बने रहना चाहते हैं। हाँ उन्होंने एक बार दोस्तोंकी मदद ली थी, जब लखनऊसे बाहर उनका तबादला हो रहा था। नम्रताके साथ आत्म-सम्मानका भाव भी शंकरसिंहमें बहुत था, जिसके कि सफ़दर ज़बर्दस्त क़द्रदाँ थे। बारह सालकी उम्रसे स्थापित मैत्री आज बीस साल बाद भी वैसी ही बनी हुई थी।

अभी दो-चार ऊपरी बातें हुई थीं कि धानी रंगकी साड़ी और लाल ब्लाऊज़ पहिने सकीना आ पहुँचीं। शंकरने खड़े होकर कहा—"भाभी सलाम!"

भाभीने मुस्कराकर "सलाम" कहकर जवाब दिया। एक वक़्त था, जब कि एक धनी 'सर'की ग्रेजुएट पुत्री सकीनाको, इस गँवारसे लगते शिक्षकके साथ सफ़दरकी दोस्ती बुरी लगती थी। सकीना बापके घरसे ही पर्देमें नहीं रही, इसलिए शंकरसिंहके सामने होने, न होनेका कोई सवाल ही नहीं था। तो भी छै महीने तक उसकी भौंहें तन जाती थीं, जब वह सफ़दरके साथ बेतकल्लुफ़ीसे शंकरको काम करते देखती; किन्तु अन्तमें उसे सफ़दरके सामने क़बूल करना पड़ा, कि शंकर वस्तुतः हमारे स्नेह-सम्मानके पात्र हैं।

और अब तो सकीनाने शंकरके साथ पक्का देवर-भाभीका नाता क़ायम कर लिया था। अपनी इच्छासे अभी अपनेको सकीनाने सन्तान-हीन बना लिया है; किन्तु कभी-कभी वह शंकरके बच्चेको उठा लाती है। इधर छै वर्षोंसे शंकर समझते हैं, कि शंकरकी उनपर कृपा है। उनके घरमें कोई न कोई दो सालसे नीचेका बच्चा तैयार रहता है।

सकीनाको साहबकी पिछले एक हफ्तेकी गम्भीरता कुछ चिन्तित कर रही थी। उसे आज शंकरको देखकर बड़ा सन्तोष हुआ। क्योंकि वह जानती थी कि शंकर ही हैं जो साहबके दिलके बोझको हलका करनेमें सहायता दे सकते हैं। सकीनाने शंकरकी ओर नज़र करके कहा—"देवर, आज तुम्हें जल्दी तो नहीं है। भाभीके हाथकी चाकलेटकी पुडिंग कैसी रहेगी?"

सफ़दर—"नेकी और पूछ पूछ!"

सकीना—"मैं पहिले जान लेना चाहती हूँ, देवर साहबका कहीं ठिकाना नहीं, कब लोप हो जायँ।"

शंकर—"मेरे साथ इंसाफ़ नहीं कर रही हो, भाभी! एक भी मिसाल तो दो, जब कि मैंने तुम्हारे हुक्मको माननेसे इंकार किया हो?"

सकीना—"हुक्मअदूलीकी बात नहीं कर रही हूँ, देवर! लेकिन हुक्म सुननेसे बच निकलना भी तो क़सूर है।"

शंकर—"मैं अपनी जर्नैल भाभीका हुक्म सुननेके लिए तैयार हूँ!"

सकीना—"अच्छा, तो जा रही हूँ। खानेके साथ 'पुडिंग' खानी होगी।"

सकीना जल्दीसे निकल गई। सफ़दर और शंकरके वार्तालापने गम्भीर रूप धारण किया।

सफ़दरने कहा—"शंकर! हम बिलकुल एक नये क्रान्ति-युगमें दाखिल हो रहे हैं। मैं समझता हूँ, सन् १८५७ ई०के बाद यह पहला वक्त है, जब कि हिन्दुस्तानकी सर-ज़मीन जड़से डगमग होने लगी है।"

"तुम्हारा मतलब राजनीतिक आन्दोलनसे है न, सफ़्फ़ू भाई?"

"राजनीतिक आन्दोलन बहुत साधारण शब्द है, शंकर! सन् १८८५ ई०में काँग्रेस क़ायम हुई, जब कि वह अंग्रेज़ आई० सी० एस० पेंशनरोंकी कृपा-पात्र थी। तब भी उसके क़िस्मत्के मनबहलाववाले व्याख्यानों और बोतलोंको आन्दोलनका नाम दिया जाता था। यदि

तुम उसे ही आन्दोलनका नाम देना चाहते हो, तो मैं समझता हूँ, हम आन्दोलनसे अब क्रान्तिके युगमें प्रविष्ट हो रहे हैं।"

"क्योंकि गाँधीजीने तिलक-स्वराज्य-फ़रडके लिए एक करोड़ रुपया जमा कर लिया, और स्वराज्यका हल्ला ज़ोर-शोरसे सुनाई देने लगा?"

"क्रान्ति या क्रान्तिकारी आन्दोलनका आधार कोई एक व्यक्ति नहीं होता शंकर! क्रान्ति जिस भारी परिवर्त्तनको लाती है, वह किसी एक या आधे दर्जन महान् व्यक्तियोंके सामर्थ्यसे भी बाहरकी चीज है। मैं आजके इस आन्दोलनकी बुनियादपर जब विचार करता हूँ, तो इसी नतीजेपर पहुँचता हूँ। तुम्हें मालूम है, सन् १८५७ ई०के स्वतन्त्रतायुद्ध (जिसका एक केन्द्र यह लखनऊ भी था, बल्कि यह भी कह सकते हैं कि लखनऊका अंग्रेज़ों द्वारा हड़पा जाना उस युद्धके नज़दीकके कारणों-मेंसे एक था)के नेता पद-भ्रष्ट सामन्त थे; किन्तु वह लड़ा गया था साधारण लोगोंके प्राणोंकी बाज़ी लगाकर। हमारी कई कमज़ोरियोंके कारण हम सफल नहीं हुए। अंग्रेज़ोंने पराजितोंपर खूनी गुस्सा उतारा। खैर, मैं कहना यह चाहता हूँ कि सन् १८५७ ई०के बाद यह पहला समय है, जब कि जनताको देशकी स्वतन्त्रताके युद्धमें शामिल किया जा रहा है। तुम्हीं बोलो, भारतीय इतिहासके एक अच्छे विद्यार्थी होनेके नाते, क्या तुम बतला सकते हो किसी और ऐसे आन्दोलनको, जब कि जनताने इस तरह भाग लिया?"

"सफ़्फ़ू भाई, नागपुर कांग्रेस (१९२०) और कलकत्ता कांग्रेस भी बीत गई। गाँव-गाँवकी जिस उथल-पुथलका तुम ज़िक्र करते हो, उसे मैंने भी अपनी आँखों देखा है, और मैं मानता हूँ, वह अनहोनी चीज़ हुई; लेकिन इतनी बाढ़के पार हो जानेपर भी, इसी लखनऊमें कितनी बार विदेशी कपड़ोंकी होली जल जानेपर भी तुम्हारे कानपर जूँ तक नहीं रेंगी, और आज तुम क्रान्तिके भँवरमें पड़े जैसे आदमीकी तरह बात करते हो?"

"तुम्हारा कहना ठीक है, शंकर मेरे छोटे भैया! सचमुच यह भँवर मेरे पैरोंको उखाड़ना चाहता है। लेकिन इस भँवरको मैं एक छोटा-सा स्थानीय भँवर नहीं समझता; यह एक बड़े भँवरसे सम्बद्ध होकर प्रकट हुआ है। हर युगकी सबसे ज़बर्दस्त क्रान्तिकारी शक्ति जनताको लेकर प्रकट होती है।"

"तुम सन् १८५७से शुरू कर रहे हो, सफ़्फ़ू भाई! बहुत भारी घिरावा मार रहे हो!"

"तो मैं कहूँ शंकर क्यों!"

"मैं सुनना चाहता हूँ। भाभीकी पुडिङ्ग बन ही रही है, और कल है इतवार। बस, आदमी घर खबर दे आयेगा कि शंकर इसी लखनऊमें ज़िन्दा है, अपनी भाभी सकीनाकी पुडिङ्ग खाकर खर्राटे ले रहा है, और फिर मैं रात भर सुननेके लिए निश्चिन्त हूँ।"

"शंकर! ऑक्सफ़र्डके मेरे जीवनका आधा मज़ा किरकिरा हो गया, सिर्फ़ तुम्हारे न रहनेसे। खैर, मैं ही नहीं, भारतसे बाहर सभी जगह राजनीतिके विद्यार्थी मानते हैं कि पिछली सदीमें और इस सदी में भी इंग्लैंडकी राजनीतिमें जो भी परिवर्त्तन हुए हैं, वे अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति—संसारकी दूसरी राज-शक्तियोंकी गति-विधिसे मजबूर होकर ही, और इस परिस्थितिके कारणोंपर भी विचार करें, तो वह मुख्यतः आर्थिक ही मिलेंगे। सन् १८५७ ई०की चोटके बाद हमारा मुल्क तो सो गया, या यह कहिये कि हमारे परिवर्त्तनकी गति इतनी धीमी हो गई कि उसे हम सोना ही कह सकते हैं। किन्तु दूसरे मुल्कोंमें भारी परिवर्त्तन हुए। हज़ार वर्ष पहले रोमन साम्राज्यके वक़्से टुकड़े-टुकड़े हुआ इटली सन् १८६० (ता० २ अप्रैल)में एक राष्ट्र बननेमें सफल हुआ, और उसने हमारे नौजवानोंके लिए मेज़िनी और गेरीवाल्डी जैसे आदर्श प्रदान किये। रोमन साम्राज्यको विध्वंस करनेमें समर्थ होकर जो जर्मन अपनेको एकत्रित न कर सके, वह सन् १८६६ई०में अधूरे तौरसे और फ्रान्स-विजयके

बाद सन् १८७१ (ता० १८ जनवरी)—में क़रीब-क़रीब पूरे तौरसे, प्रुसिया-के नेतृत्वमें अपना एक राष्ट्र बनानेमें समर्थ हुए। सन् १८६६ ई०के इस परिवर्त्तनको संसारका एक भारी परिवर्त्तन समझिए। इसीके करने-पर जर्मनी, फ्रांसकी महान् शक्तिको सन् १८७० ई०में परास्त कर पेरिस और वर्साईपर अपनी विजयध्वजा गाड़नेमें समर्थ हुआ, और जिसकी वजहसे इंग्लैंड, रूसकी आँखें भयभीत हो बर्लिनकी ओर देखने लगीं। यह तो हुआ बाहरके भयके बारेमें, लेकिन इससे भी बड़ा भय हुआ पेरिसके मज़दूरोंके उस राज्य—पेरिस-कम्यून—से जो तारीख़ दो अप्रैलसे डेढ़ महीनेसे कुछ ही ज़्यादा (२ अप्रैल—२१ मई सन् १८७१ ई०) रहा और जिसने बतला दिया कि सामन्त और बनिये ही नहीं, बल्कि मज़दूर भी राज्य कर सकते हैं।"

"आप समझते हैं, इन सबके साथ भारतकी राजनीतिक घटनाएँ सम्बद्ध हैं?"

"राजनीतिक घटनाएँ नहीं, बल्कि हमारे शासक अंग्रेज़ भारतके बारेमें जो भी नीति अख़्तियार करते हैं, उसकी तहमें उनका भारी हाथ होता है। यूरोपमें जर्मनी-जैसी दुर्जेय शक्तिके पैदा होते ही, फ्रांस इंग्लैंडका प्रतिद्वन्द्वी नहीं रहा। अब उसे ख़तरा हो गया जर्मनीसे। मृत पेरिस-कम्यून और सन् १८७१में आस्ट्रिया छोड़ सारी जर्मन रियासतोंके एक जीवित जर्मन राष्ट्रने हमारे पूँजीपति शासकोंकी नींद हराम कर दी—इसे कहनेकी ज़रूरत नहीं। साथ ही इसी वक़्त और परिवर्त्तन होता है। सन् १६७० ई०में अंग्रेज़ व्यापारीसे पूँजीपति बने और कच्चे मालकी ख़रीदसे लेकर, उसे तैयार करके बेचने तक हर अवस्थामें नफ़ा उठानेके रास्ते पूँजीवादको उन्होंने अपनाया। व्यापारवादमें सिर्फ़ कारीगरोंके मालको इधरसे उधर ले जाकर बेचने भरका नफ़ा है, किन्तु पूँजीवादमें नफ़ा पग-पगपर है। रुईको ख़रीदनेमें नफ़ा, बिनौले निकालने और गाँठ बाँधनेमें नफ़ा, रेलपर ढोनेमें नफ़ा, जहाज़पर ले जानेमें (किरायेमें) नफ़ा,

मैञ्चेस्टरकी मिलमें सूत कताई और कपड़ा बुनाईमें नफ़ा, फिर जहाज़से कपड़ेके लौटानेमें जहाज़-कम्पनीका नफ़ा, रेलका नफ़ा—इन सब नफ़ोंकी तुलना कीजिए कारीगरके हाथके बने मालको बेचनेवाले व्यापारीके नफ़ेसे।'

"व्यापारवादसे पूँजीवादका नफ़ा अधिक है, यह इष्ट है।"

"और सन् १८७१ ई०में वर्साईसे जब विजयी जर्मनीने प्रुसियाके राजा विलियम प्रथमको सारी जर्मनीका क़ैसर (सम्राट) घोषित किया, उसके दूसरे साल (सन् १८७२ ई०में) कट्टर अंग्रेज़ पूँजीपतियों—टोरियों—ने इंग्लैंडके प्रधान मन्त्री यहूदी डिस्राइली द्वारा साम्राज्यवादकी घोषणा कराई। घोषणा शाब्दिक नहीं, बल्कि वस्तुस्थितिका प्राकट्य था। फ़ैक्टरियाँ इतनी बढ़ चुकी थीं कि उनके लिए सुरक्षित बाज़ार मिलने चाहिएँ। ऐसे बाज़ार, जहाँ जर्मनी और फ़्रांसके बने मालकी प्रतियोगिताका डर न हो; अर्थात् जहाँके बाज़ारकी इजारादारी बिलकुल अपने हाथमें हो; साथ ही पूँजी भी इतनी जमा हो गई थी, कि उसको नफ़ेपर लगानेके लिए सुरक्षित स्थान चाहिए। यह काम भी दूसरे मुल्कोंको पूरी तौरसे अपने हाथमें करनेसे ही होगा। साम्राज्य शब्दके भीतर डिस्राइलीका यही अर्थ था। भारतमें दोनों बातोंका सुभीता था। योरुपसे भारतकी ओर जानेवाला सबसे छोटा सस्ता रास्ता था स्वेज़ नहर, जो सन् १८६९ ई०में खुली थी। सन् १८७५ ई०में मिश्रके खदीवके १,७७,००० शेयरोंको चालीस लाख पौंडोंमें तार द्वारा डिस्राइलीने खरीदा। साम्राज्य घोषणाको और आगे बढ़ानेमें यह दूसरा क़दम था, और पहली जनवरी सन् १८७७ ई०को दिल्लीमें दरबारकर रानी विक्टोरियाको सम्राज्ञी घोषित करके डिस्राइलीकी सरकारने साम्राज्यवादको इतनी दूर तक पहुँचा दिया कि अब उदार-दलके ग्लैडस्टनके दादा भी मन्त्री बनकर आयें, किन्तु डिस्राइलीकी नीतिको बदलनेका सामर्थ्य नहीं रखते थे।"

"हम तो अभी तक अपने विद्यार्थियोंको यही पढ़ा रहे थे कि महारानी

विक्टोरियाने भारत-सम्राज्ञी - क़ैसर-हिन्दकी—पदवी धारणकर भारतके ऊपर भारी अनुग्रह किया।"

"और याद रखिए, छै साल पहले प्रुसियाके राजाने भी उसी 'क़ैसर'-की पदवी धारण की थी। क़ैसरका नाम कितना महँगा हो गया था। रोमन साम्राज्यके वक़्से परित्यक्त शब्दकी क़ीमत बाज़ारमें झटपट कितनी तेज़ हो गई!"

"साथ ही रोमन भाषाके शब्द क़ैसरको सिर्फ़ हिन्दुस्तानमें चलाना और अंग्रेज़ीमें उसकी जगह 'इम्प्रेस' रखना, इसमें भी कोई रहस्य तो नहीं है?"

"हो सकता है। खैर, 'क़ैसर' शब्दके साथ सन् १८७१से हम साम्राज्यवादके युगमें प्रविष्ट होते हैं। इंग्लैंड पहले आता है, पराजित प्रजातन्त्रीय फ्रांस कुछ सँभलनेके बाद सन् १८८१ ई०में तूनिस (अफ्रीका) पर अधिकार जमा साम्राज्यवादका प्रारम्भ करता है। और नई फैक्ट-रियों और पूँजीपतियोंसे लैस जर्मनी भी सन् १८८४ ई०से उपनिवेशकी माँग पेशकर साम्राज्यवादकी स्थापनाका प्रयत्न करता है।"

"लेकिन इसका भारतमें अंग्रेज़ोंकी नीति-परिवर्त्तनसे क्या सम्बन्ध है?"

"नित्य नये सुधार होते यन्त्रों, बढ़ते हुए कारखानों तथा उनसे होने-वाले पूँजीके रूपमें नफेको लगानेका कोई इन्तज़ाम होना चाहिए। सन् १८७४-८० ई०में डिस्राइलीके मन्त्रि-मण्डलने उसे कर डाला। सन् १८८०-९२ तक रहा न उदारदली ग्लैडेस्टन सरकार, वह डिस्राइलीके बढ़ाये क़दमसे पीछे नहीं जा सकती थी। हाँ, पूँजीकी नंगी साम्राज्यवादी दानवताको कुछ भद्र वेष देनेकी ज़रूरत थी, जिसमें साधारण जनता भड़क न उठे; इसके लिए डिस्राइलीने 'भारत-सम्राज्ञी'का नाट्य तो रच ही डाला था। अब उदार दलवालोंको कुछ और उदारता दिखलाने-की ज़रूरत थी। यह उदारता आयर्लैंण्डके 'होमरूल-बिल'के रूपमें आई; किन्तु आयर्लैंण्डका प्रश्न आज तक वैसा ही पड़ा हुआ है। इसी 'उदारता' से फ़ायदा उठाकर हम हिन्दुस्तानी साहबोंने सन् १८८५ ई०में अपनी

कांग्रेस खड़ी कर डाली। कांग्रेस वस्तुतः ब्रिटिश उदार-दलकी धर्मबेटी बनकर पृथ्वीपर आई, और एक युग तक उसने अपने धर्मको निबाहा। किन्तु सन् १८६५से सन् १६०५ तक दस वर्षोंके लिए ब्रिटेनमें फिर टोरियोंकी सरकार आ गई, जिसने एल्गिन और क़र्ज़न जैसे सपूत भारत भेजे, जिन्होंने साम्राज्यवादकी गाँठोंको और मज़बूत करनेकी कोशिश की, किन्तु परिणाम उल्टा हुआ।"

"क्या आपका मतलब लाल (लाजपतराय), बाल (बाल गंगाधर तिलक), पाल (विपिनचन्द्र पाल)से है?"

"यह लाल, बाल, पाल उसीके बाहरी प्रतीक थे। जापानने रूसको (८ फ़रवरी सन् १६०४—सितम्बर सन् १६०५ ई०) हराकर अपनेको बड़ोंकी बिरादरीमें शामिलकर एशियामें एक नई जाग्रति फैलाई। क़र्ज़नके बंग-भंग और इस एशियायी विजयने मिलकर कांग्रेसके मंचपर लच्छेदार भाषणोंसे आगे जानेके लिए भारतीय नौजवानोंको प्रेरणा दी। आधी शताब्दी बाद भारतीयोंने अपने लिए मरना सीखा। इसमें आयर्लैंण्ड और रूसके शहीदोंके उदाहरणोंसे हमें भारी मदद मिली। इसलिए इसकी जड़को भी सिर्फ भारतके भीतर ही ढूँढ़ना क्या ग़लत न होगा?"

"ज़रूर, वस्तुतः दुनिया एक दूसरेसे नथी हुई है।"

"शंकर! किसी क्रान्तिकारी आन्दोलनकी ताक़त निर्भर करती है दो बातोंपर—उसे अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति तथा उदाहरणोंसे कितनी प्रेरणा मिल रही है, और देशमें सबसे ज्यादा क्रान्तिकारी वर्ग उसमें कहाँ तक भाग ले रहा है? पहले शक्ति स्रोतका कुछ उदाहरण दे चुका। दूसरा शक्ति-स्रोत है कमकर-किसान जनता। क्रान्तिकी लड़ाई वही लड़ सकता है, जिसके पास हारनेके लिए कमसे कम चीज़ हो। सकीनाके अधर-राग, इस बँगले, और बापके ताल्लुक़दारीके गाँवोंके हाथसे निकल जानेका जिसको डर हो, वह क्रान्तिका सैनिक नहीं बन सकता। इसलिए मैं कहता हूँ कि क्रान्तिका वाहन साधारण जनता ही हो सकती है।"

"मैं सहमत हूँ।"

"अच्छा, तो आज इस जनतामें जो उत्तेजना है, उसे जान रहे हो। और दूसरी ओर अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितिसे क्या प्रेरणा मिल रही है, इसकी ओर भी ध्यान दो। पिछला महायुद्ध (सन् १९१४-१८) दुनियामें भारी आग लगा गया है। वह युद्ध था ही साम्राज्यवादकी उपज—पूँजी और तैयार मालके लिए सुरक्षित बाज़ारको पकड़ रखने या छीननेका परिणाम। जर्मनीने नये उपनिवेश लेने चाहे, और धरती बँट चुकी थी। इसलिए उन्हें लड़कर ही छीना जा सकता था। इसीलिए उपनिवेशोंके मालिकों—इंग्लैंड और फ्रांस—से जर्मनीकी ठन गई। खैर, जर्मनी उसमें असफल रहा; लेकिन साथ ही साम्राज्यवादकी नींदमें ज़बर्दस्त खलल डालनेवाला एक और दुश्मन पैदा हो गया, यानी साम्यवाद—चीज़ें नफ़ाके लिए नहीं, बल्कि मानव-वंशको सुखी और समृद्ध बनानेके लिए पैदा की जायँ। मशीनमें सुधार होता है, फ़ैक्टरी बढ़ती है, माल ज्यादा पैदा होता है और उसके लिए ज्यादा बाज़ारकी ज़रूरत होती है। फिर उसे खरीदनेके लिये हाथमें पैसे की ज़रूरत होती है, जिसके लिए हर खरीदारको पूरा वेतन मिलना चाहिए। जितना ही हाथमें पैसा कम रहेगा, उतना ही माल खरीदा नहीं जायगा। उतना ही माल बाज़ारमें या गोदाममें पड़ा रहेगा—मन्दी होगी—उतना ही मालको कम पैदा करना होगा, उतने ही कारखाने बन्द रहेंगे, उतने ही मजदूर बेकार होंगे, उतना ही उनके पास माल खरीदनेके लिए पैसा नहीं रहेगा; फिर माल क्या खाक खरीदेंगे; फ़ैक्टरी क्या धूल चलेगी? साम्यवाद कहता है, नफ़ा का ख्याल छोड़ो। अपने राष्ट्र या सारे संसारको एक परिवार मानकर उसके लिए जितनी आवश्यकताएँ हों उन्हें पैदा करो; हर एकसे उसकी क्षमताके अनुसार काम लो, हर एकको उसकी आवश्यकताके मुताबिक़ जीवनोपयोगी सामग्री दो; हाँ, जब तक आवश्यकता पूरी करने भरके लिए कल-कारखाने और कारीगर इंजीनियर न हों, तब तक कामके अनुसार दो। और

यह तभी हो सकता है, जब कि वैयक्तिक सम्पत्तिका अधिकार न भूमिपर रहे, न फ़ैक्टरीपर, अर्थात् सारे उत्पादनके साधनोंपर उस महापरिवारका अधिकार हो।"

"कल्पना सुन्दर है।"

"यह अब कल्पना ही नहीं है, शंकर! दुनियाके छठे हिस्से — रूसपर ७ नवम्बर सन् १९१७ ई०से साम्यवादी सरकार क़ायम हो चुकी है। आज भी पूँजीवादी दुनिया मानवताकी उस एक मात्र आशाको मिटाना चाहती है; किन्तु पहली ज़बर्दस्त परीक्षामें सोवियत् सरकार उत्तीर्ण हो चुकी है। हाँ, फ्रांस, अमेरिकाके पूँजीपतियोंकी मददसे हंगरीमें छै मास (मार्च-अगस्त सन् १९१९ ई०)के बाद वहाँसे सोवियत् शासनको खत्म कर दिया गया। सोवियत् रूसकी मज़दूर किसान सरकारका अस्तित्व दुनियाके लिए भारी प्रेरणा है, और जिन शक्तियोंने सोवियत्-शासनको क़ायम किया, वह हर मुल्कमें काम कर रही हैं। लड़ाई बन्द होनेके साथ अंग्रेज़ोंने रोलट-क़ानून पास करनेकी जल्दी क्यों की? उसी विश्वकी क्रान्तिकारिणी शक्तिको कुंठित करनेके लिए। फिर सोचिये — न वह क्रान्तिकारी शक्ति दुनियाको उलटनेके लिए भूमंडलके कोने-कोनेमें दौड़ती, न अंग्रेज़ रोलट-क़ानून बनाते, न रोलट-क़ानून बनता और न गाँधी उसके विरुद्ध जनताको उठनेके लिए आवाज़ लगाते; न जनताको आवाज़ लगाते और न छिपा हुआ दावानल सन् १८५७ के बाद फिर आज जगता। इसीलिए मैंने कहा कि हम बिलकुल एक नये क्रान्ति-युगमें दाखिल हो रहे हैं।"

"तो आपका ख्याल है—गाँधी क्रान्तिकारी नेता हैं? जो गाँधी कि गोखले-जैसे नर्मदली नेताको अपना गुरु मानते हैं, वह कैसे क्रान्तिकारी नेता बन सकते हैं, सफ़्फ़ू भाई?"

"गाँधीकी तमाम बातों और उनके तमाम विचारोंको मैं क्रान्तिकारी नहीं मानता शंकर! क्रान्तिकारी शक्तिके स्रोत साधारण जनताका जो

उन्होंने आवाहन किया है, मैं उतने अंशमें उनके इस कामको क्रान्ति-कारी कहता हूँ। उनकी धर्मकी दुहाई—खिलाफ़तकी ख़ास कर—को मैं सरासर क्रान्ति-विरोधी चाल समझता हूँ। उनके कलों-मशीनोंको छोड़ पीछेकी ओर लौटनेको भी मैं प्रतिगामिता समझता हूँ। उनके स्कूलों, कालेजोंको बन्द करनेकी बातको भी मैं इसी कोटिमें रखता हूँ।"

"तुम्हारा बेटा जीवे सफ़्फ़ू भैया! मेरी तो साँस टँगने लगी थी, जब तुम गाँधीकी प्रशंसामें आगे बढ़ रहे थे। मैंने सोचा था—कहीं स्कूल-कालेजोंको शैतानका कारख़ाना तुम भी तो नहीं कहने जा रहे हो?"

"शिक्षा प्रणाली दोषपूर्ण हो सकती है शंकर! किन्तु, आजके स्कूलों-कालेजोंसे हमें साइंसका परिचय होता है, जिसके बिना आज मनुष्य मनुष्य नहीं रह सकता। हमारी मुक्ति जब भी होगी, उसमें साइंसका खास हाथ होगा। दिन-दिन बढ़ती मानव-जातिकी भविष्यकी समृद्धि उसी साइंसपर निर्भर है, इसलिए साइंसको छोड़कर पीछे हटना आत्महत्या है। स्कूलों, कालेजोंको बन्दकर चर्खे-कर्घेकी पाठशालाएँ क़ायम करना बिलकुल अन्ध-कार-युगकी ओर खींचनेकी चेष्टा है। क्रान्ति-सैनिक बननेके लिए विद्या-र्थियोंका आह्वान करना बुरा नहीं है, इसे तो तुम भी मानोगे शंकर!"

"ज़रूर! और दूसरे बायकाट?"

कचहरियोंका बायकाट? ठीक, इसके द्वारा हम अपने विदेशी शासकोंको अपनी क्षमता और रोष दिखलाते हैं। विलायती मालका बायकाट भी अंग्रेज़ी बनियोंके मुँहपर ज़बर्दस्त चपत है, और इससे हमारे स्वदेशी उद्योग-धन्धेको मदद मिलेगी।"

"तो सफ़्फ़ू भाई! मैं देखता हूँ, तुम बहुत दूर तक चले गये हो।"

"अभी नहीं, अब जाना चाहता हूँ।"

"जाना चाहते हो!"

"पहले यह बताओ, हम क्रान्ति-युगसे गुज़र रहे हैं कि नहीं?"

"मैंने तुमसे कितने ही सवाल पूछने हीके लिए पूछे, सफ़्फ़ू भाई!

नहीं तो, जिस दिनसे रूसी क्रान्तिकी खबर मुझे मिली, तबसे ही मैंने ढूँढ़-ढूँढ़कर साम्यवादी साहित्यको पढ़ना और उससे भी ज्यादा अपनी समस्याओं-पर साम्यवादी दृष्टिसे विचार करना शुरू किया। मैं समझता हूँ भारत और विश्वके कल्याणका वही रास्ता है। मैं अभी तक सिर्फ़ इस सन्देहमें पड़ा हुआ था कि गाँधीका असहयोग उस महान् उद्देश्यमें साधक होगा या नहीं; किन्तु जैसे ही तुमने क्रान्तिवाहन जनताकी ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया, वैसे ही मेरा सन्देह दूर हो गया। मैं गाँधीको क्रान्तिका योग्य वाहन नहीं समझता, सफ़्फ़ू भैया! तुमसे साफ़ कहूँ, किन्तु जनताको मैं मानता हूँ। सन् १८५७ ई०में पदच्युत सामन्तोंने चर्बी, कारतूस और 'धर्म खतरेमें'की झूठी दुहाई देकर जनताके ज़बर्दस्त हिस्सेको खींचा था, किन्तु अब जनता रोटी-के सवालपर खींची जा रही है। मैं समझता हूँ, दुहाई ठीक है, क्रान्ति-का रुख ठीक है, और गाँधी पीछे यदि अपने वास्तविक रूपमें भी आयेंगे तो भी मैं समझता हूँ, क्रान्तिके चक्रको वह उलट नहीं सकेंगे।"

"इसीलिए मैं निश्चय कर रहा हूँ क्रान्तिकी सेनामें दाखिल होने-का—असहयोगी बननेका।"

"इतनी जल्दी!"

"जल्दी करनी होती, तो मैं बहुत पहले मैदानमें उतरा होता। बहुत सोचने-समझनेके बाद और आज तुम्हारी राय लेकर मैं इस निश्चयको प्रकट कर रहा हूँ।"

सफ़दरके गम्भीर चेहरेसे जिस वक़्त ये शब्द निकल रहे थे, उस वक़्त शंकरकी दृष्टि कुछ दूर गई हुई थी। उन्हें चुप देख सफ़दरने फिर कहा—"अज़ीज़मन! तुम सोच रहे होगे, अपनी भाभीके अधर-रागको, उसकी रेशमी साड़ीको मख़मली गुर्गाबीको अथवा इस बँगले और खानसामोंको। मैं सकीनापर ज़ोर न दूँगा, वह चाहे जैसी ज़िन्दगी पसन्द करे, उसके पास अपनी भी जायदाद है और यह बँगला, अपने कितने गाँव तथा कुछ नक़द भी है। मेरे लिए वह कोई आकर्षण नहीं रखते। उसकी इच्छा

चाहे जिस तरहकी ज़िन्दगी पसन्द करे।"

"मैं भाभी और तुम्हारी ही बात नहीं सोच रहा था; सोच रहा था अपने बारेमें। मेरे रास्तेमें जो मानसिक रुकावट थी वह भी दूर हो गई। आओ, हम दोनों भाई साथ ही क्रान्तिके पथपर उतरें।"

डबडबाई आँखोंसे सफ़दरने कहा—"ऑक्सफ़र्डमें शंकर! तुम्हारे लिए मैं तरसता था। अब मैं फाँसीके तख्तेपर भी हँसते-हँसते चढ़ जाऊँगा।"

सकीनाने आकर खानेका पैग़ाम दिया, मजलिस बर्खास्त हुई।

(२)

उसी रातसे सकीनाने सफ़दरके चेहरेको ज़्यादा उत्फुल्ल देखा था; किन्तु वह यही समझती थी कि यह देवर शंकरके साथ बातचीतका परिणाम है। सफ़दरके लिए सबसे मुश्किल था, अपने निश्चयको सकीना तक पहुँचाना। वैसे सफ़दर भी लाड़-प्यारमें पले थे, किन्तु वह गाँवके रहनेवाले थे और नंगी ग़रीबीको सहानुभूतिपूर्ण आँखोंसे देखते-देखते वह अपनेमें विश्वास रखते थे, कि जिस परीक्षामें वह अपनेको डालने जा रहे हैं, उसमें उत्तीर्ण होंगे। किन्तु सकीनाकी बात दूसरी थी। वह शहरके एक रईसके घरमें पली थी। उसके लिए कहा जा सकता था—"सिय न दीन्ह पग अवनि कठोरा।" इतवारको भी सफ़दर हिम्मत नहीं कर सके। सोमवारको चीफ़कोर्टमें वह अपने कुछ नज़दीकी दोस्तोंको भी जब अपने निश्चयको सुना चुके, तो सकीनाको निश्चय सुनाना उनके लिए लाज़िमी हो उठा।

उस रातको उन्होंने लखनऊमें मिलनेवाली सर्वश्रेष्ठ शम्पेन मँगवाई थी। सकीनाने समझा था कि आज कोई और दोस्त आवेगा, किन्तु जब उन्होंने खानेके बाद बैराको शम्पेन खोलकर लानेको कहा, तो सकीनाको कुछ कौतूहल हुआ। सफ़दरने सकीनाके ओठोंमें शम्पेनके प्यालेको लगाते हुए कहा—"प्यारी सकीना! मेरे लिए यह तुम्हारा अन्तिम प्रसाद होगा।"

"शराब छोड़ रहे हो प्रियतम ?"

"हाँ, प्यारी ! और भी बहुत कुछ; किन्तु तुम्हें नहीं। अबसे तुम्हीं मेरी शराब रहोगी, तुम्हारे सौन्दर्यको पीकर ही मेरी आँखें सुर्ख हो जाया करेंगी।" सकीनाके चेहरेको उदास पड़ते देख फिर कहा—"प्यारी सकीना ! अभी हम लोग इस शम्पेनको खत्म करें, हमें और भी बातें करनी हैं।"

सकीनाको शराबमें लुत्फ़ नहीं आया, यद्यपि सफ़दरने उमर खय्यामकी कितनी ही रुबाइयाँ उसके प्यालोंपर खर्च कीं।

नौकर-चाकर चले गये, और जब सकीना सफ़दरके पास आकर किसी अनिष्टकी आशंकासे सिकुड़ी जाती-सी लेट रही, तब सफ़दरने अपनी ज़बान खोली—"प्यारी सकीना ! मैंने एक बड़ा निश्चय कर डाला है, यद्यपि मैं अपना अपराध स्वीकार करता हूँ, कि ऐसे निश्चयके करनेमें मुझे तुम्हें भी बोलनेका मौक़ा देना चाहिए था। मैंने ऐसा अपराध क्यों किया, इसे तुम आगेकी बातसे समझ जाओगी। संक्षेपमें वह निश्चय है—मैं अब देशकी स्वतन्त्रताका सैनिक बनने जा रहा हूँ।"

सकीनाके हृदयपर ये शब्द वज्रसे पड़े; इसमें सन्देह नहीं, और इसीलिए वह मुँहसे कुछ बोल न सकी। उसे चुप देखकर सफ़दरने फिर कहा—"किन्तु प्यारी सकीना ! तुम्हारे लड़कपनसे सुखके जीवनको देखते हुए मैं तुम्हें काँटोंमें घसीटना नहीं चाहता।"

सकीनाको मालूम हुआ उसके हृदयपर एक और ज़बर्दस्त चोट लगी, जिससे पहली चोट उसे भूल गई, और उसका जाग्रत आत्म-सम्मान एका-एक उसके मुँहसे कहला गया—"प्रियतम ! क्या तुमने सचमुच मुझे इतना आराम-तलब समझा है कि तुम्हें काँटोंपर घसिटते देख मैं पलंगपर बैठना चाहूँगी। सफ़दर ! यदि मैंने तुम्हें दिलसे प्यार किया है, तो वह मुझे तुम्हारे साथ कहीं भी जानेमें मेरी सहायता करेगा। मैंने अधर-बत्तियाँ बहुत खर्च कीं, मैंने अपने समयका बहुतसा हिस्सा बनाव-शृंगारमें लगाया, मैंने कठोर जीवनसे परिचय प्राप्त करनेका कभी प्रयत्न

नहीं किया; किन्तु सफ़दर ! मेरे तुम्हीं सब कुछ हो, इसलिए नहीं कि मैं तुमपर भार होऊँ, बल्कि यह इसलिए मैं कह रही हूँ कि मैं तुम्हारे साथ रहूँगी, और जैसे तुमने इस जीवनमें पथ-प्रदर्शन किया, वैसे ही आनेवाले जीवनमें भी पथ-प्रदर्शन करना ।"

सफ़दरको इतनी आशा न थी, यद्यपि वह यह जानते थे कि सकीनाका संकल्प बहुत दृढ़ होता है । सफ़दरने फिर कहा—"मैंने नये मुक़दमे लेने बन्द कर दिये हैं । पुरानोंमेंसे भी कितनोंको दूसरोंके सुपुर्द करने जा रहा हूँ । मुझे आशा है, इसी हफ्तेमें कचहरीसे मुझे छुट्टी हो जायगी । एक बात और सुनाऊँ सकीना ! शंकर भी मेरे साथ कूद रहे हैं ।"

"शंकर !" सकीनाने विस्मयसे कहा ।

"शंकर रत्न है सकीना, रत्न ! मेरे साथ वह दुनियाके छोर तक जाता, ऑक्सफ़र्डमें मैं बराबर उसकी याद करता रहा ।"

"लेकिन, सफ़दर ! शंकरकी कुर्बानी तुमसे ज्यादा है ।"

"उसने कुर्बानीके जीवनको स्वयं अख्तियार कर रखा है, सकीना ! जान-बूझकर वह वहाँसे टससे मस नहीं हुआ, नहीं तो वह अच्छा वकील हो सकता था, अपने महकमेमें भी तरक्की कर सकता था ।"

"उसके दो बच्चोंके मरनेपर तो मैं बहुत रोई थी; किन्तु अब समझती हूँ, चारमेंसे दोका बोझा कम होना अच्छा ही हुआ ।"

"और चम्पा शंकरके इस निश्चयको कैसे लेगी, सकीना ?"

"वह आँख मूँदकर स्वीकार करेगी, उसने मुझे तुम्हारा प्रेम सिखलाया, सफ्फू !"

"हमें अपने भविष्यके रहन-सहनके बारेमें भी तय करना है ।"

"तुमने तो अभी कहा, मैंने सोचनेका अवसर कहाँ पाया ? तुम्हीं बतलाओ ?"

"हमारे गाँवकी दाई शरीफ़न और मंगरको छोड़कर बाक़ी सारे नौकरोंको दो महीनेकी तनख्वाह इनाममें देकर बिदा कर देना होगा ।"

"ठीक ।"

"दोनों मोटरोंको बेच देना होगा ।"

"बिलकुल ठीक !"

"एक-दो चारपाई और कुछ कुरसियोंके सिवाय घरके सभी सामान-को बँटवा या नीलाम कर देना होगा ।"

"यह भी ठीक ।"

"लाटूश रोडपर जो खालाकी हवेली हमें मिली है, उसीमें हमें चलकर रहना होगा और इस बँगलेको किरायेपर लगा देना होगा ।"

"बहुत अच्छा !"

"और तो कोई बात याद नहीं पड़ रही है ।"

"मेरे कपड़े—विलायती कपड़े ?"

"गाँधीके असहयोगमें दाखिल हो रहा हूँ, इसलिए कह रहा हो ? मैं इन्हें जलानेके पक्षमें नहीं हूँ, खासकर जब कि विलायती कपड़ोंकी होली काफ़ी जलाई जा चुकी है । लेकिन मेरा खद्दरका कुर्ता और पायजामा सिलकर परसों ही आ रहा है ।"

"बड़े खुदग़र्ज़ हो सफ्फ़ू !"

"खद्दरकी भारी-भरकम साड़ी पहनोगी, सकीना ?"

"मैं तुम्हारे साथ दुनियाके अन्त तक चलूँगी ।"

"और इन कपड़ोंको ?"

"यही समझमें नहीं आता ।"

"यदि नीलाममें बिक जाते, तो उसी दामसे ग़रीबोंके लिए कपड़े खरीदकर बाँट देती, खैर बाँट-बूँटकी कोशिश करूँगी ।"

(३)

सफ़दर जैसे उदीयमान बैरिस्टरके इस महात्यागका चारों ओर बखान होने लगा, यद्यपि खुद सफ़दर इसके लिए अपनेसे ज्यादा शंकरको

मुस्तहक़ समझते थे। अक्टूबर और नवम्बर भर सफ़दरको घूमकर लोगोंमें प्रचार करनेका मौक़ा मिला था। कितनी ही बार उनके साथ सकीना और कितनी ही बार शंकर भी रहते थे। उनका मन गाँवोंमें ज़्यादा लगता था, क्योंकि उनका विश्वास जितना गाँवके किसानों और श्रमिकोंपर था, उतना शहरके पढ़े-लिखोंपर नहीं। लेकिन हफ्तेके भीतर ही उन्हें पता लगा, कि उनकी फ़सीह उर्दू का चौथाई भी लोगोंके पल्ले नहीं पड़ रहा है। शंकरने शुरू हीसे "आइन गाइन"में व्याख्यान देना शुरू किया था, जिसके असरको देख सफ़दरने भी अवधीमें बोलनेका निश्चय किया। पहले उनकी भाषामें किताबी शब्द ज्यादा आते थे; किन्तु अपने परिश्रम और शंकरकी सहायतासे दो महीने बीतते-बीतते उन्हें अवधीके बहुत भूले और नये शब्द याद हो गये, और ग्रामीण जनता उनकी एक-एक बातको झूम-झूमकर सुनती।

दिसम्बर (सन् १९२० ई०)के पहले सप्ताहमें अपने यहाँके बहुतसे राष्ट्रकर्मियोंकी भाँति शंकरके साथ सफ़दर भी साल भरकी सजा पा फ़ैज़ाबाद जेलमें भेज दिये गये। चम्पा और सकीना उसके बाद भी काम करती रहीं; किन्तु उन्हें नहीं पकड़ा गया।

जेलमें जानेपर सफ़दर नियमसे एक घंटा चर्खा चलाते थे। जो लोग उनके गाँधी-विरोधी राजनीतिक विचारोंको जानते थे, उनके चर्खेपर कटाक्ष करते थे। सफ़दरका कहना था—"विलायती कपड़ेके बायकाटको मैं एक राजनीतिक हथियार समझता हूँ, और साथ ही मैं यह भी जानता हूँ कि हमारे देशमें अभी पर्याप्त कपड़ा तैयार नहीं होता, इसलिए हमें कपड़ा भी पैदा करना चाहिए; किन्तु जिस वक़्त देशमें मिलें पर्याप्त कपड़ा तैयार करने लगें, उस वक़्त भी चर्खा चलानेका मैं पक्षपाती नहीं हूँ।"

जेलमें बैठे-ठाले लोगोंकी संख्या ही ज्यादा थी। ये लोग गाँधीजीके साल भरमें स्वराज्यके वचनपर विश्वास कर बैठे हुए थे, और समझते थे जेलमें आ जानेके साथ ही उनका काम खतम हो गया। अभी तक

गाँधीवादने पाखंड, धोखा और दिखलावेका ठेका नहीं लिया था, इसलिए कह सकते थे कि असहयोगी क़ैदियोंमें ईमानदार राष्ट्रकर्मियोंकी ही संख्या ज्यादा थी। तो भी सफ़दर और शंकरको यह देखकर क्षोभ होता था, कि उनमें अपने राजनीतिक ज्ञानके बढ़ानेकी ओर शायद ही किसीका ध्यान हो। उनमेंसे कितने ही रामायण, गीता या क़ुरान पढ़ते; हाथमें सुमिरनी ले नाम जपते; कितने सिर्फ़ ताश और शतरंजमें ही अपना सारा समय खतम कर देते।

एक दिन गाँधीवादी राजनीतिके दिग्गज विद्वान् विनायकप्रसादसे सफ़दरकी छिड़ गई। शंकर भी उस वक्त वहीं थे। विनायकप्रसादने कहा—"अहिंसाका राजनीतिमें इस्तेमाल गाँधीजीका महान् आविष्कार है, और यह अमोघ हथियार है।"

"हमारी वर्त्तमान स्थितिमें वह उपयोगी हो सकता है; किन्तु अहिंसा कोई अमोघ-वमोघ हथियार नहीं है। दुनियामें जितने अहिंसक पशु हैं, वही ज्यादा दूसरोंके शिकार होते हैं।"

"पशुमें न हो, किन्तु मनुष्यमें अहिंसा एक अद्भुत बलका संचार करती है।"

"राजनीतिक क्षेत्रमें कोई इसका उदाहरण नहीं है।"

"नये आविष्कारका उदाहरण नहीं हुआ करता।"

"नया आविष्कार भी नहीं है," शंकरने कहा—"बुद्ध, महावीर, आदि कितने ही धर्मोपदेशकोंने इसपर ज़ोर दिया है।"

"किन्तु राजनीतिक क्षेत्रमें नहीं।"

सफ़दर—"राजनीतिक क्षेत्रमें इसकी उपयोगिता जो कुछ बढ़ गई है, वह इसीलिए कि आज मानवताका तल कुछ ऊँचा उठ गया है, और अखबारोंमें निहत्थोंपर गोली चलानेको लोग बहुत बुरा समझते हैं। अंग्रेज़ जलियाँवालामें गोली चलाकर इसके परिणामको देख चुके हैं।"

"तो आप समझते हैं, हमारा यह अहिंसात्मक असहयोग स्वराज्यके

लिए काफ़ी नहीं है।"

"पहले आप स्वराज्यकी व्याख्या करें।"

"आप भी तो स्वराज्यके युद्धमें आये हैं। आप क्या समझते हैं?"

"मैं समझता हूँ, कमानेवालोंका राज्य—केवल कमानेवालोंका।"

"तो आपके स्वराज्यमें तन-मन-धनसे सहायता करनेवाले, कष्ट सहकर जेल आनेवाले शिक्षितों, सेठों, तालुक़दारोंका कोई अधिकार नहीं रहेगा?"

"पहले तो आप देख रहे हैं कि सेठों तालुकदारोंको अमन-सभा बनानेसे ही फ़ुर्सत नहीं है, वह बेचारे जेल क्यों आने लगे? और यदि कोई आया हो, तो उसे कमानेवालेके स्वार्थसे अपने स्वार्थको अलग नहीं रखना चाहिए।"

शंकर और सफ़दर बराबर पुस्तकोंके पढ़ने तथा देशकी आर्थिक, सामाजिक समस्याओंपर मिलकर विचार किया करते थे। पहले तो दूसरे उनकी बातोंको कम सुननेके लिए तैयार थे; किन्तु जब ३१ दिसम्बर (सन् १९२१ ई०)की आधीरात भी बीत गई और जेलका फाटक नहीं खुला, तो उन्हें निराशा हुई, और जब चौरीचौरामें आतंकित, उत्तेजित जनता द्वारा चन्द पुलिसके आदमियोंके मारे जानेकी खबर सुनकर गांधीजीने सत्याग्रह स्थगित कर दिया, तो कितने ही लोग गम्भीरतासे सोचनेपर मजबूर हुए, और उनमेंसे कुछ आगे चलकर सफ़दर और शंकरकी इस रायसे सहमत हुये—'क्रान्तिका शक्तिस्रोत सिर्फ़ जनता है, गांधीका दिमाग़ नहीं; गांधीने जनताकी शक्तिके प्रति अविश्वास प्रकट कर अपनेको क्रान्ति-विरोधी साबित किया।"

२०—सुमेर

काल—१९४२ ई०

अगस्त (१९४१)का महीना था। अबकी वर्षा बहुत ज़ोरसे हो रही थी, और कितनी ही बार कितने ही दिनों तक सूर्यका दर्शन नहीं होता था। पटनामें गंगा बहुत बढ़ गई थी और हर वक़्त बाँध तोड़कर उसके शहरके भीतर आनेका डर बना रहता था। ऐसे समय बाँधकी चौकसी-की भारी ज़रूरत होती है, और पटनाके तरुणोंने—जिनमें छात्रोंकी संख्या अधिक थी—बाँधकी रखवालीका ज़िम्मा अपने ऊपर लिया था। सुमेर पटना कालेजके एम० ए० प्रथम वर्षका छात्र था। उसकी ड्यूटी दीघाघाटके पास थी। आज आधीरातको मालूम हुआ, कि गंगा बढ़ती जा रही है। सबेरे भी उसका बढ़ना रुका नहीं था, और बाँधकी बारी एक बीतेसे भी कम पानीसे ऊपर थी। लोगोंमें भारी आतंक छाया हुआ था, और हज़ारों आदमी जहाँ-तहाँ कुदाल टोकरी लिये खड़े थे, यद्यपि इसमें सन्देह था कि ईंटके बाँधको वह एक अंगुल भी ऊँचा कर सकते। सुमेर भी सबेरे हीसे बहुत चिन्तित हो बाँधपर टहल रहा था। दोपहरको पानी धीरे-धीरे उतरने लगा, चिन्ताके मारे दबे जाते सुमेरके दिलको कुछ सान्त्वना मिली। अपने पासवाले हिस्सेमें सुमेरने एक और सौम्यमूर्तिको बाँधकी रखवाली करते कितनी ही बार देखा था, और कभी-कभी उसे इच्छा भी हुई थी कि उनसे बात करें, किन्तु बाढ़की चिन्ताने इधर इतना परेशान कर रखा था कि उसे बात छेड़नेकी हिम्मत न हुई। आज जब बाढ़ उतरने लगी और आकाशमें बादल भी फटने लगे, तो सुमेरको अपने पड़ोसी प्रहरीको सामने देख बात करनेकी इच्छा हो आई।

दोनोंमें एकका रंग गेहुँआ दूसरेका काला था, किन्तु क़द एकसा ही मँझोला। उम्रमें जहाँ सुमेर इक्कीस सालका छरहरा जवान था, वहाँ दूसरा चालीस सालका ढीला-ढाला कुछ स्थूल शरीरका आदमी मालूम होता था! सुमेरके शरीरपर खाकी हाफ़पैंट, उलटे कालरकी खाकी हाफ़शर्ट, कन्धेपर बरसाती, पैरमें रबरकी काली गुर्गाबी थी। उसके साथीके बदनपर खद्दरकी सफ़ेद धोती, वैसा ही कुर्ता, गांधी टोपी और एक कम्बल था, पैर नंगा था। सुमेर और आगे बढ़ गया, और मुँहपर हँसीकी रेखा लाकर बोला—

"शुक्र है, आज बाढ़ उतर रही है।"

"और बादल भी फट रहा है।"

"हाँ, हम लोग कितने चिन्तित थे। मैंने एक बार पढ़ा था कि आजसे ढाई हज़ार वर्ष पूर्व जब पाटलिपुत्र (पटना) बसाया जा रहा था, तो गौतमबुद्धने और तरहसे इसे समृद्ध नगर होनेकी बात करते हुए पाटलिपुत्रके तीन शत्रु बतलाये थे—आग, पानी और आपसकी फूट।"

"तो आप इतिहासके विद्यार्थी हैं।"

"विद्यार्थी तो मैं राजनीतिका हूँ, किन्तु इतिहासमें भी शौक़ है, खासकर मूलके अनुवादोंके पढ़नेका।"

"हाँ, पानी शत्रुको तो हम आज कई दिनसे देख ही रहे हैं।"

"और आगका भय उस वक्त रहा होगा, जब कि पाटलिपुत्रके मकान अधिकतर लकड़ीके बनते रहे होंगे। शालके जंगलोंकी अधिकताके वक्त यह होना ही था।"

"और फूटने तो सारे भारतकी लक्ष्मीको बर्बाद कर दिया। अच्छा, मैं आपका नाम जान सकता हूँ?"

"मेरा नाम सुमेर है, मैं पटना कालेजके पंचम वर्षका विद्यार्थी हूँ।"

"और मेरा नाम रामबालक ओझा है। मैं भी एक वक्त पटना कालेजका विद्यार्थी रह चुका हूँ, किन्तु उसे बीस सालसे ऊपर हुए। एक

मित्रने ज़ोर दिया नहीं तो मैं एम० ए० किये बिना ही असहयोग कर रहा था। ख़ैर। वैसा होनेपर भी मुझे अफ़सोस न होता। मुझे इन वर्षोंमें साफ़ मालूम होने लगा है, कि यह स्कूल कालेजकी पढ़ाई अनर्थकरी विद्या है।"

"तो आपने वह विद्या भुला दी होगी?"

"क़रीब-क़रीब। बिल्कुल भूल जाती, मैं कोरी सलेट हो जाता, तो कितना अच्छा होता। उस वक्त मैं सचाईको अच्छी तरह पकड़ पाता।"

"अर्थात् बुद्धिके नहीं बल्कि श्रद्धाके पथपर आँख मूँदकर आरूढ़ होते?"

"श्रद्धाके पथको आप बुरा समझते हैं, सुमेर बाबू?"

"मैं बाबू नहीं हूँ ओझा जी! मैं एक साधारण चमारका लड़का हूँ। मेरे घरमें एक धूर भर भी अपनी ज़मीन नहीं है; थी, किन्तु ज़मींदारने ज़बर्दस्ती दख़ल कर वहाँ अपना बग़ीचा बनवा लिया। माँ कूट-पीसकर अब भी पेट पालती है। मुझे पहले एक सज्जनकी कृपा, फिर स्कालरशिप यहाँ तक लाई। इस तरह आप समझ सकते हैं कि मैं बाबू शब्दका मुस्तहक़ नहीं हूँ।"

"आदतवश समझिये सुमेर जी! लेकिन मुझे आपका जो परिचय अभी मिला है, उससे मुझे बड़ी ख़ुशी हुई है। जानते हैं, गांधी जीके एक शिष्यको, हरिजन तरुणको इस प्रकार संग्राम करते देख कितना आनन्द होता होगा।"

"ओझा जी! मैं आपसे और बातें करना चाहता हूँ, और स्नेहके साथ; इसलिए यदि आप मेरे मतभेदको पहले हीसे जान लें, तो मैं समझता हूँ, अच्छा होगा। मैं हरिजन नामसे सख़्त घृणा करता हूँ। मैं 'हरिजन' पत्रको बिल्कुल पुराण-पन्थी—भारतको अन्धकार युगकी ओर खींचनेवाला—पत्र समझता हूँ, और गांधी जीको अपनी जातिका ज़बर्दस्त दुश्मन।"......

"आप अपनी जातिपर गांधी जीका कोई उपकार नहीं मानते?"

"उतना ही उपकार मानता हूँ, जितना मज़दूरको मिल-मालिकका मानना चाहिए।"

"गांधी जी मालिक बनानेके लिए नहीं कहते ।"

"ज़मींदारों, पूँजीपतियों, राजाओंको वली—संरक्षक—गार्जियन—कहनेका दूसरा क्या अर्थ हो सकता है? गांधी जीका हमारे साथ प्रेम इसीलिए है कि हम हिन्दुओंमेंसे निकल न जायँ। पूनामें आमरण अनशन इसीलिए किया था, कि हम हिन्दुओंसे अलग अपनी सत्ता न क़ायम कर लें। हिन्दुओंको हज़ार वर्षोंसे सस्ते दासोंकी ज़रूरत थी, और हमारी जातिने उसकी पूर्ति की। पहले हमें दास ही कहा जाता था, अब गांधी जी 'हरिजन' कह कर हमारा उद्धार करनेकी बात करते हैं। शायद हिन्दुओंके बाद हरि ही हमारा सबसे बड़ा दुश्मन रहा है। आप खुद समझ सकते हैं, ऐसे हरिका जन बनना हम कब पसन्द करेंगे?"

"तो आप भगवान्‌को भी नहीं मानते?"

"किस उपकारपर? हज़ारों वर्षोंसे हमारी जाति पशुसे भी बदतर अछूत, अपमानित समझी जा रही है, और उसी भगवान्‌के नामपर, जो हिन्दुओंकी बड़ी जातियोंकी ज़रा-ज़रा-सी बातपर अवतार लेता रहा, रथ हाँकता रहा; किन्तु सैकड़ों पीढ़ियोंसे हमारी स्त्रियोंकी इज्ज़त बिगाड़ी जाती रही। हम बाज़ारोंमें सोनपुरके मेलेके पशुओंकी तरह बिकते रहे, आज भी गाली-मार खाना, भूखे मरना ही हमारे लिए भगवान्‌की दया बतलाई जाती है। इतना होनेपर भी जिस भगवान्‌के कानपर जूँ तक नहीं रेंगी, उसे माने हमारी बला।"

"तो आप डाक्टर अम्बेडकरके रास्तेको पसन्द करते होंगे?"

"ग़लत। डाक्टर अम्बेडकर भुक्त-भोगी हैं। मुझे भी प्रथम द्वितीय वर्षमें हिन्दू लड़कोंने होस्टलमें नहीं रहने दिया, किन्तु, मैं अम्बेडकरके रास्ते और कांग्रेसी अछूत-नेताओंके रास्तोंमें कोई अन्तर नहीं देखता। और मेरी समझमें वह रास्ता गांधी-बिड़ला-बजाज रास्तेसे भी मिल जाता है। उसका अर्थ है, अछूतोंमेंसे भी कुछ पाँच-पाँच छै-छै हज़ार महीना पानेवाले बन जायें। अछूतोंमें भी बिड़ला-बजाज नहीं तो हज़ारीमल ही

बन जायें। अछूतोंके पास यदि एक-दो देशी रियासतें नहीं, तो एक-दो छोटी-मोटी ज़मीदारियाँ ही आ जायँ। मगर इससे दस करोड़ अछूतोंकी दयनीय दशा दूर नहीं की जा सकती।"

"तो आपका मतलब है शोषण बन्द होना चाहिए?"

"हाँ, ग़रीबोंकी कमाईपर मोटे होनेवालोंका भारतमें नामो-निशान यदि न रहे, तभी हमारी समस्या हल हो सकती है।"

"गांधी जी इसीलिए तो हाथके कपड़े, हाथके गुड़, हाथके चावल—सभी हाथकी चीज़ोंके इस्तेमाल करनेपर ज़ोर देते हैं।"

"हाँ बिड़लों और बजाजोंके रुपयेके बलपर! जब खादीसंघको लाख दो-लाखका घाटा होता है, तो कोई सेठ उठकर चेक काट देता है। यदि यक़ीन होता, कि गांधीके चर्खे-कर्वेसे उनकी मिलें बन्द हो जायँगी और मोतीके हार और रेशमकी साड़ियाँ सपना हो जायेंगी, तो याद रखिए ओझा जी! कोई सेठ-सेठानी गांधी जीकी आरती उतारने न आता।"

"तो आप गांधीवादियोंको पूँजीपतियोंका दलाल समझते हैं?"

"मुझे इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं है। जो कुछ कोर-कसर थी, उसे उन्होंने 'घर फूँक' नीतिके विरुद्ध हिन्दुस्तानी सेठोंके हुआँ-हुआँमें शामिल हो पूरा कर दिया।"

"तो आप चाहते हैं, जहाँ जापानी पैर रखनेवाले हों, वहाँके कल-कारखानोंको जलाकर खाक कर दिया जाय? भारतीयोंने कितने संकट, कितने श्रमके साथ ये कारखाने क़ायम किये। ज़रा आप इसपर भी विचार कीजिए सुमेर जी!"

"मैंने संकट और श्रमपर विचार किया है, और इसपर भी कि गांधीवादी मशीनोंके अस्तित्वको एक क्षणके लिए भी बर्दाश्त नहीं करनेकी बात करते रहे हैं। साथ ही यह भी जानता हूँ—सेठ लोग चाहते हैं कि हमारे कारखाने सुरक्षित ही जापानियोंके हाथोंमें चले जायँ। जापानी पूँजीवादके ज़बर्दस्त समर्थक हैं। जापानी रेडियोको सुनकर सेठोंको

विश्वास है, कि जापानी शासनमें कारखानेके मालिक वही रहेंगे। यह छोड़ बतलाइए, उनके दिलमें और कौन-से उच्च आदर्शके निमित्त त्याग-भाव छल-छला आया है?"

"देशकी अर्जित सम्पत्तिकी वह रक्षा करना चाहते हैं।"

"ओझा जी! मत जलेपर नमक छिड़किए। सेठोंको देशकी सम्पत्ति-का नहीं अपनी सम्पत्तिका ख्याल है। उनके लिए देश जाये चूल्हा-भाड़में। वह चाहते हैं, ज्यादासे ज्यादा नफ़ा कमाना। मज़दूरोंकी चार पैसा मज़दूरी बढ़ानेकी जगह जो लोग हड़तालियोंको मोटरसे कुचलवा देते हैं, उनके लिए देशकी सम्पत्तिके अर्जन-रक्षणकी बात न कीजिए।"

"यदि उनके बारेमें यह मान भी लिया जाये, तो भी गांधी जीकी ईसानदारीपर तो आपको सन्देह नहीं होना चाहिए।"

"मैं ईमानको आदमीके कामसे, उसके वचनसे तौलता हूँ। मैं गांधी जीको दूध पीनेवाला बच्चा नहीं मानता। एंड्रूज़के फ़ंडके लिए उन्हें पाँच लाखकी जरूरत थी। पाँच ही दिनमें बम्बईके सेठोंने गांधी जीके चरणोंमें सात लाख अर्पित कर दिये। सेठोंका जितना बड़ा काम वह कर रहे हैं, उसके लिए इंग्लैंड-अमेरिकाके सेठ सात करोड़की थैली पेश कर सकते थे, यह तो अत्यन्त सस्ता सौदा रहा।"

"इसका मतलब है रिश्वत।"

"सेठ भगवान्‌को भी कुछ चढ़ाते हैं, तो सिर्फ़ उसी ख्यालसे। उनके द्वारपर 'लाभ शुभ' लिखा रहता है।"

"तो चर्खे-कर्घेको आप शोषणका शत्रु नहीं मानते?"

"उलटा मैं उन्हें शोषणका ज़बर्दस्त पोषक मानता हूँ।"

"तब तो मिलको भी आप शोषणका शत्रु समझते होंगे।"

"सुनिए भी तो मैं क्यों शोषक मानता हूँ, दुनिया जिस तरह पत्थरके हथियारोंको छोड़कर बहुत आगे चली आई है, उसी तरह चर्खे-कर्घेसे भी बहुत आगे चली आई है, मैंने पटना म्युज़ियममें हज़ार वर्ष पुरानी ताल-

पत्रपर लिखी पुस्तकें देखी हैं। उस वक्त सेठोंके बही-खाते, तथा नालंदाके विद्यार्थियोंकी पुस्तकें और नोटबुकें इसी तालपत्रपर लिखी जाती थीं। गांधी जी सात जन्म तक कहते रह जायें 'लौट चलो तालपत्रके युगमें,' मगर दुनिया टीटागढ़के काग़ज़, मोनो-टाइप, रोटरी छापेख़ानेके युगसे लौटकर तालपत्रके युगमें नहीं जायेगी। न जानेमें ही उसका कल्याण है, क्योंकि इससे सेव-ग्रामकी भजनावलीके फैलनेमें भले ही दिक़्क़त न हो, किन्तु हर एक व्यक्तिको शिक्षित—सो भी आज तकके अर्जित ज्ञान-विज्ञानमें—देखना असम्भव होगा। फ़ासिस्त लुटेरोंके टैंकों, हवाई जहाज़ों, पन-डुब्बियों, गैसोंके मुक़ाबिलेमें यदि गांधी जी पत्थरके हथियारोंकी ओर लौटनेकी कोई बात करें, तो इसे रत्ती भर अक़्ल रखनेवाली जाति भी नहीं मान सकेगी, क्योंकि वह सीधी आत्महत्या होगी।"

"तो आप अहिंसाके महान् सिद्धान्तको भी नहीं मानते?"

"गांधी जीकी अहिंसा, खुदा बचाये उससे। जो अहिंसा किसानों और मज़दूरोंपर कांग्रेसी सरकारों द्वारा चलाई जाती गोलियोंका समर्थन करे और फ़ासिस्त लुटेरोंके सामने निहत्था बन जानेके लिए कहे, उसे समझना हमारे लिए असम्भव है। मैं आपके पहले प्रश्नको ख़तम कर देता हूँ। सेठ जानते हैं कि चर्खे-कर्घेसे उनके कारख़ानोंका बाल भी बाँका नहीं हो सकता—चर्खे-कर्घे जब तक मिलोंके मालसे सस्ते और अच्छे कपड़े बाज़ारमें नहीं ला सकते, तब तक उनका अस्तित्व सेठोंके दानपर निर्भर है। चर्खा-कर्घावाद शोषणकी असली दवा साम्यवादके रास्तेमें भारी बाधक है। कितने ही लोग बेवक़ूफ़ीसे समझते हैं, कि शोषण रोकनेके लिए साम्यवाद—कल-कारख़ानोंपर जनताका अधिकार—से अच्छी दवा चर्खा-कर्घावाद है। बस इसी नीयतसे दुनियाको मिलका कपड़ा पहनाने-वाले सेठ चर्खाके भक्त हैं और गांधी जी इसे भली भाँति समझते हैं।"

"यह उनकी नीयतपर हमला है?"

"उनकी एक-एक हरकत मुझे शोषितों—और भारतमें सबसे

अधिक शोषित हमारी जाति है—के लिए खतरनाक है। हमें दिमाग़ी ग़ुलामीके अड्डे शोषकोंके ज़बर्दस्त पोषक पुरोहितोंकी दूकानों—इन मन्दिरोंमें ताला लगवाना चाहिए—और उलटे हमें फँसानेके लिए गांधी जी उन्हें खुलवाना चाहते हैं। पुरानी पोथियों, अमीरोंके टुकड़ेसे पलनेवाले सन्तोंकी वाणियोंको यदि हम आगमें नहीं जलाते, तो सात तालेमें तो बन्द कर देना चाहिए; किन्तु उन्हींकी दुहाई देकर गांधी जी हमें गुमराह कर देना चाहते हैं। वर्णव्यवस्था जैसी मरण-व्यवस्थाका भारतमें नाम नहीं रहने देना चाहिए किन्तु गाँधी जी उसकी अनासक्ति योगसे लच्छेदार व्याख्या करते हैं, इन सबके बाद हरिजन-उद्धार सिर्फ़ ढोंग नहीं तो क्या है? इससे कुछ ऊँची जातिके हरिजन-उद्धारकोंको जीविका भले ही मिल जाय, मगर उद्धारकी आशा अन्धा ही कर सकता है।"

"तो आप नहीं चाहते कि अछूत सवर्ण सब एक हो जायँ?"

"कालने हमें एक कर दिया है; किन्तु गाँधी जीके प्रिय धर्म, भगवान्, पुराणपंथिता उसे हमें समझने नहीं देती। मुझे देखिए, ओझा जी! मेरा रंग गेहुँआ, नाक ज्यादा पतली ऊँची और आपका रंग काला, नाक बिलकुल चिपटी। इसका क्या अर्थ है? मेरेमें आर्य रक्त अधिक है। आपमें मेरे पूर्वजोंका रक्त अधिक है। आपके पूर्वजोंने वर्ण-व्यवस्थाकी लोहेकी दीवार खड़ी कर बहुत चाहा, कि रक्त-सम्मिश्रण न होने पाये, किन्तु चाह नहीं पूरी हुई, इसके सबूत हम आप मौजूद हैं। वोल्गा और गंगाके तटके खून आपसमें मिश्रित हो गये हैं। आज वर्ण-(रंग) को लेकर झगड़ा नहीं है—आपको कोई ब्राह्मण जातिसे खारिज करनेके लिए तैयार नहीं है। सारी बातें ठीक हो जायें, यदि धर्म, भगवान्, पुराण-पंथिता हमारा पिंड छोड़ दे; और यह तब तक नहीं हो सकता, जब तक कि शोषक और गांधी जी जैसे उनके पोषक मौजूद हैं।"

"मैं आपके तीखे शब्दोंको सुनकर नाराज़ नहीं होता।"

"जला हुआ दिल और जवानी उसके पीछे है ओझा जी! इसलिए

मेरी बातसे कष्ट हुआ हो तो क्षमा कीजियेगा।"

"नहीं मैं बुरा नहीं मानता। किन्तु यदि चर्खे-कर्घे जैसी भारतकी चीज़का आप फिरसे स्थापित होना सम्भव नहीं समझते, तो क्या विदेशी साम्यवादके लिए भारतकी भूमिको उर्वर समझते हैं?"

"शोषकोंको जो बात पसन्द नहीं, वही विदेशी और असम्भव है। चूँकि इनकी कृपासे करोड़पति हो गये, इसलिए सेठ लोगोंके लिए चीनीकी मिलें विदेशी नहीं रहीं; कपड़े, जूट, काग़ज़, सीमेंट, लोहे, साइकिल, जहाज़-हवाई-जहाज़, मोटर, काँच, फौंटेनपेन, जूते ...की, बिजली या भापसे चलनेवाली लाखों-करोड़ोंकी फ़ैक्टरियाँ विदेशी नहीं रहीं। रेडियो, टेलीविज़न (दूरदर्शक-रेडियो), फ़िल्म, टैंक आदि जैसे ही सेठोंके पाकेटमें मज़दूरोंकी कमाईके करोड़ों रुपये चुपकेसे डालने लगेंगे, वैसे ही उनकी विदेशीयता जाती रहेगी। शोषणमें सहायक सारे विदेशी यंत्र उनके लिए स्वदेशी हैं, किन्तु शोषण-ध्वंसक उपाय—साम्यवाद—सदा स्वदेशी बना रहेगा। ईमानदारी इसे कहते हैं ओझा जी!"

"साम्यवाद धर्मका विरोधी है, और भारत सदासे धर्मप्राण रहा है, ज़रा इस दिक्क़तका भी खयाल करें सुमेर जी।"

"आप कालेजकी सारी पढ़ी-पढ़ाई विद्याको भूल गया कहते हैं, इसलिए मैं क्या कहूँ? जब धर्मका नाम आप लोग लेते हैं, तो आपके सामने सिर्फ़ हिन्दू-धर्म रहता है। गांधी जीने बजाजजीके गोसेवा-मण्डलो भी आशीर्वाद दिया है, जिसमें मांस छोड़ सब चीज़ गायकी ही खानेकी प्रतिज्ञा कराई जाती है—पेशाब और पाखानेकी भी। यदि गो-भक्षक, अगोभक्षकका भेद करें, तो भारतमें गोभक्षक आधेसे बढ़ जायँगे, हमारी जाति भी गोभक्षक है, आप जानते हैं। वैसे भी तो भारतमें एक चौथाईके क़रीब लोग मुसलमान हैं, करोड़के क़रीब ईसाई, और कुछ लाख बौद्ध। यदि इन धर्मोंको भी आप धर्ममें शुमार करते हैं, तो पृथिवी-का कौन देश है जहाँ धर्मके पक्के विश्वासी नहीं हैं? गाँधी जीके मित्र

भूतपूर्व लार्ड-इर्विन तथा आजके लार्ड हेलीफेक्स एक ज़बर्दस्त ईसाई सन्त हैं। आज तक धर्मकी दुहाई देकर ही धर्मप्राण अँगरेज़ोंको साम्य-वादसे दूर रहनेके लिए यह सन्त लोग प्रचार करते रहे। अरब, तुर्की, ईरान, अफ़ग़ानिस्तानके मुसलमान हिन्दी मुसलमानोंसे कम धर्मप्राण नहीं हैं। लाखों सुन्दरियोंके स्वेच्छासे कटवाये केशोंके रस्सेसे जहाँ मन्दिर बनानेके लिए लकड़ियाँ ढोई गईं, उस जापानको आप कम धर्मप्राण नहीं कह सकते। सभी शोषक ज़बर्दस्त धर्मप्राण होते हैं, ओझा जी! और सभी शोषण-शत्रु धर्म-शत्रु घोषित किये जाते हैं। यदि साम्यवादको विदेशी ही मान लें, तो भी जैसे ईसाई, इस्लाम जैसे विदेशी धर्म, रेल, तार, हवाई जहाज़, कल-कारखाने जैसी विदेशी चीज़ें हमारी आँखोंके सामने स्वदेशी बनकर मौजूद हैं, वैसे ही साम्यवाद भी स्वदेशी हो जायेगा—बल्कि हो गया है।"

(२)

पटनामें शामके वक्त घूमनेके लिए लॉन और हार्डिंग-पार्क दो ही जगह हैं, और दोनों हीको ऐसी मनहूस हालतमें रक्खा गया है, कि वह स्वयं किसीको खींच लानेका सामर्थ्य नहीं रखतीं; तो भी जिनको दिल-बहलाव चहलक़दमी, दोस्तोंसे मिलनेकी ख्वाहिश होती है, वे इन्हीं जगहोंमें पहुँचते हैं। अँधेरा हो रहा था, तो भी तीन तरुणोंकी बात खतम नहीं हो रही थी, और वे बाँकीपुर (पटना)के लॉन—मैदान—में डटे हुए थे। एक कह रहा था—

"साथी सुमेर! मैं फिर भी कहूँगा, तुम एक बार फिर सोचो, तुम बहुत भारी क़दम उठाने जा रहे हो।"

"मौतसे खेलनेसे बढ़कर क़दम उठानेकी क्या बात हो सकती है? और रूप! इसे तो पक्का समझो, कि मैंने जल्दी नहीं की है। क़दम ही यह जल्दीका नहीं हो सकता था।"

"हवामें उड़ना भाई ! मुझे तो कोठेकी छतके किनारे खड़ा होनेमें भी डर लगता है।"

"कितने ही लोगोंको साइकलपर चढ़नेमें भी डर लगता है, और तुम उसे दोनों हाथ छोड़कर दौड़ाते हो।"

खैर, लेकिन यह बात मेरी समझमें नहीं आई कि मज़दूरिनके लड़के सुमेरको इस साम्राज्यवादी लड़ाईमें जान देनेकी क्यों सूझी ?"

"इसलिए कि इसी लड़ाईके साथ मजदूरिनके लड़के और उसकी सारी जमातका भविष्य बँधा हुआ है। इसीलिए कि यह लड़ाई अब सिर्फ़ साम्राज्योंका ही फ़ैसला नहीं करेगी, बल्कि शोषणका भी फ़ैसला करेगी।"

"तो क्या तुम इसे क़बूल नहीं करते, कि इस लड़ाईके लिए सबसे बड़े दोषी अंग्रेज़ पूँजीपति हैं ?"

"वाल्डविन्, चेम्बरलेन जिनके स्वार्थके प्रतिनिधि थे ! हाँ, मैं स्वीकार करता हूँ। उन्होंने ही मुसोलिनी, हिटलरको पोसकर बड़ा किया, जिसमें साम्यवादियोंसे शोषकवर्गको त्राण मिले। लेकिन भस्मासुरने पहले बैल-नाथ ही पर हाथ साफ़ करना चाहा, और जब तक यह तमाशा होता रहा, तब तक मैंने भी इस बड़े क़दमको उठानेका निश्चय नहीं किया। लेकिन आज भस्मासुर बैलनाथपर नहीं हमारे ऊपर हाथ रखना चाहता है।"

"हमारे ऊपर ! मुझे तो कोई अन्तर नहीं मालूम होता, पहिलेसे।"

"आपको अन्तर नहीं मालूम होता क्योंकि आपका वर्ग—सेठ-वर्ग—फ़ासिस्त शासनमें भी घीचुपड़ीकी आशा रखता है। क्रुप्, मित्सुई-की पाँचों घीमें हैं, इस लड़ाईके होनेसे; किन्तु, सोवियत्के पराजित होनेपर शोषितों—मज़दूरों, किसानों—को कोई आशा नहीं। कसाई हिटलर और तोजोके राज्यमें किसान बकाश्तकी लड़ाई नहीं लड़ सकते, रूपकिशोर बाबू ! नहीं मज़दूर बड़ेसे बड़े अत्याचारके लिए हड़ताल कर सकते हैं। फ़ासिज्म मज़दूर किसानोंको पक्के मानीमें दास बनाना चाहता है। हमारे लिए सोवियत् बहुतसे राष्ट्रोंमें एक नहीं, बल्कि, वही एकमात्र

राष्ट्र है। उसे ही दुनियाके किसान मज़दूर अपनी आशा, अपना राष्ट्र कह सकते हैं। डेढ़ शताब्दीके लाखों, करोड़ोंकी क़ुर्बानियोंके बाद मानवताके लिए, सनातन शोषितोंके लिए यह साम्यवादी प्रदीप पृथिवीपर आलोकित हुआ, एक बार इस प्रदीपको बुझ जाने दीजिए, फिर देखिए कितने दिनोंके लिए दुनिया अँधेरेमें चली जाती है। हम जीते जी इस भीषण कांडको अपनी आँखोंके सामने होते चुपचाप नहीं देख सकते।"

"लेकिन, सुमेर भाई! और भी तो समाजवादी देशमें हैं; वे भी दुनियासे शोषणको मिटाना चाहते हैं।"

"जिनको सेवग्रामसे फैलता अन्धकार ही प्रकाश मालूम होता है; ऐसे समाजवादियोंसे शैतान बचाये। ऐसे तो हिटलर भी अपनेको समाजवादी कहता है। गांधीजीके चेले भी उन्हें समाजवादी कहते हैं। समाजवादी कहनेसे कोई समाजवादी नहीं होता। जानते हैं हिटलर, तोजोकी विजयसे हिन्दुस्तानका पूँजीवाद और पूँजीपतिवर्ग बर्बाद नहीं, बल्कि वह और मज़बूत होगा; किन्तु फ़ासिस्त दस्यु मज़दूरों, किसानोंको साँस तक लेने नहीं देंगे, और साम्यवादियोंकी क्या हालत होगी, इसके लिए, इटली और जर्मनीका हालका इतिहास देखिए। वही क्यों? सिर्फ़ फ़ांसमें हर रोज़ जो कम्युनिस्त गोलीसे उड़ाये जा रहे हैं, उन्हींको देख लीजिए। जो अपनेको मार्क्सवादी कहकर अपनेको इस युद्धसे अलग रखना चाहता है, वह या तो अपनेको धोखा दे रहा है या दूसरोंको। हिटलर और तोजोके शासनमें मार्क्सवादी समाजवादियोंकी जानकी क़ीमत एक गोली मात्र है, इसे हम सब अच्छी तरह जानते हैं। फिर कोई समाजवादी यदि अपनेको तटस्थ कह सकता है, तो चमगादड़की नीतिसे ही। सोवियत्‌के ध्वंसके बाद जो समाजवादका झंडा उड़ानेकी हाँक रहे हैं, उन्हें हम तो पागल कह सकते हैं या धोखेबाज़।"

"तो आपका ख्याल है, इस युद्धमें कोई तटस्थ रही नहीं सकता?"

"हाँ, यह मेरी पक्की राय है, कि जिसका मस्तिष्क ठीकसे काम कर

रहा है, उसने अपने लिए एक पक्ष स्वीकार कर लिया है, क्योंकि इस लड़ाईका परिणाम शोषण-विरोधी शक्तियोंको या तो खतम करना होगा या उनकी शक्तिको इतना प्रबल कर देगा, कि फिर मुसोलिनी हिटलर, तोजो या उनके पिताओं—वाल्डविन, चेम्बरलेन, हेलीफेक्सोंके लिए दुनियामें जगह नहीं रह जायेगी। हिन्दुस्तानमें सुभाषचन्द्र और उनके अनुयायियोंने अपना स्थान चुन लिया है; और जिनको आप तटस्थ समझते हैं, वह भी तय कर चुके हैं। उनकी तटस्थता सिर्फ़ ऊपरी दिखावा है, क्योंकि फ़ासिस्तोंके रवैयेसे वह ना-वाक़िफ़ नहीं हैं।"

"लेकिन हमारे यहाँके अंग्रेज़ शासकोंके मनोभावको देख रहे हो न?"

"अन्धे हैं ये लोग, तीस बरस पहिलेके ज़मानेमें अब भी अपनेको रखनेकी कोशिश कर रहे हैं। लेकिन क्या समझते हो लड़ाईके बादकी दुनिया इन पुरानी फोसीलोंके लिए जीती जा रही है। हम जानते हैं, ये लोग हमारी युद्धकी तैयारीमें पगपग पर बाधा डालेंगे, क्योंकि वह हर एक चीज़को गुज़रे ज़मानेकी दृष्टिसे देखते हैं।"

"हाँ, देख नहीं रहे हो, जिन लोगोंकी सूरतें अमन-सभाओंमें ही शोभा देती थीं, अब वही राष्ट्रीय मोर्चेके नायक बनकर जनताके सामने दहाड़ रहे हैं। हमारे गवर्नर, गवर्नर-जेनरल जनताको क़ुर्बानियाँ करनेका उपदेश दे रहे हैं। जब कि उनके अपने खर्चेको देखकर हमारा माथा चकराता है। हमारे यहाँ कमसे कम मज़दूरी है एक आना रोज़, जिसके हिसाबसे २५) सालाना आमदनी हुई और इनकी तनखाह!—

	रुपया	
वाइसराय	२,५०,८००	अर्थात् घुरहू मज़दूरकी आमदनीका १०,००० गुणा
बंगाल गवर्नर	१,२०,०००	४,८०० गुना
युक्तप्रान्त गवर्नर	,, ,,	,, ,,
बिहार गवर्नर	१,०० ०००	४,००० गुना

"यह बाक़ी खर्च छोड़नेपर है, यदि दूसरे खर्च भी लिए जायँ तो मार्ग-व्यय और छुट्टी-व्यय छोड़कर भी बंगाल गवर्नरका सालाना खर्च है ६,०७,२०० रुपया अर्थात् घुरहू मज़दूरकी आमदनीका ४२,२६१ गुना। इससे ज़रा मिलाइए इंग्लैंडके मज़दूरको जिसकी अल्पतम मज़दूरी ८५ शिलिंग (साढ़े ५६ रु० से अधिक) या ७८ शिलिंग (५२ रु० से अधिक) प्रति सप्ताह कोयलेके खानोंमें मंज़ूर हुई है। खेतीके मज़दूर भी ४५ रुपया सप्ताहसे ज़्यादा पाते हैं। जिसका अर्थ है २०० या १२१ पौंड वार्षिक मज़दूरी और महामन्त्री इस हिसाबसे सिर्फ़ ३६ गुना ज़्यादा तनखाह पाता है। सोवियत्‌में १२,००० रूबील महामन्त्रीको मिलता है, और मज़दूरोंकी बहुत भारी तादाद है जो इतना वेतन पाती है, जब कि सबसे कम तन्ख्वाह पानेवाला मज़दूर उससे छठे हिस्सेसे कम नहीं पाता। अब मिलाइए—

भारतमें बंगाल गवर्नर	घुरहूसे	४२,२६२ गुना
इंग्लैंडमें महामन्त्री	,,	३६ गुना
सोवियत्‌रूसमें ,,	,,	६ गुना

"और सेठोंकी आमदनीसे घुरहूकी आमदनीको मिलाओगे तो कलेजा फटने लगेगा।"

"यह सरासर लूट है भाई सुमेर।"

"इसीलिए मैं कहता हूँ, हिन्दुस्तानमें नौकरी करनेवाले स्वार्थी, कायर, दूर तक देखनेमें असमर्थ इन अंग्रेज़ोंसे हम कोई आशा नहीं कर सकते। हम इनके लिए इस लड़ाईको लड़ने और जीतने नहीं जा रहे हैं। हम मर रहे हैं उस दुनियाके लिए जो इस पृथिवीके छठे हिस्सेपर है और जिसको फ़ासिस्त खतम करने जा रहे हैं। हम उस आनेवाली दुनियाके लिए मरने जा रहे हैं, जिसमें कि मानवता स्वतन्त्र और समृद्ध होगी।"

समद अब तक चुप था, अब उसने भी कुछ पूछनेकी इच्छासे कहा—

"साथी सुमेर ! तुमसे कितनी ही बातोंमें मैं सहमत हूँ, और कितनी ही बातोंमें असहमत। किन्तु तुम्हारी रायकी मैं कितनी इज्ज़त करता हूँ, यह तुमसे छिपा नहीं है। मैं भी समझता हूँ, इस संसारव्यापी संघर्षमें हम तटस्थ नहीं रह सकते। लेकिन दोस्त ! जब चुनाव आदि तय होकर तुम भरती हो गये, तब तुमने हमें खबर दी; कुछ पहिले तो बतलाना चाहिए था ?"

"पहिले बतलाता, और चुनावमें छूट जाता। इसलिए भरतीके बाद चौबीस घंटेकी उड़ान करके मैंने मित्रोंसे कहा। अब कहनेमें कोई हर्ज भी नहीं, क्योंकि परसों ही मैं जा रहा हूँ अम्बाला उड़न्-स्कूलमें।"

"और माँको खबर दे दी ?"

"माँके लिए जैसा ही पटना वैसा ही अम्बाला, जब तक मैं खोल-कर साफ़ न लिख दूँ कि मैं लड़ाईमें मृत्युके मुँहमें जा रहा हूँ, तब तक उसके लिए एकसा ही है। खोलकर लिखनेका मतलब है, सदाके लिए उसकी नींदको हराम कर देना। मैंने निश्चय किया है कि जब तक जीवित रहूँगा, पत्र लिखता रहूँगा, उसीसे उसको सन्तोष रहेगा।"

"मुझे तुम्हारे साहसका बारबार ख्याल आता है ?"

"मानव होनेकी क़ीमतको हमें हर वक्त चुकानेके लिए तैयार रहना चाहिए, समद ! और फिर एक आदर्शवादी मानव होनेपर तो हमारी ज़िम्मेदारियाँ और बढ़ जाती हैं ?"

"तो तुम्हारा विश्वास है, यह लड़ाई ज़बर्दस्त उथल-पुथल लायेगी।"

"पिछली लड़ाईने भी कुछ कम नहीं किया, सोवियत् रूसका अस्तित्व—दुनियाके छठे हिस्सेपर समानताका राज्य—यह कम चीज़ नहीं है; किन्तु इस लड़ाईके साथ जो परिवर्तन उपस्थित होगा, वह नई धरती, नये आसमानको लायेगा, दोस्त ! जिधर सोवियत् राष्ट्र है, जिधर लालसेना है; जिधरकी विजयके लिए आज चीन, इंग्लैंड, अमेरिका-

की जनता सर्वस्वकी बाज़ी लगाकर लड़ रही है, उस पक्षको जीतमें मुझे ज़रा भी सन्देह नहीं है।"

समद और रूपकिशोरकी इधर पाकिस्तानको लेकर बहुत चल रही थी; आज रूपकिशोरने फिर उसी सवालको छेड़ दिया—

"गांधीवादी स्वराज्य हो या साम्यवादी, इसमें हमारा और तुम्हारा मित्र सुमेर! मतभेद हो सकता है, किन्तु, स्वराज्य भारतके लिए होगा, इसमें तो सन्देह नहीं?"

"भारत भी एक निराकार शब्द है रूप बाबू! जिसके नामपर बहुत-सी भूल-भुलैयोंमें डाला जा सकता है, स्वराज्य भारतीयोंके लिए चाहिए, जिसमें भारतीय अपने भाग्यका आप निर्णय करें, और उसमें भी आसमानसे टपका स्वराज्य चन्द बड़े आदमियों तक ही सीमित नहीं होना चाहिए।"

रूप—"खैर, वैसे भी ले लीजिए, किन्तु स्वराज्यमें जीवित भारतको टुकड़े-टुकड़े तो नहीं होने देना चाहिए।"

सुमेर—"तुम फिर भूल-भुलैयाँके शब्दको इस्तेमाल कर रहे हो। भारतका खंडित और अखंड रहना, उसके निवासियोंपर निर्भर है। मौर्योंके समय—हिन्दूकुशसे परे आमू दरिया भारत की सीमा थी, और भाषा, रीति-रिवाज इतिहासकी दृष्टिसे अफ़ग़ान जाति (पठान) भारतके अन्तर्गत है; दसवीं सदी तक क़ाबुल हिन्दू-राज्य रहा, इस तरह हिन्दुस्तान की सीमा हिन्दूकुश है। क्या अखंड हिन्दुस्तानवाले हिन्दूकुश तक दावा करनेके लिए तैयार हैं? यदि अफ़ग़ानोंकी इच्छाके विरुद्ध नहीं कहो; तो सिन्धुके पश्चिम बसनेवाले सरहदी अफ़ग़ानों (पठानों)को भी उनकी इच्छाके विरुद्ध अखंड हिन्दुस्तानमें नहीं रखा जा सकता। फिर वही बात सिन्धु, पंजाब, काश्मीर, पूर्वी बंगालमें क्यों नहीं लेनी चाहिए?"

रूप— "अर्थात् उन्हें भारतसे निकल जाने देना चाहिए?"

सुमेर "हाँ, यदि वे इसीपर तुले हुए हैं। हम जनताकी लड़ाई

लड़ रहे हैं, इसका अर्थ है, किसी देशकी जनताको उसकी इच्छाके विरुद्ध राजनीतिक परतन्त्रतामें नहीं रक्खा जा सकता। पाकिस्तानका फ़ैसला, हिन्दुओंको नहीं करना है, उसकी निर्णायक है मुस्लिम बहुमत-प्रान्तोंकी जनता। यदि हम भारतमें जनताका नहीं शोषकोंका शासन क़ायम करना चाहेंगे, तो पाकिस्तान होकर रहेगा; यदि दिमाग़ी और शारीरिक श्रम करनेवाली जनताका शासन क़ायम करना चाहते हैं, तो भारत, अनेक स्वतन्त्र जातियोंका एक अखंड देश रहेगा। एक जाति, एक जातीयताके लिए एक भाषा, एक खान-पान, एक ब्याह-शादी सम्बन्धकी ज़रूरत है, जो साम्यवाद ही करा सकता है। इसपर भी भाषाओंके ख्यालसे हमें ८०से ऊपर स्वतन्त्र जातियाँ माननी पड़ेंगी।"

"अस्सीसे ज्यादा! तुमने तो पाकिस्तानको भी मात कर दिया।"

"भाषाओंको मैंने नहीं बनाया। जनताके राज्यमें उसकी मातृभाषा को ही शिक्षाका माध्यम बनाना होगा, और मातृभाषा वही है, जिसके व्याकरणमें बच्चा भी कभी ग़लती नहीं करता। सोवियत्-संघ ७० जातियों-का एक बहुजातिक-राष्ट्र है, उससे दूनी जन-संख्यावाला भारत यदि ८० जातियोंका बहुजातिक-राष्ट्र है, तो आश्चर्यकी क्या ज़रूरत!"

"तो तुम पाकिस्तानके पक्षमें हो!"

"जब तक मुस्लिम जनताका उसके लिए आग्रह है। आज हर विचारके मुस्लिम नेता एकमत हैं, कि पाकिस्तानकी माँगको मान लेना चाहिए और मैं समझता हूँ ग़ैर-मुस्लिमोंको इस न्याय माँगको ठुकरानेका कोई हक़ नहीं, जिस मुसलमान बहुमत प्रान्तकी बहुसंख्यक जनता भारतीय संघसे अलग जाना चाहती है उसे वह अधिकार होना चाहिए।"

(३)

नीचे काला समुद्र है, जिसके शान्त जलपर कहीं जीवनका चिह्न नहीं मालूम होता और सामने दूर सफ़ेद बादलोंका एक विशाल क्षेत्र।

वहाँ आसमानमें अपनी गतिके जाननेका कोई साधन नहीं, सिवाय गतिमापक यंत्रके जो कि सुमेरके आगे लगा हुआ है। तीन सौ मील प्रतिघंटेकी चालसे बने यानको उड़ाना ! सुमेरका ख्याल एक बार उस युगमें चला गया, जब कि मनुष्य पत्थरके अनगढ़ हथियारोंको ही अपना सबसे बड़ा आविष्कार, सबसे बड़ी शक्ति समझता था, किन्तु आज वह आकाशका राजा है। मानवता कितनी उन्नत हुई है। किन्तु, उसी वक्त उसका ख्याल मानवताके शत्रुओं—फ़ासिस्तोंकी ओर गया, जो कि मनुष्य के दिमाग़की इस अद्भुत देनको मानवताके पैरोंमें गुलामीकी बेड़ियाँ डालनेमें लगा रहे हैं। सुमेरका बदन सिहर गया, जब ख्याल आया कि जापानी फ़ासिस्त भारतके पड़ोसी बर्मामें आ गये हैं। उस वक्त उसकी नज़रोंके सामने कदमकुआँके वह घर और उनमें रहनेवाली वे स्त्रियाँ एक-एककर आने लगीं; जिनमें एक उसकी प्रिया है। दूसरी भी कितनी ही हैं; जिन्होंने इस अछूत माँके मेधावी आदर्शवादी लड़केको बेटा और भाईके तौरपर ग्रहण किया। फ़ासिस्तोंके लिए अपार घृणासे उसका दिल खौलने लगा। उसी वक्त उसे सामने तीन सूर्यवाले विमान उड़ते दीख पड़े। सुमेरने अपने मशीनगनरको फ़ोनसे कहा, और दो मिनटमें फ़ासिस्त विमानोंके बीचमें पहुँच गया। बात करनेमें देर लगती है, लिखनेमें तो और भी, किन्तु पता नहीं लगा, सुमेरके गनर शरीफ़ने किस तरह अपनी मशीनगनको ट्र-ट्र ट्र किया, और किस तरह सुमेरने अपने विमानको ठीक जगहपर पहुँचाया, और किस तरह दस मिनटके भीतर ही तीनों फ़ासिस्त विमान परकटी चीलकी भाँति समुद्रमें गिरे।

सुमेरको अपना जौहर दिखलानेका यह पहला मौक़ा था, किन्तु इस सफलतापर उसे बहुत सन्तोष हुआ। उसने विमानको लौटाते वक्त शरीफ़से कहा—

"शरू भाई ! हमनें अपनी क़ीमत अदा करा ली। हममेंसे हर

एक यदि तीन-तीन फ़ासिस्तों को खतम करे, तो कितना अच्छा हो !"

"मेरा मन भी अब बड़ा हलका मालूम होता है। अब मरना मुफ़्त नहीं कहा जायगा।"

"अब हम जितने दिन जियेंगे, जापानी फ़ासिस्तोंको मार-मार नफ़ेपर नफ़े कमाते रहेंगे।"

सुमेर दो सौ दिन जीता रहा। उसने सौ जापानी विमानोंको नष्ट किया। अन्तिम दिन बंगालकी खाड़ीमें उसे काम मिला। अंडमनके पच्छिम जापानी जंगी बेड़ा जा रहा था। सुमेरने चालीस हज़ार टनका एक जंगी महापोत देखा। बेड़ेके आस-पास रक्षक-विमान उड़ रहे थे. किन्तु दूर बादलोंमेंसे झाँकती सुमेरकी आँखोंको उन्होंने नहीं देखा।

सुमेरने अपने गनरको टारपीडो तैयार रखनेकी आज्ञा दी। बादल वहाँसे बेड़ेके ऊपर तक चला गया था। सुमेरने पूरी गतिसे अपने विमानको चलाया, दुश्मनके विमानोंको पता नहीं लग सका, कि कब कोई विमान जंगी पोतके ऊपर पहुँचा, कब भारतीय विमान-वाहकने टारपीडो लिये अपने विमानको महापोतपर झोंक दिया। सुमेर और उसके गनरका पता नहीं लगा, किन्तु अपने साथ ही वह उस जंगी महापोतको भी लेते गये।

परिशिष्ट

सभी भारतीय भाषाओंमें अद्वितीय ग्रन्थ

भदन्त आनन्द कौसल्यायन

'वोल्गासे गंगा'की कुछ कहानियाँ मैं हिन्दीकी पत्रिकाओंमें पढ़ चुका था, और जिस समय पुस्तक प्रकाशित हुई उसकी पहली प्रति भी शायद मुझे ही मिली। मैंने सारी पुस्तकको एक बार, और कई कहानियोंको एकसे अधिक बार पढ़ा है, पढ़कर सुनाया है. सभी तरह और अवस्थाके लोगोंको। मेरी आलोचना थी कि कई कहानियाँ 'कहानियाँ' कम और इतिहास अधिक हैं। सचमुच कुछ कहानियाँ मुझे ज्ञानके बोझसे दबीसी लगीं—कहानी होनी चाहिए हल्की-फुल्की। मैंने अपनी यह सम्मति एक बार राहुलजीको लिख भेजी। उनका उत्तर था—यदि इन कहानियोंको रोचक ढंगसे लिखा इतिहास-मात्र भी समझ लिया जाय, तो भी मैं सन्तुष्ट हूँ।

'वोल्गासे गंगा'की प्रशंसा मैंने की है और सुनी है। लेकिन उस दिन जब एक महाराष्ट्र विद्वान्—जो विश्वसाहित्यसे परिचय रखते हैं—की यह राय पढ़नेको मिली कि "किसी भारतीय भाषामें इस हिन्दी-पुस्तकके समान कोई ग्रन्थ नहीं" तो मेरा हिन्दी-भक्त मन सचमुच नाच उठा।

लेकिन हाय! कल किसी सज्जनसे २० सितम्बरके 'विश्व-बन्धु'की एक कतरन भेज दी—जिसमें पढ़नेको मिला 'नग्नवादी वेदनिन्दक राहुल'। लेखकका नाम है 'श्री० स्वामी जी'। लेकिन उन्हें 'गुप्त' रहनेकी क्या आवश्यकता थी? हाँ, किसीने अपना नाम ही 'स्वामी जी' रखा हो तो बात दूसरी है।

पुस्तकका प्रिय लगना, अप्रिय लगना, अपनी अपनी रुचिकी बात ही नहीं योग्यताकी भी बात है। सभीको कोई भी ग्रन्थ एक-सा कभी भी नहीं भाता। 'वोल्गासे गंगा' ही इसका अपवाद क्यों हो ?

लेकिन मैं केवल इतना जानना चाहता हूँ कि श्री० स्वामी जीने जनताके सामने जो यह इच्छा की है कि 'वह ऐसा घृणित पुस्तकपर प्रतिबन्ध लगवानेकी पूरी कोशिश करें' उस इच्छाको कार्यरूपमें परिणित करनेका प्रयत्न करनेसे हम सम्मानित होते हैं, वा अपमानित ? आर्य जातिकी तो सुनते आये हैं कि आज तक यही विशेषता रही है कि मिथ्या-मतोंको उसने अपने बुद्धिबलसे ही परास्त करनेकी कोशिश की है। 'वादे वादे जायते तत्त्वबोधः' क्या आर्य पूर्वजोंकी ही घोषणा नहीं है ?

मैं राहुल जीकी इस युगान्तर-कारी कृतिसे समीपसे परिचित हूँ और जानता हूँ कि उसमें हमारे देशके एक असाधारण चिन्तकके जीवनभर-के अध्ययनके परिणाम समाविष्ट हैं। उनके निष्कर्ष हमें ग़लत लगें तो हम उन्हें वैसा सिद्ध करें। स्वतन्त्र चिन्तकोंके सामने यदि वे ईमानदार हैं और ईमानदारीके पौदेको सींचना चाहते हैं तो और कोई दूसरा उपाय नहीं।

राहुल जी द्वारा रचित 'वोल्गासे गंगा'की प्रथम चार कहानियोंके नाम हैं **निशा, दिवा, अमृताश्व, पुरुहूत।** उन चार कहानियोंमें ६०००ई० पू०से लेकर २५००ई०पू० तकके समाजका चित्रण है। वह प्रागैतिहासिक काल है; और ये कहानियाँ हैं। इसलिए यह तो मानी हुई बात है कि उन कहानियोंमें कल्पनाका हाथ विशेष है, लेकिन वह केवल कल्पना-जन्य कृति नहीं हैं। उन कहानियोंमें जो-जो मार्केकी बातें हैं वह सब राहुल जीके इन्दु-यूरोपी तथा इन्दु-ईरानी भाषा-शास्त्र (Philology) विषयक अध्ययनका परिणाम हैं। परिवारकी उत्पत्ति (Origin of family by Angels) अंग्रेज़ीका एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। उन कहानियोंपर प्रतिबन्ध लगवानेसे पहले हमें उस ग्रन्थपर प्रतिबन्ध लगवाना होगा।

अगली चार कहानियाँ हैं—पुरुधान, अंगिरा, सुदास् और प्रवाहण।

इन सभी कहानियोंके पीछे भी साहित्यिक प्रमाण हैं—वेद, ब्राह्मण, महाभारत, पुराण और बौद्धग्रन्थोंके 'अट्ठकथा' नामसे प्रसिद्ध भाष्य। सुदास कहानीका आधार स्वयं ऋग्वेद है और कई पाठकोंको—बौद्धों, अबौद्धों सभीको चिढ़ानेवाली—कथा **प्रवाहण जैवलिका** आधार हैं छान्दोग्य तथा बृहदारण्यक उपनिषद् और बौद्धोंकी उक्त अट्ठ-कथायें। इन चार कथाओंमें २००० ई० पू०से ७०० ई० पू० तकके सामाजिक विकासको देनेका प्रयत्न किया गया है। पाठक देखें, अभी हम बुद्धके समय तक नहीं पहुँचे हैं।

अगली कहानी **बंधुल मल्ल** है (४९० ई० पू०)। इस कहानीकी सारी सामग्री बौद्ध-ग्रन्थोंसे ली गई है। वहाँ इतनी अधिक सामग्री है कि राहुल जीको उस समयकी अवस्था चित्रित करनेके लिए 'सिंह-सेनापति' नामसे एक पृथक् उपन्यास लिखना पड़ा है।

दसवीं कहानी **नागदत्त** है। यदि आप कौटिल्यका अर्थशास्त्र पढ़ें, यवन-यात्रियोंके वृत्तान्त पढ़ें, जायसवाल जीकी हिन्दु-पालिटी पढ़ें और पढ़ें आपके सभी स्कूलों कालेजोंमें पढ़ाये जानेवाला विन्सट-स्मिथका इतिहास तो कोई आश्चर्य नहीं कि आपके हाथ भी उनमेंसे कुछ ऐतिहासिक तथ्य लगें जिन्हें राहुल जीने 'नागदत्त'में व्यक्त किया है।

ग्यारहवीं कहानी **प्रभा**ने कहानीके रूपमें भी अच्छी ख्याति पाई है। उस कहानीके पीछे अश्वघोषके **बुद्धचरित** तथा **सौन्दरानन्द** दो काव्य हैं; सभी संस्कृत नाटक हैं; विन्टर्निटज़का लिखा 'भारतीय साहित्यका इतिहास' है; और है रीज़डेविड्सका लिखा 'बौद्ध-भारत'। इस कहानीका समय ५० ई० पू० है।

बारहवीं कहानी **सुपर्ण यौधेय** गुप्त-कालकी कहानी है। उसकी कुछ सामग्री गुप्त-कालीन अभिलेखोंसे मिली है, जो अमिट हैं और हमारे द्वारा नित्य पढ़े जानेवाले रघुवंश, कुमारसम्भव, अभिज्ञानशाकुंतलसे। उसमें पाणिनिकी भी देन है और चीन-यात्री फाहियानकी भी।

तेरहवीं कहानी **दुर्मुख** है—सचमुच तीरकी तरह चुभनेवाली।

क्या किया जाय ! उसके पीछे हर्षचरित है, कादम्बरी है, हेनचांग और इत्सिंगके यात्रा-वृत्तान्त हैं ।

चौदहवीं कहानीका समय है १२०० ई० और नाम है चक्रपाणि । उस कहानीका श्रोत आपको नैषधमें ढूँढ़ना होगा, खंडनखंड खाद्यमें ढूँढ़ना होगा और अनेक शिलालेखों तथा अभिलेखोंमें ।

बाबा नूरदीनसे लेकर सुमेर तक छः कहानियाँ और हैं जिनका समय है १२वीं सदीसे बीसवीं सदी तक । उन सब कहानियोंके पीछे भी ऐतिहासिक प्रमाणिकता है लगभग वैसी ही जैसी इन कहानियोंके पीछे । लेकिन उनपर देखता हूँ किसीको कुछ विशेष आपत्ति नहीं । शायद इसलिये कि वह सब अपेक्षाकृत वर्त्तमान्-कालसे सम्बन्ध रखती हैं और हम ठहरे अतीतके पुजारी ।

पुस्तकमें—कहानियोंमें व्यक्त—सभी निष्कर्षोंसे सहमत असहमत होनेकी इन पंक्तियोंके लेखककी अधिक सामर्थ्य नहीं, क्योंकि उसके लिए राहुलजी जैसा न सही तो, उसके आसपासकासा अध्ययन होना चाहिए । ये पंक्तियाँ तो श्री० स्वामी जी जैसोंसे केवल यह निवेदन करनेके लिए लिखी गई हैं कि इन कहानियोंमें 'अनाप-शनाप' नहीं है, वर्षोंका अध्ययन है ।

अभी पिछले दिनों कुछ अनपढ़ जैनियोंने आचार्य धम्मानन्द जी कोसम्बी द्वारा व्यक्त विचारोंके विरुद्ध हल्ला मचाया था । जैन पण्डितों-ने ही कहा—'हम कोसम्बीजीके पक्षमें गवाही देंगे ।' उसकी आवश्यकता नहीं पड़ी ।

मुझे डर है कि हमारे प्राचीन ग्रन्थ और उनके रचयिता ऋषि-महर्षि ही राहुल जीकी गवाही दे रहे हैं—अरे ! ठीक तो कहता है । 'सत्यसे बढ़कर धर्म नहीं ।'

—